UGC-CARE List-Social Sciences

ISSN 0974-0074

राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा

National Peer Reviewed Journal of Social Sciences

वर्ष 26 अंक 2

जुलाई–दिसम्बर, 2024

समाज विज्ञान विकास संस्थान

बरेली (उ.प्र.)

इस अंक में

1. **साम्राज्यवादी इतिहास लेखन की आलोचना संताल हूल 1855-1856 में नायक चांद और भैरव की क्रांतिकारी भूमिका** 1-13
डा. दिनेश नारायण वर्मा

2. **समाजशास्त्रीय सिद्धाँत-निर्माण के रचनात्मक तत्व** 14-22
प्रोफेसर अशोक कुमार सिंह

3. **भाषा, राजनीति एवं पहचान : अप्रैल प्रस्ताव और उर्दू का बदलता परिदृश्य** 23-31
मो. काशिफ
मो. अजहरुल हक मल्लिक

4. **लैंगिक न्याय, प्रतिनिधित्व और भारतीय चुनावी व्यवस्था : लोकसभा चुनाव 2024 के विशेष संदर्भ में** 32-40
राकेश कुमार
मंगल सिंह

5. **प्राचीन भारत में सूर्योपासना एक अभिलेखीय विवेचन** 41-46
डॉ. अजीत कुमार राव
डॉ. प्रशान्त कुमार

6. **भारत में 'एक देश एक चुनाव' का सैद्धान्तिक व व्यवहारिक पक्ष** 47-53
डा. निभा राठी
डॉ. मनस्वी सेमवाल

7. **राजपूतकालीन मध्य तथा पश्चिम भारत में उद्योग तथा व्यवसायिक वर्ग : एक ऐतिहासिक अध्ययन** 54-61
डॉ. सुरभि श्रीवास्तव

8. **मध्य प्रदेश की जनजातीय महिलाओं में मासिक धर्म से संबंधित धारणाओं का समाजशास्त्रीय विश्लेषण** 62-86
डॉ सारिका दीक्षित

9. **निजी क्षेत्र के कर्मचारियों के बीच नौकरी संतुष्टि पर वेतन और पद के प्रभाव का विश्लेषण** 69-76
सुश्री मनीषा शेखर
डॉ. सारिका पांडेय

10. **समानता के सिद्धांत की उत्पत्ति व संरचना के संदर्भ में रूसों के विचारों का विश्लेषण** 77-83
डॉ. महेश जगोठा
प्रोफेसर एम. एम. सेमवाल

11. **21वीं सदी में भारत-रूस संबंधों में विस्तारित साझेदारी** 84-90
डॉ. जितेन्द्र कुमार पाण्डेय
प्रोफेसर सुमन शर्मा

12. **कानपुर नगर के अनुदानित एवं गैर अनुदानित बी. एड. महाविद्यालयों में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का अध्ययन** 91-96
सुश्री रचना वर्मा
डॉ. पंकज सिंह

13. **तृतीयलिंग (ट्रांसजेंडर) समुदाय की पारिवारिक स्थिति : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन** 97-103
राज मोहन

14. **ग्रामीण विकास में कृषि आधारित उद्यमिता की भूमिका : संभावनाएं, चुनौतियां एवं समाधान** 104-110
डॉ. राम रतन

15. आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता का अध्ययन 111–118
डॉ. मो. अख़तर रजा
डॉ. माहेजबीं
16. भारत–बांग्लादेश द्विपक्षीय संबंधों में चुनौतियाँ एवं सहयोग 119–127
अनुज
प्रोफेसर रमेश कुमार
17. भारत की एक्ट ईस्ट नीति और इंडोनेशिया के साथ रक्षा सहयोग : 2014–2024 का विश्लेषण 128–131
रशवंत सिंह
डॉ. विमल कुमार कश्यप
18. संस्कृति एवं राजनीति : ब्रिटिश भारतीय अप्रत्यक्ष शासन का अध्ययन साध्य–साधन के विशेष संदर्भ में 135–141
अतुल
डॉ. ज्योति
19. हरियाणा में वृद्धावस्था पेंशन योजना : आर्थिक स्वतंत्रता और सामाजिक सशक्तिकरण पर प्रभाव 142–148
डॉ. मंजू पंवार
सुश्री कविता
20. छत्तीसगढ़ के धार्मिक पर्यटन स्थल खल्लारी का ऐतिहासिक अध्ययन 149–154
सुश्री जागृति जगत
डॉ. बन्सो नुरूटी
21. समावेशी राज्य बिहार में पिछड़े वर्ग की राजनीतिक लामबंदी का विश्लेषणात्मक अध्ययन 155–163
उज्ज्वल गुप्ता
22. विकसित भारत 2047 के निर्माण में भारत की रोजगार नीति का सिंहावलोकनः स्वतंत्रता प्राप्ति से अब तक 164–173
डॉ. विजया कुमारी
23. विद्यालय के बुनियादी ढांचे का छात्रों के अकादमिक प्रदर्शन पर प्रभाव 174–180
सुश्री नेहा कुमारी
डॉ. सारिका पाण्डेय
24. दक्षिण–पूर्वी पंजाब में कृषि के वाणिज्यीकरण पर विभिन्न विचार 181–186
डॉ. मन्जू बाला
25. उत्तर प्रदेश में दलित : दशा और दिशा 187–195
कृष्ण कुमार
प्रोफेसर गीता यादवेन्दु

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

साम्राज्यवादी इतिहास लेखन की आलोचना संताल हूल 1855–1856 में नायक चांद और भैरव की क्रांतिकारी भूमिका

❑ डा. दिनेश नारायण वर्मा

देश की जनजातियों ने ईस्ट इंडिया कम्पनी शासन (1757-1857) को कभी स्वीकार नहीं किया। अपनी जागीरों में विदेशियों की घुसपैठ रोकने और अपनी स्वतंत्रता कायम रखने के लिए उन्होंने विदेशी शासन के विरूद्ध सशस्त्र संघर्ष किया और कभी हथियार नहीं डाले। यह संघर्ष जनजातियों के स्वर्णिम इतिहास का उज्जवल पक्ष है जिसकी भारतीय दृष्टिकोण से विवेचना नहीं की गई है। यह उल्लेखनीय है कि भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ईस्ट इंडिया कम्पनी शासन के विरूद्ध हुए जनजातियों के संघर्षों में पहाड़िय संघर्ष 1765-1785, चोआड़ संघर्ष 1798-1799,चेर संघर्ष 1800, भील संघर्ष 1818-1831, हो संघर्ष 1821- 1822, कोल संघर्ष 1831-1833,भूमिज संघर्ष 1832-1833 और संताल जनजातियों का संघर्ष 1855-1856 (संताल हूल 1855-1856-संतालों की अगुवाई में जनजातियों,दलितों और पिछड़ों का संघर्ष) आदि प्रमुख संघर्ष थे। पर इनमें संताल संघर्ष -संताल हूल 1855-1856 की ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अलग पहचान है क्योंकि विश्व के सबसे बड़े साम्राज्यवाद को यह सबसे बड़ी संगठित और सशस्त्र चुनौती थी। यह भारत की पहली जन क्रांति ही नहीं बल्कि एशिया महादेश का सबसे बड़ा जन-आन्दोलन भी था। इसकी अगुवाई भगनाडीह गाँव (झारखंड) के चार सहोदर भाइयों सिदो, कान्हू, चांद और भैरव ने की। पर सिदो और कान्हू दो बड़े भाइयों की भूमिका की विवेचना इतिहासकारों ने की जिनका हूल में महत्वपूर्ण योगदान था। पर उनके दो अनुज चांद और भैरव की भी हूल में कम महत्वपूर्ण भूमिका नहीं थी जैसा कि ऐतिहासिक दस्तावेजों से स्पष्ट होता है। साम्राज्यवादी इतिहासकारों की उपेक्षा के कारण से संताल हूल में उनके धरातलीय योगदान को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रेखांकित नहीं किया गया और इसकी विवेचनात्मक समीक्षा भी नहीं की गई। किसी आदिवासी या अन्य विद्वानों द्वारा भी उनके योगदान पर नहीं लिखा जाना कम आश्चर्यजनक नहीं है। यह भी उल्लेखनीय है कि इतिहासकारों ने सभी कोलोनियल अंभिलेखों का अवलोकन और इसकी विवेचना नहीं की। इस शोध आलेख में 'जनोन्मुखी इतिहास' अध्ययन के उद्देश्यों और अभिप्रायों के अन्तर्गत संताल हूल के इस महत्वपूर्ण उपेक्षित पहलू की खोज, विवेचना और इसकी समीक्षा प्रस्तुत है और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट किया गया है कि संताल हूल में चांद और भैरव का योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं था।

सूचक शब्द : शोषण, दमन, संघर्ष, जमींदार, पुलिस, महाजन, कर्मचारी।

ऐतिहासिक क्रांति स्थल भगनाडीह (बरहेट, जिला साहिबगंज, झारखंड) के सिदो और कान्हू ने अपने अनुजों चांद और भैरव के साथ संताल हूल 1855-1856 की अगुवाई की और सभी स्थानीय जनजातियों, पिछड़ों और दलितों को संगठित कर उन्होंने ईस्ट इंडिया कम्पनी शासन के विरूद्ध सशस्त्र संघर्ष किया। अविभाजित बंगाल प्रांत के एक बड़े क्षेत्र में प्रचारित-प्रसारित इस जन क्रांति का एकमात्र लक्ष्य विदेशी शासन को समाप्त कर अपना राज स्थापित करना था। इतने व्यापक स्तर पर किये गये सशस्त्र संघर्ष में इसके महानायकों के अलावा उनके दो छोटे भाइयों की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। प्रामाणिक ऐतिहासिक दस्तावेजों से पता चलता है कि प्रारम्भ से लेकर संघर्ष की विभिन्न घटनाओं में और इसके अन्तिम समय तक सिदो और कान्हू के अलावा चांद और भैरव का भी सक्रिय योगदान था। प्रस्तुत शोध आलेख में संताल हूल में चांद और भैरव के संघर्षपूर्ण योगदान की विवेचनात्मक समीक्षा है। यह उल्लेखनीय है कि संताल हूल का यह एक ऐसा पहलू है जिसे इतिहासकारों के द्वारा रेखांकित नहीं किये जाने से यह आज तक उपेक्षित है। इसलिए इस आलेख में इसकी व्यापक विवेचना और हूल के परिप्रेक्ष्य में चांद और भैरव के क्रांतिकारी योगदान की समीक्षा की गई है।

कार्यप्रणाली : प्रस्तुत आलेख मूल रूप से प्रकाशित स्रोतों पर आधारित है जिसमें प्रामाणिक पुस्तकें, रिपोर्ट, शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित आलेख और सरकारी प्रकाशन सम्मिलित हैं। इनमें अनेक पुस्तकें ऐसी हैं जो मूल रूप से विदेशी प्रेस से प्रकाशित हैं जिनका भारत में रिप्रिन्ट किया गया। ये समस्त पुस्तकें अभिलेखागारों और पुस्तकालयों में सुरक्षित और उपलब्ध हैं। के.के.बसु (1934), के.के.दत्त (1934, 1940, 1957, 1970) पी.सी.राय चौधरी (1962, 1965), के. एस.सिंह (1985), जे. सी. झा (1983, प्रज्ञा-भारती, पटनाय (1985) एस.पी.सिन्हा (1991) आदि की रचनाएं ऐतिहासिक दस्तवेजों पर आधारित हैं

❑ सेवानिवृत प्राध्यापक, निदेशक, स्टडी एंड रिसर्च सेंटर, शिव मंदिर, चांदमारी रोड (उत्तरपल्ली), रामपुरहाट, जिला वीरभूम (प.बंगाल)

जिनसे आवश्यक ऐतिहासिक तथ्य संकलित किये हैं। इनके अतिरिक्त समकालीन दो महत्वपूर्ण प्रामाणिक ऐतिहासिक दस्तावेज कलकत्ता रिव्यू 1856 और कलकत्ता रिव्यू 1860 व प्रख्यात शोध बंगाल रूपास्ट एंड प्रेजेन्ट (कलकत्ता), सोशल साइंटिस्ट, (नई दिल्ली) बुलेटिन, आदि के विभिन्न अंकों में प्रकाशित शोध आलेख भी इस शोध आलेख के आधारभूत अभिलेखीय स्रोत हैं। यह उल्लेखनीय है कि जे. ट्रोइसी (1976) तारापद राय (1983) एस. पी. सिन्हा (1991 रांची) और अश्विनी कुमार पंकज (2021, 1855) आदि की रचनाएं विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं जिनमें संताल हूल से सम्बन्धित अधिकांश अभिलेखीय स्रोतों, आलेखों, विभिन्न समाचार पत्रों में प्रकाशित हूल से सम्बन्धित रिपोर्टिंग आदि का संकलन है। इसलिए ये सभी प्रकाशन प्रस्तुत अध्ययन के लिए प्रामाणित ऐतिहासिक सामग्रियों हेतु महत्वपूर्ण हैं। पर अधिकांश विद्वानों की कथित स्त्रोतों की जानकारी नहीं होने से इनमें वर्णित संताल हूल से जुड़ी ऐतिहासिक घटनाएं और इसके नायकों का संघर्ष इन स्त्रोतों में अभी तक सीमित हैं।

शोध आलेख का उद्देश्य : प्रस्तुत शोध आलेख का आधारभूत उद्देश्य संताल हूल 1855-1856 में चांद और भैरव की अहम भूमिका की खोज, विवेचना और इसकी समीक्षा करना है। संताल विद्रोह के नायक सिदो और कान्हू के चांद और भैरव अनुज थे इसलिए साम्राज्यवादी लेखकों द्वारा उन पर विस्तृत टीका-टिप्पणी नहीं किये जाने से वे भारतीय इतिहासकारों द्वारा भी उपेक्षित हो गये। यह साहित्य पुनर्विलोकन से भी स्पष्ट है। हूल की ऐतिहासिकता और महत्व के आलोक में इसकी संक्षिप्त विवेचना की गई है और इसके नायक सिदो और कान्हू की अगुवाई के अलावा संताल हूल की ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख किया गया है। इसी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में चांद और भैरव के संताल हूल में क्रांतिकारी योगदान को स्पष्ट किया गया है।

साहित्य समीक्षा : इ.जी.मान (1867) विलियम विल्सन हंटर (1868, 1877, 1895), सी.इ.बकलैंड (1901), एफ.बी. ब्रोडले- बर्ट (1905), एच. मैकफर्सन (1909), एल.एस. एस.ओश्मैली (1910) आदि साम्राज्यवादी अधिकारियों और लेखकों के अतिरिक्त भारतीय इतिहासकारों बाबू दिगम्बर चक्रवर्ती (1899) के.के.बसु (1934),के.के.दत्त (1934, 1940, 1957, 1970), आर.आर.दिवाकर (1959) एन.बी.राय (1960, 1961) पी.सी.राय चौधरी (1962, 1965), उमाशंकर (1966), वी.राघवइया (1971) सी.एच. कुमार (1973), धीरेन्द्रनाथ बास्के (1982), जे. सी. झा (1983,1985), एस. पी. सिन्हा (1991, 1991) सुप्रकाश राय (1999) आदि ने अपनी रचनाओं और आलेखों में संताल हूल 1855-1856 और इसमें सिदो और कान्हू की भूमिका की विवेचना की पर उन्होंने संताल हूल में चांद और भैरव के सक्रिय योगदान को रेखांकित नहीं किया। के.के.दत्त व जे.एस. झा द्वारा सम्पादित 'कम्प्रिहेनसिव हिस्ट्री ऑफ बिहार', (1976), एस.पी. सिन्हा संपादित, (1991) 'ट्राइबल लिडरशिप इन बिहार', चारुलाल मुखर्जी कृत 'द संतालस' (1943/1962) पी. सी. विश्वास रचित 'संतालस आफ संताल परगना' (1956), नवेन्दु दत्त मजूमदार की प्रख्यात रचना 'द संताल-ए स्टडी इन कलचर चेंज' (1956), आर.आर. दिवाकर सम्पादित 'बिहार थ्रू द एजेज' (1959), आर.सी. वर्मा द्वारा प्रकाशित 'इंडियन ट्राइब्स थ्रू द एजेज' (2009), रूपक राग, 'हूलगुलानों के वीर शहीद' (2013), अतिश दासगुप्ता, सम आस्पेक्ट्स ऑफ द संताल रेबेलियन 1855-56) आदि में भी संताल हूल के इन उपेक्षित नायकों की विदेशी शासन के विरोध में अहम भूमिका की विवेचना नहीं है।

संताल हूल 1855-1856 की संक्षिप्त विवेचना-सिदो और कान्हू की अग्रणी भूमिका : (A Glimpse of the Santal Hul 1855-1856 and the Leading Role of Sido and Kanhu)

अविभाजित बंगाल प्रांत के इतिहास में ईस्ट इंडिया कम्पनी शासन के विरूद्ध हुए विभिन्न जनजातीय संघर्षों में संताल हूल की अलग पहचान है। शोषण, दमन और उत्पीड़न के गर्भ से प्रस्फुटित संताल हूल 1855-1856 भारत की पहली जन क्रांति ही नहीं बल्कि एशिया महादेश का सबसे बड़ा जन आन्दोलन भी था। 19वीं शताब्दी में किसी भी देश में विदेशी शासन के विरूद्ध संताल हूल के पूर्व इतना बड़ा, सशक्त, संगठित और सशस्त्र जन आन्दोलन नहीं हुआ था।[1] इस संघर्ष से वैश्विक स्तर पर पहली बार स्पष्ट हुआ कि भारत के जनजातीय, दलित और पिछड़े वर्ग के लोगों में साम्राज्यवाद के विरूद्ध धरातलीय स्तर पर गहरा असंतोष व्याप्त था और इसके जड़ोन्मूलन के लिए वे एकजुट हो गये थे। यह एकजुटता अहिंसात्मक नहीं थी[2], उनका प्रतिवाद

अहिंसात्मक नहीं था[3] क्योंकि अपनी स्वतंत्रता के लिए उन्होंने अपने परम्परागत हथियारों से सशस्त्र संघर्ष किया और हथियार नहीं डाले। इसमें संतालों के अतिरिक्त अन्य जनजातियों समेत हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के पिछड़ों और दलितों के बड़े पैमाने पर सम्मिलित होने से देश के आधुनिक इतिहास में इसकी एक अलग पहचान विकसित हुई। इसके लिए कई कारण उत्तरदायी हैं[4] पर इस आलोक में धरातलीय स्तर पर इसके लक्ष्य एकदम स्पष्ट थे। इसके क्रांतिकारियों की लड़ाई मात्र विदेशियों को देश से बाहर निकालने तक ही सीमित नहीं थी बल्कि वे अपना राज स्थापित भी करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने घोषणाएं कीं और अपने उद्देश्यों को एकदम स्पष्ट कर दिया। यह दूसरा महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य था जिसने संताल हूल को 19वीं सदी के अन्य संघर्षों से अलग कर दिया। समकालीन ऐतिहासिक दस्तावेजों से स्पष्ट है कि जमींदार, महाजन, पुलिस, रेवेन्यू और न्यायिक कर्मचारियों की आपसी मिलीभगत से तत्कालीन अविभाजित बंगाल का जनजातीय, दलित और पिछड़ा वर्ग कई वर्षों से पीड़ित और प्रताड़ित था। इस धरातलीय यथार्थता के फलस्वरूप इस हूल में संतालों के अलावा पहाड़िया, ग्वाले, हरिजन, डोम, कुम्हार, तेली, लोहार, जुलाहे, चमार, कहार, नाई, धांगड़, कोल, भुइयां, रजवाड़, माल, मल्लाह, भोवजा, धानुक, तांती, मोमिन आदि वर्ग के लोग बड़ी संख्या में सम्मिलित हुए और हूल में बड़ी प्रभावशाली धरातलीय भूमिका निभायी। साम्राज्यवादी लेखक हंटर ने अपनी विवेचना में इन्हें "Very low castes of the Hindus" कहा है।[5] सुसाना बी.सी.देवाले के शब्दों में 'एक बड़े क्षेत्र की ग्रामीण जनसंख्या इसमें सम्मिलित हो गयी।'[6] इसलिए संताल हूल के नायक-सिदो, कान्हू, चांद और भैरव केवल आदिवासियों के ही नहीं बल्कि पिछड़े और दलित लोगों के भी सर्वमान्य नायक थे। यह भी उल्लेखनीय है कि इसके नायकों का आविर्भाव जनता में से हुआ था जो स्वयं भी संघर्ष करने के लिए उत्तेजित थी। निःसंदेह यह संतालों का सबसे बड़ा संघर्ष था और इसमें संतालों की महत्वपूर्ण और केन्द्रीय भूमिका थी।[7] महाजन, जमींदार और ब्रिटिश सरकार के पुलिस और न्यायिक कर्मचारियों और अधिकारियों के अतिरिक्त नीलहे व्यापारियों, रेलवे अधिकारियों, ठेकेदारों और कर्मचारियों से भी मूल रूप से संताल सबसे ज्यादा प्रताड़ित हुए थे।[8] कोर्ट की दूरी, वकीलों को देने के लिए उनकी फीस, लीगल प्रोसिडिंग्स, कोर्ट के विभिन्न कर्मचारियों आदि कुछ ऐसे मामले थे जिन्होनें संतालों को सरकार का विरोधी बना दिया था क्योंकि इन सबों पर सरकार का प्रत्यक्ष नियंत्रण था।[9] पुलिस स्वयं भ्रष्ट थी और संताल निवासित बड़े क्षेत्र में व्यवस्था स्थापित करने में सक्षम नहीं थी। एक अंग्रेज अधिकारी द्वारा वर्ष में एक बार परिभ्रमण कर प्रभावशाली व्यवस्था स्थापित करना सम्भव नहीं था।[10] इस प्रकार कार्यपालिका या न्यायपालिका किसी भी माध्यम से दामिन में सरकार की उपस्थिति अंकित नहीं थी जबकि बंगाली और अन्य गैर-संताल महाजन, जमींदार और व्यापारी उनका शोषण करते थे।[11] शाहाबाद, छपरा और आरा आदि स्थानों से आये व्यापारियों (इन्हें भट्टिय कहा जाता था) ने संतालों का शोषण और दमन किया। इसके अतिरिक्त उन पर महाजनों का अमानवीय अत्याचार भी दिन पर दिन बढ़ता गया और उन्हें हर साल चुकता करने के बाद भी उन पर कर्ज का बोझ कभी खत्म नहीं होता था।[12] उनकी महिलाओं के साथ अत्याचार, अपहरण और बलात्कार की घटनाएं हुईं थीं। तत्कालीन समाचार पत्रों (1855) में इस तरह की कई घटनाओं का उल्लेख है जिससे संताल काफी उत्तेजित हो गये थे और दोषियों को पकड़ कर मार डाला था। इसलिए उनमें असंतोष और हूल की भावना अधिक थी। सिदो और कान्हू की भी आनुवांशिक भूमि और खेत महाजनों ने हथिया लिए थे और वे बेघर हो गये थे।[13] अतः उन्होंने स्वराज्य की दुहाई देकर अन्य जनजातियों, पिछड़ों और दलितों का समर्थन प्राप्त कर लिया। यह काफी महत्वपूर्ण है कि उनका गांव भी सूदखोरों और जमींदारों से काफी प्रताड़ित हुआ था। उनके जन्म स्थान भगनाडीह में उनके पिता की भी पैतृक भूमि सूदखोरों ने हड़प ली थी।[14] संतालों में प्रचलित आम धारणा के अनुसार वे दैवीय शक्ति से प्रेरित हुए थे। इस आम धारणा के अनुसार संतालों के सबसे बड़े देवता मरागंबुरू ने सिदो और कान्हू को दर्शन दिया था और आदेश दिया कि वे संतालों को शोषण और उत्पीड़न से मुक्त करें और संतालों का राज स्थापित करें। यहां यह बताना समीचीन जान पड़ता है कि जनजातियों के अधिकांश आन्दोलन का स्वरूप मसीही होता था और अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि सभी प्रकार की समस्याओं के निराकरण के लिए वे किसी मसीहा के

आविर्भाव की परिकल्पना करने लगते थे।[15] वे उन्हें दैवीय और चमत्कारिक शक्तियों से सम्पन्न मानने लगते थे। इस प्रकार वे धार्मिक दृष्टिकोण से भी एकजुट हो जाया करते थे। संताल हूल में भी जनजातियों ने अपने उद्धारक के आगमन की परिकल्पना की और इसके नायकों का आविर्भाव उनके उद्धारक के रूप में हुआ। इस तथ्य की विस्तृत विवेचना इतिहासकार के.के.दत्त (द संताल इनसरेक्सन ऑफ 1855-57, (1940) के पश्चात् प्रसिद्ध विद्वान लेखक स्टेफन फ्यूक्स रेबेलियस प्रोफेट्स (1965) ने भी की है। यह भी प्रचारित किया गया कि उन्हें बन्दूकों और इसकी गोलियों से नहीं डरना चाहिए क्योंकि दुश्मनों के बन्दूक की गोलियां पानी हो जायेंगी।[16] **यह उल्लेखनीय** है कि संताल परम्परागत रूप से स्वतंत्र और स्वछन्द रहे हैं। उन्होंने अपनी सभ्यता और संस्कृति में ही नहीं बल्कि अपनी जागीरों में भी बाहरी हस्तक्षेप को कभी बर्दाश्त नहीं किया। इसलिए जब उन्हें सूदखोरों और जमींदारों ने अपना बन्धुआ मजदूर बना लिया और उनकी स्वतंत्रता का हनन कर लिया तो वे एक बार फिर से अपनी स्वतंत्रता सम्बन्धी पारम्परिक भावना से प्रेरित हुए और अपना संगठन बनाने लगे। इसलिए अपने स्वराज की स्थापना के विचार से प्रेरित होकर संतालों ने सिदो और कान्हू और उनके दो छोटे भाइयों चांद और भैरव) को अपना नेता स्वीकार कर लिया[17] और वे पुराने दिनों की कल्पना करने लगे जब वे किसी के अधीन नहीं थे और पूरी तरह से स्वतंत्र थे एवं उन्हें किसी को किसी प्रकार का कर भी नहीं देना पड़ता था।[18] इस ऐतिहासिक तथ्य को ब्रिाटिश लेखक और अधिकारी मैकफर्सन (1909) ने साम्राज्यवादी दृष्टिकोण से स्पष्ट करते हुए लिखा है कि संताल साधारणतया शान्त और संतुष्ट प्रकृति के होते हैं, पर जब उनके दिमाग में कोई शिकायत खटकने लगती है, तो उनमें असन्तोष उभरता है ऐसे में उनके नेता या स्वार्थी आन्दोलनकारी जनजाति की प्राचीन परम्पराओं की दुहाई देते हैं और स्वतंत्रता की उम्मीद करते हैं।[19] अपने नायकों के आदेश पर उन्होंने अपने गांवों का व्यापक शुद्धिकरण किया और एकजुट होने लगे।[20]

सिदो और कान्हू ने स्थानीय और बड़े अधिकारियों को आवेदन दिये और अपने शिकायतों को दूर करने की मांग की पर इन अधिकारियों ने कोई कार्यवाही नहीं की।[21] इससे संताल काफी उत्तेजित हुए और कम्पनी शासन के अधिकारियों के विरूद्ध उनमें असंतोष और आक्रोश अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया। इसके फलस्वरूप कम्पनी के सिविल और सैन्य अधिकारियों को वह सब कुछ झेलने के लिए विवश होना पड़ा जिसकी उन्हें कभी आशा नहीं थी।[22] प्रख्यात लेखक हंटर के अनुसार सिदो और कान्हू ने अपने 30,000 अंगरक्षकों के साथ कलकत्ता प्रस्थान किया।[23] यह उल्लेखनीय है कि कलकत्ता मार्च का उल्लेख हंटर के बाद केवल स्टेफन फ्यूक्स (1965-51) ने किया। स्टेफन फ्यूक्स ने लिखा कि उन्होंने कलकत्ता में गवर्नर-जनरल से व्यक्तिगत रूप से मिलने के लिए 'कोरपोरेट मार्च' का कार्यक्रम बनाया और संतालों को एकत्रित होने का निर्देश जारी किया। इसके पूर्व उनके आह्वान पर संतालों की एकता का प्रतीक साल वृक्ष की शाखा विभिन्न गांवों में घुमायी गयी। इसका जबर्दस्त प्रभाव पड़ा। इसके फलस्वरूप 30 जून, 1855 को लगभग चार सौ गांवों का प्रतिनिधित्व करने वाले लगभग दस हजार संताल भगनाडीह (बरहेट प्रखंड, जिला साहिबगंज, झारखंड) में जमा हुए। संतालों की इस विशाल सभा को सिदो और कान्हू ने सम्बोधित किया और संतालों पर होने वाले अत्याचारों और उत्पीड़नों की जानकारी दी।[24] पर उनके लिए कलकत्ता पहुंचना आसान नहीं था। शीघ्र ही उनका खाद्य पदार्थ भी समाप्त हो गया। इससे वे आसपास के बाजारों को लूटने लगे। पाकुड के लिटिपाड़ा और अमड़ापाड़ा आदि स्थानों पर डकैतियां भी हुईं और शीघ्र ही दारोगा की हत्या इसकी पराकाष्ठा थी जिसे कलकत्ता रिव्यू 1860 ने संतालों पर होने वाले अत्याचारों का उचित प्रतिशोध बताया।[25] सरकारी लेखक पी.सी.राय चौधरी के अनुसार डकैतियां करने वाले हजारों की संख्या में थे जिन्हें भारी संख्या में संतालों की सहमति प्राप्त थी।[26]

इन घटनाओं के फलस्वरूप पुलिस कार्यवाही अवश्यंभावी हो गयी। दिग्घी थाना (बोरियो) में 1835 ई. से पदस्थापित दारोगा महेशलाल दत्त ने पंचकठिया में सिदो और कान्हू को गिरफ्तार करने का प्रयास किया जिससे संताल काफी क्रोधित हो गये। जैसे ही दारोगा ने सिदो को गिरफ्तार करने का प्रयास किया उत्तेजित और क्रोधित संतालों की भीड़ उस पर टूट पड़ी और दारोगा के दल के सिपाहियों की हत्या कर दी[27] जबकि सिदो ने स्वयं अपने हाथों तलवार से दारोगा की हत्या कर दी।[28] इसके बाद बड़े ही उत्तेजित वातावरण में उदघोष किया गया- 'जुमिदार,

महाजोन, पुलिस आ राजरेन अमलाको गुजुकमा' (जमींदार, महाजन और पुलिस का नाश हो)। सभा ने सर्वसम्मति से सिदो और कान्हू को अपना शासक (सूबा) नियुक्त किया। इसके बाद उन्होंने अपने अन्य कर्मचारियों को नियुक्त किया। इस प्रकार सिदो और कान्हू का सभी लोगों के सर्वमान्य नेता के रूप में आविर्भाव हुआ और उन्होंने नेतृत्व की बागडोर संभाली। प्रख्यात संताली लेखक सी.एच.कुमार के अनुसार उनके दो छोटे भाई चांद और भैरव उनके प्रमुख सहयगियों में थे।[29] संताल परगान के पूर्व उपायुक्त आर.कार्स्टेयर्स ने लिखा है कि दारोगा महेश लाल दत्त अमडापाड़ा के एक दुर्नाम महाजन केनाराम भगत के साथ चार संतालों को गिरफ्तार करके पंचकठिया होकर भागलपुर चालान कर रहा था, जहां उसकी मुठभेड़ सिदो और कान्हू के नेतृत्व में एकत्रित तीर, धनुष, कुठार, तलवार आदि से लैस क्रोधित और आक्रोशित क्रांतिकारियों से हो गई जिन्होंने यह कहते हुए उसे मार डाला कि हमारे लोगों को गिरफ्तार और चालान करने वाले तुम कौन होते हो। यदि इन्होंने कोई अपराध किया है तो इसका फैसला हम स्वयं करेंगे।[30] प्रसिद्ध संताली लेखक सी.एच. कुमार के अनुसार दारोगा के साथ ही उक्त महाजन की भी हत्या कर दी गयी और बड़े ही उत्तेजित बातावरण में यह घोषणा की गयी कि दारोगा बानुक्कोआ, हकिम बानुक्कोआ, सरकार बानुगेया, नितोक दो होड़ होपोन रेयाकू हेच सेटेर एना 'अर्थात् अब दारोगा नहीं, हाकिम नहीं, सरकार नहीं, अब हम संतालों का राज आ गया।'[31] इस प्रकार विद्रोहियों का एकमात्र उद्देश्य विदेशी शासन से मुक्ति पाना और अपना स्वराज स्थापित करना था।[32] यही इस विद्रोह का वास्तविक स्वरूप था। इसलिए इतिहासकार के.के. दत्त का कथन कि विद्रोह का प्रारंभिक चरित्र अंग्रेज विरोधी नहीं था से सहमत होना कठिन है।[33] ऐतिहासिक तथ्य यह है कि राजमहल की पहाड़ियों में आगमन के बाद से ही संताल समुदाय उत्पीड़न और शोषण का शिकार होने लगा था। उनकी जमीन और जंगलों पर जमींदारों और महाजनों ने बलपूर्वक कब्जा कर लिया था। कैमियोती प्रथा ने उन्हें गुलाम बना दिया था क्योंकि उनकी कृषि भूमि पर गैर-संतालों ने अधिकार कर लिया था। वस्तुतः वे जमींदार, महाजनों और सिविल व न्यायिक अधिकारियों के अपवित्र मेलजोल का शिकार हो गये थे जिन्होंने उन्हें आश्रयविहिन कर दिया था। इसलिए वे अपनी खोयी आनुवंशिक भूमि पर पुनः अधिकार करना और अपने नायक के अधीन अपना राज स्थापित करना चाहते थे।[34] जंगलों के नष्ट होने से न केवल उनकी आजीविका के आनुवंशिक साधन नष्ट होने लगे थे वरन उनकी परम्परागत रूप से स्थापित धार्मिक मान्यताएं भी नष्ट होने लगी थीं।[35] यह उनकी सभ्यता और संस्कृति को एक बड़ी चुनौती थी। इससे पूरा संताल समुदाय चिन्तित हो गया था। इसके फलस्वरूप सिदो और कान्हू के नेतृत्व में आदिवासियों, पिछड़े और दलित समुदायों का एकीकृत सशस्त्र संघर्ष फूट पड़ा और भारत में ब्रितानी साम्राज्य के एक बड़े क्षेत्र में फैल गया। शीघ्र ही झारखंड राज्य के संताल परगना और बिहार के भागलपुर जिले के विभिन्न क्षेत्रों के साथ पश्चिम बंगाल में वीरभूम जिले के नलहाटी, रामपुरहाट, नागौर, सिउड़ी, लांगुलिया, गुरजोरी एवं अनेक स्थानों में सशस्त्र संघर्ष का स्वरूप काफी व्यापक और भयानक हो गया।[36] पाकुड़ में महेशपुर के राजप्रसाद को लूटने के बाद 15 जुलाई 1855 ई. को सिदो, कान्हू और भैरब के नेतृत्व में लगभग चार हजार क्रांतिकारियों ने अंग्रेजी फौज के साथ भंयकर युद्ध किया। इस युद्ध में तीनों नायक जख्मी हुए और लगभग दो सौ संताल आन्दोलनकारी शहीद हो गये।[37] 16 जुलाई 1855 ई.को पीरपैंती (भागलपुर, बिहार) के निकट प्यालापुर में संताल आन्दोलनकारियों के साथ मेजर एफ.डब्ल्यू. बरोस के नेतृत्व में कम्पनी सैनिकों की एक जबरदस्त मुठभेड़ हुई जिसमें मेजर बरोस के सैनिक हार गये। एक क्वार्टर मास्टर सर्जेन्ट, कुछ देशी अधिकारी और 25 सिपाही मार डाले गये।[38] इस घटना का विवरण देते हुए सरकारी अधिकारी मैकफर्सन ने लिखा है कि 'इसके बाद विद्रोही नियंत्रण से बाहर हो गये और उन्होंने अनेक अत्याचारी कार्य किये। बहुत सारे महाजनों की हत्या कर दी गई जिन्होंने उन्हें कई वर्षों से गुलामी की स्थिति में रखा था।'[39]

पुनः 21 जुलाई 1855 ई. को पुलिस, जमींदारों और महाजनों की सम्मिलित सेना को क्रांतिकारियों ने पराजित कर दिया। उन्होंने कई सिपाहियों के साथ लेफ्टिनेण्ट टोलमिन को मार डाला।[40] इससे कम्पनी के सिविल और सैन्य अधिकारियों में हड़कम्प मच गया और वे हूल का दमन करने के लिए और अधिक बड़े पैमाने पर सैनिक कार्यवाही करने के लिए विवश हुए। दूसरी ओर कथित सफलताओं से क्रांतिकारियों का मनोबल बुलन्द हो गया।

उन्होंने कम्पनी राज की समाप्ति की घोषणा कर दी और कहा कि सर्व साधारण गरीब लोगों का राज स्थापित हो गया है जबकि कम्पनी सरकार की ओर से एक घोषणा में यह कहा गया कि यदि विद्रोही आत्मसमर्पण कर दें तो नेताओं को छोड़कर सभी को माफ कर दिया जायेगा। पर किसी विद्रोही ने आत्मसमर्पण नहीं किया, डब्ल्यू. डब्ल्यू. हन्टर के अनुसार विद्रोहियों ने इस घोषणा के प्रति अपनी घृणा प्रदर्शित की, इसे पूरी तरह से अस्वीकृत कर दिया और अपना संघर्ष जारी रखा।[41] सिदो और कान्हू के नेतृत्व में उनका संघर्ष और अधिक व्यापक हो गया। पश्चिम बंगाल में वीरभूम जिले के लगभग आधे हिस्से पर क्रांतिकारियों ने अधिकार कर लिया। प्रसिद्ध इतिहासकार के. के. दत्त के अनुसार 20 जुलाई 1855 ई. तक वीरभूम के दक्षिण-पश्चिम में ग्रैंड रोड पर तालडांगा और दक्षिण-पूर्व में सैंथिया से पश्चिमोत्तर गंगा तट पर भागलपुर और राजमहल तक और भागलपुर जिले के पूर्वोत्तर तक यह हूल फैल गया।[42] इसके फलस्वरूप पश्चिम बंगाल, झारखंड और बिहार का एक बहुत बड़ा सीमावर्ती क्षेत्र इस हूल से आक्रांत हो गया।[43]

इस व्यापक हूल के कारण भागलपुर के तत्कालीन कमिश्नर ने भागलपुर, वीरभूम और राजमहल में एक साथ सैनिक कार्यवाहियों द्वारा हूल को कुचलने की विस्तृत योजना बनायी। पर हूल की व्यापकता और जन स्वरूप के फलस्वरूप तत्काल कुछ नहीं किया जा सका। कई जमींदारों से सहयोग लिया गया और मेजर शकवर्ग और कैप्टेन फ्रांसिस ने अपने अभियान तेज कर दिये। कैप्टेन शेरविल अपने सैनिकों को लेकर मेजर शकवर्ग के साथ सम्मिलित हो गये। बिहार के दानापुर से अतिरिक्त फौज मंगायी गयी। जुलाई 1855 के अन्त में जन संघर्ष काफी व्यापक हो गया और एक बड़े क्षेत्र में फैल गया। मेजर जनरल लॉयड ने सैनिकों की कमान संभाली और सुरक्षा की विस्तृत व्यवस्था की। बहुत बड़ी संख्या में क्रांतिकारियों के गांव नष्ट किये जाने लगे। मुर्शिदाबाद के मजिस्ट्रेट ने रघुनाथपुर में चांद और भैरब को पराजित कर दिया तथा क्रांतिकारियों के प्रधान गढ़ बरहेट (साहिबगंज, झारखंड) पर अधिकार कर लिया। दूसरी ओर क्रांतिकारियों ने जुलाई 1855 में वीरभूम जिले को तहस-नहस कर दिया। इसके फलस्वरूप पश्चिम बंगाल में नदिया डिविजन के कमिश्नर ए.सी.बिडवेल को हूल के दमन के लिए स्पेशल कमिश्नर नियुक्त किया गया। पर अक्टूबर 1855 ई.में हूल पुनः तेजी से फैला। क्रांतिकारियों ने कई स्थानों पर भारी उपद्रव किए। अपने नायकों की अगुवाई में क्रांतिकारियों ने कम्पनी सरकार के सैनिक और असैनिक अधिकारियों को खुली चुनौती दी। अतः क्रांतिकारियों को कुचलने के लिए पुनः विशेष उपाय किये गये और भागलपुर, मुर्शिदाबाद और वीरभूम जिलों में हूल से आक्रांत क्षेत्रों में 10 नवम्बर 1855 को मार्शल कानून की घोषणा कर दी गयी।[44]

इसके बाद बहुत बड़े पैमाने पर सैन्य अभियान किये और क्रांतिकारियों का बड़ी क्रूरतापूर्वक दमन किया गया। जनरल लॉयड और ब्रिगेडियर वर्ड के अधीन आठ हजार सैनिक विद्रोह से अशांत क्षेत्र में भेजे गये और वर्ष 1855 ई. के अन्तिम दिन सरकारी स्तर पर हूल का पूरी तरह से दमन किये जाने की घोषणा की गयी। सरकारी लेखक मैकफर्सन के अनुसार 3 जनवरी 1856 को मार्शल कानून समाप्त कर दिया गया।[45] साम्राज्यवादी अंग्रेज लेखक एफ.बी.ब्रोडले-बर्ट के अनुसार इस विद्रोह में लगभग दस हजार संताल मारे गये।[46] पर विद्रोह की व्यापकता और दमन चक्र के आलोक में यह कहा जा सकता है कि कम से कम तीस-पैंतीस हजार विद्रोही शहीद हुए होंगे।[47] सरकारी लेखक एल.एस.एस. ओश्मैली के अनुसार 24 जुलाई 1855 ई. को जब ब्रिटिश सैनिकों ने बरहेट पर कब्जा किया था,सिदो को उसके कुछ साथियों ने विश्वासघात कर भागलपुर से सैनिकों को सुपुर्द कर दिया।[48] कलकत्ता रिव्यू के अनुसार तुलसी संताल और कुछ अन्य के द्वारा विश्वासघात कर सिदो को भागलपुर के सैनिकों के सुपुर्द कर दिया गया।[49] विश्वासघातियों को उनके साथी जनजातियों द्वारा शीघ्र ही कत्ल कर दिया गया जबकि उनके महानायक सिदो को दामिन-इ-कोह के अधीक्षक जेम्स पोन्टेट ने भोगनाडीह (बरहेट) में सिदो को फांसी देदी।[50]

19वीं शताब्दी की एशिया की यह सबसे बड़ी जनक्रांति थी जिसने अपनी तेजी, व्यापकता, जुझारूपन आदि से अंग्रेज अधिकारियों को हतप्रभ कर दिया था। इतना ही नहीं, इस आन्दोलन ने अन्तर्राष्ट्रीय जगत का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। अपनी प्रसिद्ध रचना 'नोट्स आन इंडियन हिस्ट्री' में हूल का उल्लेख करने वाले प्रसिद्ध विद्वान कार्ल मार्क्स ने संताल हूल को भारत की पहली जनक्रांति बताया था। उन्होंने इस पुस्तक में हूल की चर्चा करते हुए कहा कि सात महीने लगातार

छापामार युद्ध के बाद 1856 ई. में इसे दबाया जा सका।[51] इस हूल के फलस्वरूप साम्राज्यवादी शासकों ने प्रशासनिक व्यवस्था में भी कई परिवर्तन किये। 22 दिसम्बर 1855 ई. के एक्ट 37 के द्वारा दामिन- इ-कोह और इसके आस-पास के क्षेत्रों को भागलपुर, वीरभूम और मुर्शिदाबाद जिलों से अलग कर एक स्वतंत्र रेगुलेशन संताल परगना जिला बनाया गया। यह ध्यान देने की बात है कि जहां एक ओर संताल हूल को कार्ल मार्क्स ने भारत की पहली जनक्रांति[52] बताया वहीं डब्ल्यू.डब्ल्यू. हन्टर (1868), एफ.बी. ब्रोडले-बर्ट (1905) आदि साम्रज्यवादी लेखकों ने इसे महाजनों और जमींदारों के खिलाफ बताया और स्पष्ट किया कि संताल अंग्रेजों और विदेशी शासन के विरूद्ध नहीं थे जिनके सम्बन्ध में उन्हें जानकारी नहीं थी जबकि, तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजी (1848-1856) ने इसे स्थानीय उपद्रव बताकर इस विद्रोह की उपेक्षा करने की कोशिश की थी। इन साम्राज्यवादी लेखकों ने इस विद्रोह की साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से भी विवेचना करने की कोशिश की और इसे हिन्दू महाजनों और जमींदारों के विरूद्ध बताया। पर प्रामाणिक ऐतिहासिक दस्तावेजों और इसके नायकों के आह्वानों से स्पष्ट है कि यह एक जनक्रांति थी जिसमें संतालों के अलावा अन्य जनजातियों, पिछड़ों और दलितों की अहम भूमिका थी। इसमें सम्मिलित क्रांतिकारी विदेशी शासन से मुक्ति चाहते थे और अपना राज "गरीबों का राज" स्थापित करना चाहते थे।[53] कम्पनी के सैनिक और असैनिक अधिकारी इसका क्रूरतापूर्वक दमन करने में सफल हो गये पर इस हूल ने अपनी अमिट छाप छोड़ी और एक बड़ी अविस्मरणीय ऐतिहासिक घटना के रूप में आधुनिक इतिहास के पन्नों में अंकित हो गयी। इसके प्रधान नायक सिदो और कान्हू परवर्ती काल में विदेशी शासन से संघर्ष करने वालों के लिए प्रेरणा के अथाह स्रोत बन गये। अपनी शहादत से इन क्रांति वीरों ने भारतीयों को स्वतंत्रता की राह दिखाई और उनके दिलों और दिमाग में कभी न मिटने वाली छाप छोड़ी।[54]

संताल हूल 1855-1856 में चांद और भैरव का क्रांतिकारी योगदान (Revolutionary Role of Chand and Bhairab in the Santal Hul of 1855-1856)

प्रख्यात संताली लेखक सी.एच.कुमार के अनुसार चांद और भैरव हूल के प्रमुख नायक सिदो और कान्हू के मुख्य सहयोगी थे पर लेखक कुमार ने हूल में उनके सक्रिय योगदान की विवेचना नहीं की। (1937:63) प्रामाणिक ऐतिहासिक दस्तावेजों से स्पष्ट है कि संताल हूल 1855-1856 के प्रमुख नायक सिदो और कान्हू के साथ उनके दो अनुज चांद और भैरव भी इस में सम्मिलित हुए और उनके साथ हूल में सक्रिय और महत्वपूर्ण योगदान किया। कई स्थानों पर उन्होंने आक्रामक भूमिका निभाई, विदेशी शासन के विरूद्ध संघर्ष में सम्मिलित अपने सहयोगियों का नेतृत्व किया और कम्पनी की फौज का बहादुरी से सामना किया। इसलिए देश में जनजातीय संघर्ष के इतिहास में संताल हूल की अलग पहचान विकसित हुई और विदेशों में भी इस पर टीका-टिप्पणी की गई। अधिकांश ऐतिहासिक प्रामाणिक स्रोतों से स्पष्ट है कि इसके नायकों द्वारा 30 जून 1855 को भोगनाडीह (बरहेट, जिला साहिबगंज, झारखंड) में संतालों की सभा बुलायी गयी जिसमें कलकत्ता रिव्यू, 1856 के अनुसार दस हजार से अधिक संताल एकत्रित हुए थे।[55] पर जनजातीय इतिहास के प्रख्यात लेखक स्टेफन फ्यूक्स (1965:51) के अनुसार इस सभा में तीस हजार संताल एकत्रित हुए थे। कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले तत्कालीन कई समाचार पत्रों में भी इसकी संख्या दस हजार से अधिक बतायी गई। शीघ्र ही उनके साथ अन्य जनजातीय, दलित और पिछड़े समुदाय के लोग भी सम्मिलित हो गये जैसा कि भागलपुर के कमिश्नर के पत्र 28 जुलाई, 1855 से प्रामाणित होता हैं।[56] लेकिन भागलपुर के कमिश्नर के पत्र के विपरीत कलकत्ता रिव्यू में उल्लेख यह है कि अन्य लोगों को हूल में सम्मिलित होने के लिए विवश किया गया या प्रलोभन दिया गया।[57] यहां यह स्पष्ट करना समीचीन जान पड़ता है कि कथित अवलोकन साम्राज्यवादी दृष्टिकोण का एक नमूना है जिसे स्वीकार करना कठिन है। संताल हूल पर लेखन कार्य करने वाले प्रथम भारतीय लेखक पाकुड़ के दिगम्बर चक्रवर्ती ने भी अन्य अनेक जातियों के हूल में सम्मिलित होने और संतालों के साथ सहयोग करने की जानकारी दी है।[58] इतने बड़े पैमाने पर लोगों को बुलाना और उनकी सफलतापूर्वक सभा आयोजित कराना, सिदो और कान्हू को सूवा घोषित किया जाना, आगे की कार्यवाही का सर्वसम्मत व्योरा तैयार करना और अपने सहयोगियों को निर्देश देना आदि कोई साधारण कार्य नहीं थे और किसी एक या दो लोगों द्वारा इसे उचित तरीके से सम्पन्न कर लेना सम्भव भी नहीं था। इस प्रामाणिक विवरण के

आलोक में यह एकदम स्पष्ट है कि कथित कार्यों और दिशा निर्देश को सफतलतापूर्वक सम्पन्न करने में सिदो और कान्हू के अलावा चांद और भैरव की भी निश्चित सक्रिय भूमिका थी। इतनी बड़ी संख्या में संतालों की सभा में उनकी उपस्थिति और इसकी सभी कार्यवाहियों में उनके सम्मिलित होने से स्पष्ट है कि संताल हूल के नायक सिदो और कान्हू की तरह हूल में चांद और भैरव का योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं था। साम्राज्यवादी लेखक डब्ल्यू.डब्ल्यू.हन्टर ने सिदो और कान्हू को अपने लोगों का 'उद्धारक' बताते हुए लिखा है कि भगनाडीह के सिदो और कान्हू के साथ उनके दो छोटे भाई भी हूल में सम्मिलित हो गये थे।[59] एक अन्य साम्रज्यवादी लेखक सी.इ.बकलैंड ने भी सिदो और कान्हू के साथ चांद और भैरव का उल्लेख किया है।[60] यह उल्लेखनीय है कि चांद और भैरव की आयु कम थी इसके बावजूद उन्होंने कम्पनी शासन के खिलाफ अपने सहयोगियों के साथ सशस्त्र संघर्ष किया और अपना राज स्थापित करने के लिए आजादी की लड़ाई में स्वयं को समर्पित कर दिया। कलकत्ता रिव्यू (1856, वाल्यूम 26, पृ.245) में यह उल्लेख है कि जब सिदो और कान्हू को भगनाडीह में स्थित अपने घर में ठाकुर का दर्शन हुआ उस समय चांद और भैरव अपने घर से दस मील दूर सिमुलचाप गये हुए थे। स्पेशल कमिश्नर ए.सी. बिडवेल की रिपोर्ट (1856) से ज्ञात होता है कि संतालों के क्रांतिकारी नेताओं की स्थिति को मजबूत करने आदि के लिए धर्म को हूल से जोड़ दिया गया था।[61] हालांकि चांद और भैरव के सिमुलचाप जाने के उद्देश्यों की जानकारी नहीं दी गई है पर कलकत्ता रिव्यू 1856 रिव्यू में वर्णित तथ्यों से स्पष्ट है कि क्रांति का संदेश पूरे क्षेत्र में प्रचारित-प्रसारित करने में सभी विश्वस्त संदेशवाहक और संताल मांझी चांद और भैरव के भी सम्पर्क में थे। इस हेतु उनके द्वारा साल वृक्ष की टहनी का प्रयोग किये जाने का उल्लेख है।[62] पी.सी.राय चौधरी बताते हैं कि उन्होंने चारों ओर समाचार फैला दिया कि उन्हें सपने में देवता के दर्शन हुए हैं और दैवी संदेश प्राप्त हुआ है।[63] इस प्रकार कलकत्ता रिव्यू में चारों भाइयों का स्पष्ट उल्लेख है। कलकत्ता रिव्यू (1856) के लगभग चार दशक बाद लिखित अपने विवरण में दिगम्बर चक्रवर्ती नें भी सिदो और कान्हू के साथ चांद और भैरव के सम्बन्ध में भी लिखा और उनकी सक्रियता की जानकारी दी। उन्होंने चांद द्वारा कुछ जादूगरी दिखाने, फिरंगी द्वारा उन्हें अपमानित किये जाने की सूचना सिदो और कान्हू को दिये जाने, पाकुड राजबाड़ी में चारों भाइयों के प्रवेश और इमें लूटपाट करने आदि का विवरण लिखा है।[64] इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय यह है कि दिगम्बर चक्रवर्ती के विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों छोटे भाइयों में चांद कुछ ज्यादा ही सक्रिय थे क्योंकि हूल की कई घटनाओं में चांद की भूमिका का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है।[65] देश के इतिहास में यह पहला ऐतिहासिक उदाहरण था जब एक ही पिता के चार चार पुत्रों ने विदेशियों से अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र कराने हेतु सशस्त्र संघर्ष किया और स्वयं को न्योछावर कर दिया। इस सम्बन्ध में उमाशंकर ने स्पष्ट लिखा है, 'संतालों ने खुली सभा में सिदो को अपना राजा घोषित किया। उन्होंने संताल राज्य की स्थापना की। कानू को सभा ने सिदो के सलाहकार के रूप में नियुक्त किया। चाँद को प्रशासक और भैरव को संताल राज्य का सेनापति बनाया गया।'[66]

कलकत्ता रिव्यू 1856 के अनुसार दिग्घी थाना के दारोगा महेशलाल दत्त को संतालों की कथित बड़ी सभा आयोजित होने की सूचना मिली जिसकी जाँच करने के लिए वह पहुंचा और यह भी उल्लेख है कि चारों भाइयों को पकड़ने के लिए कुछ महाजनों ने उसे रिश्वत दी थी। इतना ही नहीं कुछ लोगों पर डकैती करने का झूठा आरोप भी लगाया गया था। पर रक्शी गांव (बरहेट के निकट) में आक्रोशित संतालों ने उसे घेर लिया और उसे क्रांतिकारी सेना और प्रसिद्ध सुवाओं (बाबूपुर) के पास ले गये। इन सुवाओं में सिदो और कान्हू के साथ चांद और भैरव भी सम्मिलित थे। इन्होंने प्रत्येक बंगाली परिवार पर पाँच रूपये का लेवी लगाने को कहा पर दारोगा ने व्यर्थ में उन्हें विसर्जित होने के लिए आदेश दिया।[67] पर साम्राज्यवादी लेखक एफ.बी. ब्रोडले-बर्ट (1905) के अनुसार पच्चीस रूपये का टैक्स लगाने को कहा गया था।[68] उनके द्वारा पूछे जाने पर दारोगा ने सर्प-दंश और डकैती की जाँच करने की बात कही। कलकत्ता रिव्यू 1856 के अनुसार महाजनों ने चारों भाइयों को गिरफ्तार कराने के लिए अधिक से अधिक धन खर्च करने की घोषणा की थी और यह भी कि चारों भाइयों को बांधने के लिए रस्सी भी मंगवा ली गयी थी।[69] बाबूपुर में चारों भाइयों ने दारोगा से कहा कि उसके पास

उनके द्वारा डकैती किये जाने का प्रमाण है तो वे उन्हें पकड़े अन्यथा उन्हें न्याय दें जो वे पहले से ही उनसे वे मांग रहे थे।[70] इन घटनाओं से चांद और भैरव की हूल में सक्रिय भूमिका की जानकारी मिलती है। यह उल्लेखनीय है कि डब्ल्यू.डब्ल्यू.हन्टर (1868) ने अपनी विवेचना में कई स्थानों पर संताल हूल के नायकों के सम्बन्ध में 'टू ब्रादर्स', 'टू ब्रादर्स', 'ब्रादर्स' लिखा है और एक स्थान पर सिदो (सिदू) का उल्लेख किया है पर लगभग उन समस्त घटनाओं की जानकारी दी है जिसमें चारों भाई सम्मिलित थे।[71] सी.इ.बकलैंड (1901) ने सिदो और कान्हू को 'द नोटेड लिडर्स' 'मैन ऑफ स्ट्रांग पर्सनल कैरेक्टर' और चांद और भैरव को 'लेस फॉरवर्ड ब्रादर्स' कहा है।[72] हूल में उनकी सक्रिय भूमिका के आलोक में चांद और भैरव को 'लेस फॉरवर्ड ब्रादर्स' कहा जाना समीचीन नहीं जान पड़ता है। यह उल्लेखनीय है कि चारों भाइयों को एफ.बी.ब्रोडले-बर्ट ने हूल का 'द ओरिजिनल रिंगलिडर्स'[73] और पी.सी.राय चौधरी ने 'लिडिंग स्पिरिट्स'[74] और 'नोटेड लिडर्स' कहा है।[75] दिगम्बर चक्रवर्ती ने अपनी प्रसिद्ध रचना में संताल हूल की विभिन्न घटनाओं की विवेचना करते हुए स्पष्ट लिखा है कि त्रिभुवन संताल के आह्वान पर सभी भगनाडीह के सिदो, कान्हू, चांद और भैरब के गुट में अपने साथियों सहित सम्मिलित हो गये। इससे स्पष्ट है कि हूल में चारों भाइयों की भूमिका थी। आधुनिक पाश्चात्य लेखक रिचर्ड गॉट ने ब्रिटिश साम्राज्य में प्रतिवाद, दमन और विद्रोहों की विस्तृत विवेचना करते हुए स्पष्ट लिखा है कि सिदो और कान्हू ने चांद और भैरव के साथ मिलकर दस हजार संतालों को लामबन्द किया और साम्राज्यवादियों के खिलाफ हूल की घोषणा कर दी।[76]

सिदो और कान्हू के प्रतिवाद से दारोगा आक्रोशित हो गया और उन्हें बांधने का आदेश दिया पर उल्टे उसे ही मांझियों ने बांध लिया। कलकत्ता रिव्यू के अनुसार सिदो ने अपने हाथों तलवार से दारोगा की हत्या कर दी,एक प्रसिद्ध मोदी (दुकानदार) मानिक चौधरी को कान्हू ने काट डाला। उनके अनुयाइयों नें दारोगा के साथ आये सिपाहियों और अन्य मोदियों (दुकानदारों) पर भी आक्रमण किये जबकि दारोगा के साथ आये अन्य लोग गिरते पड़ते भाग गये। ये सारी घटनाएं 7 जुलाई 1855 को घटीं और चार भाइयों में से केवल चांद घटना स्थल से अनुपस्थित थे। लेकिन भैरव इन सभी घटनाओं में सम्मिलित थे और एक अधीनस्थ नायक के रूप अवश्य ही उनकी भूमिका महत्वपूर्ण थी। साम्राज्यवादी लेखक डब्ल्यू.डब्ल्यू.हन्टर (1868), सी.इ.बकलैंड (1901), एफ.बी. ब्रोडले-बर्ट (1905) और एल.एस.एस. ओश्मैली (1938 रिवाइज्ड) ने भी इसी तरह का विवरण लिखा है और सिदो द्वारा दारोगा की हत्या किये जाने का उल्लेख किया है।

बाबूपुर से वे सभी पंचकठिया आये और कान्हू ने रेवेन्यू के नायब सुजावल खान साहिब को अपने हाथों से काट डाला। अम्बर के राजा का कदमसर स्थित घर को उन्होंने आग लगा दी,पर प्लान्टर सी. मसायक और उनके कुछ लोगों ने संताल सेना को आगे बढ़ने नहीं दिया, कुछ को घायल कर दिया और एक को पकड़ लिया। इसी बीच 160 सिपाहियों के आने के बाद संताल विद्रोही आगे बढ़े और अकलई, श्रीकुण्ड में लूटपाट की,एक रेलवे कर्मचारी का घर जला दिया गया। सिदो और कान्हू की अगुवाई में वे पाकुड़ की ओर बढ़े और 12 जुलाई 1855 को सिदो और कान्हू ने पाकुड़ स्थित एक स्थानीय जमींदार के घर में प्रवेश किया और इसमें लूटपाट की। उनकी संताली सेना में चांद और भैरव भी सम्मिलित थे। महेशपुर, लखनपुर, पलसा आदि गांव संतालों के आक्रोश का शिकार हुए। इन घटनाओं में भी सिदो, कान्हू, चांद और भैरव एक साथ सम्मिलित थे। दिगम्बर चक्रवर्ती के अनुसार सिदो और कान्हू ने चांद और भैरव को लेकर पाकुड़ से राजमहल गये। उन्होंने राजमहल में सभा की। पर लूट पाट में उन्हें बहुत अधिक सामान नहीं मिला। कुछ हत्यायें करने के बाद उन्होंने सभी घरों में आग लगाकर पूरा गाँव जला कर राख कर दिया। क्रांतिकारी कदमसर भी गये जहाँ चार्ल्स मासेक ने उनका प्रतिवाद किया। संताल तीन टुकड़ों में विभाजित हो गये-वीरभूम की ओर गोचो, लूचिमपुर (लक्ष्मीपुर) की ओर त्रिभुवन ठाकुर और सिदो अपने तीन भाइयों और पाँच साथियों के साथ सुल्तानाबाद पर कब्जा करने महेशपुर की ओर गये। पर वे 15 जुलाई 1855 को महेशपुर में अपनी चार हजार संतालों की सेना के साथ कम्पनी की सेना का मुकाबला नहीं कर सके। जबरदस्त संघर्ष में सिदो और कान्हू के साथ भैरव को भी गोली लगी और वे तीनों नायक गम्भीर रूप से घायल हो गए। साम्राज्यवादी लेखक एल.एस. एस. ओश्मैली ने भी इस सशस्त्र संघर्ष में सिदो और कान्हू

के साथ भैरव के भी गम्भीर रूप से घायल होने की जानकारी दी है। इस संघर्ष में दो सौ संताल भी घायल और शहीद हो गये।[77] इस प्रकार महेशपुर के सशस्त्र संघर्ष में सिदो और कान्हू के साथ भैरव ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

महेशपुर (पाकुड़) में 15 जुलाई 1855 की घटना के पूर्व बर्दवान,वीरभूम,भागलपुर और मुर्शिदाबाद के अनेक स्थानों पर कई तरह की घटनाएं हुईं पर महेशपुर की घटना के बाद 16 जुलाई 1855 को प्यालापुर (पीरपैंती के निकट) में संतालों ने मेजर एफ.डब्ल्यू. बरोज की कमान में कम्पनी की सेना का जबरदस्त प्रतिवाद किया और उन्हें पराजित कर दिया। इस लड़ाई में हिल रैंजर्स के सारजेंट मेजर और इंडिगो प्लान्टर ब्रोड्डां मार डाले गये। उनके पच्चीस प्रशिक्षित सैनिक मारे गये और घायल भी हुए। कम्पनी की सेना के खिलाफ संतालों का नेतृत्व किसने किया था, इस सम्बन्ध में कलकत्ता रिव्यू और अन्य प्रमाणिक दस्तावेज कोई जानकारी नहीं देते,इसके बावजूद क्रमिक घटनाओं के आलोक में यह स्पष्ट है कि इसका नेतृत्व अन्य प्रमुख सहयोगियों के साथ सम्भवतया चांद ने किया था (होगा) क्योंकि एक दिन पूर्व महेशपुर में 15 जुलाई 1855 को हुए संघर्ष में सिदो, कान्हू और भैरव गम्भीर से घायल हो चुके थे। कम्पनी सेना के अन्य सैनिक कहलगांव लौटने के विवश हुए जो काफी कठिन परिस्थितियों में थे क्योंकि दो हजार से अधिक संताल सशस्त्र संघर्ष करने को तैयार थे और सम्भवतया उनकी अगुवाई अन्य सहयोगियों के साथ चांद ही कर रहे थे। इसी बीच भारी संख्या में कम्पनी सैनिक और मेजर शकवर्ग पहुंचे। इनमें कुछ झड़पें हुईं और कलकत्ता रिव्यू के अनुसार कई बार संतालों ने आक्रमण किये। ये घटनाएं 21 जुलाई 1855 के बाद हुईं जैसा कि कलकत्ता रिव्यू से पता चलता है। संतालों के इन आक्रमणों का चांद और उनके मुख्य सहयोगियों द्वारा नेतृत्व किये जाने की सम्भावना है क्योंकि जैसा कि उल्लेख किया गया है, सिदो, कान्हू और भैरव गम्भीर रूप से घायल थे।

दिगम्बर चक्रवर्ती ने अगस्त 1855 में पाकुड़ में सैन्य दल के साथ मेजर जर्विस के भेजे जाने का उल्लेख किया है। उन्होंने तोड़ाई नदी के तट पर सिदो, कान्हू, चांद और भैरव के नेतृत्व में संतालों और अंग्रेजी फौज में संघर्ष का विस्तृत विवरण लिखा है और अनेक संतालों के मारे जाने का उल्लेख किया है। उनके अनुसार संतालों की लाशों से गाँवों में दुर्गन्ध फैल गयी। सेना द्वारा गोली चलाना बन्द किये जाने के बाद संताल तोड़ाई नदी के पश्चिम किनारे छिप गये। दिगम्बर चक्रवर्ती ने रघुनाथपुर में भी संतालों और अंग्रेजी फौज में संघर्ष का उल्लेख किया है और लिखा है कि 'इस संघर्ष में सैंकड़ों संताल मारे गये। बाकी बचे संताल किसी तरह भागने में सफल हुए। अब महेशपुर के रास्ते में घटियारी के पास बांसलई नदी के किनारे उनका (संतालों) नामोनिशान मिटा दिया गया।'[78]

दूसरी ओर कम्पनी सेना की कार्यवाही जारी थी और संतालों के खिलाफ कैप्टेन फ्रांसिस और कैप्टेन शेरविल सक्रिय थे। आक्रामक संतालों का दल भागलपुर के पश्चिम और दक्षिण की ओर बढ़ गया था। दूसरी तरफ वीरभूम में संतालों ने कटमा और नागौर पर अधिकार कर लिया था, गनपुर सहित कई गांवों को नष्ट कर दिया था और एक संघर्ष में लेफ्टिनेण्ट टोलमिन को मार डाला था। लेकिन लेफ्टिनेण्ट डेलामेन ने अफजलपुर, नागौर आदि सभी स्थानों पर अधिकार कर लिया। इसी बीच 24 जुलाई 1855 को सिदो विश्वासघात के शिकार हो गये जबकि कैप्टेन फ्रांसिस और कैप्टेन शेरविल संतालों के विरूद्ध सक्रिय थे। अगस्त महीने (1855) के दूसरे सप्ताह के बाद भी कलकत्ता रिव्यू के अनुसार तीस हजार से अधिक विद्रोही सक्रिय थे। विद्रोहियों को जंगलों में खदेड़ने के बावजूद कम्पनी के सैन्य अधिकारी उनकी गतिविधियों को नियंत्रित नहीं कर पा रहे थे और सरकार द्वारा मुख्य नेताओं को छोड़कर दस दिनों के अन्दर आत्मसमर्पण करने की शर्त पर सभी को माफ किये जाने की घोषणा की गई पर किसी के द्वारा आत्मसमर्पण नहीं किया गया। कलकत्ता रिव्यू 1856 के अनुसार राम मांझी, शाम सूवा, फूदन, केवला अनु और अन्य की अगुवाई में संताल वीरभूम के उत्तर-पश्चिम में संघर्ष कर रहे थे। जयपुर, केन्द्रा, नूनी और भागलपुर के दक्षिण में संतालों को कार्यवाही के लिए विवश किया गया जो कलकत्ता रिव्यू के अनुसार कम्पनी सेना का विरोध नहीं करना चाहते थे क्योंकि उनके पास खाद्य सामिग्री की कमी हो गई थी और और कुछ सहयोगियों ने उन्हें छोड़ दिया था। फिर भी कुछ झड़पें हुईं और अन्त में 10 नवम्बर 1855 को मार्शल कानून लागू करने की घोषणा कर दी गई।[79] भागलपुर और वीरभूम में संतालों की हत्याएं की गई। इसी बीच कई मुख्य नेताओं को फांसी दे दी गई

और कलकत्ता रिव्यू के अनुसार कुंजरा के सरदार घटवाल ने उपरबन्धा (जामताडा के उत्तर-पूर्व में) के निकट कान्हू को फरवरी (1856) के तीसरे सप्ताह में गिरफ्तार कर लिया और उन्हें शीघ्र ही फांसी दे दी गई। पर प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्यों की समीक्षात्मक विवेचना से स्पष्ट होता है कि कान्हू को सम्भवतया नवम्बर 1855 के तीसरे सप्ताह में गिरफ्तार किया गया। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय यह है कि संताल परगना के डिपुटी कमिश्नर ए.आर. थॉमसन द्वारा मेजर जनरल लॉयड को 6 दिसम्बर 1855 को भेजी गई बारह कैदियों की सूची में कान्हू, चांद और भैरव का भी उल्लेख है।[80] इतना ही नहीं, 20 दिसम्बर 1855 को कान्हू ने संताल परगना के सहायक विशेष कमिश्नर एशले ईडन को आपना बयान अंकित करवाया था जिससे स्पष्ट है कि हूल के दमन के पूर्व सिदो के बाद कान्हू, चांद और भैरव भी गिरफ्तार हो गये थे। और तो और, कान्हू की बांह पर वह बकसुआ (क्लेस्प) भी बंधा हुआ था जो स्व.लेफ्टिनेण्ट टोलमिन का था।[81] ऐतिहासिक दस्तावेज कलकत्ता रिव्यू 1856 के अनुसार भागलपुर और सिउड़ी में संताल कैदियों की सुनवाई हुई और 130 से अधिक लोगों को दण्डित किया गया। कम्पनी सरकार की सैन्य शक्ति और संगठन के बल पर 31 दिसम्बर 1855 को संताल हूल के पूरी तरह से दमन किये जाने की सरकारी घोषणा की गई[82] और 3 जनवरी 1856 को मार्शल लॉ वापस ले लिया गया।

निष्कर्ष : इस प्रकार संताल हूल में चांद और भैरव ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी और अपने दोनों भाइयों सिदो और कान्हू के साथ मिलकर विदेशी शासन के खिलाफ अपने क्रांतिकारी सहयोगियों का नेतृत्व किया[83] और अपना राज स्थापित करने के लिए स्वयं को न्योछावर कर दिया।[84] छह महीने से ज्यादा समय तक संघर्ष होता रहा[85] पर किसी के द्वारा आत्मसमर्पण करने की कोई घटना नहीं हुई। जनरल लॉयड और ब्रिगेडियर-जनरल बर्ड के नेतृत्व में चौदह हजार से अधिक सैनिकों की सक्रिय कार्रवाई से कम्पनी शासन ने विद्रोह का दमन कर दिया।[86] लगभग दस हजार से अधिक संताल शहीद हो गये।[87] हूल के नायक सिदो के साथ जिन लोगों नें विश्वासघात किया[88] उनके खिलाफ शीघ्र और जबरदस्त प्रतिक्रिया हुई और उनकी हत्या कर दी गई।[89] इस संदर्भ में उल्लेखनीय यह है कि ऐतिहासिक दस्तावेजों में सिमटे संताल हूल के अनेक नायकों और इसकी ऐतिहासिक घटनाओं को खोजने और रेखांकित करने की कोशिश की गई है इसके बावजूद इस ओर और अधिक प्रयास किये जाने की आवश्यकता है।[90]

सन्दर्भ

1. Devalle, B. C. Devalle, *'Discourse of Ethncity'*, Sage Publications, New Delhi, 1992 pp.123-124
2. Karn, M. N., *'Peasant Movements in Bihar 1831-1981'* in Kaushal Kumar Sharma, Prabhakar Prasad Singh and Ranjan Kumar, edts, 'Peasant Struggles in Bihar', Janaki Prakashan , Patna, 1994, p.3
3. Hembrom, T., *'The Santals'*, Puthi Pustak, Calcutta, 1996, p.15
4. Kavriraj, Narhari, *'Santal Village Community and the Santal Rebellion of 1855'*, Subarnrekha, Calcutta, 2001 pp. 55-82; Somers, George. E. ' The Dynamics of Santal Traditions in a Peasant Society', Abhinav Publications, New Delhi, 1977, pp 46-47; Raj, V. Manuel, 'Am Santal Theology of Liberation', Uppal Publishing House, New Delhi, 1990, p-52
5. Hunter, W. W. *'The Annals of Rural Bengal'*, Reprint, Cosmo Publications, Delhi, 1975, p. 250 (The book was first published in 1868, London); 2012, A Brief History of the Indan Peoples, Logos Press, New Delhi, "armed rebellion…" p-47 (The book was first published in 1895, Oxford, London)

- Gupta, Ranjan, 1974. 'The Aboriginal World of Birbhum from Ghatwal Revolt To the Santal Insurrection of 1855-56 in Bengal:Past and Present', Vol. XCIII, Part 1, No. 175, pp 66-67(59-73) and Vol. XCIII, Part 176, 177, Calcutta Historical Society, Calcutta, pp 143-146 (137-172)
- Verma, Dinesh Narayan and Bapan Kumar Das, 'Colonial Perception of the Santal Insurrection of 1855-1856 –A Critique of the Ideological Writings of W. W. Hunter', Ideal Research Review, Vol. V, No. 2, 2020, pp. 51-56
- Verma, Dinesh Narayan and Sudipta Sen, 'Tracing of Exploitation And Oppression in Colonial Correspondence—Historical Importance of Colonial Correspondence of the Santal Insurrection of 1855-1856', Ideal Rsearch Review, Vol. 62, No. 2, June 2019, pp 31-36

6. Devalle. "…embraced the rural population across an extensive area." 1992, p.119
7. Tudu, Shishir, Translator, Aise Hua Hul (Hindi version of Harma's Village by Robert Carstairs), Prabhat Prakashan, Delhi, p-9
8. कुमार, विनोद. 'आदिवासी संघर्ष गाथा', प्रकाशन संस्थान,नई दिल्ली, 2005ए पृ.47

- Gupta, Ranjan, op. cit. pp 66-67(59-73) ". . . infamous mahajan-zamindar-amlah- police axis was the bane of the Santals and other aborigines, . . . "(p. 66)

9. Man. E. G., *'Sonthalia and the Sonthals'*, Mittal Publications, , Delhi, 1983, Reprint pp.110-115
- Raghavaiah, V., 'Tribal Revolts', Andhra Pradesh Adimjati Sevak Sangh, Nellor, Andhra Pradesh, 1971 pp. 148-150
10. Man, op. cit. p-114
11. Roy Chaudhury, P. C., *'Bihar District Gazetteers:Santal Parganas'*, Secretariat Press, Patna, 1965, pp. 73-34
12. Hunter. Op. cit. pp 46-47
13. Datta, K. K.. *'The Santal Insurrection of 1855-57'*, University of Calcutta, 1940.
14. Roy Chaudhury, op. cit. , p-79
15. Fuchs, Stephen, *'Rebellious Prophets—A Study of Messianic Movements in India'*, Asia Publishing House, Bombay, 1965a p-46; Fuchs, Stephen, 'Messianic Movements in Primitive India', in Asian Folklore Studies, Vol. 24, No. 1, 1965, pp 11-62
16. Fuchs. 1965a, p 50
17. Archer, W. G. and Culshaw, W. J., *'The Santal Rebellion, Man in India'*, Ranchi, 25-4, December 1945, pp 218-239; Roy Chaudhury, op. cit, p-79
18. Calcutta Review, Vol. 35. 1860, p-511
19. McPherson. *'The Final Report on the Survey and Settlement Operations in the District of Sonthal Parganas 1898-1907'*, Bengal Secretariat Book Depot, Calcutta, 1909, p-38
20. Roy Chaudhury . op. cit. p-79
21. Fuchs 1965a, p-50;Calcutta Review. 1856. Vol. 26. Calcutta, p-245; Somers, George. E., *'The Dynamics of Santal Traditions in a Peasant Society'*, Abhinav Publications, New Delhi, pp 47-48; Bidwell, A. C. 1856. Bengal Judicial Consultations, Letter dated 14 February, 1856, No. 157; Basu, K. K. 1934. The Sontal Outbreak in Bhagalpur, Journal of the Bihar an Orissa Research Society, Vol. 20, No. 2. June 1934, Patna, pp 186-214; Biswas, A. K. 1995. Santhal Rebellion:A Study of Little Known Facts of their Life and Culture, Bulletin, Vol. XXXV, December, 1995, pp 13-24, Bihar Tribal Welfare Research Institute , Morabadi, Ranchi-8, Bihar
22. Calcutta Review, 1860, op. cit, p-511
23. Hunter, op. cit. pp 230-239
24. Roy Chaudhury . op. cit. p-79
25. Calcutta Review, 1860, op. cit, pp. 511-512
26. Roy Chaudhury, P. C., *'Bihar District Gazetteers: Bhagalpur'*, Secretariat Press, Patna, 1965 p-65
27. Datta, K. K. *'Original Records About the Santal Insurrection of 1855 in Bengal:Past and Present'*, Vol. 48. No. 1, July-September, Calcutta Historical Society, Calcutta, 1934, p-33 (33-37)
28. Hunter, op. cit. , p-240, "…the Darogah merited his end……. ";Calcutta Review 1860. p-511
29. Koomar, C. H. 1937. *'Santal Pargana, Santal aur Paharia Ka Itihas'* (The History of Santal Parganas, Santals and Paharias), Benagaria Mission Press, Benagaria, Santal Pargans, p-63. Hindi translation of the book by Vikas Kumar, 2021Samyak Prakashan, New Delhi
30. Carstairs, Robert, *'Harma's Village'*, The Santal Press, Pokharia, Manbhum, 1935, pp 245-246
31. According to J. C. Jha 1985 " They proclaimed that the British Raj (the Company's rule) had been replaced by the Raj of Hor—the reign of truth" in P. N. Chopra. 1985. Chief Editor, India's Struggle for Freedom:Role of Associated Movements, Vol. Three, Agam Prakashan , Delhi, p412(395-434);Koomar. op. cit. Pp 64-65
32. Roy Chaudhury, 1965, p-80
33. Datta. op. cit. p-10
34. Roy Chaudhury, 1965, p-80
35. Roy, N. B., 'New Aspects of the Santal Insurrection of 1855-56', Indian Historical Records Commission, Vol. 35, Part 2, New Delhi, 1960, pp 172-191;
1961. More Light on the Santhal Insurrection, op. cit. , Vol. 36, Part 2, Chandigarh, pp 61-72;
36. सिउड़ी स्थित कमान्डिग आफिसर कर्नल बर्नी को वीरभूम जिले के क्लकटर आर. आइ. रिचर्डसन के पत्र, 12 सितम्बर से 12 अक्टूबर 1855, O'Malley, L. S. S. 2015. Bengal Dsitrict Gazeeteers: Birbhum, Logos Press, New Delhi, pp 25-28 (Reprint, the gazetteer was first published in 1910, Bengal Secretariat Book Depot, Calcutta) Marandi, Ishwar and Dinesh Narayan Verma, 2023. The Santal Movement of 1855-1856 in Damin-i-koh of Bengal:Manifestations of the Movement in Multiple Archival Sources, Ideal Research Review, Vol. 74, No. 1, June 2023, pp 18-22; Marandi, Ishwar and Dinesh Narayan Verma, 2023. The Santal Insurrection of 1855-1856 in Birbhum of Bengal:AnEnquiry into Archival Sources of the Insurrection, Ideal Research ReviewVol. 73, No. 1, March 2023, pp. 68-72
37. Roy Choudhary. 1965, p-81
38. Raghavaiah, op. cit. p-152
39. McPherson. op. cit. P-37
40. Calcutta Review 1856, p-250
41. O'Malley2015, pp 25-26
42. Datta. op. cit. p250
43. Datta. 1940, p-37; Datta 'The Anti-British Plots and Movements Before 1857', Meenakshi Prakashan, Meerut, 1970, p-76; See L. Natarajan 1981 The Santhal Insurrection 1855-1856 in A. R. Desai. ed. , Peasant Struggles in India, Oxford Univeristy Press, Bambay
44. McPherson. op. cit. p-38;O'Malley. op. cit. 2015, p-25-28
45. McPherson. op. cit. p-38;O'Malley. op. cit. 2015, p-25-28
46. McPherson. op. cit. p-37
47. Jha. J. C. 1985. Santal Movement in P. N. Chopra 1985, op. cit. pp 415-417 (pp 395-434); चौधरी, प्रसन्न कुमार और श्रीकांत 2008. 1857-बिहार-झारखंड में महायुद्ध, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 13-14
48. Bradley-Birt, F. B., *'Story of An Indian Upland'*, Mittal Publications, New Delhi, 1990, Reprint. p-206 (The book was first published in 1905, Smith, Elder and Co. , London)
49. O'Malley, L. S. S., 'Bihar District Gazetteers:Santal Parganas', Revised edition By S. C. Mukherji, Patna, 1938
50. Calcutta Review, 1856, p. 247
51. Marx, Karl, 'Notes on Indian History 664-1858', Foreign

Languages Publishing House, Moscow, 1900, p.148

52. Carstairs, Robert. 1912. Little World of An Indian District Officer, Macmillan & Co. Limited, London, pp 221-223; Dhagamwar, Vasudha. 2006, Role and Image of Law:The Tribal Experience, SAGE Publications Pvt. Ltd. , New Delhi, pp 156-169
53. Kaviraj, Narhari. 1984. *'Peasnt and Adivasi Uprising'* in Nishith Ranjan Ray et el, edited, Peoples Publishing House, New Delhi. p-117; Kaviraj, Narhari. 2001. Santal Village Community and the Santal Rebellion of 1855, Subarnrekha, Kolkata, pp. 126-129; See Diwakar, R. R. 1959. Ed., Bihar Through the Ages, Orient Longman, Calcutta, pp 598-601; Mathur, L. P. 2004. Revolts in India Under British Raj, Avishkar Publishers, Jaipur, pp. 60-71
54. राइक्राफ्ट, डेनियल जे.ए 'झारखंड में यादों और इतिहास की पुनर्व्याख्या', हरिवंश, फैसल अनुराग प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2009 पृ. 104-112 यहूल से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों और घटनाओं के लिए कमिश्नर ए. सी. बिडवेल की रिपोर्ट, 10 दिसम्बर 1855 की रिपोर्ट बेहद महत्वपूर्ण है।
55. Calcutta Review, 1856, p255, In Letter from Secretary to the Bengal Government dt. 6 August, 1855 to A. C. Bidwell, Special Commissioner, Bhagandi is described as Chief Position.
56. Datta1940, p16; Datta. 1970. p 57
57. Calcutta Review, 1856, p 246
58. Chaudhury, Arun. Editor, Digambar Chakraborty's *'History of the Santal Hul of 1855'*, Aligarh (Birbhum), 1989 p. 32
59. Hunter, op. cit. p-236
60. Buckland, C. E., *'Bengal Under Lieutinent Governors'*, Vol. I, S. K. Lahiri & Co., Calcutta, 1901, p-12
61. Sinha1991. p-100
62. Calcutta Review, 1856, pp. 244.

- Dasgupta, Atis, 'Some aspects of the Santal Rebellion of 1855-56' in Social Scientist, Vol. 41, No. 9-10, September-October 2013, p-72
- Extracts from Diary of R. I. Richadson, Collector, Birbhum, 20 September, 1855 in Tarapad Roy, Santal Rebellion :Documents, Subarnrekha, Calcutta, pp 14-15;See Pankaj, Ashwini Kumar. 2021. 1855 Hul Documents. 1983. notion press. com. India, Singapore, Malaysia;Sinha, S. P. 1991. Papers Relating to Santal Hul, Bihar Tribal Welfare Research Institute , Ranchi

63. Roy Chaudhury, 1965, p-79
64. Chaudhury. 1989, pp 28-35
65. Ibid. pp 28-35
66. Umashankar. *'Santal Sanskar ki Ruprekha'*, Nirman Prakashan, Patna, 1966.
67. Calcutta Review, 1856, pp. 245-246
68. Bradley-Birt, op. cit. p-190
69. Calcutta Review, 1856 , p -246
70. Calcutta Review, 1856 , p -246
71. Hunter1975 pp. 236-255
72. Buckland 1901, pp. 11-16
73. Bradley-Birt õ 1990 p 206
74. Roy Chaudhury 1965, p79
75. Roy Chaudhury 1962, p 65
76. Gott Richard. *'Britains's Empire:Resistance, Repression and Revolt'*, Verso. London, 2012, p. 435 (pp. 423-369)
77. O'Malley, op. cit. 1938, p-57
78. Chaudhury. 1989. op. cit. p-42
79. Calcutta Review 1856 pp 251-252
80. Sinha, S. P. op. cit. , pp 33-55
81. Sinha, S. P. ed. 'Tribal Leadership in Bihar', Bihar Tribal Welfare Research Institute, Morabadi, Ranchi, Bihar, 1991, p. 104 (pp. 71-187)
82. Calcutta Review, 1856 pp 251-252;Datta 1940. op. cit. p 67; Datta. K. K. 1957. Unrest Agaisnt british Rule in Bihar 1831-1859. Secretariat Press, Patna, p-27; Datta 1970. op. cit. pp 104-105
83. चौधरी, प्रसन्न कुमार और श्रीकांत, '1857-बिहार-झारखंड में महायुद्ध', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2008, पृ. 13
84. Sinha, Ajay Kumar, 'The Santal insurrection of 1855', Bulletin of Bihar Tribal Welfare Research Institute, Vol. 25. No. 1. & 2, Ranchi, 1980, p 143 (pp 135 144). Santal Pargana District Through the Ages, Ibid. Vol. 25 No. 1&2 pp. 82-83 (pp. 77-84)
85. The Illustrated London News, 23 February 1856, London, p 195
86. Bradley-Birt. 1990. p-206; Gupta 1974, op. cit. pp 59-73 & pp 137-172
87. वर्मा डी.एन., 'संताल विद्रोह 1855-1856- जनजातियों, दलितों और पिछड़ों का मुक्ति संघर्ष', एकेडमिक फोरम पब्लिकेशन सेंटर, रामपुरहाट, 2014, पृ.18-23
88. वर्मा डी.एन., 'संताल विद्रोह 1855-1856 इतिहास और इतिहासलेखन', एकेडमिक फोरम पब्लिकेशन सेंटर, रामपुरहाट, 2007, पृ.12
89. वही, पृ.13
90. Verma, D. N., *'Revisiting Uncovered Leaders an Events of Santal Hul in the History'*, Sampratayay, Vol. I No. 1, July 2024 p-47-59

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

समाजशास्त्रीय सिद्धाँत-निर्माण के रचनात्मक तत्व

❑ प्रोफेसर अशोक कुमार सिंह

सूचक शब्द : सम्प्रत्ययीकरण, तर्क-वाक्य, तथ्य, अवधारणा, परिवर्त्य, कथन, आकार, अधिसैद्धान्तिक रूपरेखा, विश्लेषणात्मक रूपरेखा, प्रस्थापनामूलक रूपरेखा एवं प्रतिरूपण रूपरेखा।

प्रस्तुत शोध-प्रपत्र में समाजशास्त्रीय सिद्धान्त निर्माण के रचनात्मक तत्त्वों को पर्यवेक्षित करने का प्रयास किया गया है। जिस प्रकार प्रकृति में एकरूपता और व्यवस्था पायी जाती है, उसी तरह समाज में भी एकरूपता और व्यवस्था विद्यमान है। सिद्धांतकार का कार्य इन एकरूपताओं और व्यवहारों को नियमबद्ध और सिद्धांतबद्ध करना है। सिद्धांतीकरण शब्दों एवं प्रतीकों में प्रस्तुत किया जाता है। तथ्यों के आधार पर प्राप्त सम्प्रत्ययीकरण (Conceptualization) की प्रक्रिया सिद्धान्त की संरचना निर्धारित करती है। सामाजिक प्रघटनाओं की नियमितता, क्रम और व्यवस्था को तर्क-वाक्यों (Preposition) में प्रकट किया जाता है। इसी प्रकार के तार्किक सम्बन्ध में संगठित तर्क-वाक्यों से सिद्धान्त भाषाबद्ध होता है।

समाजशास्त्र में आधुनिक सामान्य सिद्धान्तों का सम्पूर्ण क्षेत्र इतना विशाल, इतना जटिल और इतना भ्रान्तिपूर्ण है कि ऐसी कोई सम्भावना नहीं है जिसमें इसकी शाखा-प्रशाखाओं की व्याख्या एक ग्रन्थ में की जा सके।[1] अस्तु एक शोध-प्रपत्र में समाजशास्त्रीय सिद्धान्त एवं इसके निर्माण व सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य का सार प्रस्तुत करना असम्भव नही ंतो कठिन अवश्य है। तथ्यतः सिद्धान्त किसी भी विज्ञान की प्रमुख आधारशिला है। समस्त विज्ञानों में, चाहे वे प्राकृतिक या भौतिक विज्ञान हो अथवा सामाजिक विज्ञान, सिद्धान्त के प्रयोग का, सिद्धान्त की रचना का प्रचलन है। वस्तुतः सिद्धान्त के जटिल सम्बन्ध आधुनिक विज्ञान के मौलिक अधिकार हैं। किसी विज्ञान का भव्य प्रासाद सिद्धान्त की संरचना पर ही अवलम्बित है। विषयगत सामग्रियों के महासागर में एक सिद्धान्तवेत्ता एक मांझी की भाँति अपने वैज्ञानिक पद्धतितन्त्र रूपी नौका का सहारा लेकर आगे बढ़ता है। किसी भी विज्ञान की परिपक्वता का एकमात्र मापदण्ड उसके सिद्धान्तों का तार्किक ढंग से व्यवस्थित संगठित होना है। इसके अन्तर्गत, अवधारणाओं, प्रस्तावों, परिभाषाओं एवं प्राकल्पनाओं का स्पष्टीकरण तथा विभिन्न तत्त्वों के सम्बन्धों के बारे में युक्तियुक्त व्याख्या तथा इस सन्दर्भ में प्रयुक्त पद्धतितन्त्र आदि का विवरण सम्मिलित रहता है। प्रत्येक वैज्ञानिक सिद्धान्त के मूल में कोई न

> सामान्यतः एक सिद्धान्त विचारों का एक समूह है जो किसी चीज की व्याख्या करता है। एक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त विचारों का वह समूह है जो मानव समाज की व्याख्या करता है। हाँ, किन्तु चाहे कोई भी सिद्धान्त हो, उसकी एक निश्चित संरचना होती है। इस संरचना में तथ्य, अवधारणा, परिवर्त्य, कथन एवं आकार का कोई न कोई स्वरूप अवश्य होता है। ये पंच तत्त्व सिद्धान्त- निर्माण के आवश्यक आधार स्तम्भ हैं। हम सिद्धान्त की व्याख्या चाहे किसी भी परिप्रेक्ष्य में करें, किसी भी वैचारिकी में देखें, इन संरचनात्मक तत्त्वों का होना अत्यावश्यक है। वस्तुतः समाजशास्त्रीय सिद्धान्त को जिस रूप में नामित किया जाता है, यथार्थतः, वह केवल अन्तर्निहित मान्यताओं, कुछ बुनियादी अवधारणाओं और विविध प्रकार के सैद्धान्तिक कथनों और आकारों का बन्धन रहित गुच्छ या समूह है। किन्तु इनमें से कोई भी इतना प्रबल या पर्याप्त मात्रा में परिशुद्ध या यथार्थ नहीं है कि उसके आधार पर रूपसूत्र या पैराडाइम का निर्माण किया जा सके। कभी-कभी मान्यताओं को स्पष्टतया कहा जाता है और उसके आधार पर ऐसे अमूर्त सैद्धान्तिक कथनों की रचना की जाती है जो सुपरिभाषित अवधारणाओं पर आधृत होते हैं। इस प्रकार अधिक सीमा तक 'सिद्धान्त' यथार्थतः सामाजिक जगत् की विविध विशेषताओं की ओर देखने का एक सामान्य परिप्रेक्ष्य या अभिमुखीकरण है। समाजशास्त्रीय सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य एक नहीं प्रत्युत अनेक हैं। इन सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्यों की व्याख्या में व्यापक अन्तर है। इनमें से कुछ तो स्वयं समाजशास्त्रियों द्वारा स्थापित हैं और कुछ दूसरे क्षेत्रों से लेकर समाजशास्त्र की विषयवस्तु के अनुरूप ढाले गये हैं। उदाहरणस्वरूप, दुर्खीम का समाजाग्रहवाद (Sociologism) स्वयं दुर्खीम द्वारा स्थापित समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य है, जबकि आगस्त कोंत का प्रत्यक्षवाद, आल्फ्रेडशूट्ज का प्रघटनाशास्त्र आदि दूसरे क्षेत्रों से अधिग्रहीत समाजशास्त्रीय सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य हैं।

❑ प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग, जगतपुर पी.जी. कालेज, जगतपुर, वाराणसी (उ.प्र.)

कोई प्रयोजन निहित होता है। अतः सिद्धान्त-रचना में प्रवृत्त होते समय सिद्धान्तवेता के मन में भी निश्चित रूप से कुछ निश्चित लक्ष्य रहते हैं, कुछ निश्चित जिज्ञासा होती है। ये लक्ष्य व जिज्ञासाएँ दूरवर्ती तथा तात्कालिक सामाजिक व्यवहार, सामाजिक घटनाओं तथा सामाजिक जीवन को अन्वेषित करने व समझने तथा उनको नियन्त्रित करने से सम्बन्धित होती हैं। अन्य शब्दों में, कोई सिद्धान्तकार वैज्ञानिक कार्यप्रणालियों द्वारा प्रश्नों के उत्तरों की खोज करने का प्रयास करता है। सिद्धान्त रचना का प्रारम्भ सदैव किसी न किसी समस्या के समाधान अथवा किसी न किसी प्रश्न का उत्तर जानने के लिए ही होता है। सिद्धान्त रचना के आधार पर जहाँ एक ओर अन्वेषित सामाजिक घटनाओं का स्पष्टीकरण तथा संदेहों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है, वहाँ दूसरी ओर सामाजिक जीवन की भ्रान्त धारणाओं से सम्बन्धित तथ्यों को अन्वेषित करने तथा संशोधन करने का भी प्रयास किया जाता है। जब किसी घटना के कार्य-कारण को ज्ञात करने तथा उसके पारस्परिक अन्तर्सम्बन्धों को खोजने का प्रयास किया जाता है और उसी प्रकार की घटनाओं के ऊपर सामान्यीकरण किया जाता है तो सिद्धान्त रचना के लिए एक पृष्ठभूमि का निर्माण होता है।

समाजशास्त्र का लक्ष्य मानव संगठन की प्रकृति के बारे में ज्ञान प्राप्त करना है। ऐसे ज्ञान के आधार पर सामाजिक घटनाओं के घटने के कारणों की व्याख्या करना सम्भव है। किन्तु, मानव समग्र के बारे में ज्ञान विकसित करने में उपयुक्त तरीके को लेकर समाजशास्त्र में व्यापक स्तर पर मतवैभिन्य है। किसी अन्य सामाजिक विज्ञान की अपेक्षा समाजशास्त्रियों में ऐसे आधारभूत गुणों जैसे किसी प्रकार का ज्ञान सम्भव है। इस ज्ञान के विकास में किस प्रकार की कार्यविधिकी का अनुसरण किया जाय, किस प्रकार के ज्ञान को विकसित करने की चेष्टा की जाय और किस प्रकार इस उत्पन्न ज्ञान का प्रयोग करना चाहिए, पर मतवैभिन्य है।

राबर्ट के. मर्टन ने अपनी पुस्तक ''सोशल थीऑरि ऐण्ड सोशल स्ट्रक्चर'' में ''आन दि हिस्ट्री ऐण्ड सिस्टेमेटिक्स ऑफ सोशियोलॉजिकल थीऑरि (On the History and Systematics of Sociological Theory) एवं 'दि बियरिंग ऑफ इम्पिरिकल रिसर्च ऑन सोशियोलॉजिकल थीऑरि' (The Bearing of Empirical Research on Sociological Theory) शीर्षकों के अन्तर्गत सिद्धान्त की विशद व्याख्या की है। उनके अनुसार कुछ अध्येताओं ने शास्त्रीय समाजशास्त्र को सिद्धान्त माना है तो कुछ अन्य अध्येताओं ने पद्धतिशास्त्र के लिए सिद्धान्त पद का प्रयोग किया है। कुछ अध्येताओं ने सामान्य समाजशास्त्रीय अभिमुखीकरण (General Sociological Orientations) को सिद्धान्त कहा है, तो कुछ अध्येताओं ने समाजशास्त्रीय अवधारणाओं के विश्लेषण (Analysis of Sociological Concepts) को सिद्धान्त कहा है। कुछ विद्वानों ने घटनोत्तर समाजशास्त्रीय व्याख्याओं के लिए भी सिद्धान्त शब्द का प्रयोग किया है तो कुछ अन्य लेखकों ने समाजशास्त्र में आनुभविक सामान्यीकरणों (Empirical generalizations in Sociology) को सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त, कुछ लेखकों ने समाजशास्त्रीय सिद्धान्त को समाजशास्त्रीय समाजीकरण के आधार पर तथाकथित वैज्ञानिक नियम के रूप में तार्किक ढंग से सम्बद्ध किये गये निश्चयात्मक कथन के लिए ही सिद्धान्त पद का प्रयोग किया है। मर्टन का कहना है कि उपर्युक्त छः प्रकार के समाजशास्त्रीय कार्यों को सिद्धान्त का पर्यायवाची समझा जाता है, किन्तु यथावत यह न तो सत्य है और न ही असत्य प्रत्युत अस्पष्ट है। वस्तुतः इन छः कार्यों के किसी भी एक कार्य को स्वतंत्र रूप से समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता हैं। उदाहरणस्वरूप पद्धतिशास्त्र, सामान्य समाजशास्त्रीय अभिमुखीकरण, समाजशास्त्रीय अवधारणाओं का विश्लेषण आदि की आधारभूत मान्यताओं का समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की रचना में महत्वपूर्ण स्थान है। किन्तु, इनमें से एक को सिद्धान्त की संज्ञा नहीं दी जा सकती। हाँ, किन्तु निश्चित रूप से समाजशास्त्रीय सिद्धान्त के अन्तर्गत कार्यों के प्रकारों को तार्किक रूप में अन्तर्सम्बन्धित होना चाहिए। मर्टन के अनुसार ''समाजशास्त्र के अन्तर्गत सिद्धान्त के इतिहास से सम्बन्धित अनेकानेक ग्रन्थों एवं आनुभविक अन्वेषणों द्वारा प्राप्त दत्त-सामग्रियों से भरे सन्दूकों के उपरान्त भी समाजशास्त्री, समाजशास्त्रीय सिद्धान्त के तार्किक आधारों की व्याख्या करते हुए ऐसा एक भी उदाहरण प्रस्तुत नहीं कर पाये हैं जो कि इन मानदण्डों के आधार पर एक भी सिद्धान्त की रचना के यथार्थ को प्रदर्शित कर सकें।''[2]

जार्ज सी. होमन्स का मत है कि ''मुझे प्रतीत होता है कि अधिकांश आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त किसी

चीज की व्याख्या करने में अतिरिक्त प्रत्येक गुण से सम्पन्न है। इसके साथ कठिनाई यह है कि इससे अधिकांश भाग के अन्तर्गत श्रेणियों अथवा कोष्ठों की व्याख्या है, जिसमें सिद्धान्तकार व्यवहार के भिन्न-भिन्न पक्षों को ठीक कर देता है।"[3]

स्टेफेन मेन्नेल का तो यहाँ तक कहना है कि ''समाजशास्त्र में प्रायः जिसे समाजशास्त्रीय सिद्धान्त के नाम से सम्बोधित किया जाता है, वस्तुतः उसे सिद्धान्त कहा ही नहीं जा सकता।"[4]

उपर्युक्त विवेचन का तात्पर्य यह नहीं है कि समाजशास्त्र में अब तक जिन सिद्धान्तों की रचना की गयी है, उनको सिद्धान्त की श्रेणी में रखा ही नहीं जा सकता। वास्तव में समाजशास्त्रीय सिद्धान्तीकरण अपने बौद्धिक शैशवावस्था में है। इससे वृहत् अभिमुखीकरण यह प्रदर्शित करते हैं कि सामयिक जगत् के बारे में उपयोगी ज्ञान को विकसित करने में समाजशास्त्र में सिद्धान्त के अन्तर्गत बहुत अधिक शक्ति अन्तर्निहित है। अतः समाजशास्त्र में सिद्धान्त रचना सम्भव है। किन्तु प्राकृतिक विज्ञानों के अभिकल्प को समाजशास्त्रीय सिद्धान्त निर्माण की प्रक्रिया में प्रतिरूप के रूप में नहीं अपनाया जा सकता, क्योंकि स्वभावतः समाजशास्त्रीय प्रघटनाएँ प्राकृतिक प्रघटनाओं से भिन्न हैं।

समाजशास्त्रीय सिद्धान्त के रचनात्मक तत्त्व
(The Constructive Elements of Sociological Theory) :

समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की रचना कई बुनियादी तत्त्वों से होती है। ये बुनियादी तत्त्व ही एक प्रकार से सिद्धान्त रूपी भव्य प्रासाद के शिलाखण्ड हैं। प्रायः अधिकांश समाजशास्त्रियों की दृष्टि में समाजशास्त्रीय सिद्धान्त में निम्नलिखित पाँच प्रमुख निर्माणात्मक तत्त्व हैं - (1) तथ्य, (2) अवधारणाएँ, (3) परिवर्त्य, (4) कथन, एवं (5) आकार।

उपर्युक्त प्रत्येक तत्त्व या रचना-स्तम्भ के बारे में कुछ महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेने से समाजशास्त्रीय सिद्धान्त रचना के विश्लेषण में सहायता मिल सकती है।

1. तथ्य :- वस्तुतः तथ्य समाजशास्त्रीय सिद्धान्त रचना के प्रथम आधारभूत तत्त्व हैं। तथ्य ही किसी सिद्धान्त निर्माण की आधारशिला हैं। तथ्यों को सुनिश्चित एवं सन्देह रहित तथा इनके अर्थबोध को स्वतः प्रमाणित माना जाता है। यह विषयाश्रित होता है, जिसमें अर्थबोध कर्त्ता के विचार का सम्मिश्रण नहीं होता। एक तथ्य को आनुभविक जाँच योग्य पर्यवेक्षण माना जाता है। अन्य शब्दों में एक तथ्य यथार्थता की स्वतः प्रमाणित प्रघटना है जिसकी प्रामाणिकता का परीक्षण आनुभविक आधार पर किया जा सकता है। एक सामाजिक तथ्य कार्य करने, सोचने तथा अनुभव करने के वे तरीके हैं जिसमें व्यक्तिगत चेतना से बाहर भी अस्तित्व को बनाये रखने की उल्लेखनीय विशेषता होती है। दुर्खीम का तर्क है कि ''एक सामाजिक तथ्य काम करने का वह प्रत्येक ढंग है जो निश्चित हो या अनिश्चित और जो व्यक्ति पर एक बाहरी दबाब डालने के योग्य हो, अथवा काम करने का वह प्रत्येक तरीका है जो एक निर्दिष्ट समाज में सर्वत्र सामान्य है और साथ ही व्यक्तिगत अभिव्यक्ति से स्वतन्त्र उसका अपना अस्तित्व बना रहता है। दुर्खीम के अनुसार सामाजिक तथ्य की दो विशेषताएँ हैं, जिसके कारण हम उसे भौतिक तथ्यों की तरह वैषयिक (Objective) कह सकते हैं। पहली विशेषता तो इन तथ्यों की वाह्यता है। हम समाजशास्त्र में जब किसी सामाजिक तथ्य पर विचार करें तो उसमें से अपने मन की बनी बनायी धारणाओं को अलग करके, उस पर वस्तुगत रूप में विषयाश्रित रूप में विचार करना ही वाह्यता (exteriority) कहलाता है। सामाजिक तथ्य की सत्ता हमारे मन से बाहर है, वह विषयाश्रित है। सामाजिक तथ्य की दूसरी विशेषता इन तथ्यों का मनुष्य पर बन्धन डालना या इन तथ्यों की बाध्यता (Constraint) है। जिस चीज की वस्तुगत यथार्थता होगी, वह जहाँ एक ओर विचारकर्त्ता के लिए वाह्यता होगी, वहीं दूसरी ओर वह विचारकर्त्ता पर किसी न किसी प्रकार का बन्धन भी अवश्य डालेगी, उसे बाध्य करेगी।[5]

कोहेन का मत है कि सिद्धान्त का तात्पर्य किन्हीं विशिष्ट घटनाओं से नहीं होता बल्कि घटनाओं की सम्पूर्ण श्रेणियों से होता है। कभी-कभी यह कहा जाता है कि सिद्धान्त कुछ नहीं है, बल्कि सामान्य तथ्य है अर्थात् सामान्य तथ्यों को सिद्धान्त कहा जाता है। तथाकथित सामान्य तथ्य का एक कथन या तो उसी प्रकार की कई घटनाओं का संक्षिप्त कथन होगा, या घटना के एक प्रकार की विशेषताओं का एक सामान्य कथन होगा। यदि यह पहला है तब यह सिद्धान्त नहीं है। यदि यह दूसरा है, तब यह तथ्यपूर्ण नहीं है। इस बात को कोहेन ने एक उदाहरण देकर स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उनका

मत है कि ''यदि कोई व्यक्ति यह कहता है कि उसने एक पत्ते को झड़ते हुए देखा है, तो उसने एक तथ्य कहा है। यदि कोई यह कहता है कि उसने अक्सर पत्तों को झड़ते देखा है, तो वह मात्र अनिर्दिष्ट विशिष्ट घटनाओं से सम्बन्धित अनेक कथनों को एक साथ जोड़ता है जो एक जटिल तथ्य है। किन्तु, यदि वह कहता है कि सभी पत्तों को अनिवार्यतः झड़ना ही है तो वह किसी तथ्य को न कहकर एक सिद्धान्त को प्रस्तुत करता है क्योंकि जो कुछ उसने सभी पत्तों के बारे में कहा है कि वह यही नहीं जो उसने देखा है, कोई भी व्यक्ति सभी पत्तों को अवलोकित नहीं कर सकता, क्योंकि झड़ने वाले पत्तों की संख्या असीमित हो सकती है।''[6]

इस सन्दर्भ में राबर्ट किंग मर्टन का यह कथन युक्तियुक्त है कि ''कुल मिलाकर यथार्थ सिद्धान्त केवल प्रासंगिक तथ्यों के उत्तम भोजन पर ही फलते-फूलते हैं''[7] क्योंकि सिद्धान्त तथ्यों के बीच के सम्बन्ध को सूचित करते हैं अथवा उनकी एक अर्थपूर्ण रूप में व्यवस्था को निर्दिष्ट करते हैं। इस प्रकार हम इस बात को स्पष्ट करते हुए कह सकते हैं कि -

1. तथ्य सिद्धान्तों के निर्माण का समारम्भ करने में सहायता पहुँचाते हैं।
2. ये वर्तमान सिद्धान्तों के पुनर्प्रतिपादन में सहायक सिद्ध होते हैं।
3. ये उन सिद्धान्तों को अस्वीकार करते हैं जो प्राप्त किये गये तथ्यों के अनुकूल नहीं होते।
4. ये सिद्धान्त के केन्द्र बिन्दु होते हैं तथा किसी सिद्धान्त के अभिमुखीकरण को परिवर्तित करते हैं।
5. ये सिद्धान्त को स्पष्ट एवं पुनर्परिभाषित करते हैं।[8]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तथ्य सिद्धान्त के निर्माण की आधारशिला हैं।

2. अवधारणाएँ :- अवधारणाएँ समाजशास्त्रीय सिद्धान्त रचना का द्वितीय आधारभूत तत्त्व हैं। बहुधा यह कहा जाता है कि सिद्धान्त अवधारणाओं से बनते हैं, किन्तु मर्टन का कहना है कि यह कथन कि सिद्धान्त अवधारणाओं से बनते हैं ऐसा वक्तव्य है जो अपने आप में अपूर्ण होने के कारण न तो सत्य है और न ही असत्य प्रत्युत अस्पष्ट है।[9] हाँ, किन्तु निश्चित है कि अवधारणात्मक विश्लेषण जो मूल-अवधारणा का विशेष विवरण एवं स्पष्टीकरण तक परिसीमित है, सैद्धान्तिक कार्य का एक अपरिहार्य पक्ष है। किन्तु अवधारणाएँ स्वयं में सिद्धान्त नहीं हैं। उदाहरणस्वरूप समाजीकरण, समूह, प्रस्थिति, भूमिका, सामाजिक दूरी, अपराध, सफेदपोश अपराध, विघटन, विचलन, संस्कृतीकरण, आदर्शशून्यता (एनॉमी), पश्चिमीकरण, लौकिकीकरण इत्यादि सिद्धान्त नहीं हैं। यद्यपि ये अवधारणाएँ सिद्धान्त व्यवस्था के अन्तर्गत आ सकती हैं। जब विभिन्न अवधारणाएँ परस्पर तार्किक रूप से जुड़कर कथनों का निर्माण करती हैं जो किसी प्रघटना की विश्लेषण व व्याख्या करने में सक्षम हों तो सिद्धान्त का निर्माण होता है। वह प्रत्येक शब्द अवधारणा है जो सामाजिक जगत् में विभिन्न पक्षों को अपने में समाहित किये हुए हैं तथा जिसे किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए आवश्यक समझा जाता है। वास्तव में एक अवधारणा तथ्यों के एक वर्ग या समूह की एक संक्षिप्त परिभाषा है।

अवधारणाओं की रचना परिभाषा द्वारा की जाती है। एक परिभाषा शब्दों की एक व्यवस्था है। परिभाषित शब्दों का जब किसी भाषायी वाक्यों या तर्कयुक्त प्रतीक के रूप में प्रयोग किया जाता है तो उसके माध्यम से किसी प्रघटना विशेष के बारे में उसके यथार्थ तत्त्व का बोध होता है। प्रघटनाओं के इसी यथार्थ तत्त्व को अवधारणा के रूप में जाना जाता है। अस्तु, अवधारणा वह शब्द वाक्य या तर्क-प्रतीक है जिसके द्वारा किसी प्रघटना के यथार्थ का बोध होता है। अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि किसी प्रघटना के यथार्थ को संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से शब्दों या प्रतीकों द्वारा समझना अवधारणा है। अवधारणाओं की एक अन्य विशेषता उनकी अमूर्तता है। अमूर्तता का तात्पर्य है आकार रहित। आकारहीनता अवधारणाओं का गुणधर्म (Properties) है। इसका अर्थ है कि अवधारणाएँ प्रघटनाओं पर नहीं वरन् प्रघटनाओं के गुणधर्म पर आधारित होती हैं। अवधारणा को सामान्यतः दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है - (1) वास्तविक अवधारणाएँ और (2) अवास्तविक अवधारणाएँ।

1. वास्तविक अवधारणाएँ (Referent Concept) - वास्तविक अवधारणाएँ वे अवधारणाएँ हैं जिनसे प्रत्यक्षतः दृष्टिगोचर होने वाली प्रघटनाओं का बोध होता है। वस्तुतः वास्तविक अवधारणाओं से ठोस, वास्तविक एवं तथ्याश्रित प्रघटनाओं का ज्ञान होता है। उदाहरणस्वरूप संघर्ष, अपराध, परिवर्तन, विघटन इत्यादि।

2. अवास्तविक अवधारणाएँ (Non-Referent

Concepts) वे अवधारणाएँ जिनसे ऐसे गुण या वस्तु का बोध होता है जो प्रत्यक्षतः दृष्टिगोचर नहीं होती, किन्तु यथार्थ की व्याख्या करने में उनका प्रयोग किया जाता है। उदाहरणस्वरूप, ईश्वर, स्वर्ग-नरक, आत्मा-परमात्मा इत्यादि। इन अवधारणाओं का यद्यपि कोई ठोस, वास्तविक एवं तथ्याश्रित अस्तित्व तो नहीं होता किन्तु इनसे सामाजिक प्रघटनाओं का अवबोध प्राप्त होता है। पारसन्स द्वारा प्रवर्तित सामाजिक व्यवस्था के सिद्धान्त में सामाजिक सन्तुलन की अवधारणा इस प्रकार की अवधारणा का एक अच्छा उदाहरण है।

नवीन अवधारणाओं का निर्माण आसान कार्य नहीं है। यह बहुत ही कठिन कार्य है। ज्ञातव्य है कि समाजशास्त्रियों द्वारा प्रयोग में लायी जाने वाली अवधारणाओं का अर्थ सामान्य व्यक्तियों द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले अर्थों से भिन्न होता है। वास्तव में समाजशास्त्रीय क्षेत्र में वैज्ञानिक अवधारणाएँ सामान्य पद हैं जिनका प्रयोग हम नित्य प्रति के व्यवहारों में किया करते हैं, किन्तु उनका नवीन वर्गीकरण एवं परिभाषा उन्हें सही-सही मूल्यवान तथा अधिक उपयोगी अर्थबोध प्रदान करती है। अवधारणाओं की रचना करते समय किसी समाजशास्त्री को लकीर का फकीर नहीं होना चाहिए बल्कि फकीर का लकीर की भाँति अवधारणाओं का निर्माण करना चाहिए। अस्तु, अवधारणाएँ सिद्धान्त निर्माण में केन्द्रीय या निर्णायक तत्त्व हैं और परिणामतः तथ्यों के प्रति उनकी सुस्पष्टता एवं ईमानदारी एक अच्छे सिद्धान्त के विकास या रचना के लिए आवश्यक हैं। ये वे शब्द या संकेत हैं जो सिद्धान्त को शब्दावली प्रदान करते हैं एवं उसकी विषयवस्तु को बतलाते हैं।

3. परिवर्त्य - सिद्धान्त रचना में परिवर्त्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। परिवर्त्य जैसा कि नाम से बहुत कुछ स्पष्ट है, वह है जिसका मूल्य (Value) परिवर्तित होता रहता है। परन्तु समाजशास्त्र में परिवर्त्य का तात्पर्य कुछ विशिष्ट अर्थ में प्रयोग होता है। यहाँ परिवर्त्य का तात्पर्य एक ऐसे गुणधर्म से हैं जिसके विभिन्न मापने योग्य मूल्य होते हैं। लिंग, शिक्षा, आय, सामाजिक वर्ग, संगठनात्मक उत्पादकता, व्यावसायिक गतिशीलता, आकांक्षा का स्तर, मौखिक अभिरुचि, चिन्ता, धार्मिक सम्बन्ध, बुद्धि इत्यादि समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक परिवर्त्यों के कुछ महत्त्वपूर्ण दृष्टान्त हैं। किन्तु, यहाँ हमें अधिक सामान्य एवं अधिक परिशुद्ध परिभाषा की आवश्यकता है। इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि एक परिवर्त्य एक प्रतीक है जिसके संख्यात्मक या मूल्यांकनात्मक मान निर्धारित किये जाते हैं। इस प्रकार परिवर्त्य की प्रमुखतः दो विशेषताएँ हैं-

1. किसी भी प्रघटना को परिवर्त्य कहलाने के लिए यह आवश्यक है कि वह मापनीय हो। वे प्रघटनाएँ जो मापने योग्य नहीं हैं उन्हें समाजशास्त्रीय अध्ययन में परिवर्त्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। इतर इन्द्रियजन्य प्रघटनाओं को परिवर्त्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है क्योंकि उन्हें सही ढंग से मापना सम्भव नहीं है।
2. परिवर्त्य कहलाने के लिए किसी प्रघटना के गुणों का मापन केवल मात्रात्मक ढंग से ही हो, यह आवश्यक शर्त नहीं है। यदि उनका मापन गुणात्मक ढंग से भी होता है तो हम उसे परिवर्त्य की श्रेणी में सम्मिलित करेंगे। लिंग, जाति, व्यवसाय व धर्म, भाषा कुछ ऐसे ही परिवर्त्य हैं जिनका मापन गुणात्मक ढंग से ही होता है।

इस प्रकार एक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त के निर्माण में नियमों की स्थापना करने के लिए कारणात्मकता का केन्द्रीय स्थान है। नियमतः दो व दो से अधिक परिवर्त्यों में सहसम्बन्ध व साहचर्य स्थापित कर जो प्रस्थापनाएँ या तर्कवाक्य बनाये जाते हैं उनका ही उत्पाद है सिद्धान्त। इस प्रकार प्रस्थापनाओं से ही सिद्धान्त की रचना की जाती है। दुर्खीम की रचनाएँ चाहे वह 'दि डिविजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी' (The Division of Labour in Society) हो या 'दि एलिमेन्टरी फार्म्स ऑफ रिलिजियस लाइफ हो' (The Elementary forms of Religious Life) अथवा 'स्यूइसाइड : ए स्टडी इन सोशियोलॉजी' (Suicide : A Study in Sociology) हो इन सभी में सिद्धान्त की रचना में परिवर्त्यों में साहचर्य एवं कार्य-कारण सम्बन्धों की जो व्यवस्था की गयी है वह समाजशास्त्रीय पद्धतिशास्त्र की दृष्टि से अनुपम एवं विलक्षण है। अपनी पुस्तक दि डिविजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी के प्रथम भाग में दुर्खीम ने श्रम विभाजन को एक परिवर्त्य के रूप में लिया और अन्य सामाजिक प्रघटनाओं के साथ इसके स्वरूपों एवं परिवर्तनों के सहसम्बन्ध को 'परिणाम' (Effects) या प्रकार्य के रूप में दर्शाया है।

4. कथन सिद्धान्त की रचनात्मक अवधारणाओं को

उपयोगी होने के लिए तार्किक सम्बन्ध के आधार पर एक-दूसरे से संयुक्त होना अत्यावश्यक है। अवधारणाओं में ऐसे संयोजन सैद्धान्तिक कथनों की रचना करते हैं। ये कथन विशेष रूप से उस तरीके का उल्लेख करते हैं जिसमें घटनाओं को अन्तर्सम्बन्धित अवधारणाओं द्वारा सूचित किया जाता है। साथ ही ये कथन यह स्पष्ट करते हैं कि क्यों और कैसे ये घटनायें एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। ज्ञातव्य है कि कथनों की रचना तार्किक सम्बन्धों के आधार पर की जाती है। कुछ उदाहरणों के माध्यम से इसे स्पष्ट किया जा सकता है -

1. किसी व्यक्ति का अपराधियों से जितना अधिक घनिष्ठ एवं निकटतम सम्बन्ध होगा, उसके समक्ष अपराधी व्यवहार को सीखने एवं उनकी अभिप्रेरणा से अपराध की ओर अभिमुख होने के अवसर उतने ही अधिक होंगे।
2. कोई समाज औद्योगिक आधुनिक समाज का स्वरूप जितना अधिक धारण करता जायेगा, उसमें परिवार का स्वरूप उतना ही अधिक पृथक् एकाकी परिवार के रूप में रूपान्तरित होता जायेगा।
3. समाज में महापराधियों को जितना कम दण्ड दिया जायेगा, उस समाज में अपराध की मात्रा उतनी ही अधिक बढ़ती जायेगी।
4. राजनीतिक नेता एवं कानून-प्रवर्तन करने वाले अभिकरण जितना अधिक भ्रष्ट होंगे, संगठित अपराधी उतना ही अधिक फलेंगे-फूलेंगे।

उपर्युक्त कथनों के आधार पर समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों की रचना की जा सकती है।

5. आकार - जब सैद्धान्तिक कथनों को एक साथ एक समुच्चय में रखकर प्रस्तुत किया जाता है तो वे एक सैद्धान्तिक आकार के रूप में जाने जाते हैं। 'आकार' पद एक सामान्य शब्द है, जो सैद्धान्तिक कथनों को संगठित करने के कई भिन्न तरीकों का वर्णन कर सकता है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सैद्धान्तिक कथनों को संगठित कर प्रस्तुत करना सैद्धान्तिक आकार कहलाता है।

समाजशास्त्रीय सिद्धान्त के सैद्धान्तिक कथन एवं आकार के जनन के लिए चार बुनियादी उपागमों की महत्वपूर्ण भूमिका है। ये उपागम हैं - (1) अधि-सैद्धान्तिक रूपरेखा (Meta-theoritical Schemes), (2) विश्लेषणात्मक रूपरेखा (Analytical Schemes) (3) प्रस्थापनामूलक रूपरेखा (Propositional Scheme) एवं (4) प्रतिरूपण रूपरेखा (Modeling Schemes)। निम्नलिखित रेखाचित्र के आधार पर इसका सम्यक् अवबोध प्राप्त किया जा सकता है -

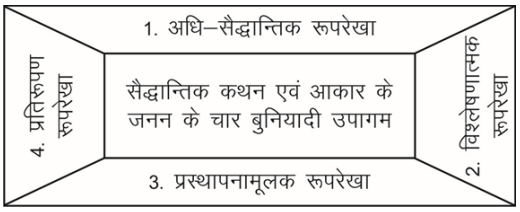

1. अधि-सैद्धान्तिक रूपरेखा - सैद्धान्तिक क्रिया का यह प्रकार सामान्य सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। अधि-सैद्धान्तिक रूपरेखा स्वयं सिद्धान्त नहीं है जो घटनाओं के विशिष्ट वर्गों की व्याख्या करते हैं, बल्कि वे उन बुनियादी मुद्दों को स्पष्ट करती हैं जिसे एक सिद्धान्त को उद्घाटित करना चाहिए। अनेक समाजशास्त्रीय वृत्तों या परिधियों (Circles) में अधिसिद्धान्त निर्माण के सम्बन्ध में एक आवश्यक पूर्वापेक्षा के रूप में स्वीकार किया जाता है। वस्तुतः समाजशास्त्रीय सिद्धान्त में अधिसिद्धान्त की वकालत करने वाले प्रायः इस बात पर बल देते हैं कि हम तब तक सिद्धान्त को विकसित नहीं कर सकते जब तक कि हम अधिक बुनियादी ज्ञान-मीमांसात्मक एवं तात्त्विक प्रश्नों का समाधान न कर लें। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि यह उपयोगी तब हो सकता है जबकि यह वास्तविक सिद्धान्त निर्माण करने का प्रयास करता हो अर्थात् यह सामाजिक घटनाओं की व्याख्या करने का प्रयास करता है। अधिक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि अधिकांश समाजशास्त्रीय सिद्धान्त तथ्यतः अधि-सैद्धान्तिक क्रिया है।

2. विश्लेषणात्मक रूपरेखा - समाजशास्त्र में अधिकांश सैद्धान्तिक कार्य संगठित अवधारणाओं में वर्गीकरण की योजना पर आधारित है। प्रत्येक अवधारणा सामाजिक विश्व में एक मौलिक गुणधर्म या विशेषता को सूचित करती है। इन मौलिक गुणधर्मों व विशेषताओं के आधार पर अवधारणाओं को वर्गीकृत किया जाता है और फिर इस वर्गीकरण के आधार पर आनुभविक घटनाओं की सूक्ष्मातिसूक्ष्म ढंग से तार्किक व्याख्या की जाती है।

3. प्रस्थापनामूलक रूपरेखा - प्रस्थापना एक सैद्धान्तिक कथन है जो यह स्पष्ट करता है कि दो या दो से अधिक परिवर्त्यों के बीच किस प्रकार का अन्तर्सम्बन्ध है?

उदाहरणस्वरूप, प्रस्थापनामूलक यह कथन ''समूह की एकात्मता अन्य समूहों के साथ वाह्य संघर्ष का सकारात्मक प्रकार्य है। यह उद्घाटित करता है कि जैसे-जैसे समूह संघर्ष बढ़ता जाता है वैसे-वैसे अपने-अपने समूहों के सदस्यों के बीच एकात्मता का आन्तरिक बोध संघर्ष करने की अपेक्षा है अथवा संघर्ष करने के लिए प्रोत्साहित करता है। इस प्रकार परिवर्त्य अवधारणाओं द्वारा सूचित 'सामाजिक एकात्मता' एवं 'संघर्ष' सामाजिक विश्व के दो गुणधर्म प्रस्थापना द्वारा इस रूप में अन्तर्सम्बन्धित हैं कि यदि एक मूल्य में बढ़ता है तो दूसरा भी उसी रूप में बढ़ता है। अन्य शब्दों में, समूहों में संघर्ष की मात्रा जितनी अधिक होगी, उनमें एकता की मात्रा उतनी ही अधिक होगी।

प्रस्थापनामूलक रूपरेखा बहुधा परिवर्तित होती रहती हैं, घटती-बढ़ती रहती हैं। प्रायः वे दो आयामों में प्राथमिक रूप से भिन्न होती हैं। ये दो आयाम हैं - (1) अमूर्तता का स्तर तथा (2) मार्ग जिसमें प्रस्थापनाएँ आकार के रूप में संगठित की जाती हैं। कुछ अधिक अमूर्त होती हैं और ऐसी अवधारणाओं को समाविष्ट करती हैं जो किसी विशिष्ट मामले को सूचित नहीं करती बल्कि एक प्रकार के सभी मामलों को सूचित करती हैं। उदाहरणस्वरूप, समूह की एकात्मता एवं संघर्ष अमूर्त हैं क्योंकि संघर्ष एवं एकात्मता का कोई विशिष्ट आनुभविक उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया जा सका है।

इन दोनों आयामों का प्रयोग करते हुए प्रस्थापनामूलक रूपरेखाओं के कई भिन्न प्रकारों की चर्चा की जा सकती है - (1) स्वयंसिद्ध आकार, (2) औपचारिक आकार, (3) विविध आनुभविक आकार।

प्रथम दो स्वयंसिद्ध आकार एवं औपचारिक आकार सुस्पष्टतः सैद्धान्तिक आकार हैं जबकि तीसरा प्रकार केवल अनुसंधान उपलब्धियाँ हैं जो सिद्धान्त का परीक्षण करती हैं।

1. स्वयं सिद्ध आकार - सैद्धान्तिक कथनों के एक स्वयंसिद्ध आकार संगठन के अन्तर्गत निम्नलिखित तत्त्व समाहित हैं-

1. इसके अन्तर्गत अवधारणाओं का समूह अन्तर्विष्ट होता है। कुछ अवधारणाएँ बहुत अधिक अमूर्त होती हैं, जबकि कुछ अन्य अधिक मूर्त होती हैं।
2. इसमें सदैव अस्तित्वात्मक कथनों का समूह पाया जाता है जो उन स्थितियों के प्रकारों एवं वर्गों का वर्णन करते हैं जिनमें अवधारणाएँ तथा प्रस्थापनाएँ, जो उन्हें सम्मिलित करती हैं, प्रयोग में लायी जाती है।
3. प्रस्थापनामूलक कथन संस्तरणात्मक क्रम में व्यक्त किये जाते हैं।

2. स्वरूपात्मक आकार - स्वरूपात्मक आकार का मुख्य उद्देश्य अत्यन्त अमूर्त प्रस्थापनाओं को विकसित करना है जिनका प्रयोग कतिपय आनुभविक घटनाओं की व्याख्या करने के लिए किया जाता है।

3. विविध आनुभविक आकार - समाजशास्त्र में सिद्धान्त के रूप में जो भी परिभाषित किया जाता है वह प्रकृतितः अधिक आनुभविक होता है। इन आनुभविक आकारों के सामान्यीकरणों को विशिष्ट आनुभविक सन्दर्भों में विशिष्ट घटनाओं से व्युत्पन्न किया जाता है। उदाहरणस्वरूप, यह प्रस्थापना कि जैसे-जैसे औद्योगीकरण बढ़ता जाता है, जनसंख्या में साक्षरता का स्तर बढ़ता जाता है। यह प्रस्थापना बहुत अमूर्त नहीं है, यह आनुभविक विषयवस्तु, औद्योगीकरण एवं साक्षरता के आधार पर सम्पूरित है।

4. प्रतिरूपण रूपरेखा - प्रतिरूपण अर्थात् मॉडल क्या है? इसके बारे में विद्वानों में कोई सुस्पष्ट मतैक्यता नहीं है। किन्तु 'समाजशास्त्रीय सिद्धान्त में क्रिया का एक विस्तार है जो अवधारणाओं और उनके सम्बन्ध को एक 'चित्र' के रूप में चित्रित करता है। यह चित्र सामाजिक प्रक्रिया के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों के अनुसार बनाया जाता है। इस चित्र का यह चित्रण ही प्रतिरूपण रूपरेखा है।

जोनाथन एस. टर्नर का मत है कि ''एक प्रतिरूपण (मॉडल) सामाजिक घटनाओं का एक आरेखी चित्रण है।''[10] किसी प्रतिरूपण (मॉडल) के आरेखी चित्रण के अन्तर्गत निम्नलिखित तत्त्व अन्तर्निहित होते हैं -

1. वे अवधारणाएँ जो समष्टि की निश्चित विशेषताओं को सूचित करती हैं।
2. इन अवधारणाओं को दृश्य जगत् में व्यवस्थित किया जाता है ताकि समष्टि में घटनाओं के क्रम को प्रतिबिम्बित कर सकें, और
3. प्रतीक जो अवधारणाओं के बीच में सम्बन्धों को प्रकट करते हैं जैसे- रेखा, तीर, वेक्टर या सदीश एवं अन्य ढंग जो परिवर्त्यों के बीच सम्बन्धों को प्रतिबिम्बित करते हैं।

समाजशास्त्र में अधिकांश रेखीय प्रतिरूपण समष्टि के गुणधर्मों या विशेषताओं के व्याख्यात्मक सम्बन्धों पर बल

देने के लिए संरचित किये जाते हैं अर्थात् परिवर्त्यों के एक समूह के मूल्यों में परिवर्तन दूसरे परिवर्त्यों के मूल्यों में परिवर्तनों से किस प्रकार से सम्बन्धित हैं, यह दर्शाने के लिए वे अभिकल्पित किये जाते हैं। प्रतिरूपणों को वहाँ विशेष रूप से संरचित किया जाता है जहाँ ऐसे अनेक परिवर्त्य हों जिनमें कारणात्मक अन्तर्सम्बन्धों पर कोई अनुसंधाता प्रकाश डालना चाहता है।

सामान्यतः समाजशास्त्री दो भिन्न प्रकार के प्रतिरूपणों (मॉडलों) की रचना करते हैं - (1) विश्लेषणात्मक प्रतिरूपण (Analytical Models) एवं (2) कारणात्मक प्रतिरूपण (Causal Models)।

1. विश्लेषणात्मक प्रतिरूप - ये अधिक अमूर्त होते हैं। वे समष्टि के अधिक जातिगत या प्रजातिगत गुणों पर प्रकाश डालते हैं और वे परिवर्त्यों के बीच सम्बन्धों की जटिल प्रवृत्तियों को चित्रित करते हैं। अक्सर इसका प्रयोग स्वयंसिद्ध अथवा औपचारिक सिद्धान्त की अवधारणाओं से सम्बन्धित करने के लिए किया जाता है।

2. कारणात्मक प्रतिरूपण - कारणात्मक प्रतिरूपण का प्रयोग विशिष्टतः आनुभविक सामान्यीकरण की व्याख्या को अधिकाधिक विस्तृत रूप में करने के लिए किया जाता है। तुलनात्मक रूप में स्वतन्त्र एवं आश्रित परिवर्त्यों के प्रभाव को देखने के लिए उनको अभिकल्पित किया जाता है।

हम विश्लेषणात्मक अथवा कारणात्मक प्रतिरूपणों की रचना आनुभविक सामान्यीकरण, मध्य सीमावर्ती सिद्धान्त अथवा स्वयंसिद्ध एवं औपचारिक सिद्धान्त में बिना अध्ययन विषय की समस्या की प्रकृति के अनुसार कर सकते हैं। बहुधा हम प्रतिरूपण का प्रयोग प्रस्थापनामूलक आकारों में करना अधिक पसन्द करते हैं। प्रतिरूपण का एक बड़ा लाभ है कि इसके आधार पर युक्तियुक्त ढंग से अनेक परिवर्त्यों के बीच के जटिल सम्बन्धों को उजागर किया जा सकता है। इस प्रकार प्रतिरूपण एक ऐसा उपकरण है जिसका प्रयोग अधिकांश सिद्धान्तकार वैकल्पिक सैद्धान्तिक रूपरेखा के रूप में करते हैं।

उपर्युक्त विवेचन को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करते हुए हम कह सकते हैं कि अवधारणाओं एवं सैद्धान्तिक कथनों को सैद्धान्तिक आकारों में रूपान्तरित करने के सन्दर्भ में संगठित करने के लिए समाजशास्त्रियों ने चार सामान्य एवं कुछ विशिष्ट उपागमों की चर्चा की है जो कि इस चित्र के माध्यम से दर्शाया गया है -

समाजशास्त्र में सिद्धान्त के तत्व

तथ्य → अवधारणाएँ → परिवर्त्य → कथन → आकार

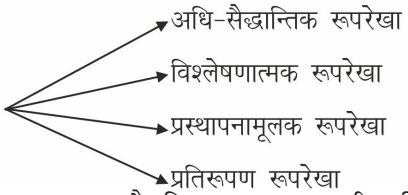

तथापि यह कथ्य है कि हम समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की संरचना तब तक नहीं समझ सकते हैं जब तक कि हम वैयक्तिक सिद्धान्तकारों द्वारा प्रयुक्त सैद्धान्तिक रूपरेखाओं का सम्यक् अववोध न प्राप्त कर लें। हमें तो इन सिद्धान्तकारों के सिद्धान्त के बारे में वही बात सूझती है जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास जी को सूझी - हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता। कहहिं सुनहिं बहुविधि सब संता।। निज निज मति मुनि हरिगुन गावहिं। निगम सेष सिव पार पावहिं।।

वस्तुतः ये विविध सैद्धान्तिक रूपरेखाएँ पारस्परिक रूप से अन्तर्सम्बन्धित है।

निष्कर्ष : सिद्धान्त एक मानसिक क्रिया है। यह विचारों को विकसित करने की प्रक्रिया है। इन विकसित विचारों के आधार पर ही हम इस बात की व्याख्या करने में सक्षम होते हैं कि कैसे और क्यों घटनाएँ घटित होती हैं। प्रत्येक सिद्धान्त की एक निश्चित संरचना होती है। इस संरचना के रचना स्तम्भ या तत्त्व निम्नलिखित हैं - तथ्य, अवधारणा, परिवर्त्य, कथन और आकार। सिद्धान्त निर्माण हेतु इन तत्त्वों को किसी न किसी रूप में संयुक्त होना अनिवार्य होता है। सिद्धान्त-निर्माण में इन रचना-स्तम्भों या तत्त्वों का प्रयोग उसी तरह किया जाता है जैसे इमारत बनाने में ईंटों का प्रयोग होता है। समाजशास्त्रीय सिद्धान्त-निर्माण के लिए सर्वप्रथम तथ्यों की खोज की जाती है, तत्पश्चात् धारणाओं की रचना की जाती है, फिर तथ्यों एवं अवधारणाओं के बीच सम्बन्धों को स्थापित करने के लिए परिवर्त्यों का प्रयोग किया जाता है। तदनन्तर तर्कवाक्यों को स्थापित कर कथनों का निर्माण किया जाता है और अन्ततः इन कथनों को व्यवस्थित रूप से, सैद्धान्तिक रूप में संगठित कर उसे आकार देना होता है। इस प्रकार तथ्यों के आधार पर प्राप्त सम्प्रत्ययीकरण की प्रक्रिया परिवर्त्य, कथन व आकार की प्रक्रिया सिद्धान्त की संरचना निर्धारित करती

है। तथ्यों पर आधारित सामान्य निष्कर्षों को तार्किक ढंग से व्यवस्थित किया जाता है। हाँ, किन्तु यह कार्य कठिन होता है। स्मरणीय है कि केवल तर्कवाक्य सिद्धान्त नहीं होते। सिद्धान्त तो अनेक सामान्यीकृत तर्क-वाक्यों का समुच्चय होता है। जब सामान्यीकरण परिवर्त्यों के सह-सम्बन्धों पर आश्रित होता है, तभी वह सिद्धान्त का रूप लेता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी भी सिद्धान्त के निर्माण में उपर्युक्त पाँच तत्वों का समावेश अपरिहार्य है। इस संदर्भ में समाजशास्त्रीय सिद्धान्त अन्तर्सम्बन्धित अवधारणाओं, परिभाषाओं एवं प्रस्थापनाओं का एक ऐसा पुंज है जो सामाजिक प्रघटनाओं का परिवर्त्यों के बीच सम्बन्धों का विशेष रूप से उल्लेख करते हुए एक व्यवस्थित विचार इस उद्देश्य से करता है कि सामाजिक प्रघटनाओं की सुस्पष्ट व्याख्या एवं भविष्यवाणी की जा सके तथा जिन्हें प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया जा सके।[11]

सन्दर्भ

1. Sorokin P.A., *'Sociological Theories of Today'*, Harper and Row, New York, 1966, p. 7.
2. Merton Robert K., *'Social Theory and Social Structure'*, The Free Press, New York, 1968, p. 140.
3. Homans George C., *'Social Behaviour : Its Elementary Forms'*, New York, Harcourt, Brace and World, New York, 1961, p. 10.
4. See, Stephen Mennell, *'Sociological Theory : Use and Unities'*, Thomas Nelson, London, 1974.
5. Durkheim Emile, *'The Rules of Sociological Method'*, The Free Press, New York, 1950, p. 13.
6. Cohen Percy S., *'Modern Sociological Theory'*, Heinemann, London, 1968, p. 1.
7. Merton Robert K., Quoted by Alex Inkeles (ed.), *'Readings in Modern Society'*, 1966, p. 31.
8. Merton R.K., *'Sociological Theory'*, American Journal of Sociology, 1945, 50, 469. Also William J. Goode and Paul K. Hatt, Methods in Social Research, Mc Graw Hill, New York, 1952, p. 8.
9. Merton R.K., op.cit. p. 143.
10. Turner Jonathan S., *'The Structure of Sociological Theroy'*, (5th edn.) Belmont : Wadswarth, 1991, p. 18.
11. सिंह श्यामधर एवं अशोक कुमार सिंह, 'आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त', सपना अशोक प्रकाशन, वाराणसी, 2014, पृ. 8.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

भाषा, राजनीति एवं पहचान : अप्रैल प्रस्ताव और उर्दू का बदलता परिदृश्य

❑ मो. काशिफ
❖ मो. अजहरुल हक मल्लिक

सूचक शब्द : हिंदी, नागरी, उर्दू, अप्रैल प्रस्ताव, पहचान की राजनीति।

जब अंग्रेज भारत आए, तो उन्होंने यहाँ की भाषाओं का अध्ययन आरम्भ किया, लेकिन उस समय स्थानीय भाषाएँ, विशेषकर हिंदुस्तानी, सीखने के लिए कोई औपचारिक सामग्री उपलब्ध नहीं थी। इस कमी को पूरा करने के लिए अंग्रेजों ने हिंदुस्तानी के लिए पाठ्य पुस्तकें, शब्दकोश और व्याकरण के ग्रंथ तैयार किए। उनका यह प्रयास केवल भाषा का दस्तावेजीकरण नहीं था, इसने भाषा को पहचान और सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में एक नई भूमिका दी, जो आगे चलकर स्थानीय समुदायों के बीच भाषाई पहचान को लेकर गहरे प्रभाव छोड़ने वाला था। 19वीं सदी के उत्तरार्ध तक मुस्लिम समुदाय की यह धारणा थी कि उर्दू मुस्लिम धार्मिक पहचान का प्रतीक नहीं है, बल्कि यह हिंदू और मुस्लिम समुदायों के सहयोग से विकसित हुई एक भाषा है। उनके दृष्टिकोण में, उर्दू एक परिष्कृत, शुद्ध, पठनीय और त्वरित लिखी जाने वाली भाषा थी, जिसे समाज के सभ्य और श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा पसंद किया जाता था। उनका यह भी तर्क था कि उर्दू में धोखाधड़ी करना कठिन है, और यह भाषा समृद्ध साहित्यिक परंपरा की वाहक है। हालांकि, 18 अप्रैल 1900 को जारी किए गए अप्रैल प्रस्ताव के बाद सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य में परिवर्तन आने लगा, जिसमें नागरी लिपि को महत्वपूर्ण सरकारी कार्यों में उर्दू लिपि (फारसी) के समान दर्जा दिया गया था। इसके बाद उर्दूभाषी मुस्लिम समुदाय के कुछ वर्गों ने उर्दू को धार्मिक पहचान से जोड़ते हुए इसका व्यापक प्रचार करना शुरू कर दिया। यह शोध पत्र इंगित करता है कि इस आंदोलन की जड़ में सरकारी नौकरियों की प्राप्ति के आर्थिक स्वार्थ थे, जिन्हें धार्मिक भाषा का आवरण दिया गया। यह शोध पत्र संयुक्त प्रांत में हिंदी-उर्दू विवाद के दौरान उर्दूभाषी मुस्लिम समुदाय के दृष्टिकोण में आए परिवर्तनों का गहन विश्लेषण करता है। इसके अतिरिक्त, यह इस बात का भी अध्ययन करता है कि अप्रैल प्रस्ताव ने मुस्लिम समुदाय की उर्दू भाषा संबंधी धारणाओं को कैसे प्रभावित किया और परिवर्ती परिदृश्य में धर्म एवं व्यावहारिकता के अंतर्संबंध को कैसे आकार दिया।

यूरोपीय शक्तियों का भारत में आगमन मुख्यतः व्यापार और धर्म से जुड़ा था।[1] व्यापारी लाभदायक व्यापार मार्ग स्थापित करना चाहते थे, और मिशनरी ईसाई धर्म का प्रसार करना चाहते थे। लेकिन भारत की जटिल भाषाई विविधता उनके लिए एक बड़ी चुनौती बन गई। भारत में कई भाषाएँ और बोलियाँ थीं, जिनकी अपनी लिपि, व्याकरण और साहित्यिक परंपराएँ थीं। यूरोपीय लोगों ने, जो अपेक्षाकृत सरल भाषा-परिवेश के आदी थे, इस भाषाई विविधता को एक चुनौती और अवसर दोनों के रूप में देखा। आरम्भ में, उन्होंने शासक वर्गों की भाषाओं 'फारसी और अरबी' सीखने पर ध्यान केंद्रित किया। फारसी सदियों से भारत में प्रशासन, कूटनीति और उच्च संस्कृति की भाषा रही थी तथा मुगल साम्राज्य में भी फारसी मुख्य भाषा थी, जिसका प्रयोग अदालतों, प्रशासन, और शिक्षित वर्ग में किया जाता था। अरबी का उपयोग इस्लामी धार्मिक ग्रंथों और कानून के लिए किया जाता था, लेकिन यह सामान्य सरकारी कार्यों में बहुत प्रचलित नहीं थी। हालांकि यूरोपीयों के लिए, इन भाषाओं का ज्ञान भारत के अभिजात वर्ग के साथ संबंध स्थापित करने में तो सहायक था परंतु, उन्हें शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि केवल फारसी और अरबी बोलना अधिकांश भारतीयों के साथ संवाद करने के लिए पर्याप्त नहीं थी। अधिकांश लोग स्थानीय भाषाएँ जैसे बंगाली, तमिल, तेलुगु, मराठी और विशेष रूप से हिंदुस्तानी बोलते थे। हिंदुस्तानी उत्तरी भारत में एक सामान्य भाषा बन गई, जिसे विभिन्न भाषाई पृष्ठभूमियों के लोग समझते थे। यूरोपीयों ने यह जान लिया कि हिंदुस्तानी सीखना भारतियों को जानने और उनके उपनिवेशी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक हैं। प्रभावी संचार की इस आवश्यकता ने हिंदुस्तानी सीखने को एक प्राथमिकता बना दिया। हालाँकि, इसकी अध्ययन सामग्री के अभाव के कारण उन्हें कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा।[2] संसाधनों के इस अभाव ने यूरोपीयों को अपनी सामग्री विकसित करने के लिए प्रेरित किया, जिसके परिणामस्वरूप आधारभूत हिंदुस्तानी व्याकरण की पुस्तकें और शब्दकोश लिखे गए। उन्होंने इन सामग्रियों को अपने अनुभवों पर आधारित किया

❑ शोध अध्येता इतिहास और संस्कृति विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया (नई दिल्ली)
❖ शोध अध्येता इतिहास और संस्कृति विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया (नई दिल्ली)

और यह स्पष्ट किया कि भाषा किसी की पहचान का महत्वपूर्ण हिस्सा हो सकती है। जैसे-जैसे यूरोपीय व्यापारी, मिशनरी, और उपनिवेशिक अधिकारी हिंदुस्तानी की उपयोगिता को समझने लगे, उन्होंने भारतीय स्थानीय भाषाओं को सीखने और लिखने के लिए व्यवस्थित प्रयास शुरू किए। इसने उपनिवेशीय काल के दौरान भविष्य की भाषा परियोजनाओं के लिए एक सशक्त आधार तैयार किया।

ईसाई मिशनरियों ने भारतीय भाषाओं की व्यवस्थित अध्ययन करने में अग्रणी भूमिका निभाई, क्योंकि उनका उद्देश्य स्थानीय लोगों को ईसाई धर्म में परिवर्तित करना था। अपने धार्मिक संदेश को प्रभावी रूप से फैलाने के लिए, उन्हें लोगों से उनकी मातृभाषाओं में संवाद स्थापित करना अनिवार्य था इसका अर्थ यह था कि उन्हें न केवल बोलने की कला में निपुण होना था, बल्कि स्थानीय भाषाओं के व्याकरण, वाक्य संरचना, और शब्दावली की गहरी समझ भी विकसित करनी थी। मिशनरियों द्वारा तैयार की गई व्याकरण की किताबें और शब्दकोश भारतीय भाषाओं को लिखने और मानकीकृत करने के प्रारंभिक संगठित प्रयासों में से थे। मिशनरियों का एक महत्वपूर्ण योगदान यह था कि उन्होंने कुछ भाषाओं और लिपियों को विशेष धार्मिक समुदायों से जोड़ा। उदाहरण के लिए, उन्होंने फारसी लिपि और उर्दू भाषा को मुसलमानों से जोड़ा और नागरी लिपि और हिंदी भाषा को हिंदुओं से। इस प्रक्रिया ने भाषा को केवल संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और धार्मिक पहचान का प्रतीक बना दिया। इसका एक उदाहरण सेरामपुर मिशनरियों द्वारा कलकत्ता बाइबल सोसाइटी को भेजी गई एक रिपोर्ट में देखा जा सकता है। इस रिपोर्ट में 'हिंदुस्तानी' को हिंदू धर्म से जोड़कर इसे संस्कृत से प्रेरित भाषा के रूप में प्रस्तुत किया गया और देवनागरी लिपि में छापा गया।[3] दूसरी ओर, 'उर्दू' को मुस्लिम शासकों द्वारा प्रयोग की जाने वाली एक भाषा बताया गया, जिसका आधार फारसी था और इसे फारसी लिपि में छापा गया। मिशनरियों द्वारा की गई ऐसी भाषाई पहचान ने भारत में भाषाओं को धार्मिक और सामुदायिक पहचान के प्रतीकों के रूप में देखने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया, जो आगे चलकर औपनिवेशिक और स्वतंत्रता-उपरांत भारत में भाषाई और सामुदायिक विभाजन की नींव रखने में सहायक बना।

18वीं शताब्दी के मध्य में प्लासी और बक्सर की महत्वपूर्ण लड़ाइयों के बाद, अंग्रेजों ने अपने नए अधिग्रहीत क्षेत्रों पर बेहतर नियंत्रण और प्रबंधन के लिए भारतीय भाषाओं का अध्ययन और दस्तावेजीकरण शुरू किया। जैसे-जैसे वे एक व्यापारिक कंपनी से राजनीतिक शक्ति में परिवर्तित हुए, उनके लिए स्थानीय लोगों के साथ संवाद स्थापित करना और उन्हें समझना आवश्यक हो गया। इस आवश्यकता ने अंग्रेजों को फारसी, संस्कृत, बांग्ला और हिंदुस्तानी सहित कई भारतीय भाषाओं का अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। हालाँकि, प्रशासन के लिए उपयुक्त भारतीय भाषा चुनने में अंग्रेजों को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा, जिससे अंततः फारसी और हिंदुस्तानी के बीच बहस छिड़ गई। प्रारंभ में फारसी को प्राथमिकता दी गई क्योंकि यह लंबे समय से उच्च वर्ग और प्रशासन की भाषा रही थी।[5] लेकिन धीरे-धीरे कई ब्रिटिश विद्वान और अधिकारी हिंदुस्तानी का समर्थन करने लगे, क्योंकि यह आम जनता में व्यापक रूप से बोली और समझी जाती थी। उन्होंने इसे इंग्लैंड की उस स्थिति से जोड़कर देखा जब अंग्रेजी ने लैटिन और फ्रेंच की जगह ली थी। इसके साथ ही, एक और बहस यह थी कि क्या फारसी प्रभावों वाली हिंदुस्तानी को औपचारिक व्याकरणिक नियमों के अंतर्गत ढाला जा सकता है।[6] यह बहस 21 दिसंबर 1798 को एक महत्वपूर्ण नीति परिवर्तन पर जाकर समाप्त हुई, जब गवर्नर-जनरल ने आदेश दिया कि 1801 से बंगाल प्रेसिडेंसी में न्यायिक और प्रशासनिक पदों के लिए सरकारी सेवकों को फारसी और हिंदुस्तानी दोनों भाषाओं में परीक्षा पास करनी होगी।[7] इस नीति ने प्रशासन में हिंदुस्तानी की स्थिति को सुदृढ़ किया। इस उद्देश्य के लिए 1799 में अंग्रेजों ने गिलक्रिस्ट सेमिनरी की स्थापना की, जहाँ हिंदुस्तानी और फारसी की शिक्षा दी जाती थी। यह संस्था बाद में फोर्ट विलियम कॉलेज के रूप में विकसित हुई।

विद्यमान संसाधनों की कमी के कारण ब्रिटिश विद्वानों को हिंदुस्तानी भाषा के लिए स्वयं ही व्याकरणिक ग्रंथ और शब्दकोष तैयार करने पड़े। यह प्रयास केवल दस्तावेजीकरण तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसने भाषा को पहचान का प्रतीक मानने की एक नई समझ को जन्म दिया। इन विद्वानों ने एक ऐसा विमर्श विकसित किया, जिसमें हिंदी और उर्दू को क्रमशः हिंदू और मुस्लिम समुदायों की अलग-अलग भाषाई पहचान के रूप में प्रस्तुत किया

गया। इस दृष्टिकोण के अनुसार, मुस्लिम आक्रमणों से पहले हिंदुओं द्वारा एक "शुद्ध" भाषा बोली जाती थी, जिसे मुस्लिम विजेताओं ने अपनाने के स्थान पर अपनी भाषा के साथ मिलाकर एक नई, मिश्रित भाषा बना लिया। इसके परिणामस्वरूप, अरबी और फारसी प्रभाव से मुक्त इस "शुद्ध" प्राचीन भाषा को हिंदुओं की भाषा के रूप में देखा जाने लगा, जबकि मिश्रित भाषा को मुसलमानों के साथ जोड़ा गया।

यह दृष्टिकोण केवल एक निष्क्रिय अवलोकन नहीं था, बल्कि एक सक्रिय रूप से निर्मित विमर्श था, जिसमें कई प्रभावशाली विद्वानों के कार्यों ने भूमिका निभाई। नाथनिएल ब्रेसी हैलहेड[8], जॉन बॉर्थविक गिलक्रिस्ट[9], जॉन शेक्सपियर[10], डब्ल्यू. येट्स[11], मोनियर विलियम्स[12], रेव. डब्ल्यू. एथेरिंगटन[13], और सैमुअल हेनरी केलॉग[14] जैसे विद्वानों ने इस भाषाई विभाजन को स्थापित करने में अहम योगदान दिया। अपने भाषाई अध्ययन, शैक्षिक प्रयासों और अनुवादों के माध्यम से ब्रिटिश विद्वानों ने हिंदी और उर्दू को न केवल अलग भाषाओं के रूप में बल्कि क्रमशः हिंदू और मुस्लिम समुदायों की सांस्कृतिक और धार्मिक पहचान के प्रतीक के रूप में स्थापित किया।[15]

ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन ने भारत में भाषाई और सांस्कृतिक पहचान को गहराई से प्रभावित किया, विशेषकर हिंदुओं और मुसलमानों की भाषाओं को अलग करने के लिए एक निर्मित विमर्श लागू करके। इस विमर्श के व्यावहारिक परिणाम शिक्षा अधिकारी जे. आर. बैलेंटाइन के कार्यों में देखे जा सकते हैं। 1846-47 में बंगाल प्रेसीडेंसी के उत्तर-पश्चिमी प्रांतों में सार्वजनिक निर्देश की रिपोर्ट में यह दर्ज है कि बैलेंटाइन ने हिंदी को 'शुद्ध' हिंदू भाषा के रूप में प्रस्तुत करने के लिए इसे फारसी और अरबी प्रभावों से मुक्त करने का प्रयास किया। उन्होंने संस्कृत कॉलेज के छात्रों की हिंदी शैली सुधारने के लिए अभ्यास और साप्ताहिक सत्र आयोजित किए। जब छात्रों ने इस प्रयास का प्रतिरोध किया और अपेक्षित सुधार नहीं दिखाया, तो बैलेंटाइन ने उनकी मातृभाषा के प्रति लगाव पर सवाल उठाया और पूछा कि वे अपनी ही भाषा की उपेक्षा क्यों कर रहे हैं। छात्रों की प्रतिक्रिया में कई अहम पहलू उजागर हुए। उन्होंने हिंदी के अंतर्गत विभिन्न बोलियों की विविधता का हवाला देते हुए मानकीकरण की व्यवहार्यता पर सवाल उठाया। एक छात्र ने तर्क दिया कि अगर शुद्ध हिंदी का अर्थ फारसी और अरबी शब्दों को हटाना है, तो इसके लिए पहले इन भाषाओं का अध्ययन करना होगा ताकि "शुद्ध" हिंदी शब्दों की पहचान की जा सके। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि भविष्य में हिंदी उर्दू के साथ मिल सकती है, और इस पर कोई विशेष अफसोस नहीं होना चाहिए।[16] इस संवाद से कई महत्वपूर्ण पहलू उभरते हैं। सबसे पहले, यह उत्तर भारत के भाषाई परिदृश्य की तरलता और विविधता को दर्शाता है, जहां विभिन्न बोलियाँ बिना किसी मानकीकरण के सह-अस्तित्व में थीं। दूसरा, यह ब्रिटिश प्रशासन द्वारा थोपे गए भाषाई शुद्धता के नैरेटिव का प्रतिरोध दिखाता है, चाहे वह प्रत्यक्ष हो या परोक्ष। छात्रों ने भाषा की शुद्धता और धार्मिक पहचान से उसे जोड़ने की औपनिवेशिक धारणा को अस्वीकार किया और भाषा को एक गतिशील इकाई के रूप में देखा, जो रोजमर्रा के संवाद से आकार लेती थी।

हालाँकि, इस निर्मित भाषाई पहचान के विमर्श का दीर्घकालिक और व्यापक प्रभाव पड़ा। भाषाई शुद्धता और भाषा को धार्मिक पहचान से जोड़ने के औपनिवेशिक प्रयासों ने भारत में भाषा के सांप्रदायीकरण को बढ़ावा दिया। यह विचार कि हिंदी हिंदुओं की और उर्दू मुसलमानों की भाषा है, जनमानस में गहराई तक समा गया, जिससे शैक्षिक नीतियों, साहित्यिक परंपराओं और राजनीतिक विमर्श पर स्थायी प्रभाव पड़ा। इस भाषाई विभाजन ने उस सांप्रदायिक तनाव की नींव रखी जिसने भारत के विभाजन में अहम भूमिका निभाई और आज भी भाषा और पहचान को लेकर चल रही बहसों को प्रभावित करता है।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरी भारत में ब्रिटिश सरकार की भाषा नीति में कई अंतर्विरोध थे, जिनका इस क्षेत्र के भाषाई और सामुदायिक परिदृश्य पर गहरा असर हुआ। एक ओर, ब्रिटिश प्रशासन ने प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में हिंदी और उर्दू दोनों का समर्थन किया वहीं दूसरी ओर, प्रशासनिक और सरकारी कार्यों में उर्दू को विशेष प्राथमिकता दी। इस दोहरी नीति ने हिंदी और उर्दू भाषी समुदायों के बीच न केवल तनाव को जन्म दिया, बल्कि हिंदू-मुस्लिम समाज के बीच भी सामुदायिक विभाजन की नीव रखी।

औपनिवेशिक भारत में शिक्षा का सीधा संबंध सामाजिक गतिशीलता से था, जहाँ सरकारी नौकरियों की प्राप्ति

शिक्षित भारतीयों के लिए प्रमुख आकांक्षा थी। स्थानीय भाषाओं में शिक्षा विशेष रूप से महत्वपूर्ण थी, क्योंकि केवल एक छोटा सा हिस्सा ही अंग्रेजी में दक्ष था। ऐसे में शिक्षा और प्रशासन में ब्रिटिश सरकार की भाषा नीति अत्यंत प्रभावशाली सिद्ध हुई, क्योंकि इसने विभिन्न समुदायों की भाषाई आकांक्षाओं और अवसरों को आकार दिया। स्कूलों में, ब्रिटिश प्रशासन ने हिंदी और उर्दू दोनों का समर्थन किया, लेकिन आधिकारिक रूप से उर्दू को प्राथमिकता दी। उत्तर-पश्चिमी प्रांतों और अवध में यह उर्दू-प्राथमिकता विशेष रूप से स्पष्ट थी। भले ही स्कूलों में हिंदी और उर्दू दोनों पढ़ाई जाती थीं, लेकिन सरकारी कार्यालयों, न्यायालयों, और प्रशासनिक कार्यों में फारसी लिपि में उर्दू का प्रयोग अनिवार्य था। इस नीति ने उर्दू में शिक्षित लोगों को सरकारी नौकरियों में लाभ पहुंचाया, जिसे प्रांतीय सरकार द्वारा 1877 में औपचारिक रूप से मान्यता देकर संस्थागत रूप दिया गया।[18]

इस नीति ने भाषाई आधार पर एक गहरी खाई उत्पन्न कर दी। सरकारी नौकरियों के लिए ब्रिटिश प्रशासन ने उर्दू या फारसी में दक्षता अनिवार्य कर दी, भले ही पदों में स्थानीय भाषाओं का उपयोग होता हो। उदाहरण के लिए, जहाँ अंग्रेजी का प्रयोग होता था, वहाँ भी उम्मीदवारों को एक द्वितीयक भाषा के रूप में उर्दू या फारसी में परीक्षा पास करनी पड़ती थी। स्थानीय भाषाओं वाले पदों में हिंदी और उर्दू दोनों विकल्प थे, लेकिन उच्च वेतन वाले पदों में उर्दू को स्पष्ट प्राथमिकता दी जाती थी। इस नीति के कारण हिंदी के व्यावहारिक मूल्य में कमी आई, भले ही इसे शिक्षा प्रणाली में प्रोत्साहित किया गया था।

ब्रिटिश नीति का सबसे बड़ा अंतर्विरोध न्यायपालिका और सार्वजनिक कार्यालयों से हिंदी और नागरी लिपि का बहिष्कार था। भले ही सरकार ने हिंदी शिक्षा को प्रोत्साहन दिया और शिक्षकों के लिए हिंदी और उर्दू दोनों में प्रवीणता अनिवार्य की, लेकिन प्रशासनिक संदर्भों में हिंदी को समान दर्जा देने से मना कर दिया। सरकारी संवाद में उर्दू का प्रभुत्व बनाए रखने से हिंदी समर्थकों में असंतोष उत्पन्न हुआ। इस पक्षपात ने उत्तर-पश्चिमी प्रांतों और अवध में हिंदी-नागरी आंदोलन को जन्म दिया, जहाँ हिंदी और नागरी लिपि को मान्यता देने की माँगें तीव्र होती गईं। 1883 में अलीगढ़ के हिंदी-अंग्रेजी साप्ताहिक 'भारत बंधु' में प्रकाशित एक लेख में यह निराशा व्यक्त की गई कि ब्रिटिश प्रशासन ने गाँव-गाँव में हिंदी स्कूल स्थापित किए, जिससे हिंदी जनसामान्य की भाषा बन गई, फिर भी न्यायालयों और सरकारी कार्यालयों में इसका उपयोग प्रतिबंधित कर दिया गया।[19] यह द्वैत ब्रिटिश नीति का अंतर्विरोध दर्शाता है, जबकि शिक्षा में हिंदी को बढ़ावा दिया गया, इसे सत्ता और प्रभाव के पदों से व्यवस्थित रूप से बाहर रखा गया, और उर्दू का प्रभुत्व बना रहा।

ब्रिटिश भाषा नीति के इस विरोधाभास ने सामाजिक प्रभाव भी डाले, विशेष रूप से उत्तर-पश्चिमी प्रांतों और अवध में। एक ओर उर्दू को प्रशासनिक समर्थन और दूसरी ओर शिक्षा में हिंदी को प्रोत्साहन देने से भाषा सामुदायिक पहचान का प्रतीक बन गई। उर्दू, मुसलमानों से जुड़ी और आधिकारिक स्थिति से सशक्त, सत्ता और प्रशासन की भाषा बनी रही, जबकि हिंदी, हिंदुओं से जुड़ी और शिक्षा प्रणाली के माध्यम से प्रचारित, उन लोगों के लिए एक आधार बनी जो सरकारी अवसरों से वंचित अनुभव कर रहे थे। इस स्थिति ने भाषाई रूप से परिभाषित समुदायों को जन्म दिया, जो अपनी अलग पहचान को लेकर अधिक सजग हो गए थे। इस प्रकार, ब्रिटिश प्रशासन द्वारा प्रशासन में उर्दू को और शिक्षा में हिंदी को समर्थन देने से में हिंदू-मुस्लिम ध्रुवीकरण को बल मिला। हालाँकि उनकी नीति का उद्देश्य एक सामान्य भाषा बनाना था, लेकिन परिणामस्वरूप भाषाई विभाजन गहरे हुए, जिससे सामुदायिक विभाजन भी बढ़े। ये विभाजन समाज में इतने गहरे स्थापित हो गए कि उत्तर भारत के सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य में हिंदी-उर्दू संघर्ष की नींव पड़ गई।

1860 के दशक के आरंभिक वर्षों में, उत्तर भारत में विचार-विमर्श क्लबों, संस्थानों और संगठनों की तेजी से स्थापना हुई, जो आधुनिक विचारों और मुद्दों पर चर्चा का अवसर प्रदान करते थे। इनमें यूरोपीय और भारतीय, दोनों प्रकार के सदस्य सम्मिलित होते थे, जो समाज और प्रशासन में सुधार के विचारों का आदान-प्रदान करते थे। इन संस्थाओं ने प्रशासनिक और सांस्कृतिक प्रश्नों पर सक्रियता से बहस को प्रेरित किया। इस प्रकार का विचार-विमर्श एक ऐसे वातावरण में उभरा जहां भाषाई पहचान का प्रश्न भी जोर पकड़ने लगा। अंग्रेजी प्रशासन के अंतर्गत चल रहे सुधारों और नए विचारों के कारण यह सवाल उठना स्वाभाविक था कि उत्तर भारत की प्राथमिक भाषा कौन सी होनी चाहिए और उसे किस

लिपि में लिखा जाए।[20]

इस संदर्भ में, भाषा और लिपि का प्रश्न, विशेषकर उर्दू बनाम नागरी (हिंदी) का मुद्दा, विशेष रूप से महत्वपूर्ण बन गया। मौलाना अल्ताफ हुसैन 'हाली' ने बनारस में पहली उर्दू विरोधी संस्था के गठन का उल्लेख किया।[21] यह संस्था इस विचार के विरुद्ध थी कि उर्दू उत्तर भारतीय समाज की एकमात्र प्राथमिक भाषा होनी चाहिए।[22] इसके पश्चात इलाहाबाद जैसे अन्य शहरों में भी ऐसे संस्थान उभरने लगे जो उर्दू विरोधी भावनाओं को बढ़ावा देते थे। यह घटना महत्वपूर्ण थी क्योंकि यह स्पष्ट रूप से दिखा रही थी कि उत्तर भारत के समाज में एक भाषाई ध्रुवीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी थी।

उसी दौरान, ब्रिटिश प्रशासन ने भी भाषा नीति पर ध्यान देना शुरू किया। ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन ने एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि उत्तर भारत में एक 'वर्नाक्यूलर विश्वविद्यालय' स्थापित किया जाए जो उर्दू को प्रचलित भाषा के रूप में स्वीकार करे, और अलीगढ़ साइंटिफिक सोसाइटी द्वारा अनूदित पुस्तकों को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करे।[23] हालांकि यह प्रस्ताव व्यावहारिक रूप से सफल नहीं हो पाया[24], फिर भी इससे यह संकेत मिला कि प्रशासनिक और शैक्षिक स्तर पर उर्दू की एक विशेष स्थिति को सुनिश्चित करने के प्रयास किए जा रहे थे। इसी पृष्ठभूमि में, ब्रिटिश प्रशासन ने विभिन्न संस्थानों और प्रमुख व्यक्तियों से इस विषय पर राय लेना शुरू किया कि उत्तर भारत में किस भाषा और लिपि का प्रयोग किया जाए। फ्रांसिस रॉबिन्सन ने अपने शोध में लिखा कि ''इस समय उत्तर प्रदेश के बहुत से लोग अपनी स्थानीय भाषाओं के प्रश्न पर गंभीरता से विचार करने के लिए बाध्य हो गए थे। यह पहली बार था कि एक बड़ा समुदाय, विशेषकर हिंदी भाषी हिंदू, अपनी भाषा और लिपि को सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक मानकर देखने लगा। कुछ हिंदुओं ने यह मानना शुरू कर दिया कि हिंदी उनकी असली स्थानीय भाषा है[25] और उर्दू, जो एक समय तक साझा संस्कृति का प्रतीक मानी जाती थी, अब उनकी सांस्कृतिक पहचान को प्रतिरोधी प्रतीत होती थी।''

इलाहाबाद संस्थान ने इस बदलती मानसिकता का प्रतिबिंबन करते हुए फारसी लिपि के स्थान पर नागरी लिपि को अपनाने का निर्णय लिया। बनारस के महाराजा ने भी अपने प्रशासनिक कार्यों में नागरी लिपि के प्रयोग की अनुमति मांगी, जो इस परिवर्तन का एक और प्रमाण था। इन घटनाओं के माध्यम से नागरी लिपि के पक्ष में बढ़ती जनभावना और उर्दू के विरुद्ध एक संगठित अभियान का स्वरूप उभरकर सामने आया।

1860 के दशक के उत्तरार्ध में, उर्दू विरोधी भावनाएँ तेजी से बढ़ने लगीं। उर्दू को मुस्लिम पहचान के प्रतीक के रूप में देखा जाने लगा, जबकि हिंदी को हिंदू पहचान का प्रतिनिधित्व करते हुए प्रस्तुत किया जाने लगा। इस विचारधारा के प्रसार में पत्र-पत्रिकाओं और समाचारपत्रों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। उर्दू और हिंदी के पक्ष-विपक्ष में लेखों का बड़े पैमाने पर प्रसार होने लगा, और कई पत्रिकाओं ने इस मुद्दे पर बढ़-चढ़कर लिखा। अलीगढ़ से साइंटिफिक सोसाइटी अखबार, लखनऊ से तहजीब, अवध अखबार, नूर-उल-अबसार और बनारस गजट जैसे मंचों ने इस विवाद को चर्चा का प्रमुख विषय बनाया। इसके अतिरिक्त, सरकारी याचिकाएँ, ज्ञापन और बाबू शिव प्रसाद जैसे व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत ज्ञापन इस विवाद के गहराने के प्रमाण थे।

1868 के अंत में सर सैयद अहमद खान और इलाहाबाद संस्थान के सचिव मुंशी सरोदा प्रसाद सांडेल के बीच पत्राचार के माध्यम से भी इस मुद्दे पर गहन चर्चा हुई। मुंशी सांडेल ने न्यायालय की भाषा के रूप में हिंदी को अपनाने के विषय में सर सैयद से उनकी राय पूछी।[26] सर सैयद ने उत्तर में उर्दू का समर्थन करते हुए लिखा कि भाषा का चयन उसकी लिपि से तय नहीं होना चाहिए-चाहे वह देवनागरी हो, फारसी हो या रोमन। उन्होंने व्यावहारिक दृष्टिकोण से यह तर्क दिया कि न्यायिक प्रणाली की आवश्यकताएँ स्वतः यह निर्धारित कर लेंगी कि किस लिपि का उपयोग किया जाना चाहिए।[27] इसके बावजूद, मुंशी सांडेल ने देवनागरी को अधिक सरल और जनसामान्य के लिए सुलभ मानते हुए इसे समर्थन देने का सुझाव दिया।[28] सर सैयद ने इसके उत्तर में यह कहा कि देवनागरी लिपि सरकारी कार्यों के लिए अव्यवहारिक होगी।[29] अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गजट में 5 मार्च 1869 को प्रकाशित एक लेख ने उर्दू के विरोध को एक राजनीतिक मुद्दा मानने से इनकार किया और इस धारणा का खंडन किया कि उर्दू और हिंदी की धार्मिक पहचानें अलग-अलग हैं। इस लेख ने यह संदेश दिया कि भाषा को सांप्रदायिक पहचान का प्रतीक नहीं बनाया जाना चाहिए, बल्कि इसे व्यावहारिक आधार पर

देखा जाना चाहिए।[30] सर सैयद अहमद खान ने 27 जनवरी 1883 को अपने एक भाषण में हिंदू-मुस्लिम सांस्कृतिक आदान-प्रदान को रेखांकित करते हुए कहा कि दोनों समुदायों के बीच इतने निकट संबंध रहे हैं कि उर्दू एक साझा भाषा के रूप में उभर आई है। उनके अनुसार, उर्दू न तो मुस्लिमों की विशेष भाषा थी, न ही हिंदुओं की बल्कि यह एक नई संस्कृति का प्रतीक थी, जो दोनों समुदायों के सहयोग से बनी थी।[31] हंटर आयोग के समक्ष भी उर्दू के पक्ष में मुसलमानों ने अपना पक्ष रखा। अलीगढ़ और बुलंदशहर जिलों के "मोहम्मडन" समुदाय और रुड़की व मेरठ के "मोहम्मडन एसोसिएशन" ने यह तर्क दिया कि उर्दू एक सांझी भाषा है, जो हिंदू-मुस्लिम सहयोग का प्रतीक है और किसी विशेष धर्म से जुड़ी नहीं है।[32] मुसलमानों ने इस बात पर जोर दिया कि उर्दू एक विदेशी भाषा नहीं है, बल्कि यह उत्तर भारत की संस्कृति और इतिहास का हिस्सा है।[33]

इस घटनाक्रम के माध्यम से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में, मुसलमान यह मानते थे कि उर्दू उत्तर भारत की साझा संस्कृति का प्रतीक है, जो हिंदू-मुस्लिम सहयोग और सांस्कृतिक सामंजस्य से विकसित हुई है। उन्होंने इसे दोनों समुदायों की सामूहिक धरोहर के रूप में देखा, जो किसी विशेष धार्मिक या सांप्रदायिक पहचान से नहीं, बल्कि एक सांझी विरासत से बंधी थी। उदाहरण के लिए, जब अलीगढ़ और बुलंदशहर के "मोहम्मडन" समुदाय ने हंटर आयोग के समक्ष प्रस्तुत किए गए अपने ज्ञापन में इस बात पर जोर दिया कि उर्दू कोई विदेशी भाषा नहीं है, बल्कि यह स्थानीय सांस्कृतिक और भाषाई मिश्रण का परिणाम है, उन्होंने स्पष्ट किया कि उर्दू हिंदू और मुस्लिम दोनों समुदायों की साझा धरोहर है। हालांकि, मैकडॉनेल प्रस्ताव के बाद इस दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण बदलाव आने लगे। एक ओर, जहां हिंदू समुदाय के कुछ हिस्सों में हिंदी के प्रति बढ़ते समर्थन ने इसे एक स्वदेशी पहचान के रूप में मान्यता दी, वहीं दूसरी ओर, उर्दू-भाषी मुसलमानों में उर्दू को अपनी विशेष पहचान के रूप में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति ने बल पकड़ा। यह नई स्थिति भाषा को सांप्रदायिक ध्रुवीकरण का एक प्रतीक बना रही थी। इस परिवर्तित परिप्रेक्ष्य के अंतर्गत, उर्दू-भाषी मुसलमानों ने यह दावा करना शुरू कर दिया कि उर्दू विशेष रूप से उनकी भाषा है। यह बदलाव मुख्यतः 1870 के दशक में बढ़ते हिंदी-उर्दू विवाद और मैकडॉनेल प्रस्ताव के परिणामस्वरूप उत्पन्न सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों के कारण हुआ, जिसमें भाषा और लिपि को धार्मिक और सांप्रदायिक आधार पर परिभाषित किया जाने लगा।

18 अप्रैल 1900 को हिंदी समर्थकों की मांग पूरी हुई जब मैकडॉनेल ने एक प्रस्ताव पारित किया, जिसने सरकारी कार्यालयों और न्यायालयों में फारसी लिपि के साथ-साथ नागरी लिपि के वैकल्पिक उपयोग की अनुमति दी।[34] इस निर्णय के विरोध में 'उर्दू-भाषी मुसलमानों' ने आंदोलन शुरू कर दिया। मोहसिन-उल-मुल्क ने उर्दू रक्षा संघ की स्थापना की और उत्तर भारत के प्रमुख मुस्लिम नेताओं को आमंत्रित करते हुए एक बैठक बुलाई, जिसमें इस प्रस्ताव पर चर्चा की गई और सरकार को ज्ञापन प्रस्तुत किया गया।[35] यह आंदोलन इलाहाबाद और लखनऊ में विशेष रूप से प्रखर हो गया, जहां कई प्रमुख मुसलमानों के साथ कुछ उर्दू समर्थक हिंदू समुदायों (जैसे कायस्थ और कश्मीरी ब्राह्मण) ने भी इस आंदोलन में भाग लिया। विरोध जिला स्तर पर फैलते हुए लखनऊ में एक प्रमुख सम्मेलन के रूप में संपन्न हुआ, जिसमें 300-400 प्रतिनिधियों ने भाग लिया।[36] इस सम्मेलन ने अलीगढ़ केंद्रित आंदोलन को एक व्यापक मुस्लिम समुदाय के समर्थन में बदल दिया। मैकडॉनेल ने इस आंदोलन का सामना कठोर कदमों के साथ किया, जिससे आंदोलन का दायरा सीमित हुआ और कई प्रभावशाली लोगों ने समर्थन देने में संकोच किया।[37] फिर भी, मोहसिन-उल-मुल्क ने चेतावनियों की अनदेखी करते हुए आंदोलन का नेतृत्व जारी रखा। मैकडॉनेल ने स्थिति को नियंत्रित करने के लिए अलीगढ़ जाकर मोहसिन-उल-मुल्क को कॉलेज सचिवता और सरकारी अनुदान में से एक चुनने को कहा, जिसके बाद मोहसिन-उल-मुल्क ने कॉलेज का चुनाव किया।[38] 1901 तक, मैकडॉनेल ने प्रमुख नेताओं को आंदोलन से अलग करने में सफलता पाई, जिससे केवल 'प्रगतिशील झुकाव वाले युवा' ही आंदोलन में सक्रिय रहे।[39]

इस प्रस्ताव के संदर्भ में, उर्दू-भाषी मुसलमानों के दृष्टिकोण को दो प्रमुख समूहों में बांटा जा सकता है। पहला समूह उर्दू का समर्थन उन्हीं तर्कों के आधार पर करता था जो 19वीं शताब्दी के अंत में लोकप्रिय थे। वे उर्दू को एक समृद्ध, परिष्कृत, और पठनीय भाषा मानते थे जो हिंदू और मुसलमान दोनों के लिए उपयुक्त है।

वहीं, दूसरा समूह धार्मिक आधार पर प्रस्ताव का विरोध करता था, उर्दू को मुस्लिम धार्मिक पहचान का प्रतीक मानते हुए इसे बनाए रखने पर जोर देता था।

समकालीन प्रकाशनों में इस प्रवृत्ति के कई प्रमाण मिलते हैं। अल-बशीर ने 30 अप्रैल 1900 को लिखा कि उर्दू के अधिकतर समर्थक मुसलमान हैं और उर्दू उनकी भाषा है। उसने चिंता जताई कि प्रस्ताव के कारण हिंदी न जानने वाले मुसलमान सरकारी सेवाओं से वंचित हो सकते हैं।[40] 7 मई के अंक में अल-बशीर ने यह भी कहा कि हिंदी आंदोलन उन लोगों द्वारा चलाया गया है जो मुसलमानों से घृणा करते हैं।[41] द लिबरल ने 1 मई 1900 के अंक में यह भी तर्क दिया कि उर्दू भारत में मुस्लिम शासन की एक अमिट धरोहर है। लेख में यह चेतावनी भी दी गई कि प्रस्ताव के कारण अगले दस वर्षों में, उर्दू, जो देश में मुगल शासन का अंतिम चिह्न है, लगभग समाप्त हो जाएगी।[42] जाम-ए-जमशेद ने 13 मई 1900 के अंक में उर्दू के भविष्य पर गहरी चिंता व्यक्त की। अखबार का तर्क था कि नागरी लिपि के बढ़ते उपयोग से उर्दू का पतन होगा, जिससे मुस्लिम समुदाय की सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक पहचान पर भी गहरा प्रभाव पड़ेगा। अखबार ने चेतावनी दी कि उर्दू का क्षरण मुस्लिम समुदाय की प्रगति, स्वतंत्रता और धार्मिक स्वायत्तता में गिरावट लाएगा। इस चेतावनी के शब्द थे **'जैसे-जैसे** संयुक्त प्रांतों में नागरी लिपि का उपयोग बढ़ेगा, उर्दू का पतन होगा, और इसके पतन के साथ ही मुसलमानों की उन्नति, स्वतंत्रता और धर्म धीरे-धीरे समाप्त हो जाएंगे।'[43]

जाम-ए-जमशेद ने 27 मई 1900 के अंक में भी इन चिंताओं पर विस्तार से चर्चा की और कहा कि अप्रैल प्रस्ताव उर्दू के अस्तित्व के लिए गंभीर खतरा प्रस्तुत करता है। इसने उर्दू को मुस्लिम समुदाय की अभिव्यक्ति का प्रतीक मानते हुए स्पष्ट किया कि भाषा उनके लिए मात्र संचार का माध्यम नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पहचान का केंद्र थी।[44] रियाज-उल-अख़बार, गोरखपुर ने 22 मई 1900 को मुबारक शाह के बयान पर टिप्पणी की, जिसमें कहा गया कि हिंदू ईर्ष्या के कारण न्यायालयों में हिंदी लिपि लागू कर मुसलमानों को हानि पहुंचाना चाहते हैं।[45] मुफीद-ए-आम, आगरा ने 29 मई 1900 को एक बैठक में इस प्रस्ताव को मुसलमानों के धर्म और 'कौम' के लिए हानिकारक बताया।[46] 9 जुलाई 1900 को अल-बशीर ने इस प्रस्ताव को स्पष्ट रूप से राजनीतिक बताया और कहा कि इस तरह के प्रयास हिंदू समुदाय के पूर्वाग्रहों को दर्शाते हैं।[47] 18 जून 1900 को इसी अखबार ने मुसलमानों से 18 अगस्त को लखनऊ में प्रस्ताव विरोधी सभा में भाग लेने का आग्रह किया और इसे हज यात्रा से अधिक महत्वपूर्ण बताया।[48]

यह सवाल उठता है कि जब नागरी लिपि का उपयोग अनिवार्य नहीं था और न्यायालयों में फारसी लिपि का भी उपयोग संभव था, तो उर्दू-भाषी मुसलमानों ने इस प्रस्ताव का विरोध क्यों किया? इसका उत्तर दो प्रमुख चिंताओं में है। पहली चिंता थी कि इस प्रस्ताव से मुसलमानों का सरकारी सेवाओं में प्रतिनिधित्व कम हो जाएगा, क्योंकि अधिकांश मुसलमान हिंदी के ज्ञान से वंचित थे।[49] दूसरी चिंता यह थी कि प्रस्ताव के प्रभाव में उर्दू न्यायालयों और सरकारी कार्यालयों से धीरे-धीरे बाहर हो जाएगी, जिससे उर्दू-भाषी मुसलमानों के लिए सरकारी नौकरी के अवसर सीमित हो जाएंगे।[50]

उपसंहार

हिंदी-उर्दू विवाद और अप्रैल प्रस्ताव की पृष्ठभूमि में उर्दू की पहचान के विकास को समझते हुए, इस शोध पत्र ने भाषा, पहचान, और आर्थिक आकांक्षाओं के जटिल परिदृश्य को उजागर किया है। प्रारंभ में, उर्दूभाषी मुसलमानों का यह विश्वास था कि उर्दू एक साझा सांस्कृतिक धरोहर है, लेकिन जब नागरी लिपि को प्रशासनिक क्षेत्रों में समान दर्जा मिलने लगा, तो यह विश्वास धीरे-धीरे बदलने लगा। कुछ उर्दूभाषी मुसलमानों ने उर्दू को धार्मिक पहचान का प्रतीक बनाने की कोशिश की, भले ही इसके पीछे आर्थिक हित निहित थे। यह स्थिति भाषा और पहचान के बीच गहरे संबंधों को दर्शाती है। असहमति की अभिव्यक्ति के लिए धार्मिक शब्दावली का रणनीतिक उपयोग, अप्रैल प्रस्ताव की जटिलताओं में और अधिक आयाम जोड़ता है।

नागरी लिपि की स्वीकृति और प्रस्ताव के विरूद्ध विरोध के प्रमुख मुद्दों का विश्लेषण करते हुए, यह शोध पत्र दोहरी चिंताओं को उजागर करता है। एक ओर, सरकारी सेवाओं में मुस्लिम प्रतिनिधित्व का संकट था, और दूसरी ओर, आधिकारिक क्षेत्रों से उर्दू के हटाए जाने का डर था, जिसने असहमति को धार्मिक और सामुदायिक दृष्टिकोणों से प्रेरित किया। हिंदीभाषी समुदाय की संख्या के आधार पर प्रस्ताव की स्वीकृति ने उर्दूभाषी मुसलमानों

में भय को और बढ़ा दिया। यह शोध पत्र तर्क करता है कि उर्दूभाषी मुसलमानों का यह असंतोष, संभावित आर्थिक प्रभावों के प्रति एक पूर्व-संरक्षात्मक प्रतिक्रिया था, जिसमें उर्दू को भविष्य में भाषा नीतियों में कमजोर स्थिति में देखा गया।

अंततः, अप्रैल प्रस्ताव उर्दू की पहचान को पुनर्परिभाषित करने और उर्दूभाषी मुसलमानों की रणनीतिक प्रतिक्रियाओं को आकार देने वाला एक महत्वपूर्ण मोड़ बन जाता है। यह शोध पत्र भाषा, धर्म, और आर्थिक आकांक्षाओं के बीच सूक्ष्म अंतर्संबंधों पर प्रकाश डालता है, जिससे भाषा नीतियों के बहुआयामी स्वरूप और उनके सांस्कृतिक प्रभावों की गहरी समझ मिलती है।

सन्दर्भ

1. Tej K. Bhatia, *'A history of the Hindi grammatical tradition: Hindi–Hindustani grammar, grammarians, history and problems'*, E. J. Brill, Leiden, 1987, p. 12; also see, Hartmut Scharfe, A History of Indian Literature: Grammatical Literature, Vol 5, Fasc 2, Otto Harrassowitz, Wiesbaden, 1977, p. 198.
2. John B. Gilchrist, *'A Dictionary, English and Hindoostanee In Which The Words Are Marked With Their Distinguishing Initials, As Hinduwee, Arabic And Persian. Whence The Hindoostanee, Or What Is Vulgarly, But Improperly, Called The Moor Language, Is Evidently Formed'*, Volume 1, Stuart and Cooper, Calcutta, 1787, p.vii
3. Marshman, John Clark, *'The Life and Times of Carey, Marshman and Ward: Embracing the History of Serampore Mission'*. Vol. I, London, Longman, Brown, Green, Longmans and Roberts, 1859, pp. 419-420.
4. मार्शमैन बताते हैं कि ''फारसी को भारत में मुस्लिम शासकों ने सार्वजनिक प्रशासन की भाषा के रूप में लागू किया था। ब्रिटिश अधिकारी जब उनके स्थान पर आए, तो उन्होंने बदलाव को सीमित रखते हुए फारसी को प्रशासनिक भाषा के रूप में बरकरार रखा।'', See, John Clark Marshman, Ibid, p. 147
5. जॉन फर्ग्यूसन बताते हैं कि 'हिंदोस्तान इस देश की सर्वमान्य भाषा है, जिसे हर वर्ग, पेशे और धर्म के लोग आसानी से समझ सकते हैं, चाहे वे शिक्षित हों या अशिक्षित, दरबारी हों या किसान, हिंदू हों या मुसलमान।' देखें:, John Fergusson, A dictionary of the Hindostan language in two parts i. English and Hindostan, ii. Hindostan and English. The latter containing a great variety of phrases, to point out the idiom, and facilitate the acquisition of the language. To which is prefixed a grammar of the Hindostan language, T. Cadell, London, 1773, p. ii.
6. George Hadley, *'Grammatical remarks on the Practical and Vulgar Dialect of the Indostan Language, commonly called the Moors'*. With a vocabulary, English and Moors. The whole calculated for the Common Practice in Bengal, T. Cadell, London, 1772, pp.xi-xii)
7. John Borthwick Gilchrist, *'The Strangers' East Indian Guide to the Hindoostanee, or Grand Popular Language of India'*, (improperly called Moors), Black Pary and Kingsbury, London, 1803 [Second Edition, 1808], pp. xxviii-xxix.
8. Halhed, Nathaniel Brassey, *'A Grammar of the Bengali Language'*, 1778, Hoogly, Bengal, pp.ix-xii
9. John Gilchrist, *'The Oriental Linguist: An Easy And Familiar Introduction To The Popular Language Of Hindoostan'*, ... Comprising The Rudiments Of That Tongue With An Extensive Vocabulary English And Hindoostanee And Hindoostanee And English, Ferris and Greenway, Calcutta,1798, p. iii-iv.
10. John Shakespear, *'A Grammar of the Hindustani Language'*, Cox and Baylis, 75, Great Queen Street, Lincoln's-Inn-Fields, London, 1813, pp. 1-2.
11. W. Yates, *'Introduction to the Hindoostanee Language: In Three Parts'*, The Baptist Mission Press, Calcutta, 1827, pp. iii-iv.
12. Monier Williams, *'An Easy Introduction to the Study of Hindustani, in which the English alphabet is adapted to the expression of Hindustani words with a full syntax, Longman, Brown, Green'*, Longmans and Roberts, London, 1858, pp. iii-iv
13. Rev. W. Ethrington, *'The Students' Grammar of the Hindi Language'*, E. J. Lazarus & Co., Banaras, 1870, pp.iii-v
14. Kellogg, Rev S. H., *'A grammar of the Hindi language'*: in which are treated the standard Hindi, Braj, and the eastern Hindi of the Ramayan of Tulsi Das, also the colloquial dialects of Marwar, Kumaon, Avadh, Baghelkhand, Bhojpur, etc.; with copious philological notes, The AM. pres. Mission Press, Allahbad, 1876, pp.iii-iv
15. इस विषय पर विस्तृत चर्चा के लिए देखें: Mohd Kashif, Jawaid Alam, Colonial Discourse and Linguistic Identity Formation: Hindi and Urdu in British India, Third Concept : An International Journal of Ideas, vol. 38, New Delhi, 2024.
16. General Report on Public Instruction in the North Western Provinces of the Bengal Presidency for 1846-47, Wm. H. Haycock, Secundra Orphan Press; Agra, 1848, P. 32.
17. In 1837 Urdu became the official langiage of Nort-Western Provinces. See, Home Department; Judicial branch, Consultation No. 16 of 4th December, 1837
18. General Department, Notification No. 1494 A., dated Naini Tai, the 16th July 1877. See, Selections from the Records of the Government of India, Home Department, No. CCV, Home Department Serial No. 2, Correspondence on the Subject of Correspondence on the subject of the education of the Muhammadan community in British India and their employment in the public service generally, Government Printing India,

Calcutta, 1886, pp. 290-91

19. Bharat Bandhu, 14 September 1883, UPNNR, 1883
20. Khutbat-e-Garcin de Tassy, *'Anjuman Taraqqi-i Urdu'*, Aurangabad, 1935, pp.675-76
21. Farman Fatehpuri, *'Pakistan Movement and Hindi-Urdu Conflict'*, Sang-e-Meel, Lahore, 1987, p.104
22. Christopher R. King, *'One Language, Two Scripts: The Hindi Movement Nineteenth Century North India'*, Oxford University Press, New Dehli, 1994, P.128
23. ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन, उत्तर-पश्चिमी प्रांतों द्वारा भारत के गवर्नर-जनरल को परिषद में प्रस्तुत स्मरण-पत्र, अलीगढ़, दिनांक 1 अगस्त 1867। देखें: J. P. Naik (ed.), Selections from the Educational Records of the Government of India, Vol. II, Delhi, 1963, pp. 21-8.
24. ई. सी. बेली, सचिव, भारत सरकार, द्वारा ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन, उत्तर-पश्चिमी प्रांतों के अध्यक्ष और सदस्यों को पत्र, संख्या 4217, शिमला, दिनांक 5 सितंबर 1867। देखें: J. P. Naik (ed.), Selections from the Educational Records of the Government of India, Vol. II, Delhi, 1963, pp. 29-32.
25. Francis Robinson, *'Separatism among Indian Muslims: The Politics of the United Provinces Muslims'*, 1860-1923, Cambridge University Press, 1974, pp.73-4
26. Saroda Prosad Sandel's letter to Syed Ahmed Khan regarding whether Hindi should be the court language of the North-Western Provinces. See, The Aligarh Institute Gazette, 27 November, 1868
27. Syed Ahmed khan's reply to Saroda Prosad Sandel. See, The Aligarh Institute Gazette, 27 November, 1868
28. A follow-up letter from Saroda Prosad Sandel to Syed Ahmed Khan. See, The Aligarh Institute Gazette, 27 November, 1868
29. Syed Ahmed Khan's final response to Saroda Prosad Sandel. See, The Aligarh Institute Gazette, 27 November, 1868
30. The Aligarh Institute Gazette, 5 March 1869
31. सर सैयद ने उर्दू की उत्पत्ति पर टिप्पणी करते हुए कहा, 'हम हिंदू और मुसलमान, एक-दूसरे के साथ इतने घुल-मिल गए कि हमने एक नई भाषा, उर्दू, को जन्म दिया, जो न तो हमारी भाषा थी और न उनकी।', देखें: Shan Mohammad (Edited), Writings and Speeches of Sir Syed Ahmad Khan, Nachiketa Publications Limited, Bombay, 1972, p. 160
32. अलीगढ़ और बुलंदशहर जिलों के 'मोहम्मडन समुदाय' के प्रतिनिधियों तथा रुड़की और मेरठ की मोहम्मडन एसोशिएशन का उच्च शिक्षा, धार्मिक तटस्थता, और उर्दू भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने के पक्ष में एक अभिभाषण। देखें: Report by the North-Western Provinces and Oudh Provincial Committee with Evidence taken before the Bombay Provincial Committee and Memorials Addressed to the Education Commission, Superintendent Government Printing, Calcutta, 1884, p.421
33. Ibid.
34. Resolution No. 585/III-3-43 C-68, General Administration Department, Government Gazette, North-Western Provinces and Oudh, Allahabad, Part VI, Official Papers, 21 April 1900, p.2
35. S. M. Ikram, *'Modern Muslim India and the Birth of Pakistan (1858-1951)'*, Sh. M. Ashraf, Lahore, 1965, p.75
36. Oudh Akhbar, August 18, 1900, UPNNR, 1900.
37. Gorekar, *'Glimpses of Urdu Literature'*, Jaico Publishing House, Bombay, 1961, p. xxxiii.
38. Kripa Shankar Singh, *'Hindu Urdu Hindustani Hindu Muslim Sampradayikta Aur Angrezi Raj 1800-1947'*, Parasangik Prakashan, Delhi, 1992, p. 109. Also see, S. M. Ikram, Modern Muslim India and the Birth of Pakistan (1858-1951), Sh. M. Ashraf, Lahore, 1965, p.77
39. सरकार के दृष्टिकोण से, आंदोलनकारी दो श्रेणियों में विभाजित थे: 'संपत्ति और प्रभाव वाले लोग' और 'प्रगतिशील प्रवृत्ति वाले युवा सज्जन।' पहले वर्ग के लोग अधिकारियों को अप्रसन्न करने का साहस नहीं रखते थे। देखें:, Proceedings of the Indian History Congress, 1979, Vol. 40 (1979), p. 852
40. Al Bashir , April 30, 1900, UPNNR, 1900.
41. Al Bashir, May 7, 1900, UPNNR, 1900.
42. The Liberal, May 1, 1900, UPNNR, 1900.
43. The Jam-i-Jamshed, May 13, 1900, UPNNR, 1900.
44. The Jam-i-Jamshed, May 27, 1900, UPNNR, 1900.
45. The Riaz-ul-Akhbar , May 22, 1900, UPNNR, 1900.
46. The Mufid-i-Am, May 29, 1900, UPNNR, 1900.
47. Al Bashir, July 9, 1900, UPNNR, 1900.
48. Al Bashir , June 18, 1900, UPNNR, 1900.
49. Mufid-i-Am, May 3, 1900, UPNNR, 1900. ; The Naiyar-i-Azam, 05-22-1900, UPNNR, 1900.
50. Azad, May 8, 1900, UPNNR, 1900. ; Al Bashir, July 16, 1900 UPNNR, 1900. and Oudh Akhbar, June 5, UPNNR, 1900.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

लैंगिक न्याय, प्रतिनिधित्व और भारतीय चुनावी व्यवस्था : लोकसभा चुनाव 2024 के विशेष संदर्भ में

❑ राकेश कुमार
❖ मंगल सिंह

सूचक शब्द : नारीवाद, लैंगिक न्याय, चुनाव, राजनीतिक भागीदारी, मताधिकार, सशक्तिकरण।

ग्लोबल जेंडर गैप रिपोर्ट-2024 में भारत 146 देशों की वैश्विक रैंकिंग में दो पायदान नीचे गिरकर 129वें स्थान पर आ गया है, जबकि 2023 में 127वें स्थान पर था। दक्षिण एशिया में भारत बांग्लादेश, नेपाल, श्रीलंका और भूटान के बाद पांचवें स्थान पर है। पाकिस्तान इस क्षेत्र में सबसे निचले स्थान पर है। रैंकिंग 127वें से 129वें स्थान पर आने का मुख्य कारण 'शैक्षिक प्राप्ति' और 'राजनीतिक सशक्तीकरण' मापदंडों में गिरावट है, हालांकि 'आर्थिक भागीदारी' और 'अवसर' में साधारण सा सुधार देखा गया है।[1] भारत ने लैंगिक समानता के लिए एक बड़ा कदम उठाया, जब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने संसद के विशेष सत्र के मध्य एक विधेयक नारी शक्ति वंदन अधिनियम- 2023 की घोषणा की, जो लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के लिए एक-तिहाई सीटें आरक्षित करेगा। विधेयक में प्रावधान किया गया है कि महिलाओं के लिए आरक्षण लोकसभा निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन के बाद ही लागू किया जाएगा, जो अगली जनगणना के पूरा होने पर आधारित होगा। इस विधेयक को प्रस्तुत करते हुए प्रधानमंत्री मोदी ने अपने भाषण में कहा, "नारीशक्ति वंदन अधिनियम हमारे लोकतंत्र को और सुदृढ़ करेगा, मैं देश की सभी माताओं, बहनों और बेटियों को आश्वस्त करना चाहता हूं कि हम इस विधेयक को कानून बनाने के लिए प्रतिबद्ध हैं।"[2] इस अधिनियम के पास होने के पश्चात् 2024 में पहले लोकसभा चुनाव सम्पन्न हुए परन्तु महिला प्रतिनिधित्व पर भारत के राजनीतिक दल अधिक उत्सुक दिखाई नहीं दिए। 543 लोकसभा क्षेत्रों में कुल 74 महिलाएँ चुनी गईं, जबकि 2019 में 78 महिलाएँ चुनी गई थीं। हालाँकि राजनीतिक दलों के घोषणापत्र तथा चुनावी अभियानों में महिलाएं प्रमुख रहीं। प्रस्तुत शोधपत्र में लोकसभा चुनाव-2024 में महिलाओं के चुनावी प्रदर्शन तथा विभिन्न दलों की महिला प्राथमिकता का अध्ययन किया गया है।

लैंगिक न्याय का अर्थ है, राजनीति सहित जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं के लिए समान अवसर और प्रतिनिधित्व। भारत में, लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से संवैधानिक गारंटी और विधायी उपायों के बावजूद, संसद में महिलाओं का प्रतिनिधित्व अनुपातिक रूप से कम है।[3] 2024 के लोकसभा चुनावों में कुल 65.79 प्रतिशत मतदान हुआ, जो 2019 के मतदान से कम है। 2024 के आम चुनाव के लिए निर्वाचन क्षेत्रवार ईवीएम मतदान डेटा से पता चलता है कि 204 संसदीय क्षेत्रों में महिला मतदाताओं ने अधिक मतदान किया। चुनाव आयोग के आंकड़ों के अनुसार, 36 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में से 19 में महिलाओं ने मतदान के मामले में पुरुषों को पछाड़ दिया, लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर 65.8 प्रतिशत मतदान प्रतिशत के साथ पुरुष 65.7 प्रतिशत के साथ महिलाओं से थोड़ा आगे थे। उल्लेखनीय बात यह है कि 'अन्य लिंग' श्रेणी के मतदाताओं ने 2019 में 14.64 प्रतिशत से 2024 में 27.08 प्रतिशत तक मतदान में उल्लेखनीय वृद्धि दिखाई दी।[4] समावेशी शासन प्राप्त करने और विविध सामाजिक चिंताओं को दूर करने के लिए राजनीति में महिलाओं का प्रतिनिधित्व महत्वपूर्ण है। विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति के बावजूद, संसद के निचले सदन लोकसभा सहित भारत के विधायी निकायों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व कम है। 2024 के लोकसभा चुनाव महिलाओं की भागीदारी के रुझानों का आकलन करने और वर्तमान नीतियों और पहलों की प्रभावशीलता का विश्लेषण करने का अवसर प्रदान करते हैं।

पिछले वर्ष जब संसद में महिला आरक्षण विधेयक पारित हुआ था, तो सभी राजनीतिक दल अपना समर्थन व्यक्त करने और ऐतिहासिक विकास का श्रेय लेने के लिए आगे आए। 2024 के चुनाव में महिलाएं एक महत्वपूर्ण जनसांख्यिकीय कारक बनी रहीं। दलों के घोषणापत्रों और शीर्ष नेताओं के अभियान भाषणों से लेकर उनकी मतदान प्राथमिकताओं को समझने तक, भारतीय महिलाओं की इस लंबे चुनावी मौसम में काफी विशिष्ट

❑ शोध अध्येता राजनीति विज्ञान विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय लखनऊ (उ.प्र.)
❖ शोध अध्येता लोक प्रशासन विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय लखनऊ (उ.प्र.)

उपस्थिति रहीं। लेकिन महिलाएं इस कल्पना में मतदाताओं और लाभार्थियों तक ही सीमित रहीं, भागीदारी एवं प्रतिनिधित्व के सवाल पर उन्हें बहुत पीछे रहना पड़ा। एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (एडीआर) द्वारा संकलित आंकड़ों के अनुसार, इस चुनाव में सभी उम्मीदवारों में से केवल 9.6 प्रतिशत महिलाएं थीं। यह 2019 से बहुत थोड़ा ही अधिक है, जब उम्मीदवारों में महिलाओं की हिस्सेदारी लगभग 9 प्रतिशत थी।[5]

मैरी वोल्स्टोनक्राफ्ट, जिन्हें पहली नारीवादी दार्शनिक माना जाता है, 1792 में उनकी पुस्तक 'ए विडीकेशन ऑफ़ द राइट्स ऑफ़ विमेंन' सामने आई जिसने नारीवादी लेखन के क्षेत्र में एक नए युग का प्रारंभ किया। उन्होंने महिलाओं के लिए समान शिक्षा की बात की तथा मतदान के अधिकार के मुद्दे को जोर से उठाया। 1869 में जे.एस. मिल ने अपना लोकप्रिय निबंध, 'द सब्जेकशन ऑफ़ वुमेन लिखा', जिसमें उन्होंने भी महिला मताधिकार का समर्थन किया तथा महिला समानता की बात की।

मरियन रीड ने अपनी पुस्तक 'ए प्ली फॉर वुमेन' में ब्रिटेन में महिला मताधिकार की मांग को और अधिक तेज़ किया। नारीवाद की पहली लहर मुख्य रूप से उदारवादी नारीवादियों की लहर थी जिसमें लोकतान्त्रिक अथवा कानूनों के माध्यम से लैंगिक समानता की ओर बढ़ा गया। उदारवादी नारीवाद पुरुष व महिला के बीच जैविक अंतर को भेदभाव का कारण नहीं मानता है। उदारवादी नारीवाद के अनुसार महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार और समान शैक्षिक व कार्य अवसर मिलने चाहिए। उदारवादी नारीवाद महिलाओं की सामाजिक स्थिति को बदलने के लिए लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं में विश्वास रखते हैं। उदारवादी नारीवादियों के द्वारा मतदान के अधिकार को केन्द्रीय विषय बनाया गया तथा राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर न्यूजीलैंड (1893), ऑस्ट्रेलिया (1902), फ़िनलैंड (1906), तथा नार्वे (1907) महिलाओं को मतदान अधिकार देने वाले कुछ प्रारंभिक राष्ट्रों में से हैं। 1919 में सयुंक्त राज्य अमेरिका द्वारा महिलाओं को मतदान का अधिकार दिया गया जोकि नारीवाद के पहली लहर व उदारवादी नारीवादियों की सबसे बड़ी सफलता के रूप में देखा गया है। दुनिया के अधिकांश भागों में संसदों में पुरुषों का वर्चस्व बना हुआ है, लेकिन भारत अधिकांश से बहुत पीछे है। अंतर-संसदीय संघ (आईपीयू) के डेटा से पता चलता है कि 2023 में दुनिया भर के 52 देशों में संसदीय चुनाव हुए जिसमें औसत रूप से 27.6 प्रतिशत महिलाएँ चुनी गईं। वास्तव में, वैश्विक स्तर पर, वर्तमान में सभी संसदों में महिलाओं की भागेदारी 26.9 प्रतिशत है। आईपीयू के अनुसार, 18वीं लोकसभा के चुनाव से पहले, भारत इस पैमाने पर 185 देशों में 143वें स्थान पर था। महिलाओं के प्रतिनिधित्व में इस गिरावट के साथ, रैंकिंग में पाँच या छह पायदान और गिरने की संभावना है।[6]

साहित्य समीक्षा

प्रनॉय रॉय, सोपारीवाला[7] ने अपनी पुस्तक 'द वर्डिक्ट: डिकोडिंग इंडियाज इलेक्शन' में मतदाताओं को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है - 1952-1977 के पहले मतदाता ऑपटिमिस्ट वोटर के रूप में, 1977- 2002 के दूसरे मतदाता एंग्री वोटर के रूप में, और तीसरे 2002-2019 फिफ्टी- फिफ्टी चरण के रूप में मतदाता की पहचान की है। वे पाते हैं कि महिलाएं एक स्वतंत्र वोट बैंक हैं, तथा वह पुरुषों की तुलना में भाजपा के कम समर्थक हैं, शहरी महिलाओं की तुलना में ग्रामीण महिलाओं के द्वारा अपने वोट का अधिक प्रयोग किया गया है। वे यह भी पाते हैं कि कई भारतीय महिलाओं के पास वोट नहीं है। 21 मिलियन महिलाओं को वोट देने के अधिकार से वंचित कर दिया जाएगा क्योंकि उनका नाम मतदाता सूची में नहीं है।

लथा ए. पंडित[8] अपने कार्य 'पोलिटिकल लीडरशिप ऑफ वीमेन : कॉनस्ट्रेन्ट्स एंड चैलेंजेज' में कहा कि महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी का कोई भी सार्थक मूल्यांकन इस प्रश्न से प्रारंभ होना चाहिए कि क्या पर्याप्त प्रतिनिधित्व की कमी उनकी निम्न स्थिति के लिए उत्तरदायी है या क्या यह खराब स्थिति है जो राजनीतिक शक्ति के कुछ स्तरों से महिलाओं के बहिष्कार के लिए उत्तरदायी है। उन्होंने माना कि यह दोनों एक दूसरे को पुनः सशक्त बनाते हैं तथा केवल महिलाओं को सशक्त बनाना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि अशक्तीकरण के कारणों को दूर करना भी आवश्यक है। महिलाओं को सत्ता में लाना न केवल समानता का मामला है, बल्कि एक अन्यायपूर्ण और गैर-प्रतिनिधित्व प्रणाली को सही करने का भी मामला है। यह याद रखना आवश्यक है कि किसी राष्ट्र के विकास के लिए मानव संसाधनों का अधिकतम उपयोग आवश्यक है। एक अधिक विकसित समाज

अधिक भागीदार होता है। राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी न केवल लिंग विशिष्ट चिंताओं को दूर करने के लिए है, बल्कि अधिक समावेशी राजनीति की दिशा में एक बड़ा कदम है।

प्रवीण राय[9] अपने अध्ययन 'इलेक्टोरल पार्टिसिपेशन ऑफ वीमेन इन इंडिया' में माना की भारत में औपचारिक राजनीति में महिलाओं की भागीदारी से पता चलता है कि उनके मतदान प्रतिशत और चुनाव प्रचार में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। लेकिन राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर विधायी निकायों और राजनीतिक दलों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व अभी भी कम है। भागीदारी को प्रभावित करने वाले कारकों के विश्लेषण से पता चलता है कि चुनाव में महिलाओं के लिए मतदाता के रूप में और प्रचारक के रूप में उनकी भागीदारी में भिन्नता है। विधायी निकायों में आरक्षण के रूप में सकारात्मक कार्यवाही, राजनीतिक दलों और सरकार में निर्णय लेने वाले पदों पर महिलाओं को अधिक स्थान देना देश की राजनीति में एक गंभीर त्रुटि को दूर करने में बहुत सहायक सिद्ध हो सकता है।

एम. रमा चैरी[10] अपने शोध पत्र 'वीमेन एंड पार्टिसिपेशन इन इंडिया : ए हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव' में समाज में हाशिए पर रहने वाले समूहों की सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं जैसे महिलाओं पर वैश्वीकरण जैसे समसामयिक विकास के प्रभावों की सैद्धांतिक और वैचारिक समझ पर चर्चा की है। उन्होंने माना की 60 से अधिक वर्षों के लोकतांत्रिक शासन के बाद भी यह दुःखद है कि सरकार और नीति निर्माता समाज में परिवर्तन लाने के लिए कानूनी अधिकारों को वास्तविक अधिकारों में परिवर्तित नहीं करके आत्मसंतुष्ट हो गए हैं। इतिहास से पता चलता है कि महिलाओं को राजनीतिक क्षेत्र में और यहाँ तक कि राजनीतिक दलों में भी निर्णय लेने वाली भागीदार के रूप में कोई स्थान नहीं मिला है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. लोकसभा चुनाव 2024 में महिला प्रतिनिधित्व का अध्ययन करना।
2. राजनीतिक दलों के चुनावी घोषणापत्र में महिलाओं से सम्बंधित मुद्दों का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भारत में लोकसभा चुनाव 2024 में महिला प्रतिनिधित्व का अध्ययन करना है। अध्ययन के स्त्रोत के लिए द्वितीयक अनुसंधान आँकड़ों का प्रयोग किया गया है, जिसमें मुख्य रूप से भारत निर्वाचन आयोग द्वारा प्रस्तुत चुनावी आँकड़ों का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त शोध पुस्तकें, पत्रिकाएं, लेख तथा वेबसाइट इत्यादि का प्रयोग किया गया है। इस शोध लेख में विश्लेषणात्मक अध्ययन पद्धति को अपनाया गया है।

लोकसभा चुनाव में महिला मतदाता

लोकसभा चुनावों में महिलाएं समय के साथ अधिक संख्या में मत का प्रयोग करती रही हैं। 1962 के लोकसभा चुनाव में सिर्फ 46.6 प्रतिशत महिलाओं ने ही अपने मताधिकार का प्रयोग किया था जबकि पुरूषों में यह संख्या लगभग 63 प्रतिशत थी। परन्तु समय के साथ महिलाएं चुनावी राजनीति में अधिक सक्रिय हुई हैं तथा 2019 के लोकसभा चुनाव में महिलाओं का मतदान प्रतिशत पुरूषों से 0.17 प्रतिशत अधिक था। महिलाएं भारतीय जनसंख्या का लगभग 50 प्रतिशत हिस्सा हैं परन्तु इसके बाद भी वह कभी एक वोट बैंक के रूप में स्थापित नही हो पाईं और ना ही कभी राजनैतिक दलों के द्वारा महिलाओं को एक इकाई के रूप में समझ कर उन्हें लामबंद करने का प्रयास किया गया। इसका एक मुख्य कारण भारतीय समाज की कठोर पितृसत्तात्मक व्यवस्था है, जिसके कारण यह धारणा प्रमुखता से बनी रही कि महिलाओं के वोट का निर्णय उनका स्वयं का ना होकर उनके पिता अथवा घर के पुरूष मुखिया का होता है।[11] परन्तु पिछले एक दशक से यह स्थिति बदल रही है, महिलाएं जहाँ एक ओर स्वतंत्र रूप से अपने वोट का निर्णय कर रही हैं, वहीं दूसरी ओर अधिक संख्या में अपने मताधिकार का प्रयोग भी कर रही हैं। 2024 के लोकसभा चुनाव में भी महिलाओं ने लगभग पुरूषों के बराबर मतदान किया है। ये तथ्य भारत में महिला मतदान जागरूकता तथा महिला सशक्तिकरण को प्रदर्शित करते हैं। 2024 लोकसभा चुनाव में पुरूषों ने 65.80 प्रतिशत तथा महिलाओं ने 65.78 प्रतिशत मतदान किया।[12]

तालिका क्रमांक - 1
लोकसभा चुनावों में महिला व पुरूष मतदान में अंतर

लोकसभा चुनाव वर्ष	कुल मतदान (%)	पुरुष मतदान (%)	महिला मतदान (%)	मतदान में अंतर (%)
1952	61.2			
1957	62.2			
1962	55.4	63.3	46.6	16.7
1967	61.3	66.7	55.5	11.2
1971	55.3	60.9	49.1	11.8
1977	60.5	66.0	54.9	11.1
1980	56.9	62.2	51.2	11.0
1984	64.0	68.4	59.2	9.2
1989	62.0	66.1	57.3	8.8
1991	57.0	61.6	51.4	10.2
1996	58.0	62.1	53.4	8.7
1998	62.0	66.0	58.0	8.0
1999	60.0	64.0	55.7	8.3
2004	58.8	61.7	53.3	8.4
2009	58.2	60.2	55.8	4.4
2014	66.4	67.1	65.6	1.5
2019	67.4	67.01	67.18	0.17
2024	65.79	65.80	65.78	0.02

स्त्रोत- भारत चुनाव आयोग https://www.eci.gov.in/statistical-reports

लोकसभा में महिला प्रतिनिधित्व

1952 के लोकसभा चुनाव में केवल लगभग 4 प्रतिशत महिलाएं चुन कर आई थीं। परन्तु प्रत्येक चुनाव के उपरांत जो वृद्धि महिलाओं की मतदाता के रूप में देखने को मिलती है उसकी तुलना में संसद में महिला प्रतिनिधित्व में वृद्धि नही हुई है। 21 सितंबर, 2023 को नए संसद भवन में महिला आरक्षण विधेयक या नारी शक्ति वंदन अधिनियम पारित होने के बाद यह पहला लोकसभा चुनाव था। हालाँकि, अधिनियम लागू होने के पश्चात पहली जनगणना के आंकड़ों के आधार पर परिसीमन की प्रक्रिया शुरू होने के बाद यह विधेयक लागू होगा। परन्तु यह आशा की गई कि महिलाओं के प्रतिनिधित्व में सुधार होगा परन्तु प्रतिनिधित्व में कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई, 543 लोकसभा क्षेत्रों में कुल 74 महिलाएँ चुनी गईं, जबकि 2019 में 78 महिलाएँ चुनी गई थीं। यह कुल संख्या का सिर्फ 13.6 प्रतिशत है जोकि हमारी राजनीतिक व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगता है।[13]

तालिका क्रमांक - 2
लोकसभा चुनावों में महिला प्रत्याशियों का प्रदर्शन

वर्ष	सीटों की संख्या	सफल महिलाएं	प्रतिशत
1952	489	22	4.4
1957	494	27	5.4
1962	494	34	6.7
1967	523	31	5.9
1971	521	22	4.2
1977	544	19	3.4
1980	544	28	5.1
1984	544	44	8.1
1989	529	28	5.3
1991	509	36	7.0
1996	541	40	7.4
1998	545	44	8.0
1999	543	48	8.8
2004	543	45	8.1
2009	543	59	10.9

2014	543	61	11.2
2019	543	78	14.6
2024	543	74	13.6

स्त्रोत- भारत चुनाव आयोग https://www.eci.gov.in/statistical-reports

कुछ प्रमुख देशों में महिला प्रतिनिधित्व

विश्व के विभिन्न देशों में महिलाएं अपनी उपस्थिति निर्णय- निर्माण में प्रमुखता से प्रदर्शित कर रही हैं, जिसमें प्रमुख रूप से स्केन्डिनेवियन देशो में महिलाएं काफी सक्रिय हैं। नारीवादी आन्दोलन के यूरोप में केंद्र होने के कारण भी यूरोपीय देशों में स्थिति अन्य देशों के सापेक्ष अच्छी रही है। जहाँ महिलाएं राजनीति में अधिक सक्रिय रही हैं, परन्तु यूरोप भी महिला प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर कोई आदर्श रूप प्रस्तुत नही कर पाया है। इन देशों में भी महिला प्रतिनिधित्व उनकी जनसंख्या के अनुपात में कम है।[14]

तालिका क्रमांक - 3

प्रमुख राष्ट्र विधायिकाओं में महिलाओं का प्रतिशत

देश	महिला प्रतिनिधि प्रतिशत (%)
स्वीडन	46
नार्वे	46
आस्ट्रेलिया	38
दक्षिण अफ्रीका	45
फ्रांस	38
जर्मनी	35
इंग्लैंड	35
कनाडा	31
अमेरिका	29
ब्राजील	18
जापान	10

स्त्रोत- इंटर- पार्लियामेंट्री यूनियन, 2023

पुरूषों से अधिक महिला मतदान वाले राज्य

2024 लोकसभा चुनाव में देशभर के कुल राज्यों एवं केन्द्रीय शासित प्रदेशों में से 19 में महिलाओं का मतदान प्रतिशत पुरूषों के मतदान प्रतिशत से अधिक था। मुख्य राज्यों में सिर्फ हरियाणा, मध्य प्रदेश, राज्यस्थान, कर्नाटक, और गुजरात ऐसे राज्य हैं जहाँ पुरुष मतदाताओं का मत प्रतिशत महिला मतदाताओं से अधिक था। महिला मतदाताओं के अधिक मतदान के लिए प्रवास एक महत्त्वपूर्ण कारक है। बिहार और झारखंड जैसे शहरी क्षेत्रों में पुरूषों के अधिक प्रवास वाले राज्यों में, महिला मतदाताओं की संख्या पुरुषों से अधिक है। अधिकांश प्रवासी मतदान करने के लिए संघर्ष करते हैं क्योंकि उन्हें मतदान करने के लिए अपने गृह राज्यों की यात्रा करने के लिए काम और दैनिक मजदूरी छोड़नी पड़ती है। महिला मतदाताओं की संख्या में वृद्धि के लिए चुनाव आयोग द्वारा उन्हें संगठित करने के लिए किए गए निरंतर काम के अतिरिक्त कुछ अन्य कारक भी उत्तरदायी हैं। महिला साक्षरता के स्तर में समग्र वृद्धि - महिला साक्षरता दर 1991 में 39.4 प्रतिशत से बढ़कर 2011 की अंतिम जनगणना में 64.63 प्रतिशत हो गई और बीच के दशकों में मीडिया की व्यापक पहुंच ने मतदान को महिलाओं के लिए आत्म-सशक्तिकरण का एक स्वैच्छिक कार्य बना दिया है।[15]

तालिका क्रमांक - 4

पुरूषों से अधिक महिला मतदान वाले राज्य एवं केन्द्रीय शासित प्रदेश

राज्य	पुरूष (%)	महिला (%)
आंध्रप्रदेश	75.62	79.67
असम	81.42	82.72
बिहार	53.28	59.39
दादर-नागर हवेली और दमन -दीव	69.99	72.73
गोवा	75.42	76.66
हिमाचल प्रदेश	69.19	72.64
झारखण्ड	63.79	68.67
केरल	70.63	71.88
लद्दाख	71.44	72.20
लक्षदीप	82.88	85.47
मणिपुर	77.63	78.72
मेघालय	74.35	78.80
नागालैंड	57.55	57.96
ओड़िशा	73.37	75.55
पुदुचेरी	78.64	78.13
तमिलनाडु	69.65	69.26
उत्तर प्रदेश	56.65	57.24
उत्तराखंड	55.96	58.58
पश्चिम बंगाल	78.43	80.18

स्त्रोत- भारत चुनाव आयोग https://www.eci.gov.in/statistical-reports

लोकसभा चुनाव में महिला उम्मीदवार

लोकसभा चुनावों में महिला उम्मीदवारों की संख्या में

प्रतिवर्ष वृद्धि हुई है परन्तु इसकी गति काफी कम है। 2009 के लोकसभा चुनाव में लगभग 7 प्रतिशत महिला उम्मीदवार थीं 2014 में संख्या 8.1 प्रतिशत, 2019 में 9.02 प्रतिशत तथा 2024 में महिला उम्मीदवारों की संख्या 9.57 प्रतिशत है, जोकि निश्चित ही बहुत कम है। लोकसभा चुनाव 2024 में कुल 8352 उम्मीदवारों में 799 महिला उम्मीदवार थीं, जिसमे 150 (27.6%) ऐसे संसदीय क्षेत्र हैं जहाँ एक भी महिला उम्मीदवार नही थी।[16]

मुख्य राजनीतिक दलों के महिला उम्मीदवार

लोकसभा चुनाव 2024 में कुल 799 महिला उम्मीदवारों ने चुनाव लड़ा, जिनमें सबसे अधिक 69 महिला उम्मीदवार भाजपा से तथा 41 महिला उम्मीदवार कांग्रेस से थीं। भाजपा ने लगभग 16 प्रतिशत तथा कांग्रेस में 13 प्रतिशत उम्मीदवार महिलाएं थीं जो कि 33 प्रतिशत से बहुत कम है। इसके अतिरिक्त टीएमसी ने लगभग 26 प्रतिशत, एसपी ने 21 प्रतिशत महिलाओं को उम्मीदवार बनाया था। राजनीतिक दल महिलाओं को चुनावी टिकट देने में अभी भी बहुत पीछे हैं। राजनीतिक दलों के द्वारा जिस प्रकार से महिला आरक्षण विधेयक का स्वागत किया था उस रूप में महिलाओं को चुनावों में टिकट देने में दल बहुत पीछे रहे हैं। राजनीतिक दल अभी भी महिलाओं को चुनावी टिकट प्रदान करने में संकोच करते दिख रहे हैं, जिसकी मुख्य कारण जीत को सुनिश्चित करना है। अभी भी यह धारणा दृढ़ता से कार्य करती है कि महिलाओं के चुनाव जीतने की सम्भावना पुरूषों से कम रहती है, इस तर्क को मुख्यतः भारत की सामाजिक-आर्थिक संरचना सशक्त बनाती है जिसमें महिलाएं पुरूषों के सापेक्ष बलहीन समझी जाती हैं।[17]

तालिका क्रमांक - 5

मुख्य राजनीतिक दलों के महिला उम्मीदवार

राजनीतिक दल	2024		2019	
	महिला	प्रतिशत	महिला	प्रतिशत
भाजपा	69	15.7	55	12.6
कांग्रेस	41	12.3	52	12.4
टीएमसी	12	25.5	23	37.1
एसपी	14	21.9	6	16.2
आप	0	0	3	8.6
जेडीयू	2	12.5	2	11.8
आरजेडी	7	29.9	3	14.3
टीडीपी	1	5.9	3	12.0
डीएमके	3	14.3	2	8.7
बीएसपी	38	7.8	24	6.3
सीपीआई	2	6.7	4	8.2
सीपीएम	7	13.5	10	14.5

स्त्रोत- टीक्यूएच रिपोर्ट https://thequantumhub.com/women-in-elections2024/

राष्ट्रीय, राज्य दलों के महिला उम्मीदवार

महिला उम्मीदवारों की संख्या को देखें तो राष्ट्रीय दलों के सापेक्ष क्षेत्रीय दलों के द्वारा अधिक महिलाओं को चुनावी, मैदान में उतारा गया है। राष्ट्रीय दलों से जहाँ 11.84 प्रतिशत उम्मीदवार महिलाएं थीं, वहीं क्षेत्रीय दलों के उम्मीदवारों की संख्या में लगभग 15 प्रतिशत महिला उम्मीदवार थीं। यद्यपि इसका एक कारण उम्मीदवारों की संख्या पर भी निर्भर करता है क्योंकि राज्य दल व राष्ट्रीय दलों के उम्मीदवारों की संख्या में बहुत अंतर है। राष्ट्रीय दल हों या राज्य दल कोई भी महिलाओं को उचित प्रतिनिधित्व देने में अधिक उत्सुक नही दिखाई देते है। लोकसभा चुनाव में बड़े राज्यों में सबसे अधिक महिला उम्मीदवार ओडिशा (15.4%), पश्चिम बंगाल (13.8%), तथा छतीसगढ़ (13.25%) थे, जबकि सबसे कम महिला उम्मीदवारों की संख्या राजस्थान (7.14%), हरियाणा (7.17%) तथा गुजरात (7.12%) में थी।[8]

लोकसभा चुनाव में महिला उम्मीदवारों की सफलता दर

भाजपा महिला उम्मीदवारों की सफलता दर 2019 के 74.6 प्रतिशत से घटकर 2024 में 44.9 प्रतिशत रह गयी है पार्टी ने 2019 की तुलना में 2024 में अधिक महिला उम्मीदवारों को मैदान में उतारा था लेकिन 2024 में निर्वाचित होने वाली महिलाओं की संख्या 41 से घटकर 31 हो गई। दूसरी ओर कांग्रेस महिला उम्मीदवारों की सफलता दर 2019 के लोकसभा चुनाव में 11.5 प्रतिशत से बढ़कर 2024 में 18.8 प्रतिशत हो गई है। तृणमूल कांग्रेस ने 12 महिला उम्मीदवार मैदान में उतारे, जिनमें से 11 ने 91.6 प्रतिशत सफलता दर के साथ लोकसभा के लिए चुनी गईं। महिलाओं की भागीदारी मतदाता के रूप में जिस तेजी से बढ़ी है उनके चुनाव में सफल होने में वह अधिक नही दिखता है।

राजनीतिक दल	2024			2019		
	महिला	सफल	प्रतिशत	महिला	सफल	प्रतिशत
भाजपा	69	31	44.9	55	41	74.6
कांग्रेस	41	13	18.8	52	6	11.5
टीएमसी	12	11	91.6	23	9	39.1
एसपी	14	5	35.7	6	0	0
आरजेडी	7	1	14.3	3	0	0
टीडीपी	1	1	100	3	0	0
डीएमके	3	3	100	2	2	100
जेडीयू	2	2	100	2	1	50

स्त्रोत- भारत चुनाव आयोग https://www.eci.gov.in/statistical-reports

लोकसभा चुनाव में विभिन्न राजनीतिक दलों में महिला सांसदों का अनुपात

2019 के लोकसभा चुनावों में तृणमूल कांग्रेस के कुल सांसदों में से महिलाएं 40.9 प्रतिशत थीं, 2024 में यह अंश 37.9 प्रतिशत है। यह किसी भी अन्य राजनीतिक दल की तुलना में बहुत अधिक है। लोकसभा में भाजपा के कुल सांसदों में महिलाएं 12.9 प्रतिशत हैं, जो 2019 के 13.5 प्रतिशत से बहुत अधिक अंतर नहीं है। दूसरी ओर कांग्रेस में महिला सांसदों की संख्या कुल सांसदों का 13.1 प्रतिशत है जबकि 2019 में यह संख्या 11.5 प्रतिशत थी। अन्य दलों का प्रदर्शन भी इस सूची में बहुत अच्छा नही है। अधिकतर दलों में निर्वाचित सांसदों में पुरूषों की संख्या ही अधिक है।

तालिका क्रमांक - 7

लोकसभा चुनाव में विभिन्न राजनीतिक दलों में महिला सांसदों का अनुपात

राजनीतिक दल	2024		2019	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
भाजपा	31	12.9	41	13.5
कांग्रेस	13	13.1	6	11.5
टीएमसी	11	37.9	9	40.9
एसपी	5	13.5	0	0
आरजेडी	1	25.0	0	0
टीडीपी	1	6.3	0	0
डीएमके	3	13.6	2	8.7
जेडीयू	2	16.7	1	6.3

स्त्रोत- भारत चुनाव आयोग https://www.eci.gov.in/statistical-reports

राज्यों से निर्वाचित महिला सांसद

सबसे अधिक 11 महिला सांसद पश्चिम बंगाल से चुन कर आई हैं इसके अतिरिक्त सात-सात महिलाएं महाराष्ट्र व उत्तर प्रदेश से चुन कर आई हैं। भाजपा से सबसे अधिक 31 महिला सांसद चुन कर संसद पहुंची हैं वहीं कांग्रेस से 13 तथा टीएमसी से 11 महिला सांसद चुन कर आई हैं। 22 राज्य एवं केन्द्रित शासित प्रदेशों से महिला सांसद चुन कर संसद पहुंची है सिर्फ बड़े राज्यों में केरल एकमात्र राज्य है जहाँ से कोई भी महिला सांसद चुन कर नही आई है। महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश दूसरे स्थान पर बराबरी पर हैं। दोनों राज्यों ने लोकसभा में सात महिलाओं को चुना है। हालांकि, महाराष्ट्र में 48 सीटें हैं, जबकि यूपी में 80 हैं।

तालिका क्रमांक 8

राज्यों से निर्वाचित महिला सांसद

राज्य	महिला सांसद
पश्चिम बंगाल	11
उत्तर प्रदेश	7
महाराष्ट्र	7
मध्य प्रदेश	6

स्त्रोत- टीक्यूएच रिपोर्ट https://thequantumhub.com/women-in-elections2024/

चुनाव आयोग के आंकड़ों के विश्लेषण के अनुसार, 13 राज्य-केंद्र शासित प्रदेश ऐसे हैं, जहां से लोकसभा में कोई भी महिला प्रतिनिधि निर्वाचित नहीं हुई है। इनमें से पांच राज्य - अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड और सिक्किम - पूर्वोत्तर में हैं। पांच केंद्र

शासित प्रदेश - अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, चंडीगढ़, लद्दाख, लक्षद्वीप और पुदुचेरी - जिनमें से प्रत्येक में केवल एक सीट है। केंद्र शासित प्रदेश जम्मू और कश्मीर से कोई महिला निर्वाचित नहीं हुई। इस सूची में केरल की उपस्थिति विशेष रूप से निराशाजनक है। राज्य में 20 निर्वाचन क्षेत्र हैं लेकिन वहां से कोई भी महिला प्रतिनिधि नहीं चुनी गयी। 71.72 प्रतिशत महिला मतदाताओं के मतदान करने के बावजूद कोई भी महिला प्रतिनिधि नहीं चुनी गई हैं।[19]

मुख्य दलों के चुनावी घोषणापत्र एवं महिलाएं

लोकसभा चुनाव 2024 में महिलाओं के मुद्दे राजनीतिक दलों के चुनावी घोषणापत्र में प्रमुखता से उठाए गए।

कांग्रेस का "महिला न्याय पत्र"

1. हर गरीब भारतीय परिवार को बिना शर्त नकद हस्तांतरण के रूप में प्रति वर्ष 1 लाख रुपये प्रदान करने के लिए महालक्ष्मी योजना प्रारंभ की जाएगी। गरीबों की पहचान आय पिरामिड के सबसे निचले स्तर के परिवारों में की जाएगी। केंद्र सरकार की सभी भर्तियों में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण दिया जएगा।
1. आंगनवाड़ी, आशा और मिड-डे मील कर्मियों के वेतन में केंद्र सरकार का योगदान दोगुना किया जाएगा।
2. हर पंचायत में एक अधिकार मैत्री की नियुक्ति की जाएगी, जो महिलाओं को विभिन्न योजनाओं और लाभों के बारे में उनके अधिकारों के बारे में बताएगी।
3. भारत में प्रत्येक जिला मुख्यालय में सावित्रीबाई फुले कामकाजी महिला छात्रावास खोले जाएंगे तथा ऐसे छात्रावासों की संख्या दोगुनी की जाएगी।
4. सभी कानूनों की लैंगिक भेदभाव और लैंगिक पूर्वाग्रह के लिए जांच की जाएगी। आपत्तिजनक प्रावधानों को हटाया जाएगा या संशोधित किया जाएगा। विवाह, उत्तराधिकार, विरासत, गोद लेने, संरक्षकता आदि के मामलों में महिलाओं और पुरूषों के बीच समानता सुनिश्चित करने के लिए कानूनों की समीक्षा की जाएगी।
5. उचित और समान वेतन, सुरक्षित कार्यस्थल, चाइल्ड केअर सेवाएं, यौन उत्पीड़न और हिंसा को रोकने और मातृत्व लाभ बढ़ाने के उपायों के माध्यम से कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी का विस्तार किया जाएगा।
6. न्यूनतम मजदूरी और मनरेगा के अंतर्गत मजदूरी को बढ़ाकर 400 रुपये प्रतिदिन किया जाएगा।
7. कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध एवं निवारण) अधिनियम 2013 तथा घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2015 का कड़ाई से पालन सुनिश्चित किया जाए।
8. संसद तथा राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण को तत्काल लागू किया जाए, इसके लिए अगले परिसीमन की प्रक्रिया का इंतजार न किया जाए।[20]

सीपीआई(एम) का चुनावी घोषणापत्र

विभिन्न क्षेत्रों में सभी निर्वाचित प्रतिनिधियों के लिए आचार संहिता बनाई जाए, ताकि महिलाओं के बारे में सार्वजनिक टिप्पणियों तथा वार्तालाप में शालीनता के मानकों का पालन किया जा सके तथा महिलाओं को अपमानित करने वाली लैंगिकवादी तथा स्त्री विरोधी भाषा का प्रयोग न किया जाएगा।

1. घरेलू कामगारों तथा घर से काम करने वाले कामगारों के लिए सुरक्षात्मक कानून बनाए जाएं।
2. सम्मान-अपराधों तथा महिलाओं एवं बच्चों की तस्करी के विरुद्ध कानून बनाया जाएगा।
3. वैवाहिक बलात्कार को अपराध बनाया जाएगा।
4. सभी महिलाओं के लिए वैवाहिक तथा विरासत में मिली संपत्ति में समान अधिकार के लिए कानून बनाए जाएं। महिलाओं एवं बच्चों के भरण-पोषण के लिए बनाए गए कानूनों को सुदृढ़ बनाया जाए। सभी परित्यक्त महिलाओं की सुरक्षा तथा पुनर्वास सुनिश्चित किया जाए।[21]

भाजपा का चुनावी घोषणापत्र

1. 3 करोड़ महिलाओं को लखपति दीदी बनने के लिए सशक्त बनाया जाएगा।
2. भाजपा ने कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए औद्योगिक और वाणिज्यिक केंद्रों के पास महिला छात्रावास और शिशुगृह जैसे बुनियादी ढांचे का निर्माण सुनिश्चित करने का वादा किया।
3. भाजपा ने कहा कि वह महिलाओं के लिए स्वस्थ जीवन सुनिश्चित करने के लिए स्वास्थ्य सेवाओं का

विस्तार करेगी।

4. स्वच्छ रसोई ईंधन उपलब्ध कराने के लिए प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना को जारी रखा जाएगा और उसका विस्तार किया जाएगा।
5. नारी शक्ति वंदन अधिनियम (महिला आरक्षण विधेयक) को लागू किया जाएगा।
6. लैंगिक समानता प्राप्त करने के लिए समान नागरिक संहिता को लागू किया जाएगा।
7. आईटी, स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा, खुदरा और पर्यटन जैसे सेवा क्षेत्र में कौशल प्रशिक्षण और उपकरणों के माध्यम से स्वयं सहायता समूहों को एकीकृत किया जाएगा, ताकि उनकी आय में वृद्धि हो सके।
8. एक जिला एक उत्पाद, किसान उत्पादक संगठन, एकता मॉल, ओएनडीसी, जीईएम, एक स्टेशन एक उत्पाद जैसी चल रही पहलों में महिला स्वयं सहायता समूहों के लिए बाजार पहुंच को बढ़ाया जाएगा।
9. कामकाजी महिलाओं के छात्रावास जैसे बुनियादी ढांचे के विकास को सुनिश्चित किया जाएगा, जिसमें कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए औद्योगिक और वाणिज्यिक संस्थानों के पास के स्थानों पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।
10. समय पर जांच और मुद्दों के समाधान के लिए पुलिस स्टेशनों में शक्ति डेस्क (महिला सहायता डेस्क) का विस्तार किया जाएगा।[22]

निष्कर्ष : स्थानीय स्तर पर महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी बढ़ाने के मामले में भारत ने सबसे आगे रहकर काम किया है। अब समय आ गया है कि राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर उपस्थित कमियों को दूर करने के लिए भी इसी तरह की प्रतिबद्धता दिखाएं। इसके लिए शीर्ष स्तर से सुधार की आवश्यकता होगी, लेकिन प्रगति सुनिश्चित करने का अंतिम उत्तरदायित्व हमारे राजनीतिक दलों के कंधों पर होगा। महिलाओं के प्रतिनिधित्व में इस गिरावट को कम नहीं आंका जाना चाहिए। लोकसभा में लैंगिक समानता उपलब्ध करने के लिए सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक बाधाओं को दूर करने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है। समावेशी और न्यायसंगत लोकतांत्रिक विकास के लिए राजनीति में महिलाओं को सशक्त बनाना महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ

1. Pal, K., Piaget, K., & Zahidi, S. 'Galobal gender gap report'. https://www.weforum.org/publications/global-gender-gap-report-2024/
2. Phukan, S., & Chakrabarty., S. (Sep 19, 2023) Government introduces women's reservation bill; PM Modi calls for consensus vote. The Hindu. https://www.thehindu.com/news/national/womens-reservation-bill-govt-introduces-nari-shakti-vandan-adhiniyam-in-lok-sabha/article67322055.ece
3. Pande, R. *'The History of Feminism and Doing Gender in India'*, Estudos Feministas, 26(3), 2018, pp. 1–17.
4. Election commission of India https://www.eci.gov.in/statistical-reports
5. Chawla, A. 'Lok Sabha elections 2024: On women's representation, a step backwards'. https://adrindia.org/content/lok-sabha-elections-2024-women%E2%80%99s-representation-step-backwards
6. States, A., Arabia, S., Council, S., & Arabia, S. *'Women in Parliament in 2023 The year in review'*, 2023.
7. Roy, P., & Sopariwala, *'The Verdict: Decoding India's Election'*, Penguin Radam House India, New Delhi, 2019
8. Pandit, L. A., 'Political leadership of women: Constraints and challenges', The Indian Journal of Political Science, 71(4), 2010, pp. 1139–1148.
9. Rai, P., 'Electoral Participation of Women in India: Key Determinants and Barriers', Economic and Political Weekly, 46(3), 2011, pp. 47–55.
10. Chary, M. R., 'Women and political participation in India: A Historical Perspective',. The Indian Journal of Political Science, 73(1), 2012, pp. 119–132.
11. Minch, M. I., 'Women and Politics', The Indian Journal of Political Science, 73(3), 2012, pp. 489–492.
12. Kapoor, M., and Ravi S. (11 May 2019) Women voters in Indian democracy: A silent revolutionhttps://theprint.in/opinion/women-voters-in-indian-democracy-a-silent-revolution/233191/
13. Mudhra, S., Loksabha election result 2024 : Numbers of women MPs has fallen from 2019. The first post https://www.firstpost.com/explainers/lok-sabha-election-results-2024-how-number-of-women-mps-has-fallen-from-2019-13779294.html
14. States, A., Arabia, S., Council, S., & Arabia, S., op cit.
15. Sogani, A., Sudarsan, A., Pathak, M., & Shukla. T. (June 2024). 'Women in Elections 2024'.The Quantum Hub https://thequantumhub.com/women-in-elections2024
16. Ibid.
17. Ibid.
18. Ibid.
19. Ibid.
20. CONGRESS Manifesto 2024. Loksabha Election https://manifesto.inc.in/assets/Congress-Manifesto-English-2024-Dyoxp_4E.pdf
21. CPI(M) Manifesto 2024. Loksabha Election https://cpim.org/wp-content/uploads/old/documents/election_manifesto_english_april_2024.pdf
22. BJP Manifesto 2024. Loksabha Election https://www.bjp.org/bjp-manifesto-2024

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

प्राचीन भारत में सूर्योपासना एक अभिलेखीय विवेचन
(गुप्त एवं गुप्तोत्तर काल के विशेष संदर्भ में)

❑ डॉ. अजीत कुमार राव
❖ डॉ. प्रशान्त कुमार

सूचक शब्द : प्राचीन भारत, सूर्य, सूर्योपासना, गुप्त, गुप्तोत्तर, अभिलेख, मुद्रा, वैदिक, पौराणिक।

भारतीय जनमानस में भगवान सूर्य का स्थान बहुत ही श्रद्धास्पद तथा महत्वपूर्ण रहा है। उनको ब्रह्माण्ड का स्वामी, कर्मों को देखने वाला और परमत्व ब्रह्म का समानार्थी कहा गया है। सृष्टि-निर्माता, प्रकाश तथा उष्णता के कारक एवं वनस्पतियों के उत्पादक होने के कारण भारत सहित विश्व के लगभग सभी देशों में मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही सूर्योपासना का प्रचलन रहा है। प्रारम्भ में सूर्य पूजा प्रतीकों के रूप में आरम्भ हुई जो आगे चलकर विभिन्न शासकों के संरक्षण में मूर्ति पूजा से लेकर मंदिर निर्माण तक पहुँच गयी। वैदिक कालीन बहुत सारे देवता जैसे- मित्र, पूषन, सवितृ, अश्विनी, आदित्य तथा वैवश्वत आदि सूर्य के विभिन्न गुणों को प्रगट करते हैं। सूर्य के इन्हीं गुणों की व्याख्या अभिलेखों में मिलती है जो कि वैदिक सूर्य के अनुरूप है। सूर्य अपनी सहस्त्र रश्मियों द्वारा विश्व को प्रकाशित करने वाले हैं, अपने किरण पुंज के जाल से मेघ-समुच्चय के अंधकार को दूर करने वाले हैं। मनुष्यों के विभिन्न रोगों को दूर करते हुए उनको नई चेतना प्रदान करते हैं। अभिलेखीय साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इस काल में सूर्योपासना की पद्धति में अनेक परिवर्तन हुए। गुप्तकाल में सूर्य की घरेलू पूजा का स्थान विशाल तथा भव्य मंदिरों ने ले लिया था, जहाँ सभी जन एकसाथ एकत्र होकर सार्वजनिक रूप में पूजा करते थे। गुप्त काल में सूर्य पूजा की लोकप्रियता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि "लोगों में ये धारणा व्याप्त थी कि जो व्यक्ति चन्द्र-रश्मियों की शोभा के समान सूर्य मंदिर निर्माण कराते हैं, सभी वस्तुओं के विनाशकाल तक उनका स्थान स्वर्ग में होता है।"

भारत में प्रागैतिहासिक काल से ही सूर्योपासना की प्रथा प्रचलित रही है। कर्नाटक के पिकलीहल[1] से प्राप्त नवपाषाणकालीन मिट्टी के बर्तनों पर सूर्य का चित्रण मिलता है। सिंघनपुर (रायगढ़, छत्तीसगढ़) के शैलाश्रयों के चित्रों में सूर्यदेव को सात किरणों के साथ दर्शाया गया है।[2] कश्मीर में बुर्जहोम (द्वितीय स्तर) के नवपाषाणकालीन स्थल से प्राप्त दो पाषाण शिलाओं पर सूर्य का अंकन है। उत्खननकर्ता और अन्य विद्वानों ने एक को उगते हुए तथा दूसरे को डूबते हुए सूर्य के रूप में परिभाषित किया है।[3] सैन्धव सभ्यता में भी सूर्योपासना के चिन्ह मिलते हैं। सिन्धु घाटी के बहुत से स्थलों जैसे- हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, लोथल, रोपड़, रंगपुर, कालीबंगा आदि के उत्खनन से स्वास्तिक एवं क्रास का अंकन काफी मात्रा में मिला है जिसे विद्वानों ने सूर्य का प्रतीक चिन्ह माना है, जिससे ज्ञात होता है कि सैन्धव सभ्यता के लोग सूर्य की पूजा करते थे।[4] सिन्धु घाटी से प्राप्त एक मुद्रा पर एकश्रृंगी पशु के आगे सूर्य जैसी आकृति मिली है जिसमें से बहुत सी किरणें निकल रही हैं। अर्नेस्ट मैके के अनुसार इससे प्रतीत होता है कि एकश्रृंगी पशु का सूर्य से अवश्य कोई सम्बन्ध रहा होगा।[5]

वैदिक काल में भी सूर्य पूजा के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में सूर्य से संबंधित 14 सूक्तों की रचना की गयी थी। सूर्य की उपासना पांच देवताओं सूर्य, सवितृ, मित्र, पूषन एवं विष्णु के रूप में की जाती थी।[6] इससे स्पष्ट है कि वैदिक देवताओं में सूर्य का प्रमुख स्थान था। इन्हें आदितेय कहा गया है।[7] वैदिक काल में भगवान सूर्य का महत्व दो प्रकार से था प्रथम भौतिक रूप में द्वितीय आध्यात्मिक रूप में। जहाँ भौतिक रूप में भगवान सूर्य संसार को प्रकाश प्रदान करने वाले तथा दिन-रात के निर्माता थे वहीं आध्यात्मिक रूप में सूर्य चल, अचल तथा सभी वस्तुओं की आत्मा के रूप में जाने जाते थे।[8] वैदिक काल में कुछ विशिष्ट धार्मिक कृत्यों एवं आयोजनों पर मंत्रोच्चारण द्वारा सूर्योपासना की जाती थी।[9] कुछ ऐसे भी वैदिक ऋषि थे जो सूर्य पूजा में निपुण हुआ करते थे।[10] उत्तरवैदिक काल में भी सूर्य पूजा का उन्नत स्वरुप प्राप्त होता है। अथर्ववेद और ब्राह्मण साहित्य[11] में भी भगवान सूर्य के दयालु स्वरुप

❑ सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, हर्ष विद्या मन्दिर (पी.जी.) कॉलेज, रायसी, हरिद्वार, (उत्तराखण्ड)
❖ सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, हर्ष विद्या मन्दिर (पी.जी.) कॉलेज, रायसी, हरिद्वार, (उत्तराखण्ड)

को दर्शाया गया है। सूर्य को रोग निवारण करने वाला भी कहा गया है। कुष्ठ[12], हृदयवीर्ण, पित्तरोग तथा नेत्र सम्बन्धी विकारों को दूर करने के लिए भी सूर्य से प्रार्थना की जाती थी।[13] इस युग में सूर्य को सामान्यतया 'आदित्य' के रूप में जाना जाता था। सूर्य के रूप में आदित्यों की संख्या बारह थी, जिन्हें वर्ष के बारह माह का प्रतीक समझा जाता था।[14] वैदिक युग के पश्चात सूर्य पूजा की सबसे बड़ी विशेषता उसका एकपंथ के रूप में स्थापित होना था। रामायण[15] तथा महाभारत[16] काल तक सौर-संप्रदाय की स्थापना हो चुकी थी और इसकी गणना तत्कालीन धार्मिक सम्प्रदायों में होने लगी थी।

सूर्योपासना के अभिलेखीय साक्ष्य- भारत में प्राप्त प्राचीनतम पठनीय अभिलेख मौर्य शासक अशोक के माने जाते हैं। अशोक के अभिलेखों में प्रत्यक्ष रूप से सूर्योपासना का विवरण प्राप्त नहीं होता है। परन्तु मौर्यकाल के कुछ अवशेषों[17] एवं अवन्ती से प्राप्त मुद्राओं[18] पर सूर्य का मानव स्वरुप का चित्रण दिखाई देता है। शक-सातवाहन एवं कुषाण काल में सूर्योपासना के साहित्यिक तथा पुरातात्त्विक साक्ष्य मिलने लगते हैं। वृहत्संहिता में विवरण प्राप्त होता है कि ईरानी मग पुजारियों के द्वारा मंदिरों में सूर्य प्रतिमाओं को अधिष्ठित किया गया था।[19] कुषाणकालीन सूर्य प्रतिमाओं पर ईरानी प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। हुविष्क तथा कनिष्क के सिक्कों पर सूर्य (मिश्र अथवा मिहिर) को मानव रूप में दिखाया गया है। कनिष्क के सिक्कों पर मिइरों (ईरानी मिश्र अथवा मिहिर) और हेलियोस (यूनानी सूर्य) का विशेष रूप से अंकन किया गया हैं।[20] अफगानिस्तान के सुर्खकोतल (प्राचीन बागोलांगो) से प्राप्त कुषाणकालीन एक अभिलेख (कुछ विद्वान इसे कनिष्क प्रथम का तो कुछ कनिष्क द्वितीय का मानते हैं) से विदित होता है कि यहाँ पर कनिष्क द्वारा एक सूर्य मंदिर का निर्माण कराया गया था। सुर्खकोतल अभिलेख में एक देवगृह का वर्णन है जो कुषाणों का देवकुल था इस देवकुल से कुषाण राजाओं एवं राजकुमारों की प्रतिमाएं भी प्राप्त हुई हैं जो मथुरा के माट के टीले से प्राप्त कुषाण देवकुल की प्रतिमाओं के समान हैं। सुर्खकोतल अभिलेख से ज्ञात होता है कि कनिष्क ने यहाँ 'कनिष्क बर्गो' का निर्माण कराया और उसका शिलान्यास मिश्र (सूर्य) की पूजा के साथ किया। इसके साथ ही कनिष्क को 'कोजगष्क का पुत्र' और 'मिश्र का पुत्र' कहा गया है।[21] अभिलेख से स्पष्ट है कि कुषाण राजा धार्मिक दृष्टि से उदार थे और कनिष्क प्रथम ने न केवल बौद्ध स्तूप ही बनवाए अपितु मिश्र पूजा, अग्नि पूजा आदि को भी संरक्षण दिया। पांचाल से प्राप्त मित्र[22] (200 ई.पू.-100 ई.पू.) नामधारी शासकों- सूर्यमित्र एवं भानुमित्र की मुद्राओं के अध्ययन से इनका सम्बन्ध ईरानी सूर्य (मित्र, मिहिर) से किया गया है। इनके सिक्कों पर सौर प्रतीक चक्र एवं सूर्य मंडल अंकित हैं। इसके अतिरिक्त हिन्द-यूनानी शासकों अपोलोडोटस, फिलाक्सिनस टेलिफस तथा प्लेटो की मुद्राओं पर भी सूर्य का अंकन है[23] जो इस युग में सूर्योपासना को प्रमाणित करता है।

भारतीय इतिहास में गुप्तकाल धार्मिक सहिष्णुता का काल था। इस युग में विष्णु, शिव, कार्तिकेय, गणेश इत्यादि देवताओं की उपासना के साथ-साथ सूर्य की उपासना भी की जाती थी। अभिलेखों में सूर्योपासना के व्यापक साक्ष्य गुप्तकाल से मिलने लगते हैं। सूर्योपासना से सम्बंधित अभिलेख सम्राटों, राजकीय अधिकारियों, महासामन्त, सामन्त आदि के द्वारा विभिन्न प्रयोजनों पर उत्कीर्ण कराये गए थें। गुप्त एवं गुप्तोत्तर काल में सूर्योपासना का विवरण निम्नलिखित अभिलेखों में प्राप्त होता हैं-

मंदसौर प्रस्तर अभिलेख- कुमारगुप्त प्रथम (437-38 ईसवी) तथा बंधुवर्मन (473-74 ईसवी) के मंदसौर (प्राचीन दशपुर) प्रस्तर अभिलेख में सौर उपासना का उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होता है कि वह सूर्य आपकी रक्षा करें- जो अस्तित्व बनाए रखने के लिए सुरगुणों से, सिद्धों से, योगियों से, मुनियों से पूजित हैं तथा जो विश्व के क्षय तथा पुनर्निर्माण करने वाले हैं। उस सूर्य को नमस्कार है- जिनके तत्व-ज्ञान को जानने तथा प्रयत्न करने पर भी ब्राह्मण ऋषि न समझ सकें, जो सभी दिशाओं में अपनी किरणों से तीनों लोक का पोषण करते हैं, उदित होने पर गन्धर्वों, देवताओं, सिद्धों, किन्नरों तथा पुरुषों के द्वारा स्तुति किए जाते हैं तथा अपने भक्तों की इच्छा पूर्ति करते हैं।[24] महाभारत में भी सूर्य को ब्रह्मांड का खोजकर्ता, उसे बनाए रखने वाला तथा उसे सहारा देने वाला कहा गया है। सूर्य को ऋषि, ब्राह्मण, सिद्धों, गन्धर्वों, यक्षों, गुह्यिकों, मरुथों, विद्याधरों, वसु एवं रुद्रों द्वारा पूजित बताया गया है।[25] महाभारत के इस विवरण से मंदसौर अभिलेख में प्राप्त सूर्योपासना की पुष्टि होती है। मंदसौर अभिलेख में रेशमी वस्त्र बुनने वालों की एक श्रेणी द्वारा जो लाट (गुजरात) से आकर मंदसौर में बस गई थी ने 436 ईसवी में कुमारगुप्त प्रथम के शासन काल में एक सूर्य मंदिर का निर्माण करवाया था और 36 वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद जब मंदिर

जीर्ण-शीर्ण हो गया तो पुनः 472 ईसवी में इस श्रेणी द्वारा मंदिर के जीर्णोद्धार का वर्णन है।[26] इससे यह प्रमाणित होता है कि मंदसौर में सूर्य मंदिर का निर्माण एक श्रेणी द्वारा सामूहिक रूप से किया गया था जो गुजरात के लाट क्षेत्र से यहां आई थी। अतः स्पष्ट है कि गुप्तकाल में मध्य भारत तथा गुजरात क्षेत्र में सौर संप्रदाय के मानने वालों की बड़ी संख्या निवास करती थीं।

स्कंदगुप्त का इंदौर ताम्रपत्र लेख (465-66 ईसवी)- इस अभिलेख में सूर्योपासना का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है।[27] इसमें सूर्य भगवान को भास्कर के नाम से संबोधित किया गया है जो अपनी प्रकाश देने वाली किरणों के माध्यम से अंधकार का नाश करते हैं। वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में भी सर्वत्र सूर्य भगवान को प्रकाश देने वाला और अंधकार को दूर करने वाला कहकर उनका गुणगान किया गया हैं।[28] ध्यातव्य है कि इस अभिलेख में सूर्य की उपासना का उद्देश्य मानवता की विभिन्न मानसिक व शारीरिक बीमारियों से रक्षा करना बताया गया है। इस तथ्य की पुष्टि साहित्यिक स्रोतों से भी होती है क्योंकि इनमें भी सूर्य की उपासना का एक प्रमुख कारण उनके द्वारा विभिन्न प्रकार के शारीरिक व मानसिक रोगों को दूर करना बताया गया है।[29] अभिलेख में इस तथ्य का भी प्रमाण प्राप्त होता है कि सूर्य की उपासना केवल शारीरिक लाभ के लिए नहीं अपितु मानसिक शांति के लिए भी होती थी। इसके अतिरिक्त इस अभिलेख में सौर संप्रदाय की जानकारी भी प्राप्त होती है क्योंकि यह विशेष रूप से कहा गया है कि कुछ प्रबुद्ध ब्राह्मण केवल सूर्य की उपासना विशेष संस्कारों द्वारा करते थें। सूर्य को अनंत बताया गया है जिनको न कोई देव और न ही कोई असुर माप सका है। अभिलेख में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि इंदौर (इंद्रपुर, बुलंदशहर, यूपी) में एक सूर्य मंदिर का निर्माण इंद्रपुर के वणिकों-क्षत्रियों अचलवर्मा तथा भृकुंठसिंह द्वारा कराया गया था। देवविष्णु नामक एक ब्राह्मण को जो वैदिक परंपरा को मानने वाला था, उसने सूर्य मंदिर में दीप प्रज्वलित करने के लिए तैलियों की श्रेणी को दान दिया था।[30] इस अभिलेख से गुप्त काल में स्थानीय रूप से निर्मित सूर्य मंदिर, उनकी पूजा, आराधना के प्रमाण प्राप्त होते हैं। स्पष्ट है कि इससे पूर्व ही स्थानीय रूप से निर्मित सूर्य मूर्ति का भी निर्माण होने लगा था। अभिलेख में सूर्य भगवान को भगवते सवितृ (वैदिक नाम सवित्रि) से संबोधित किया गया है न कि ईरानी नाम से जो सूर्य के पूर्ण भारतीयकरण का प्रमाण है। अभिलेख से स्पष्ट है की पांचवीं शताब्दी ईसवी तक एक पूर्ण विकसित सौर संप्रदाय की स्थापना हो चुकी थी जिसमें एक संप्रदाय की संपूर्ण विशेषताएं जैसे- मंदिर, प्रतिमा, पुजारी, संस्कार और पूजा की निश्चित विधि विद्यमान थीं।

महाराजा शर्वनाथ का खोह ताम्र-पत्र (512-13 ईसवी)- मध्यप्रदेश के सतना जिले के खोह नामक स्थान से प्राप्त इस अभिलेख में सूर्योपासना से सम्बन्धित सूचनाएं प्राप्त होती हैं। इस अभिलेख का उद्देश्य महाराजा शर्वनाथ द्वारा तमसा नदी के उत्तरी तट पर स्थित आश्रमक नामक ग्राम के दान दिए जाने का लेखन है, जिसमें उसके तथा दान प्राप्त करने वालों के बीच यह शर्त है कि अन्य वस्तुओं के साथ इस दान का उपयोग भगवत विष्णु तथा सूर्य (आदित्य) मंदिर का जो भी भाग जीर्ण-शीर्ण हो गया हो उसका पुनर्निर्माण किया जाये और बलि, चरू, सत्र, धूप, सुगन्धित, माला तथा दीप की व्यवस्था की जायें, इस उद्देश्य से दान दिया जाता है।[31] इस अभिलेख में विष्णु और सूर्य का अलग-अलग उल्लेख मिलता है अतः सूर्य और विष्णु दोनों के भिन्न-भिन्न मंदिर, सम्प्रदाय तथा श्रद्धालु थे। इससे न केवल यह स्पष्ट है कि सूर्य गुप्त काल के प्रमुख देवता के रूप में प्रतिष्ठापित थे अपितु इससे गुप्त काल में जनमानस के सहिष्णु व्यवहार का भी ज्ञान प्राप्त होता है। मध्य भारत में प्राप्त इस अभिलेख से छठी शताब्दी ईसवी के समय सौर उपासना की प्रसिद्धि का प्रमाण भी प्राप्त होता है।

मिहिरकुल का ग्वालियर प्रस्तर अभिलेख- यह अभिलेख मध्यप्रदेश के ग्वालियर जिले से प्राप्त हुआ है जो मिहिरकुल के शासन के पंद्रहवें वर्ष का है। इस अभिलेख का मुख्य उद्देश्य मातृचेट नामक व्यक्ति द्वारा गोप नामक पहाड़ी पर (जिस पर वर्तमान में ग्वालियर का किला बना है) एक सूर्य मंदिर के निर्माण का विवरण है। इस अभिलेख में सूर्य का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि आकाश को प्रकाशित करने वाले, अपनी किरणों से मेघों के अन्धकार को दूर करने वाले, अपनी गति से थकान से बिखरे हुए चंचल अयालों वाले अश्वों से उदयाचल के शिखर को अलंकृत करने वाले, वह सूर्य जिसके रथ के चक्र विजयशील हैं, जो विपत्ति निवारक हैं, जो विश्व को प्रकाशित करते हैं तथा अन्धकार को दूर करते हैं, वह सूर्य आपकी रक्षा करें।[32] इसी प्रकार की सूर्य स्तुति वैदिक तथा पौराणिक ग्रंथों में भी प्राप्त होती है।[33] अभिलेख में एक सूर्य मंदिर

के निर्माण का उल्लेख किया गया है जिसमें सूर्य को भानू नाम से संबोधित किया गया है। पौराणिक परंपरा के अनुसार जो लोग सूर्य का चन्द्र-रश्मियों की शोभा के समान मंदिर का निर्माण कराते हैं, सभी वस्तुओं के विनाश काल तक उनका निवास स्थान स्वर्ग में होता है। अभिलेख से सौर संप्रदाय की प्रसिद्धी ज्ञात होती है जिसमें कहा गया है कि सूर्य का यह पवित्र प्रस्तर मंदिर जब तक स्थित रहेगा जब तक शिव तथा विष्णु की आभा प्रकाशमान रहेगी।[34] पुराणों में भी सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओं को अभिन्न स्वीकार किया गया है।[35] साम्ब-पुराण[36] में कहा गया है कि सूर्य की पूजा श्वेतद्वीप में विष्णु, कुशद्वीप में महेश्वर, पुष्करद्वीप में ब्रह्मा एवं शकद्वीप में भास्कर के रूप में की जाती हैं। अभिलेख से स्पष्ट है कि तत्कालीन समय में सूर्य को शिव व विष्णु के समकक्ष माना जाता था।

आदित्यसेन का सूर्य प्रस्तर मूर्ति लेख- आदित्यसेन का यह अभिलेख बिहार के गया जिले में शाहपुर से प्राप्त हुआ है। यह लेख मानव रूप में अंकित सूर्य की एक प्रस्तर प्रतिमा जिसका आकर दो फूट दस इंच है की पीठिका पर उत्कीर्ण है और इसके प्रत्येक हाथ में कमल-पुष्प प्रदर्शित है। इसके दोनों ओर एक छोटी खड़ी आकृति बनी है जिनमें से दाहिनी आकृति के हाथ में गदा है। यह लेख परवर्ती गुप्त शासक आदित्यसेन के समय का है जिसकी तिथि (672-73 ई.) है। लेख सूर्योपासना से सम्बद्ध है और इसका प्रयोजन सर्वप्रथम तो किसी दान का वर्णन करना तथा दूसरे बलाधिकृत सालपक्ष द्वारा नालंदा (बिहार) अग्रहार में इस प्रतिमा की स्थापना का उल्लेख था जो आदित्यसेन के समय यहाँ कार्य करता था।[37] इस अभिलेख से स्पष्ट है कि सातवीं शताब्दी में भी राजाओं के द्वारा सूर्य पूजा को संरक्षण दिया जा रहा था और बलाधिकृत (सेना का प्रमुख) जैसे बड़े अधिकारी द्वारा सूर्य प्रतिमाओं का निर्माण कराया जा रहा था। तत्कालीन समय की सूर्य की खड़ी प्रतिमाएं सम्पूर्ण भारत से प्राप्त होती हैं।[38] ध्यातव्य है कि सूर्य 'आदित्य' नाम पर राजा का नाम इस संप्रदाय की प्रसिद्धि भी हो सकता है।

जीवितगुप्त द्वितीय का देव-बरनार्क अभिलेख- यह अभिलेख बिहार राज्य के भोजपुर जिले में स्थित देव-बरनार्क (प्राचीन वारुणिका) से प्राप्त हुआ है। यह अभिलेख एक मंदिर जिसे स्पष्टतः आधुनिक काल में भगवान विष्णु के मंदिर में रूपांतरित कर दिया गया है के प्रवेश मंडप के स्तम्भ के समीप उत्कीर्ण है। यह तिथि विहीन लेख है। जीवितगुप्त द्वितीय उत्तर गुप्तकालीन मगध का शासक था। सूर्योपासना से सम्बद्ध तथा इस लेख का उद्देश्य वरुणवासिन उपाधि के अंतर्गत सूर्य के प्रति वारूणिका अथवा किशोरवाटक नामक ग्राम के दान की निरन्तरता का विवरण है।[39] यह रोचक तथ्य है कि इसमें सूर्य को वरुणवासिन कहकर संबोधित किया गया है। सूर्य का यह नाम प्राचीन ऋग्वैदिक परम्परा के पालन का साक्ष्य है जिसके अंतर्गत वरुण देव (समुद्र देवता) को मूलतः अदिति के पुत्र अर्थात बारह आदित्यों अथवा सूर्य के स्वरूपों में से एक माना जाता था।[40] इस अभिलेख से स्पष्ट है कि ऋग्वैदिक परम्परा के अंतर्गत वरुण सूर्य के साथ सम्बन्धित थे। इसके अतिरिक्त अभिलेख से विदित होता है कि परवर्ती गुप्तकाल में बिहार में प्रचलित सूर्य भगवान की उपासना पर कोई विदेशी प्रभाव नहीं था। वर्तमान समय में भी देव-बरनार्क (बिहार) में दो विशेष उत्सव भगवान सूर्य को समर्पित हैं- जिसमें चैत्र और कार्तिक के महीने के छठे दिन सूर्य की उपासना की जाती है जो क्रमशः चैती छठ एवं कार्तिक छठ के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन उत्सवों पर लाखों की संख्या में लोग सूर्य को अर्घ्य देकर उनकी उपासना पूर्ण विधि-विधान के साथ करते हैं।

महासामंत और महाराजा समुद्रसेन का निर्मंड ताम्रपत्र लेख- यह अभिलेख हिमाचल प्रदेश के कुल्लू से प्राप्त हुआ था। यह लेख सातवीं शताब्दी ईसवी का है। इस लेख का उद्देश्य निर्मंड के अग्रहार स्थित मंदिर में शिव प्रतिमा की मिहिरेश्वर नाम से स्थापना था, जिनकी स्थापना पहले इसी मंदिर में कपालेश्वर देवता के रूप में की गई थी, इस मन्दिर को मिहिरलक्ष्मी के द्वारा सूलीसग्राम नामक गाँव के दान का उल्लेख है, जिससे प्राप्त आय से मिहिरेश्वर को बलि, चरू, सत्र, धुप, दीप की व्यवस्था और उसका जीर्णोद्धार करना था।[41] यह शैव धर्म से सम्बद्ध लेख है परन्तु देवता के नाम में प्रथम घटक के रूप में मिहिर (सूर्य) शब्द का प्रयोग यह संकेत देता है कि शैव अनुष्ठानों के साथ-साथ सूर्योपासना का कोई न कोई सम्बन्ध अवश्य रहा होगा। अभिलेख से यह अनुमान होता है कि पंजाब क्षेत्र जहाँ पर ईरानी मग पुजारियों के द्वारा सूर्य पूजा मित्र अथवा मिथ्र नाम से पूर्वकाल से ही प्रचलित थी परन्तु सातवीं शताब्दी में शैव धर्म का प्रभाव इस क्षेत्र में बढ़ने लगा तब भी सूर्य की उपासना का प्रभाव इतना अधिक था कि शिव के साथ मित्र रूप में सूर्य को सम्बन्धित कर दिया

गया। इससे भी भविष्य में शैव धर्म को इस क्षेत्र में अपना प्रभाव बढ़ाने में योगदान अवश्य मिला होगा।[42] शिव व सूर्य की एक साथ पूजा का उल्लेख भारतीय साहित्य में भी मिलता है[43] तथा हिन्दू जावा[44] एवं बालि में भी शिव व सूर्य की उपासना एक साथ प्रचलित थीं। समुद्रसेन की वंशावली- रविसेन, मिहिरलक्ष्मी, वरुणसेन आदि के नामों पर दृष्टिपात करने से भी यह तथ्य स्पष्ट है कि इस वंश में सूर्यदेव के प्रति श्रद्धाभाव पूर्वकाल से ही विद्यमान था।

राजा धारसेन द्वितीय का मालिय ताम्रपत्र एवं अन्य लेख- धारसेन द्वितीय के मालिय ताम्रपत्र लेख (571-72 ईसवी) से हमें तत्कालीन मैत्रक वंश में सूर्योपासना का उल्लेख प्राप्त होता है। इस ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि वल्लभी के मैत्रक वंशी शासक महाराजा धारपत (धारापति) बड़े सूर्योपासक थे। अभिलेख में सूर्योपासक के लिए 'परमादित्य भक्त' शब्द का प्रयोग किया गया है।[45] इस अभिलेख के प्राप्ति स्थान काठियावाड़ में पूर्वकाल से ही सूर्योपासना प्रचलित थी।[46] यह तथ्य रूचिकर है कि मैत्रक शब्द मिश्र या मित्र शब्द से प्रारम्भ होता है जो इस क्षेत्र में सूर्य पूजा से सम्बंधित भारतीय-ईरानी परंपरा से उत्पन्न हुआ होगा।[47]

सूर्योपासना से सम्बन्धित अन्य प्रमुख अभिलेखों में से एक हर्षवर्धन का सोनपत ताम्र-मुहर लेख[48] है इसमें राज्यवर्धन, आदित्यवर्धन तथा प्रभाकरवर्धन के लिए 'परमादित्य भक्त' अर्थात सूर्य के परमभक्त शब्द का प्रयोग हुआ है। आदित्यवर्धन तथा प्रभाकरवर्धन के नामों पर विचार किया जाये तो यह सिद्ध हो जाता है कि इनके नाम का प्रथम भाग सूर्यदेव के विभिन्न नामों से ही प्रारम्भ होता हैं। अतः स्पष्ट है कि थानेश्वर के वर्धन शासकों ने भी सूर्योपासना को संरक्षण दिया था तथा वे स्वयं भी सूर्योपासक थे। गुजरात में शासन करने वाले प्रारंभिक गुर्जर शासक निश्चित ही वंशानुगत रूप से सूर्योपासक थें। दद्दा द्वितीय के 629 ईसवी के कैरा लेख[49] से ज्ञात होता है कि दद्दा प्रथम (570-590 ई.) जो दद्दा द्वितीय का पितामह था, जन्म से ही सूर्योपासक था। इससे प्रतीत होता है कि दद्दा प्रथम के पूर्वजों में पूर्वकाल से ही सूर्य पूजा प्रचलित रही होगी इसी कारणवश उसको जन्म से ही सूर्योपासक कहा गया है। इसके साथ ही कैरा लेख में दद्दा द्वितीय को भी सूर्योपासक बताया गया है। दद्दा द्वितीय के कैरा से प्राप्त अन्य लेख में भी दद्दा प्रथम और दद्दा द्वितीय को पुनः सूर्योपासक बताया गया है।[50] दद्दा द्वितीय के 641 ईसवी के संखेडा ताम्रपत्र[51] में दद्दा प्रथम एवं दद्दा द्वितीय के साथ ही परिवार के अन्य सदस्यों को भी सूर्योपासक बताया गया हैं। संखेडा लेख[52] 642 ईसवी में पुनः दद्दा प्रथम को सौर संप्रदाय को संरक्षण देने वाला कहा गया है।

निष्कर्ष- उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में प्राचीन काल से ही सूर्योपासना की परम्परा विद्यमान रही है। प्रागैतिहासिक काल में सूर्य पूजा प्रतीकों के माध्यम से और वैदिककाल में यज्ञों एवं मंत्रों के माध्यम से व्यक्तिगत रूप में की जाने लगी। कुषाणों के काल में सूर्योपासना को और अधिक प्रसिद्धि मिली जिसका श्रेय ईरानी मग-पुजारियों को जाता हैं। गुप्त एवं गुप्तोत्तर कालीन सूर्य पूजा में एक विशेष परिवर्तन यह दिखाई पड़ता है कि अब सूर्योपासना विशाल एवं भव्य मंदिरों में सामूहिक रूप में की जाने लगी थी जिसका प्रमाण तत्कालीन अभिलेखों में प्राप्त होता हैं। तत्कालीन अभिलेखों में जो सूर्य संबंधी जानकारी प्राप्त होती है उससे सूर्य के स्वरुप एवं सूर्योपासना का सम्पूर्ण चित्रण किया जा सकता है। तत्कालीन अभिलेखों में सूर्य अपने कार्यों के कारण विष्णु, शिव, एवं ब्रह्मा के समकक्ष दिखाई देते हैं। अभिलेखों में उनको जगत के रचयिता ब्रह्मा, जगत के पालनकर्ता विष्णु एवं जगत के संहारक शिव के रूप में उल्लेखित किया गया हैं। पुराणों में वर्णित है कि सूर्य श्वेतद्वीप में विष्णु, कुशद्वीप में शिव, पुष्करद्वीप में ब्रह्मा और शकद्वीप में भास्कर के रूप में पूजित होते हैं। गुप्त एवं गुप्तोत्तर कालीन देवमंडल पर वैदिक देवमंडल की छाप स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। निस्संदेह गुप्तकालीन अभिलेखों में सूर्य के विभिन्न नामों (सवितृ, भास्कर, अंशुमान, आदित्य, वरुणवासिनी, विवस्वान) पर वैदिक एवं पौराणिक प्रभाव दिखाई पड़ता हैं। स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि इस समय तक सूर्योपासना का पूर्णरूप से भारतीयकरण हो चुका था।

सन्दर्भ

1. Allchin, F.R., *'Piklihal Excavation'*, The Government of Andhra Pradesh, Hyderabad, 1960, p. 26-77
2. Srivastava, V.C., *'Sun-Worship in Ancient India'*, Indological Publications, Allahabad, 1972, p. 22
3. Agarwal, D.P., & Kharakwal, J.S., *'South Asian Prehistory'*, Aryan Books International, New Delhi, 2002, p. 180
4. Pandey, Lalta Prasad, *'Sun-Worship in Ancient India'*, Motilal Banarsidass, Delhi, 1971, p. 4-6
5. Ibid., p. 7
6. मिश्र, जयशंकर, 'प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास', बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1983, पृ. 675

7. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, ऋग्वेद सुबोध भाष्य, 1.191.9, स्वाध्याय मण्डल, किल्ला पारडी, जिला बलसाड़, गुजरात, 2000.
8. वही, 1.115.1
9. वही, 7.67.10, 10.40.3
10. वही, 1.50, 1.115, 1.164
11. उपाध्याय, पं. गंगा प्रसाद, शतपथ ब्राह्मण (हिन्दी अनुवाद), 1.. 2.11, 2.6.3.8, 9.4.2.19, गोविन्द राम हासानन्द, दिल्ली, 2010.
12. Caland, W., *'Pancavimsa Brahmana'*, 23.16.10, Asiatic Society of Bengal, Calcutta, 1931
13. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, 'अथर्ववेद सुबोध भाष्य', 1.2, स्वाध्याय मण्डल, किल्ला-पारडी, जिला बलसाड़, गुजरात, 1990.
14. Pancavimsa Brahmana, 10.1.10 एवं शतपथ ब्राह्मण, 6.1. 2.8, 9.6.3.8, 4.5.7.2.
15. बाल्मीकि रामायणं (दो खंड), 6.105.22, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1997.
16. Hopkins, E.W., *'The Great Epic of India'*, University Press, Newyork, 1901, p. 115
17. Majumdar, R.C., *'The Age of Imperial Unity'*, Volume-2, Bhartiya Vidya Bhavan, Bombay, Third Edition, 1960, p. 465
18. Srivastava, V.C., 'The Religious Study of a Symbol on an Avanti Coins', Proceedings of the Seminar on Local Coin, Memoir No.-2, B. H. U. Varanasi, 1966, p. 133-136.
19. Sastri, V.S., Varahamihira's Brihat Samhita, 60.19, V. B. Soobbiah & Sons, Banglore, 1946, p. 525-526.
20. Gardner, Percy, *'The Coins of the Greek and Scythic Kings of Bactria and India in the British Museum'*, Gilbert and Rivington Limited, London, 1886, p. 129-131, & Pandey, Lalta, Prasad, op. cit., p. 36.
21. गोयल, श्रीराम, प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह (भाग-1), राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1982, पृ. 254
22. Srivastava, V.C., 'Interpretation of Solar symbol on Suryamitra and Bhanumitra Coins', J.N.S.I., Volume-31, B.H.U. Varanasi, 1969, p. 9.
23. Pandey, Lalta, Prasad, op. cit., p. 74.
24. मिश्र, गिरिजाशंकर प्रसाद, प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह (भाग-3), राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1982, पृ. 103-104
25- Srivastava, V.C., 1972, op. cit., p. 369-370.
26. गोयल, श्रीराम, 'गुप्तकालीन अभिलेख', कुसुमांजलि प्रकाशन, जोधपुर, 1993, पृष्ठ 352-53
27. मिश्र, गिरिजाशंकर प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. 88
28. ऋग्वेद, 4.13.4, 7.63.1, 10.37.4, अथर्ववेद, 4.12.1, 9.1.19, शतपथ ब्रा., 3.3.2.12, 12.9.2.8
29. ऋग्वेद, 1.50.11-12, 10.37.4, अथर्ववेद, 1.22.4, 6.83.1
30. मिश्र, गिरिजाशंकर प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. 88-89
31. वही, पृ. 157-58
32. वही, पृ. 198-99
33. ऋग्वेद, 1.175.4, 4.30.4, 4.28.2, 5.29.10, गुप्त, श्रीमुनिलाल (अनु.), विष्णुपुराण, 2.8, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1998.
34. मिश्र, गिरिजाशंकर प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. 200
35. Pargiter, F.E., *'Markandeya Purana'*, Indological Book House, Delhi, 1968, p. 533-88
36. श्रीवास्तव, वी. सी., 'साम्ब-पुराण', इन्डोलोजिकल पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1975, अध्याय, 26, 37, 38.
37. मिश्र, गिरिजाशंकर प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. 257-60
38. Srivastava, V.C., 1972, op. cit., p. 373.
39. मिश्र, गिरिजाशंकर प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. 265-66
40. Monier-Williams, *'Indian Wisdom'*, W. H. Allen & Co., Landon, 1875, p. 12-13, 68, & Pande, G.C., Studies in the Origins of Buddhism, University of Allahabad, 1957, p. 257
41. मिश्र, गिरिजाशंकर प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. 373-75
42. Bhandarkar, R.G., *'Vaisnavism Saivism and Minor Religious Systems'*, Indological Book House, Varanasi, 1965, p. 219
43. Basu, B.D., Matsya Puranam, 55.3.5, The Indian Press, Allahabad, 1916. & Banerjea, J.N., *'The Development of Hindu Iconography'*, University of Calcutta, Second Edition, 1956, p. 551
44. Srivastava, V.C., 1972, op. cit., p. 374.
45. Ibid., p. 375
46. Sankaliya, H.D., *'The Archaeology of Gujarat (Including Kathiawar)'*, Natwarlal & Co. Publishers, Bombay, 1941, p. 39, 59-60.
47. Macdonell, A.A., *'Vedic Mythology'*, Motilal Banarsidass, Varanasi, 1963, p. 30, & Hopkins, E.W., The Religions of India, Ginn & Company Publishers, Boston, 1895, p. 71
48. मिश्र, गिरिजाशंकर प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. 289
49. Mirashi, V.V., *'Corpus Inscriptionum Indicarum'*, Vol-4, Pt-1, Inscriptions of the Kalchuri-Chedi Era, Ootacamund, 1955, p.59
50. Ibid., p. 68, L4 p. 71, & Srivastava, V.C., 1972, op. cit., p. 378.
51. Ibid., p. 73-74.
52. Ibid., p. 78

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

भारत में 'एक देश एक चुनाव' का सैद्धांतिक व व्यावहारिक पक्ष

❑ डा. निभा राठी
❖ डॉ. मनस्वी सेमवाल

सूचक शब्द : चुनाव, लोकतंत्र, विधायिका, बहुदलीय व्यवस्था, चुनाव आयोग, विधि आयोग, इवीएम, वीवीपैट।

केंद्र सरकार ने एक देश एक चुनाव की परिकल्पना को मूर्त रूप देने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम बढ़ाया है इसके लिए समिति का गठन कर पूर्व राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद को अध्यक्षता सौंपी गयी है। एक देश एक चुनाव की व्यवस्था लंबे समय से विचाराधीन रही है किंतु इस दशा में ठोस कदम अब बढ़ा है। भारत जैसे विशाल भूभाग और जनसंख्या वाले लोकतंत्र के लिए यह विचार अति कठिन है, क्षेत्रीय दलों की सहजता भी आवश्यक लगती है किंतु अत्याधुनिक तकनीकी के दौर मे संकल्प करते नेतृत्व द्वारा इसे वास्तविक स्वरूप दिया जाना असंभव भी नहीं होगा। स्वाधीनता के बाद चार बार लोकसभा और विधानसभा के चुनाव एक साथ ही संपन्न हुए किंतु इसके बाद कुछ राज्यों की विधानसभा में निर्धारित समय से पहले भंग होने के कारण अलग-अलग चुनाव होने लगे और यह परंपरा अब तक स्थापित है। चुनाव आयोग चार दशक पहले एक साथ चुनाव की सिफारिश कर चुका है किंतु तत्कालीन केंद्र सरकार से स्वीकृति नहीं मिलने के कारण यह विचार लागू नहीं किया जा सका। एक साथ चुनाव होने से समय और संसाधन दोनों ही बचने की बात कही जा रही है। अब केंद्र सरकार की विशेष पहल के बाद यह आशा बलवती हुई है कि देश को बार-बार होने वाल चुनाव से मुक्ति मिल सकेगी ऐसे में यह मुद्दा सब से महत्वपूर्ण है कि एक देश एक चुनाव की व्यवस्था भारत के लिए कितनी आवश्यक है। एक देश एक चुनाव पर विमर्श कोई नई बात नहीं है विगत गई वर्षो से इस पर चर्चा होती रही है। प्रस्तुत शोध पत्र में इसी तथ्य के सैद्धांतिक और व्यवहारिक पक्षों पर चर्चा की जाएगी।

लोकतान्त्रिक व्यवस्था की आधारशिला चुनाव होते हैं जिसके फलस्वरूप जनता द्वारा स्वतंत्र रूप से अपने लिए जनप्रतिनिधियों का चयन किया जाता है। अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन द्वारा लोकतन्त्र के सन्दर्भ में कहे गये कथन 'जनता का, जनता के लिए, जनता के द्वारा शासन ही लोकतन्त्र' है में जनता की महत्ता चुनाव के माध्यम से ही स्पष्ट होती है ।

भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले राष्ट्र के लिए नियत समय पर चुनाव कराना स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से ही चुनौतीपूर्ण कार्य रहा है किन्तु कुछ एक असफलतओं को छोड़कर भारत में सदैव ही चुनाव लोकतन्त्र के प्रमुख त्यौहार के रूप में सम्पन्न होते आये हैं। वर्तमान समय में भारतीय केन्द्र सरकार ने 'एक राष्ट्र एक चुनाव' (One Nation One Election) योजना को व्यवहारिक धरातल पर लागू करने के लिए पूर्व राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया है। 'एक राष्ट्र एक चुनाव' का विचार भारत में काफी समय से चर्चा का विषय रहा है। भारत जैसे विशाल जनसंख्या व विविधतापूर्ण क्षेत्र हेतु यह विचार अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है साथ ही अत्यधिक समस्यापूर्ण भी परिलक्षित होता है। प्रस्तुत शोधपत्र में भारत में 'एक देश एक चुनाव' के सैद्धान्तिक व व्यावहारिक पक्ष का अध्ययन किया जाएगा।

अध्ययन के उद्देश्य : भारत जैसे विविधतापूर्ण व अत्यधिक जनसंख्या वाले देश में एक देश एक चुनाव की संभावना का अध्ययन करना। भारत में एक देश एक चुनाव की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना। भारत में एक देश एक चुनाव के सकारात्मक व नकारात्मक पक्ष का अध्ययन करना।

शोधपत्र की उपकल्पना : भारत में 'एक देश एक चुनाव' लागू करना अत्यन्त चुनौतीपूर्ण कार्य है। संसाधनों व धन की बचत हेतु भारत में 'एक देश एक चुनाव' योजना सकारात्मक प्रतीत होती है जबकि संघवाद के सन्दर्भ में 'एक देश एक चुनाव' योजना नकारात्मक प्रतीत होती है।

अध्ययन पद्धति : प्रस्तुत शोध पत्र हेतु वर्णनात्मक शोध प्ररचना प्रयुक्त की गई है। वर्णनात्मक शोध प्ररचना के अंतर्गत सामाजिक घटनाओं प्रणालियों तथा सामाजिक प्ररचना के अध्ययन को पूर्व की जानकारी

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, महिला विद्यालय डिग्री कॉलेज सतीकुण्ड, कनखल हरिद्वार (उत्तराखण्ड)
❖ सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, ग्राफिक एरा डीम्ड विश्वविद्यालय, देहरादून (उत्तराखण्ड)

के आधार पर वर्तमान से संबध करते हुए तथ्यों की प्राप्ति व विश्लेषण किया जाता है।

शोधपत्र हेतु आंकड़ों के संकलन के हेतु द्वितीयक स्त्रोतों का प्रयोग किया गया, जिसके अन्तर्गत पुस्तकें, पत्र-पत्रिकायें, रिकार्ड, लेखों आदि का प्रयोग किया गया है।

'एक देश एक चुनाव का अर्थ : 'एक देश एक चुनाव' का अर्थ भारतीय चुनावी चक्र को इस तरह से व्यवस्थित करने से है कि लोकसभा व राज्य विधान सभाओं के चुनाव एक साथ व निश्चित समय के अन्तर्गत हों। लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि पूरे भारत में लोकसभा व राज्य विधानसभाओं के लिए मतदान एक दिन में ही होता हो। यह चरणबद्ध तरीके से आयोजित किया जा सकता है और एक विशिष्ट निर्वाचन क्षेत्त में मतदाता उसी दिन राज्य विधानसभा और लोकसभा दोनों के लिए मतदान करते हैं।

भारत में 'एक देश एक चुनाव' का इतिहास

भारत में एक देश एक चुनाव की अवधारणा की ऐतिहासिक उत्पत्ति को 1932 की फ्रैचाइज कमेटी की रिपोर्ट से जोड़ा जा सकता है जिसने संस्तुति की थी कि विधानसभा के लिए चुनावी मताधिकार प्रांतीय परिषदों के साथ संचालित हाना चाहिए ताकि एक मतदाता सूची तैयार करना आसान हो सके। रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि प्रचलित प्रथा में एक ही दिन प्रांतीय और विधानसभा चुनाव आयोजित करना सम्मिलित है।[1]

26 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान लागू होने के पश्चात देश में पहली बार चुनाव 1951-52 में सम्पन्न हुआ, क्योंकि यह प्रथम बार था, तो स्वाभाविक प्रारूप में पूरे देश में चुनाव एक साथ ही हुए, इसके पश्चात् के तीन और चुनाव अर्थात 1957, 1962 और 1967 में भी भारत में लोकसभा और विधानसभा चुनाव साथ ही होते रहे। इस समय तक भारत में लोकतंत्र विकसित हो चुका था और बहुदलीय व्यवस्था का अस्तित्व भी भारत में काफी सशक्त हो चुका था। भारतीय जनमानस भी चुनाव तथा मतदान को लेकर जागरूक हो चुका था। 1967 के चुनाव के बाद भारत के कुछ राज्यों में विधानसभा कार्यकाल पूर्ण होने से पूर्व ही 1968 व 1969 में सरकार गिरने वाली स्थिति आयी तथा विधानसभा भंग होने की स्थिति आयी। इस प्रकार एक देश एक चुनाव का क्रम टूट गया तथा 1970 में प्रथम बार लोकसभा भी कार्यकाल से पूर्व ही भंग हो गयी तो 1971 में तय समय से पूर्व ही चुनाव करवाने पड़े। इस प्रकार भारत में एक देश एक चुनाव करवाने का क्रम टूटा तो फिर वापस पूर्व स्थिति में नहीं आ पाया।

'एक देश एक चुनाव' भारत की आवश्यकता : हाल ही में भारत सरकार द्वारा जब 'एक राष्ट्र एक चुनाव' की आवश्यकता पर जोर दिया जा रहा है तो उसके पीछे कई महत्वपूर्ण तथ्य हैं। भारतीय चुनाव आयोग ने 1983 में अपनी वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए केन्द्र व राज्यों के चुनाव एक साथ करवाने का सुझाव दिया था। 1999 में भारतीय विधि आयोग की रिपोर्ट में भी यहीं बात की गई थी। गत एक दशक में इस विचार पर काफी वाद-विवाद होता रहा है। वर्ष 2014 के चुनावी घोषणा पत्र में भारतीय जनता पार्टी ने यह व्यवस्था लागू करने की बात कही भी। इससे पूर्व 2003 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने कांग्रेस अध्यक्ष श्रीमती सोनिया गाँधी के साथ मिलकर इस विषय पर विचार किया था किन्तु कोई निष्कर्ष नहीं निकला। वर्ष 2016 में प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी ने जब इस व्यवस्था पर जोर दिया तो नीति आयोग द्वारा इस सन्दर्भ में एक पूरी रिपोर्ट तैयार की थी। वर्ष 2018 में विधि आयोग ने इस विचार को लागू करने के सन्दर्भ में कहा था कि व्यवहारिक स्तर पर यह एक राष्ट्र एक चुनाव का विचार कम से कम पाँच संशोधन के बाद अपनाया जा सकता है।

उपर्युक्त वर्णित सिफारिशों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'एक राष्ट्र एक चुनाव' भारत जैसे राष्ट्र की आवश्यकता भी है जिसके लिए कुछ तर्क दिए जाते रहे हैं। 'एक राष्ट्र एक चुनाव' भारत जैसे विकासशील देश के लिए इसीलिए आवश्यक है क्योकि बार-बार चुनाव करवाने में बहुत अधिक धन का अपव्यय होता है इस धन का सदुपयोग राष्ट्र के विकास हेतु किया जा सकता है। वर्ष 2019 के लोकसभा चुनाव में 60,000 करोड़ से अधिक की राशि व्यय हुई थी जो वास्तव में बहुत अधिक धन का अपव्यय है केन्द्र व राज्यों के चुनाव एक साथ सम्पन्न होने से समय व संसाधन दोनों की बचत होगी।[2]

भारत में बार-बार चुनाव आयोजित होने से जातिवाद, सम्प्रदायवाद, भ्रष्टाचार जैसे मुद्दे बार-बार उत्पन्न होते है। एक साथ चुनाव सम्पन्न होने से ये मुद्दे समाप्त हो

जायेंगे, ये कहना तो अतिशयोक्ति होगी, किन्तु एक बार चुनाव होने से इनमें कमी अवश्य आएगी।

चुनाव प्रक्रिया को संपन्न कराने में लगभग 1 करोड़ 10 लाख कर्मचारी कार्यरत होते हैं इस समय अंतराल में उनका मूल कार्य बाधित हो जाता है। आयोग द्वारा वरिष्ठ नौकरशाह को परिवेक्षक नियुक्त किया जाता है जिससे पूरी सरकार की कार्य प्रणाली प्रभावित होती है। बार-बार चुनाव होने के कारण सामाजिक ताना-बाना (social fabric) प्रभावित होता है। सांप्रदायिकता, जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद के चलते सामाजिक ताना बाना (social fabric) बिगड़ जाता है। बार बार चुनाव होने के कारण मतदाता में राजनीति सहभागिता में निष्क्रियता व उदासीनता आ जाती है।

मतदाताओं को राज्य व केन्द्र दोनों सरकार की नीतियों और प्रदर्शन का अधिक प्रभावी ढंग से आकलन करने का अवसर मिलेगा। इससे मतदाताओं के लिए राजनीतिक दलों के वादों की उनके वास्तविक कार्यान्वयन से तुलना करना आसान हो जाएगा। यह राजनेताओं को चुनावी लाभ के लिए अल्पकालिक निर्णय लेने से हतोत्साहित करके शासन की चुनौतियों का समाधान कर सकता है इस प्रकार यह लम्बे समय में देश के लिए लाभकारी निर्णयों को बढ़ावा दे सकता है। हर पाँच साल में एक बार चुनाव कराने से राजनीतिक दलों, भारतीय चुनाव आयोग, अर्धसैनिक बलों और नागरिकों सहित सभी हितधारकों को तैयारी का अधिक समय मिलेगा।[3] ये कुछ ऐसे तथ्य हैं जो भारत में 'एक राष्ट्र एक चुनाव की आवश्यकता पर बल देते हैं।

वैश्विक परिदृश्य में 'एक राष्ट्र एक चुनाव' : वैश्विक परिदृश्य में 'एक राष्ट्र एक चुनाव' की चर्चा की जाए, तो दक्षिण अफ्रीका में राष्ट्रीय व प्रांतीय विधानसभाओं के चुनाव पाँच वर्ष के लिए एक साथ होते हैं। स्वीडन में राष्ट्रीय विद्यायिका (Riksdag) और प्रांतीय विद्यायिका (Landsting) तथा स्थानीय निकायों के चुनाव चार वर्ष के लिए सितम्बर माह के दूसरे रविवार को होते हैं।

ब्रिटेन में ब्रिटिश संसद और उसके कार्यकाल को-स्थिरता एवं पूर्वानुमेयता की भावना प्रदान करने के लिए निश्चित अवधि संसद अधिनियम 2011 पारित किया गया था, इसमें प्रावधान था कि प्रथम चुनाव 7 मई 2015 को और उसके बाद हर पाँचवे वर्ष मई के प्रथम गुरुवार को होगा।[4]

अमेरिका में राष्ट्रपति, कांग्रेस और सीनेट के लिए चुनाव हर चार साल में एक निश्चित तिथि पर होते हैं। यह प्रक्रिया सुनिश्चित करती है कि देश में सर्वोच्च कार्यालयों का चुनाव एक साथ कराया जा सके, जिससे चुनावी प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाया जा सके। इस प्रक्रिया में संघीय कानून द्वारा निर्धारित चुनाव की तिथियों का पालन सम्मिलित है जिससे चुनावी गतिविधियों में राष्ट्रव्यापी समन्वय बना रहे।

फ्रांस भी देश में चुनाव कराने के लिए कुछ इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाता है। यहाँ हर पाँच साल में एक साथ राष्ट्रपति और नेशनल असेम्बली के लिए चुनाव कराए जाते हैं। यहाँ मतदाता एक ही मतदान प्रक्रिया के अंतर्गत राज्य के प्रमुख और उनके प्रतिनिधियों का चुनाव करते हैं। फाँस में 'एक देश एक चुनाव' की प्रक्रिया के अंतर्गत राष्ट्रपति और नेशनल असेम्बली के लिए एक निश्चित कार्यकाल तय किया गया है।

कनाडा एक देश एक चुनाव प्रणाली का सख्ती से पालन नहीं करता है यहाँ हाउन्स ऑफ कॉमन्स के लिए चुनाव हर साल में कराए जाते हैं जो कि देश के राष्ट्रीय स्तर पर सुसंगत चुनावी ढाँचा देता है। इसके अतिरिक्त देश के कुछ प्रांत स्थानीय स्तर के चुनावों को संघीय चुनावों के साथ कराते है।[5]

एक राष्ट्र एक चुनाव
ONE NATION ONE ELECTION

सकारात्मक प्रभाव	नकारात्मक प्रभाव
समय व संसाधन की बचत	लोकतंत्र के स्वरूप को हानि
सार्वजनिक धन की बचत	राज्यस्तरीय चुनावी मुद्दों की समाप्ति
शासन व विकास कार्यों पर ध्यान केन्द्रित होना	EVM व VVPAT के निर्माण व भण्डारण की समस्या
जातिवाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद में कमी	क्षेत्रीय दलों के अस्तित्व को खतरा
वरिष्ठ नौकरशाहों पर अतिरिक्त चुनावी भार के अभाव में स्वयं के उत्तरदायित्व पर ध्यान केन्द्रित होना	संघवाद के अस्तित्व को खतरा

भारत में 'एक राष्ट्र एक चुनाव विचार लागू करने हेतु कुछ व्यवहारिक तथ्य : भारत में अगर 'एक राष्ट्र एक चुनाव' का विचार लागू किया गया तो व्यवहारिक स्वरूप में एक राष्ट्र के प्रारूप में इसके बहुत अधिक लाभ भारत को होगें। अगस्त 2018 में भारत के विधि आयोग द्वारा एक साथ चुनावों पर निर्गत मसौदा रिपोर्ट के अनुसार, एक राष्ट्र एक चुनाव के अभ्यास से सार्वजनिक धन की बचत की जा सकती है। देश में एक साथ चुनाव होने से समय के साथ धन की भी बचत हो सकती है। बार-बार चुनाव कराने से राजनेता पूर्ण रूप से चुनावी राजनीति व चुनाव जीतने पर ध्यान देते हैं यदि एक साथ चुनाव होगें तो सरकारें शासन व विकास के कार्यों पर ध्यान केन्द्रित कर पाएगीं साथ ही आचार संहिता से नई योजनाओं व विकास कार्यों में आने वाली बाधा की प्रकृति भी कम हो पाएगी। विधि आयोग की रिपोर्ट के अनुसार यदि 2019 के चुनाव इसी व्यवस्था से होते तो नई ईवीएम के लिए 4,500 करोड़ रुपये की आवश्यकता होती, वर्ष 2024 में एक साथ चुनाव कराने के लिए पुरानी ईवीएम बदलने में 1,751 करोड़ रूपये, 2029 में 2,017 करोड़ और 2034 में 13,981 करोड़ रुपये खर्च करने होगें। एक साथ चुनाव कराने से मतदान प्रतिशत में वृद्धि सम्भव है एक अनुमान के अनुसार भारत में लोकसभा चुनाव में लगभग 67 प्रतिशत मतदान होता है वहीं विधानसभा व पंचायत चुनाव में यह आंकड़ा अधिक रहता है। लोकसभा व विधानसभा के चुनाव एक साथ कराने से मतदान प्रतिशत बढ़ सकता है।

'एक राष्ट्र एक चुनाव' विचार को लागू करने के समक्ष चुनौत्तियाँ व इसके नकारात्मक पक्ष : 'एक राष्ट्र एक चुनाव का विचार संघवाद की अवधारणा के विरुद्ध है क्योंकि यह इस धारणा पर आधारित है कि सम्पूर्ण राष्ट्र एक (संघ) है जो कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 1 द्वारा भारत को राज्यों के संघ के रूप में वर्णित विचार का खण्डन करता है। बार-बार होने वाले चुनावों के कारण चुनाव के बर्तमान स्वरूप को लोकतंत्र में अधिक लाभकारी माना जाता है क्योकि यह मतदाताओं की आवाज सुनने की अधिक बार अनुमति देता है। राष्ट्रीय व राज्य चुनावों में चुनावी विषय भिन्न-भिन्न होते हैं 'एक राष्ट्र एक चुनाव' राज्य स्तरीय चुनावी मुद्दों को समाप्त कर देगा जिससे एक नवीन समस्या का जन्म होगा। 'एक राष्ट्र एक चुनाव' का विचार राष्ट्रीय दलों को सशक्त कर सकता है व क्षेत्रीय दलों के अस्तित्व को संकट में डाल सकता है इससे राष्ट्रीय व राज्य राजनीति पर राष्ट्रीय दलों का एकाधिकार होने की पूरी संभावना है। एक साथ चुनाव कराने के लिए लगभग 30 लाख ई.वी.एम. और वीवीपैट मशीनों की आवश्यकता होगी तथा चुनावों के लिए मशीनों को एकत्र करने हेतु भण्डारण लागत में भी वृद्धि होगी जो एक अत्यन्त कठिन कार्य है। राष्ट्रीय व राज्य स्तर पर चुनावी विषय पृथक-पृथक होते हैं अगर एक साथ चुनाव होगें तो मतदाताओं द्वारा राष्ट्र को राज्य पर प्राथमिकता दी जा सकती है जिससे राज्य स्तर पर प्रभाव पड़ना तय है।[6]

भारत की संसदीय प्रणाली के अनुसार सरकार निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी है। यदि सरकार अपना कार्यकाल पूरा करने से पहले गिर जाती है तो चुनाव अनिवार्य है 'एक राष्ट्र एक चुनाव' को प्राप्त करने के लिए सरकार के संसदीय स्वरूप की इस अंतर्निहित विशेषता को संबोधित करना पड़ेगा।

सभी राजनीतिक दलों को 'एक राष्ट्र एक चुनाव' का समर्थन करने के लिए सहमत करना एक कठिन चुनौती है अलग-अलग राजनीतिक दलों के अलग-अलग हित और चिंताएं हो सकती हैं जिससे इस महत्वपूर्ण चुनाव सुधार पर आम सहमति बनाना चुनौतीपूर्ण हो जाता है।[7]

अलग-अलग चुनाव होने से देश की जनता की नब्ज हर समय मिलती रहती है जिसकी प्रतिछाया राज्यसभा के चुनाव में देखने को मिलती है सरकार की नीतियों का मूल्यांकन होता रहत्ता है तथा चुनाव के माध्यम से नेताओं और प्रतिनिधियों पर जनता का दबाव बना रहता है। राष्ट्रीय चुनाव में राष्ट्रीय हितों का मुद्दा अहम होता है जबकि राज्य चुनाव में स्थानीय धार्मिक मुद्दे सम्बन्धित होते हैं एक साथ नामांकन के कारण, राष्ट्रीय विषयों पर राज्य का दवादबा हो सकता है। एक देश एक चुनाव के लिए चुनाव प्रणाली को प्रदूषित करने का अर्थ लोगों की लोकतांत्रिक इच्छा को व्यक्त करने की शक्ति के साथ कलंक लगाना होगा।[8]

भारत में एक राष्ट्र एक चुनाव हेतु सिफारिशें : भारत में 'एक राष्ट्र एक चुनाव हेतु चुनाव आयोग ने वर्ष 1982 में लोकसभा च राज्य विधानसभाओं के चुनाव एक साथ कराने की संस्तुति की थी। वर्ष 1999 में जस्टिस बीपी जीवन की अध्यक्षता वाले विधि आयोग ने ड्रॉफ्ट रिपोर्ट में एक साथ चुनाव की बात की। वर्ष 2018 में

जस्टिस बीएस चौहान की अध्यक्षत्ता बाले विधि आयोग ने ड्रॉफ्ट रिपोर्ट में एक साथ चुनाव की बात की, साथ ही यह भी कहा कि संविधान के अनुच्छेद 83,85,172. 174 व 358 में संशोधन करने होगें। 2015 में संसद की स्थायी समिति ने दो चरणों में लोकसभा व राज्य की विधानसभा के चुनाव एक साथ कराने के बाद लोकसभा के मध्यकाल में बाकी राज्यों के चुनाव कराने का प्रस्ताव सम्मिलित था।[9]

'एक राष्ट्र एक चुनाव पर राजनीतिक दलों का मत : 'एक राष्ट्र एक चुनाव पर राजनीतिक दलों की राय बंटी हुई है। एक राष्ट्र एक चुनाव का प्रस्ताव भारतीय जनता पार्टी के 2014 और 2019 के घोषणापत्र का भाग था। अपने तीसरे कार्यकाल में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाली एन.डी.ए. सरकार ने लोकसभा और राज्य विधान सभाओं के लिए एक चुनाव कराने के प्रस्ताव को स्वीकृति देकर एक राष्ट्र एक चुनाव को साकार करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया है।[10]

भारतीय जनता पार्टी के लिए एक देश एक चुनाव अत्यन्त प्रासंगिक व महत्वपूर्ण विषय है। इस राजनीतिक दल ने एक राष्ट्र एक चुनाव की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए कुछ सुझाव दिए है।

(क) भारतीय जनता पाटी की सुविचारित राय है कि यदि हम एक राष्ट्र एक चुनाव के लक्ष्य को प्राप्त कर सके तो आधुनिक भारत के लोकाचार और आंकाक्षा को प्रतिबिंबित किया जा सकता है।

(ख) भारतीय जनता पाटी का यह भी मत है कि सभी चुनावों के लिए (लोकसभा, विधानसना और पंचायत) एक ही मतदाता सूची बनाने की दिशा में काम करना चाहिए।

(ग) भाजपा का यह भी मत है कि पंचायत के चुनाव राज्यों के चुनाव आयोग ही करें, लेकिन उसका समय लोकसभा, विधानसभा के साथ हो, हांलाकि इस पर दूसरे चरण के लिए विचार किया जा सकता है।

(घ) भाजपा का यह भी स्पष्ट मत है कि पहले चरण में हमें लोकसभा, विधानसभा के चुनाव एक साथ लेने की व्यवस्था तथा एक ही मतदाता सूची बनाने की दिशा में काम करना चाहिए।

चुनावी अनियमितता के आलोक में माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी द्वारा 'एक राष्ट्र एक चुनाव' सम्बन्धी विषय को कई बार सम्बोधित किया गया है जिसे देश भर में सकारात्मक समर्थन प्राप्त हुआ है भारत के पूर्व राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी ने 5 सितम्बर 2016 को समकालिक चुनाव आयोजित करने के विचार को स्पष्टता देते हुए कहा था- वर्तमान में पूरे वर्ष देश में कहीं न कहीं चुनाव हो रहे है और इस कारण से नियमित कार्य रुक जाते हैं क्योकि उस दौरान आचार संहिता लागू हो जाती है। इससे न केवल राज्यों के बल्कि केन्द्र सरकार के भी काम बंद हो जाते हैं। हमारी संसदीय नीतियों को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करके हमने जो अपनी क्षमता प्रमाणित की है यदि राजनीतिक दल चाहें तो राजनीतिक दलों के सभी सदस्यों को इस समस्या और राजनीतिक स्थिरता सुनिश्चित करने के मुद्दों के बारे में सोचना होगा।[11]

समाजवादी पार्टी, तेलंगाना राष्ट्र समिति, शिरोमणि अकाली दल जैसे राजनीतिक दलों ने 'एक राष्ट्र एक चुनाव' के विचार का समर्थन किया था, वहीं दूसरी तरफ डीएमके, तृणमूल कांग्रेस, सीपीआई, एआईयूडीएफ और गोवा फॉवर्ड पार्टी ने इस विचार का विरोध किया था। इस संबंध में कांग्रेस पार्टी का कहना था कि 'एक राष्ट्र एक चुनाव' पर वह अपना दृष्टिकोण अन्य राजनीतिक दलों से चर्चा करने के बाद निर्धारित करेगी।

एक राष्ट्र एक चुनाव हेतु गठित समिति की सिफारिशें : पूर्व राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविन्द की अध्यक्षता वाली एक उच्च स्तरीय समिति ने पहले कदम के अंतर्गत लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के लिए एक साथ चुनाव कराने की तथा इसके बाद 100 दिनों के भीतर एक साथ स्थानीय चुनाव कराने की सिफारिश की है, इस समिति ने अपनी सिफारिशों में कहा कि त्रिशंकु स्थिति या अविश्वास प्रस्ताव या ऐसी किसी स्थिति में नयी लोकसभा के गठन के लिए नए सिरे से चुनाव कराए जा सकते हैं, समिति ने कहा कि लोकसभा के लिए जब नये चुनाव होते हैं तो उस सदन का कार्यकाल ठीक पहले की लोकसभा के कार्यकाल के शेष समय के लिए ही होगा। समिति द्वारा कहा गया है कि जब राज्य विधानसभाओं के लिए नए चुनाव होते हैं तो ऐसी नयी विधान-सभाओं का कार्यकाल, अगर जल्दी भंग नहीं हो जाएँ-लोकसमा के पूर्ण कार्यकाल तक रहेगा। समिति के अनुसार इस तरह की व्यवस्था लागू करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 83 (संसद के दोनों सदनों की

अवधि) और अनुच्छेद 172 (राज्य विधानमण्डलों की अवधि) में संशोधन की आवश्यकता होगी। समिति का कहना है कि इस संवैधानिक संशोधन की राज्यों द्वारा पुष्टि किए जाने की आवश्यकता नहीं होगी। उसने यह भी सिफारिश की कि भारत निर्वाचन आयोग राज्य चुनाव अधिकारियों के परामर्श से एकल मतदाता सूची और मतदाता पहचान पत्र तैयार करें। समिति ने कहा कि इस उद्देश्य के लिए मतदाता सूची से सम्बन्धित अनुच्छेद 325 को संशोधित किया जा सकता है। फिलहाल, भारत निर्वाचन आयोग पर लोकसभा और विधानसभा चुनावों का उत्तरदायित्व है जबकि नगर निकायों और पंचायत चुनावों का उत्तरदायित्व राज्य निर्वाचन आयोगों पर है।[12]

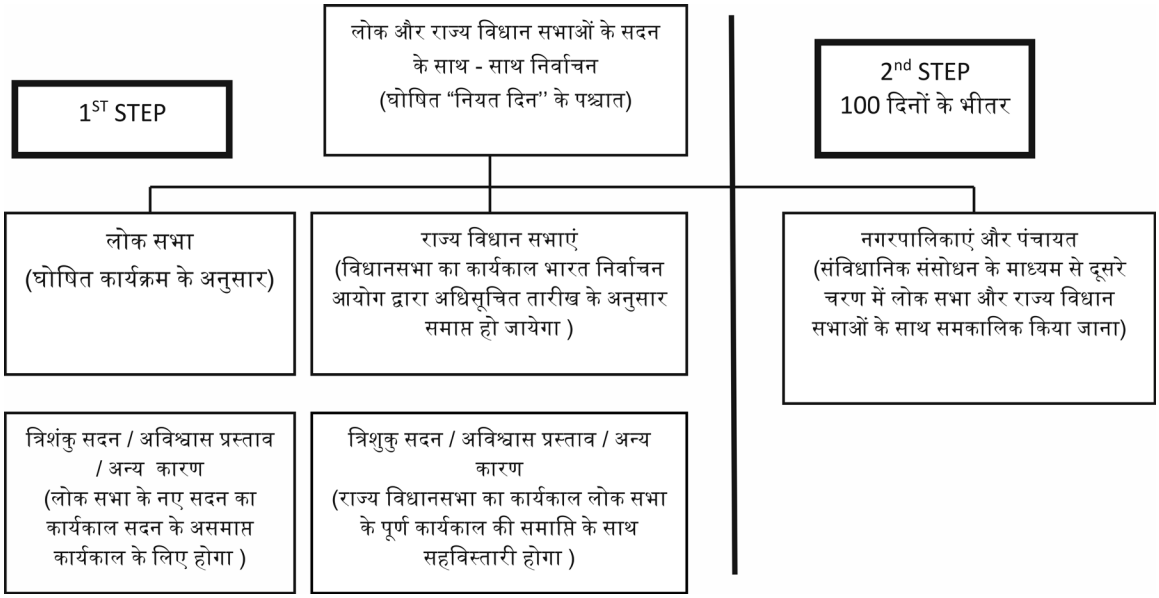

साभार BBC

'एक देश एक चुनाव' पर विशेषज्ञों का मतः ओपी रावत, जो चुनाव आयुक्त रह चुके हैं, एक देश एक चुनाव को लेकर उनका कहना है कि एक देश एक चुनाव के लिए सरकार को चार काम करने होंगे इसके लिए सबसे पहले संविधान के 5 अनुच्छेदों में संशोधन करना आवश्यक होगा, इससे विधानसभाओं के कार्यकाल और राष्ट्रपति शासन लगाने के प्रावधानों को बदलना होगा, जन प्रतिनिधित्व कानून और सदन में अविश्वास प्रस्ताव को लाने के नियमों को बदलना होगा। इसके लिए अविश्वास प्रस्ताव की जगह रचनात्मक विश्वास प्रस्ताव की व्यवस्था करनी होगी यानि अविश्वास प्रस्ताव के साथ यह भी बताना होगा कि किसी सरकार को हटाकर कौन सी नई सरकार बनायी जाएँ, जिसमें सदन को विश्वास हो ताकि पुरानी सरकार गिरने के बाद भी नई सरकार के साथ विधानसभा या लोकसभा का कार्यकाल पाँच साल तक चल सके। भारत के पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त एसवाई कुरैशी ने का कहना है कि अगर लोक सभा, विधानसभा और स्थानीय निकायों के चुनाव एक साथ कराएं जाएं तो इसके लिए वर्तमान संख्या से तीन गुना अधिक ई. वी.एम. की आवश्यकता पड़ेगी।

लोकसभा के पूर्व महासचिव और संविधान के जानकार पीडीटी अचारी के अनुसार एक देश एक चुनाव का मुद्दा व्यवहारिक है ही नहीं, इसके लिए एक आधार यह होना चाहिए कि देश की सारी विधानतमाएँ एक साथ भंग हों, जो कि संभव नहीं हैं, राज्य की विधानसभा समय से पहले भंग करने का अधिकार राज्य सरकार के पास होता है केन्द्र के पास नहीं, केन्द्र ऐसा तभी कर सकता है जब किसी कारणवश राज्य में अशांति हो या ऐसा कारण उपस्थित हो कि राज्य की विधानसभा को केन्द्र भंग कर सके और ऐसा सभी राज्यों में एक साथ नहीं हो सकता। उनका कहना है कि किसी भी राज्य की विधानसभा का कार्यकाल पूरा किए बिना भंग करने से संवैधानिक संकट खड़ा हो जाएगा। यह संघीय ढांचे के विरुद्ध होगा, जिसे छेड़ने का अधिकार संसद के पास नहीं है।

भारत के पूर्व मुख्य निर्वाचन आयुक्त एस.वाई. कुरैशी कहते हैं ''भारत में चुनाव कराने में करीब चार हजार करोड का खर्च होता है जो कि बहुत बड़ा नहीं है, जहाँ तक राजनीतिक दलों के करीब 60 हजार करोड़ के खर्च की बात है तो यह अर्थव्यवस्था के लिए अच्छा है इससे नेताओं और राजनीतिक दलों के पैसे गरीबों के पास पहुंचते हैं एस. वाई. कुरैशी याद करते हैं कि एक बार मैं किसी कार्यक्रम में गया था वहीं किसी ने एक नारा लगाया, ''जब-जब चुनाव आता है, गरीब के पेट में पुलाव आता है" यह गरीबों के लिए चुनाव का महत्त्व बताता है। राजनीतिक विद्वतजनों का मानना है कि एक राष्ट्र एक चुनाव का मुद्दा सुप्रीम कोर्ट तक भी पहुंच सकता है और सरकार के लिए इसकी राह आसान नहीं होगी।''[13]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि 'एक राष्ट्र एक चुनाव' का विचार भारत जैसे संघात्मक विविधतापूर्ण राष्ट्र के लिए व्यवहारिक स्वरूप में अत्यन्त कठिन प्रतीत होने वाला विचार लगता है किन्तु यह तथ्य भी स्मरणीय है कि परिवर्तन चाहे छोटा हो या बड़ा कभी भी बिना विवाद व विरोध के सम्भव नहीं है। यह मानवीय स्वभाव है जो परिवर्तन को कभी शान्ति से स्वीकार नहीं कर पाता। सैद्धांतिक व व्यवहारिक स्तर पर 'एक राष्ट्र एक चुनाव' के कुछ सकारात्मक व नकारात्मक पहलू भी है। यह कोई नवीन तथ्य नहीं है, हर तथ्य व विचार कुछ सकारात्मक व नकारात्मक प्रभाव लेकर आता है अगर सकारात्मक प्रभाव नकारात्मकता से अधिक है तो विचार बिना विवाद के लागू या अपनाने योग्य है सरकार को राष्ट्र के सन्दर्भ में सकारात्मक व नकारात्मक प्रभाव देखने होगें तभी एक राष्ट्र एक चुनाव का विचार धरातल पर लागू किया जा सकेगा।

सन्दर्भ

1. Franchise Committee Report, 1932.
2. https://wwwdrishtiias.com/hindi/daily-upcates/dailynewsanalysis /simultaneous- elections-3.
3. https://www-dhyeyaias.com/hi/currentaffairsdailycurrunt-affairs/one-nation- one-election.
4. https://wwwdrishtiias.com/hindi/daily-upcates/dailynewsanalysis /simultaneous-elections-3.
5. संवारिया,नरेन्द्र, 18 सितम्बर 2024, एक देश एक चुनाव (आलेख), दैनिक जागरण।
6. जजवाडे, चन्दन कुमार, 6 सितम्बर 2023, 'एक देश एक चुनाव लागू करने से क्या भारत में संवैधानिक संकट खड़ा होगा', बी.बी.सी हिंदी।
7. https://www-dhyeyalas.com/hi/currentaffairsdailycurrunt-affairs/one-nation-one election.
8. https://www-sanskritiias-com/hindi/current affairs/one-nation-one-clection- 27.
9. सैनी, गुरप्रीत, 28 नवम्बर 2020, 'प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी वन नेशन वन इलेक्शन की पैरवी क्यों करते हैं', बी.बी.सी हिंदी।
10. श्रीनिवासन,चन्द्रशेखर,18 सितम्बर 2024, 'एक साथ चुनाव कराने की दिशा में बड़ा कदम उठाते हुए कैबिनेट ने 'एक राष्ट्र, एक चुनाव' को मंजूरी दी' (आलेख), एन.डी.टी.वी.इंडिया।
11. नड्डा, जगत प्रकाश (राष्ट्रीय अध्यक्ष, भारतीय जनता पार्टी), 20 फरवरी 2024, 'उच्च स्तरीय समिति द्वारा आमंत्रित सुझाव पर भारतीय जनता पार्टी का दृष्टिकोण'।
12. वर्मा, वन्दना सम्पादकीय, 14 मार्च 2024, 'एक राष्ट्र एक चुनाव क्या है और कैसे करेगा काम', NDTV.
13. जजवाडे,चन्दन कुमार, पूर्वोक्त,

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

राजपूतकालीन मध्य तथा पश्चिम भारत में उद्योग तथा व्यवसायिक वर्ग : एक ऐतिहासिक अध्ययन

❑ डॉ. सुरभि श्रीवास्तव

सूचक शब्द : श्रेणी, गोष्ठी, शिल्पकार, वणिक, सार्थवाह, वीथि।

प्राचीन भारतीय इतिहास के कालक्रम में हर्ष के उपरान्त स्थूल रूप से लगभग 8वीं-12वीं शताब्दी ई0 (सांस्कृतिक रूप से कभी-कभी 13वीं शताब्दी ई0) तक का काल उत्तर भारत की राजनीति में राजपूत काल के नाम से जाना जाता है। पश्चिमोत्तर तथा मध्य भारत में गुर्जर प्रतिहार राजवंश ने आठवीं से दसवीं शताब्दी ई0 के मध्य सबसे बड़ा साम्राज्य स्थापित किया और इस वंश के पतन के उपरान्त विभिन्न छोटे राजपूत वंशों ने पश्चिम में गुजरात, राजस्थान के कुछ भाग तथा मध्य भारत में मालवा, बुन्देलखण्ड, आधुनिक जबलपुर का क्षेत्र तथा गंगा के मैदान में अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। अधिकांशतः ये राजवंश परस्पर भी संघर्षरत रहते थे। यह काल न केवल राजनीतिक रूप से अपितु भारतीय जीवन के प्रत्येक पक्ष में उथल-पुथल का काल था। विदेशी आक्रमणों में इस्लाम लगातार भारतीय भू-भाग के भीतरी भागों पर भी अपनी पकड़ बनाता जा रहा था, किन्तु आर्थिक गतिविधियाँ मानव जीवन के लिए अनिवार्य हैं, उक्त विषम परिस्थितियों में भी हमें तत्कालीन ऐतिहासिक स्रोतों में यथा-अभिलेखों तथा साहित्यिक कृतियों में उन आर्थिक क्रियाकलापों की कभी विस्तृत चर्चा तो कभी संकेत प्राप्त हो जाता है जिनके द्वारा जनसामान्य जीवन यापन कर रहा था। पश्चिम भारत का क्षेत्र प्राचीन काल से ही अपनी व्यापार-वाणिज्य की गतिविधियों के लिए जाना जाता था और समकालीन स्रोत हमारी अधीत काल के उद्योगों पर हमें यदा-कदा सूचित कर देते हैं। मध्य भारत का क्षेत्र यद्यपि कृषि प्रधान था तथापि यहाँ भी अनेक उद्योगों के साक्ष्य तत्कालीन स्रोतों में उपलब्ध होते हैं। कुछ उद्योग तो कृषि पर आधारित थे, जैसे- तेल उद्योग, वस्त्र उद्योग (कपास), इत्र उद्योग आदि।

विभिन्न प्रकार के आर्थिक क्रियाकलाप मानव जीवन का अभिन्न अंग हैं। अपने अस्तित्व की रक्षा मात्र के लिए भी मानव को अनेक प्रयत्न करने पड़ते हैं। मानव समुदाय की अनवरत विकास यात्रा में आर्थिक क्रियाकलापों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

भौगोलिक रूप से आधुनिक बुन्देलखण्ड तथा मालवा का क्षेत्र जो उत्तर मध्य भारत में अवस्थित है, उत्तर तथा दक्षिण भारतीय क्षेत्रों के बीच एक द्वार के रूप में चिन्हित किया जा सकता है जहाँ से उत्तर तथा दक्षिण भू भाग के शासकों ने न केवल एक दूसरे के क्षेत्रों को अपदस्थ करने का प्रयास किया अपितु इन्हीं दोनों क्षेत्रों से उत्तर तथा दक्षिण भारत के बीच सुगम व्यापार भी संभव हुआ। प्रस्तुत शोध पत्र में मध्य भारत तथा पश्चिम भारत के क्षेत्रों में 8वीं शताब्दी ईस्वी के काल में, जिसे भारतीय इतिहास में राजपूत काल की संज्ञा दी गई है, विद्यमान विविध उद्योगों तथा अन्य आर्थिक क्रियाकलापों का ऐतिहासिक स्रोतों के आधार पर अध्ययन करने का प्रयास किया गया हैं। अधीत काल में मध्य भारत के भौगोलिक क्षेत्र के अंतर्गत आधुनिक उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश का भू भाग सम्मिलित था जबकि पश्चिम भारतीय क्षेत्र का निर्माण आधुनिक गुजरात, महाराष्ट्र तथा राजस्थान के आंशिक भू भाग द्वारा किया जाता था। मध्य भारत में मालवा तथा बुन्देलखण्ड के क्षेत्रों पर सर्वप्रथम साम्राज्यवादी प्रतिहार वंश का शासन रहा जिन्होंने कालान्तर में कन्नौज को अपने अधीन कर उसे अपने साम्राज्य की राजधानी बनाया। 8वीं से 10वीं शताब्दी ईस्वी के मध्य गुर्जर प्रतिहार वंश का शासन सम्पूर्ण उत्तर-मध्य भारत, गुजरात तथा राजस्थान के कुछ भागों पर रहा। इस शक्तिशाली राजवंश के पतनोन्तुख होने पर मध्य भारत स्थित मालवा का क्षेत्र परमार राजवंश तथा बुन्देलखण्ड का क्षेत्र चन्देल राजवंश, जबलपुर क्षेत्र कलचुरि राजवंश के अधीन हो गया जबकि पश्चिम भारत में चौलुक्य एक प्रमुख राजवंश के रूप में स्थापित हुआ। उक्त प्रमुख राजवंशों के अतिरिक्त मध्य भारत के क्षेत्र में कच्छपघात तथा यज्वपाल छोटे राजवंशों में रूप में सीमित क्षेत्र में राज्य कर रहे थे वहीं मेवाड़ क्षेत्र में गुहिल वंश भी स्थापित था।

ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में उक्त सभी राजवंशों के उपलब्ध अभिलेखों का अध्ययन तो किया ही गया है साथ

❑ असिस्टेण्ट प्रोफ़ेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास, डा0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

ही तत्कालीन प्रमुख साहित्यिक कृतियों के अनुशीलन से प्राप्त सामग्री का भी समुचित समावेश किया गया है। यद्यपि इन अभिलेखों में स्पष्ट रूप से तत्कालीन उद्योगों के विषय में कोई स्पष्ट सूचना प्राप्त नहीं होती किन्तु शिल्पियों, वणिकों, वीथिकाओं तथा यदा-कदा व्यापार-वाणिज्य से सम्बन्धित राजस्व के स्रोतों के उल्लेख से तत्कालीन अधीत क्षेत्रों में आर्थिक क्रियाकलापों का भान होता है। शोध की दृष्टि से केवल उन्हीं अभिलेखों तथा साहित्यिक ग्रंथों का अध्ययन किया गया है जो शोध विषय पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं।

आर्थिक अध्ययन की दृष्टि से उद्योगों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- प्राथमिक उद्योग- वे उद्योग जो मुख्यतः कृषि तथा खानों (खनन) से सम्बन्धित हों। **द्वितीयक** उद्योग- इस वर्ग में वे उद्योग सम्मिलित हैं जिनमें निर्माण के लिए भारी मशीनों की सहायता ली जाती है, साथ ही हर प्रकार के कुटीर उद्योग भी इसके ही अंतर्गत आते हैं।

तृतीय वर्ग (Tertiary) - इस वर्ग के अंतर्गत कतिपय ऐसे व्यवसायों की गणना की जाती है जैसे- ऋण देने वाले आदि, जिनके विषय में सभी अभिलेख पूर्णतया मौन हैं। **8वीं शताब्दी** ईस्वी से 13-14 वीं शताब्दी ईस्वी के अभिलेखों में हमें वणिकों (व्यापारियों) के कई वर्गों का उल्लेख प्राप्त होता है, यथा-श्रेष्ठी[1] (व्यापारियों का प्रमुख अथवा बड़ा व्यापारी), सार्थवाह प्रमुख[2] (कारवाँ व्यापारियों का प्रमुख) पक वणिक[3] (थोक का व्यापारी) आदि। वणिकों के उक्त वर्गीकरण से हमें तत्कालीन अधीत क्षेत्र में होने वाले क्रियाकलापों का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त मध्य तथा पश्चिम भारतीय क्षेत्रों पर राज्य करने वाले राजपूत वंशों के अभिलेखों से विभिन्न प्रकार के शिल्पियों तथा व्यवसायिक वर्गों का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है जिनकी उपस्थिति से उनसे सम्बन्धित उद्योगों की स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है, यथा- कुम्भकार[4], तैलक[5] (तेली), नेमक वणिक्[6] (नमक का व्यापारी), कल्लपाल[7] (मद्य निर्माता), कांस्यकार[8] (ठठेरा), शिलाकूट[9], वास्तुशास्त्रज्ञ[10], रूपकार[11], सूत्रकार[12], शिल्पी[13] (राजगीर), ताम्बोलिक[14] (पान विक्रेता), मालाकार[15] इत्यादि। इसके अतिरिक्त कतिपय अभिलेखों में उन वस्तुओं का उल्लेख राजस्व के संदर्भ में प्राप्त होता है जिन पर राज्य द्वारा किसी प्रकार का उत्पादन शुल्क अथवा वाणिज्यिक कर लगाया जाता था। जैसे कलचुरि शासक युवराजदेव द्वितीय का बिल्हारी अभिलेख[16] शुल्क योग्य वस्तुओं की सूची में नमक, सुपारी, काली मिर्च तथा सूखी हुई अदरक का उल्लेख करता है जिनसे इन वस्तुओं के उत्पादन का ज्ञान होता है। कभी-कभी किसी विशिष्ट बाज़ार के अभिलेखीय उल्लेख से न केवल उस विशिष्ट वस्तु की उत्पादित मात्रा का भान होता है बल्कि उसके व्यापारिक परिमाण का भी ज्ञान होता है, जैसे- दोसीहट्ट[17] (वस्त्र बाज़ार), कल्लपाल-हट्ट[18] (मद्य बाज़ार), कंसारक-वीथी (कांस्यकार विपणन केन्द्र) आदि, जो सीयडोणि अभिलेख में स्पष्ट रूप से वर्णित हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र में मध्य तथा पश्चिम भारत में पूर्व मध्य काल में प्रचलित प्रमुख उद्योगों तथा व्यवसायों पर क्रमबद्ध रूप से प्रकाश डाला जा रहा हैं।

तेल उद्योग

मध्य भारत के तत्कालीन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि यह इस क्षेत्र का एक प्रमुख उद्योग था। जहाँ तेलियों के लिए तैलिक तथा घाणक[19] जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है वहीं तेल निकालने के यंत्र के रूप में 'तिलपिषक यंत्र' तथा 'कोल्हुक'[20] जैसे शब्द अभिलेखों में प्रयुक्त किये गये हैं। प्रतीत होता है कि तेल का उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता था जैसा कि कलचुरि नरेश युवराजदेव द्वितीय के बिल्हारी अभिलेख[21] के संदर्भ से ज्ञात होता है कि प्रत्येक तेल निकालने वाले यंत्र पर नगर की मण्डपिका में एक षोडशिका (मुद्रा) राजस्व के रूप में जमा किया जाता था। वैल्लभट्ट स्वामी मंदिर अभिलेख[22] तथा सीयडोणि प्रस्तर अभिलेख[23] में तैलकों के ऐसे समूहों का वर्णन प्राप्त होता है जिनके कई प्रमुख थे। इन संदर्भों से तैलिकों के निगमों के रूप में संगठित होने का ज्ञान होता है जिन्हें प्राचीन भारत में तैलिक श्रेणी (Guilds) की संज्ञा दी गई थी। इन तैलिक श्रेणियों के प्रमुखों (अध्यक्षों) को 'तैलिक महत्तक' या 'महत्तर' कहा जाता था। अभिलेखों में प्रयुक्त उक्त शब्दों के प्रयोग से पूर्व मध्य काल में इस क्षेत्र (मध्यभारत) में तेल उद्योग की विकसित अवस्था पर प्रकाश पड़ता है। आधुनिक उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में विस्तृत बुन्देलखण्ड क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति, मृदा-प्रारूप तथा कम वर्षा के क्षेत्रीय वितरण सम्बन्धी जानकारी से ज्ञात होता है कि यह समस्त परिस्थितियाँ सरसों, अलसी, तिल आदि की फ़सल के लिए अनुकूल है। प्रसिद्ध ब्रिटिश इतिहासकार ए0एल0 बाशम[24] का मत है कि 'तैल' शब्द की उत्पत्ति

'तिल' से हुई है। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में 'महुआ' वृक्षों की प्रधानता आज भी है और इसके बीजों से भी तेल निकाला जाता है जिसका प्रयोग स्थानीय लोग खाद्य पदार्थों में करते हैं साथ ही महुआ के तेल के औषधीय गुण भी भारतीय समाज में पारम्परिक रूप से ज्ञात हैं। **यद्यपि किसी** भी अभिलेखीय साक्ष्य से इस तथ्य की पुष्टि नहीं होती कि यह उद्योग, राज्य द्वारा संचालित था या नहीं किन्तु राज्य इस वस्तु पर उत्पादन तथा बिक्री कर जैसा राजस्व अवश्य वसूल करता था जैसा कि उपर्युक्त बिल्हारी अभिलेख में विवृत है।[25] विक्रम संवत् 1189 की तिथि युक्त रायपाल के नडलाई प्रस्तर अभिलेख से ज्ञात होता है कि गुजरात से सटे हुए राजस्थान के क्षेत्र में तेल उत्पादक केन्द्रों पर राज्य द्वारा कुछ शुल्क लगाया गया था। स्पष्ट है कि तत्कालीन भारत के कुछ भागों में इस प्रकार का राजस्व वसूल किया जाता था। अतः हम इस संभावना को पूर्णतया अस्वीकार नहीं कर सकते कि हमारे द्वारा विवेच्य क्षेत्रों में भी इस प्रकार का शुल्क, राज्यों द्वारा वसूल किया जाता होगा क्योंकि साम्राज्यवादी प्रतिहारों का शासन मध्य भारत से ले कर आधुनिक राजस्थान के कतिपय क्षेत्रों तक विस्तृत था।

विक्रम संवत् 1084 तिथि युक्त शेरगढ़[26] से प्राप्त एक अभिलेख में 'तैलिक-राज' शब्द के प्रयोग से यह अनुमान लगा पाना दुष्कर नहीं है कि तेलियों की श्रेणी इस काल में गुजरात क्षेत्र में भी अस्तित्व में थी। ए0के0 मजुमदार अपनी पुस्तक 'चौलुक्याज़ ऑफ़ गुजरात'[27] में लिखते हैं कि गुजरात में व्यापारिक श्रेणियाँ प्राचीन काल से ही विद्यमान थीं तथा चौलुक्यों के अधीन इनकी देख-रेख के लिए एक शासकीय विभाग था जो 'श्रेणी-करण' नाम से जाना जाता था। ई0 993-1016 के बीच आचार्य अमितगति द्वारा रचित ग्रंथ 'जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति'[28] एक स्थान पर 18 श्रेणियों का उल्लेख करता है जो संभवतः उस काल में अस्तित्व में थीं :- 1. कुम्भकार, 2. पट्टैल (पटेल), 3. सुवष्णकार (स्वर्णकार), 4. सूवकार (सुपकार-रसोइया), 5. गन्धण्व (गंधर्व-संगीतकार), 6. कासवग (काश्यप-नाई), 7. मालाकार (माली), 8. कच्छकार (रस्सी बुनने वाले), 9. ताम्बोलिअ (ताम्बूलिक-सुपारी के उत्पादक व विक्रेता) 10. चम्मयरू (चर्मकार-चमड़े का कार्य करने वाले), 11. जन्तपिलग (यन्त्रपीड़क -(गन्ने का) रस निकालने वाले) 12. गाचिया (हेमचन्द्र के अनुसार यह वरूड अर्थात् निम्न कुल के व्यक्ति के लिए प्रयुक्त) 13. चिम्पाय (वस्त्र पर छपाई करने वाले) 14. कांस्कार (कांस्यकार) 15. सीवग (दर्जी) 16. गुआर (गोपाल-ग्वाला) 17. भिल्ल (एक कबीला) 18. धीवर (मछुआरा)

प्रस्तर उद्योग

अधीत काल में भवन, मन्दिर आदि के निर्माण हेतु सर्वाधिक टिकाऊ सामग्री के रूप में प्रस्तर का प्रयोग होता था। मध्य भारत तथा पश्चिम भारत में न केवल आवासीय भवनों के निर्माण हुए तथा बड़े नगर यथा-अणहिलपाटक, कैम्बे, धवलक्क तथा भड़ौंच जैसे नगर विशाल भवनों से सज्जित थे वहीं विशाल तथा भव्य मन्दिरों के निर्माण का साक्षी भी यह काल बना जिनमें देव प्रस्तर प्रतिमाओं का निर्माण भी सम्मिलित था। केवल खजुराहो (चन्देलों की राजधानी) से ही 84 मन्दिरों का समूह अभी तक प्रकाश में आ चुका है और मन्दिर-मूर्ति निर्माण परम्परा प्रत्येक राजवंश के अधीन निर्बाध रूप से गतिमान रही। प्रतीहार कालीन सीयडोणि अभिलेख[29] पत्थर काटने वालों के एक विशेष वर्ग 'शिलाकूट' का उल्लेख करता है तो संभवतः पत्थर-खदान में कार्य करते थे उसी प्रकार डुबकुण्ड अभिलेख[30] एक ऐसे शिलाकूट का उल्लेख करता है जो शिला पर अभिलेख उत्कीर्ण करता था। चंदेल शासकों के अनेक अभिलेखों में हमें रूपकार[31], शिल्पी[32], सूत्रकार[33], सूत्रधार[34], वास्तुशास्त्रज्ञ[35] आदि का उल्लेख यत्र तत्र प्राप्त होता रहता है। प्रतिहार शासक महेन्द्रपाल के राजदरबार में उपस्थित रहने वाले राजकवि तथा विद्वान राजशेखर कारीगरों की एक ऐसी श्रेणी का उल्लेख करते हैं जो निर्माण कार्य से सम्बद्ध थी और 'चित्र-लेप्य-कृत'[36] (राजमिस्त्री) के नाम से जानी जाती थी। नवीं शताब्दी ईस्वी में हुए मेधातिथि[37] जो मनुस्मृति के प्राचीनतम भाष्यकार हैं अपने ग्रंथ मनुभाष्य में 'स्थपति' शब्द की व्याख्या करते हुए उसे 'वास्तुविद्याजीविन्' बताते हैं अर्थात् जो अपनी जीविका वास्तुकार, राजमिस्त्री के रूप में अर्जित करता है। प्रतिहारों के ही एक अन्य अभिलेख[38] से हमें 'स्थपति' (राजमिस्त्री) का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

धातु उद्योग

अधीत काल के ऐतिहासिक अभिलेखीय स्रोतों में हमें स्वर्ण, रजत, ताम्र तथा काँसे- इन चारों धातुओं का उल्लेख यत्र-तत्र प्राप्त होता है किन्तु लौह के उल्लेख का कोई अभिलेखीय प्रमाण उपलब्ध नहीं है यद्यपि लौह धातु

की महत्ता व उसके व्यापक प्रयोग पर कोई शंका नहीं की जा सकती।

प्रतिहार कालीन सीयडोणि अभिलेख विक्रम संवत् 960 तथा विक्रम संवत् 964 तिथियुक्त एक काँस्यकार का स्पष्ट उल्लेख करता है। विवेच्य काल में सर्वाधिक प्रयुक्त की जाने वाली धातु ताम्र (ताँबा) थी क्योंकि अधीत क्षेत्रों से बहुसंख्यक भू-दान ताम्र पत्र अभिलेख[39] प्रकाश में आए हैं इसके अतिरिक्त इस काल के सभी राजवंशों द्वारा ताम्र मुद्राएं (सिक्के) भी जारी किए गए थे जो इस धातु के व्यापक प्रसार का ठोस प्रमाण हैं। ग्वालियर से प्राप्त विक्रम संवत् 1150 का महिपाल का प्रस्तर अभिलेख[40] शासक द्वारा देवता हरि, अनिरूद्ध तथा अच्युत को भेंट में दी गई उन वस्तुओं की सूची देता है जो विभिन्न धातुओं से निर्मित की गई थीं, जिनमें स्वर्ण, पीतल, रजत तथा ताम्र धातुएं सम्मिलित थीं। अभिलेख में विवृत है कि आभूषणों के अतिरिक्त भेंट दी गई वस्तुओं में सम्मिलित थीं नैवेद्य हेतु पीतल की चार तश्तरियाँ, ताम्र निर्मित (देवता के स्नान हेतु) दो चिलमची तथा दो ताम्र पात्र (अर्ध्य अर्पण करने हेतु) सात घंटियाँ धूपदानी सहित, आरती हेतु पात्र, सात शंख, चार ताम्र पात्र, काँसे का वधाधा (संभवतः पात्र का एक प्रकार), दो काहला (पात्र), एक चौरी (मक्खियों को दूर रखने हेतु) और दो छड़ियाँ जिनमें से एक काँसे की व दूसरी स्फ़टिक से निर्मित थी। खाद्य पदार्थों को पकाने के लिए ताम्र निर्मित दो केतलियों, दो घड़े, पाँच बल्टियों सहित एक चमचा भी दान में दिया गया था।[41] ये सभी वस्तुएं ताम्र निर्मित थीं। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में स्थित जखौरा नामक स्थान आज भी धातु उद्योग के लिए प्रसिद्ध है।

खजुराहो स्थित चन्देल कालीन मंदिरों में उत्कीर्ण प्रतिभाओं को नाना प्रकार के आभूषणों से सज्जित प्रदर्शित किया गया है। स्वर्णाभूषणों को भी विभिन्न रत्नों से जटित निर्मित किया जाता था जैसा कि कच्छपघात वंश के एक अभिलेख[42] से ज्ञात होता है कि शासक द्वारा देवताओं को कुछ आभूषण अर्पित किए गये थे। उनका वर्णन करते हुए अभिलेख में एक स्वर्ण छत्र का उल्लेख आता है जिस पर अनके कीमती रत्न जड़े थे जिनके मध्य में एक बड़े आकार का रत्न जड़ा था। अग्रभाग पर पन्ने जड़ित थे। स्वर्ण हार भी कीमती रत्नों से जड़ित था। युगल भुजबन्द पर भी रत्न जड़े थे। चार कंगन भी रत्नों से युक्त थे। ऐसे ही आभूषणों का एक पूरा जोड़ा जो पूर्णतया स्वर्ण निर्मित था वह एक अन्य देवता अनिरूद्ध को अर्पित किया गया था। इसके अतिरिक्त अच्युत नाम देवता को चार कंगन (वलय), तालपट्ट का एक जोड़ा, स्वर्ण की मूठ वाला एक कृत्तिदर (संभवतः मुष्टिका हेतु कोई आभूषण), रजत निर्मित एक बंडी (वस्त्र) तथा चार कचोल के साथ-साथ देवता के परिचारक हेतु भी राजा महीपाल द्वारा कुछ अन्य भेंट भी अर्पित की गई थी, जिसका उल्लेख उक्त अभिलेख में प्राप्त होता है।[43] प्रतीहार नरेश महेन्द्रपाल द्वितीय के राजदरबार के मूर्धन्य कवि राजशेखर द्वारा भी अपने ग्रंथों में माणिक्यबन्धक, सुवर्णकार आदि का उल्लेख यत्र तत्र किया गया है। उक्त उल्लेखों से स्पष्ट है कि अधीत काल में स्वर्ण में आभूषणों का निर्माण किया जाता था, उनमें कीमती रत्न तथा पत्थर भी जड़े जाते थे, क्योंकि न केवल ऐसे विभिन्न आभूषणों अपितु उन पर कार्य करने वाले शिल्पियों का भी उल्लेख बहुधा तत्कालीन ऐतिहासिक स्रोतों में प्राप्त होता है। इसी काल में गुजरात भूमि पर लिखे गये एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ अभिधानचिन्तामणि[44] में स्वर्ण के लिए प्रयुक्त होने वाले अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग प्राप्त होता है, यथा-स्वर्णम्, सुवर्णम्, हेम, हिरण्यम्, हटकम्, वसु, काचनम्, अष्टपदम्, कल्याणम्, कनकम्, महारजतम् गंगेयम्, रूकमम्, लोहोत्तमम्, वह्निबीजम्, गरूडम्, गरिकम्, जातरूपम्, तपनीयम्, चामीकरम्, जम्बूनादम्, शतकुम्भम्, रजतम्, भूरि, भूत्तमम् तथा कलाधौतम्। किन्तु इस काल में स्वर्ण मुद्राओं का उल्लेख नहीं मिलता है। इस काल का सर्वाधिक प्रचलित सिक्का द्रम्म था जो रजत निर्मित होता था। द्रम्म के अनेक मूल्यवर्ग के सिक्के प्रचलित थे। स्पष्ट है कि धातुओं में स्वर्ण के साथ-साथ रजत का भी प्रयोग विभिन्न रूपों में किया जाता था। राजपूतकाल राजनीतिक रूप से उथल पुथल का भी काल था। अरबों के रूप में न केवल विदेशी आक्रमणकारी भारत भूमि पर निरन्तर धावा बोल रहे थे बल्कि राजपूत राजवंश परस्पर भी बहुधा संघर्षरत रहते थे। ऐसी परिस्थितियों में लोहे के बने भाले, कवच, तलवारें आदि जैसे अस्त्र शस्त्र बेहद मांग में थे जिसने लौह उद्योग को विकसित होने का पर्याप्त अवसर दिया साथ ही क्योंकि भारत हमेशा से एक कृषि प्रधान देश रहा है तो कृषि में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न उपकरण यथा-हल का फाल, हंसिया, खुरपी, फावड़ा, कुल्हाड़ी आदि का निर्माण भी जन सामान्य के

प्रयोग हेतु किया जा रहा था, साथ ही विभिन्न विशाल मंदिरों तथा भवनों की नक्काशी में प्रयुक्त होने वाले छेनी, हथोड़ी जैसे उपकरण भी निर्मित किए जा रहे थे, जो लौह उद्योग की उन्नत अवस्था का द्योतक हैं। लोहे के व्यापक प्रयोग का प्रमाण हमें अपने अधीत काल के पूर्व ही लिखे गए गुप्तकालीन ग्रन्थ अमरकोश[45] से प्राप्त होता है, जिसमें लौह के अनेक पर्यायवाची शब्द प्राप्त होते हैं, यथा-लोहो, अस्त्री, शस्त्रकम्, तीक्ष्णम्, पिण्डम्, कलायसम् आदि। उक्त ग्रन्थ लौह अयस्क का भी उल्लेख करते हुए उसे अश्मसारो, अथ, मण्डूरम्, सिंहणमपि तथा तन-मले आदि विभिन्न नामों से उद्धृत करता है। स्पष्ट है कि हमारे अधीत काल में धातु उद्योग अत्यन्त विकसित उद्योग के रूप में स्थापित था।

चर्म शोधन तथा चर्म उद्योग

1288-1292 ई0 में भारत आए इतालवी व्यापारी मार्को पोलो के विवरण से अधीत काल में पश्चिम भारत के उक्त उद्योग पर प्रकाश पड़ता है। मार्को पोलो के अनुसार बहुत बड़ी संख्या में गुजरात में खालों (जानवरों की) का शोधन किया जाता था।[45] ये खालें भेड़ों, भैंसों, साँड़ों तथा संभवतः गैंडों और अन्य पशुओं की होती थीं। इतालवी यात्री लिखता है कि गुजरात के बंदरगाहों से उनके समुद्री जहाज जिनमें शोधित किया चर्म लदा होता था, यात्रा पर निकलते थे।[46] चर्म शोधन के उपरान्त उनसे जूते निर्मित किए जाते थे। 943 ई0 में मसूदी भी खम्भात में निर्मित चप्पलों की प्रसिद्धि की बात करता है। **इसी काल** में चालुक्य शासक कुमारपाल के संरक्षण प्राप्त प्रसिद्ध जैन विद्वान आचार्य हेमचन्द्र सूरि अपने ग्रंथ देशीनाममाला में चर्म उद्योग से जुड़े अनेक उत्पादों, उत्पादकों, कारीगरों का उल्लेख करते हुए चमड़े से बने थैले (बैग) जिसमें पानी भरा जाता था और सामान्य भाषा में जिसे 'चिरिक्का' पुकारा जाता था, की व्याख्या करते हुए उसे 'चर्म-मय-जल भाण्डम्' कहते हैं। वहीं चमड़े की बनी बोतलें जो तेल रखने के लिए प्रयुक्त होती थीं और सामान्य जन उसे 'टुप्पो' कहते थे, जिसे विद्वान आचार्य ने 'कुटुप' कहा है।[47]

निर्यात की दृष्टि से गुजरात में निर्मित होने वाली चमड़े की चटाई सर्वाधिक महत्वपूर्ण उत्पाद था। मार्को पोलो अपने, यात्रा वृत्तान्त में लिखता है कि गुजरात में बनने वाली लाल व नीले रंग के चमड़े की चटाइयों जिन पर सुनहरे तथा सफ़ेद, एवं सफ़ेद चाँदी के धागों से पशुओं व पक्षियों की आकृतियों की कढ़ाई की जाती थीं इतनी सुन्दर थीं कि उन्हें देखना भर ही अत्यन्त अद्भुत था। मार्को पोलो एक जगह गुजरात का उल्लेख करते हुए लिखता है कि उस राज्य में (गुजरात में) विश्व के सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्तम चमड़ा उत्पाद बनते हैं जो बेहद कीमती भी हैं।[48] किन्तु मध्य भारत से प्राप्त ऐतिहासिक स्रोतों में हमें चर्म उद्योग का उल्लेख प्राप्त नहीं होता, संभवतः इस क्षेत्र में यह उद्योग उतनी उन्नत अवस्था में नहीं रहा होगा जितना कि पश्चिमी भारतीय क्षेत्र में।

शर्करा उद्योग

अधीत काल के साहित्यिक स्रोतों में हमें गन्ने से निर्मित उत्पादों यथा-जूस तथा गुड़ का उल्लेख बहुधा प्राप्त होता है।[49] हेमचन्द्र कृत देशीनाममाला में इक्षु (गन्ने) वाले उत्पादों को बनाने वाले श्रमिक का उल्लेख आता है जिसे सामान्यजन 'तूओ' के नाम से जानता था और हेमचन्द्र ने इसकी व्याख्या 'इक्षु कर्मकर' के रूप में की है।[50] यह देखना दिलचस्प है कि आचार्य हेमचन्द्र सूरि कृत देशीनाममाला प्राचीन भारतीय साहित्य में एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है जिसमें गन्ने से जूस निकाल जाने वाले यन्त्र का उल्लेख (इक्षु-निपीड़न-यन्त्रम्)[51] मिलता है। इसके साथ ही शर्करा निर्मित करने की प्रक्रिया के सन्दर्भ में इसे ग्रन्थ में 'णन्दम्' का उल्लेख लकड़ी की ऐसी छड़ी के रूप में आया है जिससे गन्ने को निचोड़ा जाता था (इक्षु निपीड़न काण्डम्)[52] और 'पीड़म' तथा 'कोल्हुआ' इक्षु को दबाने वाले यन्त्र के रूप में उल्लिखित हैं। हमें यह भी ज्ञात होता है कि सम्भवतः ये यन्त्र, बाँस से निर्मित थे या कम से कम इनका एक हिस्सा तो निश्चितरूपेण बाँस से निर्मित था।

अधीत काल के मध्य भारत के अभिलेखों में तो कम से कम ऐसे उद्योग का उल्लेख नहीं आता किन्तु यह मात्र परिस्थितिवश भी हो सकता है कि ऐसे किसी उल्लेख की आवश्यकता ही न पड़ी हो। किन्तु परमार काल की साहित्यिक कृति धनपाल रचित तिलकञ्मंजरी में हमें 'इक्षुरस' (गन्ने का रस) का उल्लेख अवश्य प्राप्त होता है।[53(अ)] वहीं वागड़ के परमार चामुण्डराज के विक्रम संवत् 1136 के अर्थूणा अभिलेख में खाण्ड व गुड़ उल्लेख किया गया है जिस पर कर लगाया गया था।[53(ब)]

नमक उद्योग

मानवीय भोजन में लवण या नमक एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अवयव है, जिसका उत्पादन बड़े पैमाने पर आवश्यक है।

दुर्भाग्यवश लवण उत्पादन सम्बन्धी विस्तृत प्रक्रिया हमें इस काल के ऐतिहासिक स्रोतों में स्पष्ट रूप से प्राप्त नहीं होती और केवल प्रतीहार अभिलेखों में ही नमक व्यापारियों का उल्लेख मिलता है जो उस काल में प्रतिष्ठित व्यापारी थे। प्रतीहार कालीन सीयडोणि अभिलेख[54] चण्डूक नामक एक नमक व्यापारी का उल्लेख करता है जिसने श्री विष्णुभट्टारक का मन्दिर बनवाया था और जिसे समाज के विभिन्न वर्गों से दान प्राप्त हुआ था जिसमें शिल्पी, व्यापारी तथा महासामान्ताधिपति उन्दभट्ट सम्मिलित थे। दशरथ शर्मा भी अपने ग्रंथ 'राजस्थान थ्रू द एजेज' में लिखते हैं कि राजस्थान स्थित सांभर झील से नमक प्राप्त किया जाता था।[55] राजपूत काल के पूर्व में लिखे गये ग्रंथ अमरकोश में तीन प्रकार के लवण (नमक) का उल्लेख आता है- समुद्री नमक, काला नमक तथा कृत्रिम रूप से बनाया गया नमक।[56] इसके अतिरिक्त कलचुरि शासक युवराज देव के बिल्हारी अभिलेख[57], गाहड़वालों के अभिलेखों[58] तथा विक्रम संवत 1136 के परमार चामुण्डराज कालीन अर्थूणा अभिलेख[59] से ज्ञात होता है कि राज्य उस समय लवण कर वसूलते थे। स्पष्ट है कि नमक उद्योग उस समय भी एक विकसित उद्योग रहा होगा।

वस्त्र उद्योग

पश्चिमी भारत में कई शताब्दियों पूर्व से ही कपड़ा उत्पादन का उद्योग फल फूल रहा था। प्रथम शताब्दी ई0 का अज्ञातनामा लेखक का ग्रंथ 'पेरीप्लस' ऑफ द एरिथ्रयन सी' भी गुजरात में बने मोटे व खुरदरे कपड़े का उल्लेख करता है। राजपूत काल के आते-आते तक पश्चिमी भारत में उत्कृष्ट कोटि के कपड़े निर्मित होने लगे थे। तेरहवीं शताब्दी ईस्वी में भारत आया इतालवी व्यापारी मार्को पोलो खम्भात में बड़ी संख्या में निर्मित 'बकरम' तथा खम्भात एवं भड़ौंच में बनने वाले विभिन्न प्रकार के कपड़ा उत्पादों का उल्लेख करता है जो अलग-अलग राज्यों में भेजे जाते थे।[60] 14वीं शताब्दी में मिस्र के भूगोलवेत्ता अबू-अल-अब्बास अल-नुवायरी लिखते हैं कि भड़ौंच में बनने वाला कपड़ा 'बरोज' या 'बरोजी' नाम से विख्यात था, जबकि खम्भात में निर्मित कपड़े का प्रकार 'खम्भाती' या 'खम्भायति' नाम से प्रसिद्ध था।[61] इस प्रकार 'बरोजी' और 'खम्भाती' दो अलग-अलग कपड़ों के विशिष्ट प्रकार थे जो उन नगरों के नाम से विख्यात थे जहाँ उनका उत्पादन होता था। बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी ईस्वी में भारत आये चीनी यात्री चाउ-जू-कुआ भी नील तथा विभिन्न किस्मों के वस्त्रों का उल्लेख करता है जिनका उत्पादन गुजरात में होता था। चीनी यात्री इस समय वस्त्र उद्योग के एक प्रसिद्ध केन्द्र के रूप में मालवा का भी उल्लेख करता है।[62] परमार नरेश भोज द्वारा संरक्षण प्राप्त कवि धनपाल की रचना तिलकमजरी में विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख प्राप्त होता है, यथा-अंशुक[63], दुकूल[64], नेत्रप्र[65], क्षौम[66], पट्ट[67], उत्तरीय[68], कञ्चुक[69], कूर्पाशक[70], तनुच्छद[71], चण्डातक[72], कौपीन[73] और उष्णीण[74] बहुधा उक्त ग्रंथ में वर्णित हैं जिन्हें स्त्री-पुरूष द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों पर धारण किया जाता था। इसी काल में लिखे गए शब्दकोषों में जहाँ मंडखकोश जुलाहों को 'कुविन्द' और सुई के लिए 'सिवनी' जैसे शब्दों का प्रयोग करता है, वहीं शाश्वतकोश में बुनकरों के लिए 'तन्तुवाय' शब्द का प्रयोग किया गया है। गुजरात भूमि पर लिखे गये हेमचन्द्र कृत देशीनामाला में वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित भी कतिपय शब्द प्राप्त होते हैं, यथा-पूरी और थूरी (बुनकरों के उपकरण), आसियो, सिव्वनी (सुई) और कोलिओ (बुनकर)।[75] उक्त लेखक द्वारा लिखे गए एक अन्य ग्रन्थ अभिधानचिन्तामणि में बुनकरों के लिए तन्तुवायः तथा कुविन्दः शब्द प्रयुक्त किए गए हैं वहीं दर्जी के लिए तुन्नवायः तथा शौचिकः शब्दों का प्रयोग किया गया है।[76]

अर्थूणा से प्राप्त विक्रम संवत् 1136 के एक अभिलेख में जो परमार शासक चामुण्डराज के काल का है, आयात की गई वस्तुओं में कपास, तन्तु और मंजिष्ठा (एक प्रकार की वनस्पति जो कपड़ों को रंगने में प्रयुक्त होती है) का उल्लेख मिलता है जिन पर शुल्क (कर) लगाया गया था। इसी अभिलेख में बिना सिले हुए वस्त्रों की प्रति कोटिका पर भी शुल्क लगाया गया था।[77]

मालवा के परमार शासक भोज कृत ग्रन्थ 'युक्तिकल्पतरु' में न केवल सूती वस्त्रों अपितु (कीटज-कीड़े से बने) रेशमी वस्त्रों, (लोमज) ऊन से बने वस्त्रों तथा वृक्षों की छाल से बने वस्त्रों का भी उल्लेख किया गया है।[78] उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वस्त्र उद्योग न केवल गुजरात अपितु मध्य भारत के मालवा क्षेत्र में भी अत्यन्त उन्नत अवस्था में था।

उक्त उद्योगों के अतिरिक्त मृदभाण्ड उद्योग (शिल्पी-कुलाल या कुम्हार) मद्य उद्योग (निर्माता- पालो तथा कल्लपाल), इत्र उद्योग, माला बनाने तथा बेचने वाले (मालाकार),

नापित (नाई), नानबाई (बेकर) कसाई (पोलिओ या खट्टिक्को) इत्र निर्माण आदि अनेक ऐसे उद्योग तथा शिल्पी हैं जिनका उल्लेख समकालीन ग्रंथों या अभिलेखों में हुआ है। अनेक ऐसे छोटे-छोटे उद्योग भी समाज में अस्तित्व में थे यथा-ग्वाले, चरवाहे, धोबी, टोकरी बुनने वाले, बढ़ई, रस्सी बुनने वाले इत्यादि जिनका उल्लेख परिस्थितिवश प्रसंग न आने पर ऐतिहासिक स्रोतों में नहीं हो पाया किन्तु यह जन सामान्य की दिनचर्या से जुड़े व्यवसाय थे। अतः किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व हमें परिस्थितिजन्य साक्ष्यों को भी संज्ञान में लेना आवश्यक हो जाता है।

सन्दर्भ

1. Epigraphia Indica, ASI Publication, Delhi Vol I, p.159, ℓ.2.....श्रेष्ठि वद्रियाक (I) इच्छुवाक .....; Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol VII, pt. 3, p.410, 412. 456, 534.
2. वही, Vol. I, p.159, ℓ.2 ..... सार्थवाह प्रमुख सव्विया .....
3. Corpus Inscriptionum Indicarum (C II), Vol. VII, pt.3, p.454, l.19 .... सकरूकपंक वणिग् (निग्) वास्तव्यम् .....; अनुवाद हेतु कृपया देखें Sanskrit English Dictionary by V.S. Apte, p.315, also cf. c II, Vol. IV, pt.3 p.453, पाद टिप्पणी-2 वाहिंत क्षेत्रे उत्तराभिमुख वाहकः क्षेत्रं परिवेएटय गोतः.....
4. Epigraphia Indica (EI), I, p.174, l.19 .....कुम्भकार दैवेकाच्चग .....
5. वही, I, p.160, ℓℓ.12, 13, 14, 16 ..... समस्त तैलकश्रेण्य प्रतिकोल्हुकं मासि मासि, p.177, ℓ.25
6. वही, I, pp.173, 174, ℓℓ.5, 11 ..... अस्मिन् पत्तने नेमकवणिक् चण्डूप्रति-ठापित विष्णुभट्टा ....रकस्य.....
7. वही, I, pp.174, 175, ℓℓ.9, 19 ..... समस्तकल्लपालानाम् सत्कहट्ट वामुपरीदत्तश्रीमद्दादि .....
8. वही, I, p.175, ℓ.15..... कंसारकवीथी दक्षिणेन हट्ट रथ्या ...
9. वही, I, p.177, ℓ.30..... समस्तआहाड़ सम्वद्द - शिलाकूटानाम् .....; CII, Vol. VII, pt. 3, p.535 ..... उत्कीर्णनवन् शिलाकूटस्तिहनस्त .....
10. C II, Vol. VII, pt.3, pp. 456-57.
11. वही, VII, pt.3, p.394
12. वही, VII, pt.3, p.574
13. वही,VII, pt.3, p.442
14. EI, l, p.176, ℓ.25 ..... ताम्बोलिकधमाकेन क्रयीत्वा
15. वही, I, p.160, ℓℓ. 17-19 ..... समस्त मालिक श्रेण्य पूजार्थे यथाकालोपयिक .....
16. CII, Vol. IV, pt. I Government Epigrahist for India ootacamund, 1955., pp. 204-224
17. EI, l, p.175, ℓ.16 ..... दोसिहट्टे उपारर्ज्जनम् क्रत्वा वीथीद्वौ....
18- पूर्वोक्त, I, p.175, ℓ.19 ..... समस्तकल्लपालानाम् सत्कहट्ट नामुपरि .....
19. पूर्वोक्त, I, p.177, ℓ.31 ..... घाणकघाणकम् प्रति तैलपलिका....
20. पूर्वोक्त, I, p.160, ℓ.16 ..... समस्त तैलकश्रेण्य प्रति कोल्हुकं मासि मासि
21. Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. IV, pt.1, p. 215, V.79 पत्तनमण्डपिकायां लवणस्य खण्डिका (यम सो) (द) सि (सि) क घाणके च शोड शोडसि (सि) क/तैलस्य मासि मासे दिन्मनौ च युग युगे च पौरस्तु।।
22. Epigraphia Indica, I, pp.159 व आगे।
23. Epigraphia Indica, I, pp.174 व आगे।
24. Basham, A.L. The wonder that was India, Picador india, 2019, edition, p. 193.
25. Epigraphia Indica, XI, No. 4
26. Epigraphia Indica, XXIII, 138
27. Majumdar, A.K. Chaulukyas of Gujarat, Bhartiya Vidya Bhavan, Bombay, 1956, page . 263-64.
28. पूर्वोक्त, पृ. 263-64
29. पूर्वोक्त EI, l, p. 160.
30. Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. VII, pt.3, p. 535, Verse 37
31. Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. VII, pt.3, p. 394 ..... सूत्रधार श्रीराम (सु) तरूपकार श्रीलाह-ड-न (द्भ्रातृ) रूपकार श्रील (क्ष्मी) धरसां (शां) त्यो मूर्तिरेि-ा - तेति .....
32. पूर्वोक्त, Vol VII, pt. 3, p.442, ℓ.35 ..... रजपालस्य पुत्रेण पाल्हणेन च शिल्पिना (1) उत्का (त्की) र्णा वर्णघटना वैदग्धी विश्वकर्म्मणा ।। ; p.455, ℓ.32
33. पूर्वोक्त, Vol.VII, pt. 3, p.577, ℓ.28-29 ..... उत्कीर्ण्णवानि - मां भीमदेवः सूत्रभृतां वरः।.....
34 पूर्वोक्त EI, l, pp. 160-161
35. Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. VII, pt.3, p. 457, ℓ.9..... श्रीमान् रूपकारों महामतिः। पापतो वास्तुशास्त्रज्ञस्तेन बिम्बं (बिम्बं) सुनिर्म्मितं (तम्)
36 काव्यमीमांसा, पृ. 55
37 मनुभाष्य, III, 153
38. Epigraphia Indica, XXIV, p.335, l. 18
39. Corpus Inscriptionum Indicarucm, VII, pt.3, p. 446 ..... ताम्रपट्टमं (मु) उत्कीर्णञच ..... ; p.451 VV. (श्लोक) 7-8 ताम्रपट्टमं (मु) रजपालस्य पुत्रेण पाह्मणेन च शिल्पिना। उत्कीर्णा वर्ण्णघटना वैदग्धीविश्व (क) र्म्म (णा)। श्रीः
40. पूर्वोक्त, VII, pt.3, pp. 535-548
41. पूर्वोक्त, p.547, श्लोक 95-99
42. Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. VII, pt.3, pp. 535-548
43. पूर्वोक्त, पृ. 547, श्लोक संख्या 86-91, देवाय दत्तः सौवर्ण्णो राज्ञा रत्नैः समाचितः/मुकुटः ख्सुमहान्मध्ये म, णियंत्र वि (राज)

ते।। हरिन्मणि (म) यं भूपति-लकस्तिलकन्ददौ। रत्नैविचित्रं निष्कञ्च निष्कल्ङकः स भूपति।। प्रादात्केयूरयुगलं रत्नैर्ज्व (ब) हुभिराचितम्। कङ्कणानाञ्च चतुष्कञ्च महार्हमणिभूषितम्। इति रत्नमयन्तावदेकमाभरणं विभोः। द्वितीयमनिरूद्धस्य सौवर्ण्ण केवलं यथा। कङ्कणानां चतुष्कचञ्च तालपट्टैद्वयन्तथा। कृत्तिदारं स्वर्णमुष्टिम्बि (म्बि) भर्त्य (न्वह) मच्युतः। रूप्यमङ्गण (लिहा) द (त्ता) क (ञ्चो) लैः पंचभिर्युता (नै) वैद्यधारणार्थञ्च कां-(स्य) स्थालचतुष्टयं (यम्)।।

44. अभिधानचिन्तामणि, 108, 109, पृ0 257, संपा0 हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्भा विद्याा भवन, वाराणसी, 1964
45. अमरकोश, II, 9.98
46. Majumdar, A.K. Chaulukyas of Gujarat, Bhartiya Vidya Bhavan, Bombay, 1956, pp. 260-61
47. पूर्वोक्त, पृ. 260
48. मजुमदार, ए0के0, पूर्वोक्त पृ. 260-261
49. प्रबन्धचिन्तामणि, श्री मेरूतुगांचार्य विरचित, अनु0 पं0 हजारीप्रसाद द्विवेदी, संपा0 जन विजय मुनि, प्रकाशन कर्ता, संचालक-सिंधी जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद-कलकत्ता, विक्रमाब्द 1997, प्रथमावृत्ति, श्लोक. 70.
50. देशीनाम0, श्लोक 16.
51. पूर्वोक्त, IV, 45 ..
52. वही, IV, 45 ..
53. अतिलकमञ्जरी, पृ0 305.

53ब Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. VII, pt.2, p.294, V.69, वणिजां खंडगुडयोर्भरकं प्रति वर्ण्णिका ……..

54. Epigraphia Indica, Vol. I, p.173, ℓ.5 ..... अद्येयह सीयडोणि सम वसितमहाप्रतीहारसमधिगत स समः सब्द महासान्ताधिपति श्री उन्दभट्ट। समस्तराज पुरूषन्वोधयति विदितमस्तु भगवतम् अस्मिन् पत्तने नेमकवणिक् चण्डूप्रति-ठापित विष्णु भट्टारकस्यमूबलि ……
55. Sharma Dashrath, Rajasthan Through the Ages, Vol.I, Rajasthan State Archives, Bikaner, 2014, p. 490.
56. अमरकोश, II, 41.42
57. Epigraphia Indica, Vol. I, p.215, V.79. पत्तन-मण्डपिकायां। लवणस्य खण्डिका [यम् सो] - [ड] षि (सि) का ……
58. Yadav, B.N.S., Society and Culture in Northern India 12th Century A.D., Allahabad, 1973, p.290.
59. Epigraphia Indica, XIV, No.27, V.71 ..... मानकं लवणमूटकम (ध्ये) ……
60. Majumdar, A.K. op.cit., p.260
61. Ibid, p. 26.
62. Chau-ju-Kua, p.92
63. तिलकमञ्जरी, धनपाल कृत पृ.12, लोहितान्शुक वैजयन्तिभिःय पृ018, 31, 33, 57, 69…..य पृ. 207, शिरोभागनिहित पिण्डी कृतोत्तरीययांशुक ……
64. पूर्वोक्त, पृ. 24, 34, 54, 198, 203, 219, 243; परिधाय तत्कालधोते कलधोते इवातिघलयतया. विभध्यमाने दुकूलवाससि, पृ. 34.
65. पूर्वोक्त, पृ. 71, उपरिविस्तारिततारनेत्रपटविताने ……
66. पूर्वोक्त, पृ. 79, अनुपहृतसूक्ष्मक्षौमकल्पितोत्तरासंगम्……..
67. पूर्वोक्त, पृ. 300, रक्ताशोकपु-पपाटलं परिधाय पट्टवासोयुगलम् ……
68. पूर्वोक्त, पृ. 34, उत्तरीय पल्लवेन मुद्रितमुखः ……..; पृ. 81, उत्तरीयपटगोपायितोपायनेन …..
69. पूर्वोक्त, पृ. 153, आप्रपदीनचीन कंचुकावच्छन्नवपुष्पा …….
70. पूर्वोक्त, पृ. 164, सूक्ष्मविमलेन पाटलाकुसुम …….. नेत्रकूर्पासकेन ……
71. पूर्वोक्त, पृ. 303, कैश्चिदुल्लासिताभिनवतनुच्छैदः……
72. पूर्वोक्त, पृ. 372, क्रीडाद्रिकन्दराशबरमिथुनानानम्खन्डानि कल्पतरूचीरचण्डातकानि ……..
73. पूर्वोक्त, पृ. 151, कौपीनमात्रकर्पटा वरणे-वतरूणलुण्ठित तिमिर ……. जालिकेषु …..
74. पूर्वोक्त, पृ. 232, उष्णीषपट्टेंतशिरोवेष्टना …….य पृ. 239, उष्णीषपट्टमिव जम्बूद्वीपस्य …..
75. देशीनाममाला, VII -45, VI – 56, V-28, I-69, VIII-29, II-65
76 अभिधान0, VII, V-574.
77. Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. VII, pt.2, p.294, V.69-70, मंजिष्ठासूत्रकर्प्पसभरकेषु च रूपकः।। तथा श्रीमंडनेनेयं शासने (न) महात्मना। हट्टे विक्रीय (ते य) त्तु तस्यापि रचिता प्रतिः।। …….. दापितो रूपकः सार्द्धः प्रतिकर्प्पटकोटिकां (काम्)…..
78. युक्तिकल्पतरू, संपा. व अनु. बी.एल. राजपुरोहित, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ0 121-22, श्लोक-19; श्लोक 24; श्लोक 25.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

मध्य प्रदेश की जनजातीय महिलाओं में मासिक धर्म से संबंधित धारणाओं का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

❑ डॉ सारिका दीक्षित

सामाजिक रूप से "मासिक धर्म स्वास्थ्य और स्वच्छता प्रबंधन" मानसिक और स्वास्थ्य दोनों प्रकार का विषय है। हाल ही में सैनिटरी पैड अभियान एंड पीरियड शेम के साथ मासिक धर्म एक राष्ट्रीय विषय बन गया है। इसलिए जागरूकता के स्तर को जानने के लिए झाबुआ (म.प्र.) की आदिवासी महिलाओं को प्राथमिक अध्ययन जनसंख्या के रूप में चुना गया। प्रस्तुत शोध पत्र का प्राथमिक उद्देश्य मासिक धर्म जागरूकता के संबंध में दो प्रमुख आदिवासी समूहों (भील और भिलाला) की महिलाओं के बीच मासिक धर्म संबंधित धारणा की पहचान करना था। द्वितीय उद्देश्य उन सामाजिक-शारीरिक चुनौतियों का पता लगाना था जो मासिक धर्म स्वच्छता प्रबंधन के मध्य लड़कियों द्वारा अनुभव की गयी हैं। क्षेत्र-अवलोकन और उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया के आधार पर सुझाव भी दिए गए थे। काविड-19 की स्थिति को देखते हुए सुविधाजनक-नमूनाकरण के माध्यम से 50 उत्तरदाताओं को सम्मिलित करने के लिए साक्षात्कार-अनुसूची पद्धति का उपयोग किया गया। अध्ययन से सामने आए मुख्य निष्कर्ष इस प्रकार हैं- लड़कियों की मासिक धर्म स्वास्थ्य प्रबंधन जागरूकता पर माँ की शिक्षा का कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं है; धार्मिक प्रतिबंध अभी भी प्रमुखता से हमारे समाज में जड़ फैलाये हुए हैं; अधिकांश लड़कियों ने पहले मासिक धर्म के अनुभव के प्रति भय की प्रतिक्रिया व्यक्त की, जो एक चिंताजनक विषय है तथा मासिक धर्म और रजोनिवृत्ति की जानकारी के मामले में भिलाला आदिवासी समुदाय भील जनजाति से अधिक जागरूक है।

सूचक शब्द : स्वास्थ्य, मासिक धर्म, जनजाति, महिलाएं, भील, भिलाला जनजाति।

मासिक धर्म एक प्राकृतिक घटना है और महिलाओं की जीवन प्रक्रिया का एक नियमित हिस्सा है, लेकिन समाजशास्त्रीय रूप से यह घटना कई मिथकों और प्रतिबंधों से जुड़ी है और इसीलिए इस पर व्यापक समाजशास्त्रीय शोध आवश्यक है। यह घटना बहुधा विशेष रूप से युवा किशोरियों के लिए स्कूल छोड़ने की दर में वृद्धि और मासिक धर्म स्वच्छता प्रबंधन (MHM) के स्वस्थ विकल्पों तक पहुंचने में असमर्थ होने पर महिलाओं के लिए गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बनती है, जिसके परिणामस्वरूप यूनिसेफ ने स्कूल स्तर पर ज्ञान का प्रसार करने के लिए 'गरिमा' पहल प्रारंभ की है और बाद में भारत सरकार ने **'टोटल सेनिटाइजेशन'** का प्रारंभ किया है। अलग **'सामुदायिक शौचालय'** के लिए अभियान भी चलाया गया।[1] इसके अतिरिक्त अध्ययन से पता चलता है कि स्कूल स्तर पर खराब मासिक धर्म स्वच्छता प्रबंधन और नीति कार्यान्वयन के मुद्दों के कारण लड़कियों में जागरूकता कम हो जाती है[2] जिसके परिणामस्वरूप वार्षिक 23 मिलियन लड़कियां स्कूल छोड़ देती हैं।[3] लेकिन भील और भिलाला महिला आबादी के संबंध में सटीक आंकड़े अभी भी खोजे नहीं गए हैं, इसलिए आदिवासियों के बीच मासिक धर्म से संबंधित साहित्य में ज्ञान की कमी को दूर करने के लिए यह अध्ययन महत्वपूर्ण है। कृषि गतिविधियों में समान योगदान और अन्य महिलाओं की अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति के उपरान्त आज भी आदिवासी महिलाएं मासिक धर्म को अशुद्ध और गंदा मानती हैं और इसलिए इसे खुलकर साझा करना पसंद नहीं करती हैं जिसके परिणामस्वरूप चुप्पी की संस्कृति उत्पन्न हुई और उचित जानकारी के अभाव के कारण चिकित्सा संबंधी विसंगतियों को आमंत्रित किया गया।[4] हालाँकि कुछ आदिवासी संस्कृतियाँ हैं जहाँ मासिक धर्म को एक लड़की के जीवन के नारीत्व चरण में बदलने की प्रक्रिया के रूप में मनाया जाता है।[5] लेकिन झाबुआ जिले के आदिवासियों के संबंध में जांच हमारे अध्ययन का केंद्र है। भील भिलाला जनजातीय केंद्रित मासिक धर्म से संबंधित अनेक अध्ययनों के बावजूद इस शोध के माध्यम से मासिक धर्म से संबधित पिछड़ी धारणाओं का अध्ययन हमें नीतिगत हस्तक्षेप के लिए गहरी समझ देता है।

❑ समाज विज्ञान अध्ययन शाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, (मध्य प्रदेश)

साहित्य की समीक्षा :

कुमार और शर्मा[6] के अनुसार, भारतीय समाज में मासिक धर्म पर एक नकारात्मक सामाजिक दृष्टिकोण व्याप्त है, जो महिलाओं के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। उनका अध्ययन बताता है कि अधिकांश महिलाएं मासिक धर्म के दौरान संकोच करती हैं और यह मुद्दा उनके लिए शर्मिंदगी का कारण बनता है। इस सामाजिक वर्जना का कारण पारंपरिक और सांस्कृतिक धारणाएं हैं, जो महिलाओं को मासिक धर्म के बारे में खुलकर बात करने से हतोत्साहित करती हैं। इसके परिणामस्वरूप, महिलाएं मासिक धर्म के बीच स्वच्छता और स्वास्थ्य के मामले में उपयुक्त देखभाल प्राप्त नहीं कर पातीं, जो उन्हें विभिन्न शारीरिक समस्याओं का सामना कराता है, जैसे कि इंफेक्शन, पेट में दर्द, और हार्मोनल असंतुलन।

जोशी[7] ने यह बताया कि मासिक धर्म पर खुलकर चर्चा की कमी महिलाओं की स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच को प्रभावित करती है। उनका अध्ययन यह दर्शाता है कि मासिक धर्म को लेकर महिलाओं में जागरूकता की कमी है, जिससे वे सही तरीके से मासिक धर्म स्वच्छता का पालन नहीं कर पातीं और स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करती हैं। जोशी ने यह भी उल्लेख किया कि जब महिलाएं मासिक धर्म से संबंधित समस्याओं के बारे में बात करने से हिचकिचाती हैं, तो यह उन्हें मानसिक रूप से भी प्रभावित करता है। इस तरह की मानसिक स्थिति को सुधारने के लिए समाज में मासिक धर्म पर सकारात्मक चर्चा और जागरूकता बढ़ाने की आवश्यकता है।

दीक्षित[8] ने अपने अध्ययन में पाया कि ग्रामीण क्षेत्रों में मासिक धर्म स्वच्छता से संबंधित जागरूकता और सुविधा की कमी महिलाओं के स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव डालती है। उनके अनुसार, अधिकांश ग्रामीण महिलाएं मासिक धर्म के मध्य उचित स्वच्छता प्रथाओं का पालन नहीं कर पातीं, क्योंकि उन्हें सही जानकारी नहीं होती और उनके पास आवश्यक सुविधाएं भी नहीं होतीं। ग्रामीण क्षेत्रों में मासिक धर्म से संबंधित उत्पादों की उपलब्धता सीमित होती है, जिससे महिलाएं अस्वच्छ वस्त्रों का उपयोग करती हैं, जो संक्रमण और अन्य स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बन सकता है। इसके अलावा, मासिक धर्म के समय सुविधाओं की कमी और सामाजिक वर्जना के कारण महिलाएं डॉक्टर से भी सलाह नहीं ले पातीं, जिससे उनके स्वास्थ्य की स्थिति और बिगड़ जाती है। दीक्षित ने यह सुझाव दिया कि ग्रामीण क्षेत्रों में मासिक धर्म स्वच्छता के लिए अधिक जागरूकता अभियान और आवश्यक सुविधाएं प्रदान करना आवश्यक है।

सिंह और यादव[9] ने अपनी अध्ययन में बताया कि ग्रामीण महिलाओं में मासिक धर्म के समय स्वच्छता बनाए रखने के लिए आवश्यक संसाधनों की भारी कमी है। उनका कहना है कि ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को पैड्स, साफ-सफाई के उत्पादों और स्वच्छता सुविधाओं की अनुपलब्धता का सामना करना पड़ता है। परिणामस्वरूप, महिलाएं पुराने कपड़े या अन्य अस्वच्छ वस्त्रों का उपयोग करती हैं, जो संक्रमण और अन्य स्वास्थ्य समस्याओं को जन्म देते हैं। अध्ययन में यह भी उजागर किया गया कि मासिक धर्म से संबंधित सामाजिक वर्जना के कारण महिलाएं इस मुद्दे पर खुलकर बात नहीं करतीं, और न ही उन्हें सही दिशा-निर्देश मिल पाते हैं। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि मासिक धर्म स्वच्छता के बारे में शिक्षा और जागरूकता को बढ़ावा देने के लिए सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों को मिलकर काम करना चाहिए, ताकि ग्रामीण महिलाओं को स्वच्छता बनाए रखने के लिए आवश्यक संसाधन और जानकारी प्राप्त हो सके।

चौरसिया प्रतिमा, सिंह[10] ने अपने शोध के अंतर्गत यह बताया कि मासिक धर्म जैविक प्रक्रिया होने के बावजूद सामाजिक कलंक के रूप में देखा जाता है, जो कि समाजीकरण के द्वारा प्रसारित किया जाता है। आज के समय मे भी युवा लड़कियाँ अपनी माँ, बहन या दोस्तों पर निर्भर रहती हैं। अक्सर शर्म के कारण यह सूचना आंशिक व गलत होती है। इस शोध पत्र में जैविक क्रिया के उचित ज्ञान तथा स्वच्छता प्रबंधन के बारे में जागरूकता प्रदान करने पर ध्यान केंद्रित किये जाने पर तथा सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक वर्जनाओं को तोड़ने की आवश्यकताओं पर बल देने की बात कही गयी है।

शोध पद्धति :

प्रस्तुत अध्ययन में मिश्रित-अनुसंधान पद्धति का उपयोग किया गया है जिसमें गुणात्मक और साथ ही मात्रात्मक दोनों तत्व सम्मिलित हैं। मुख्य शोध उपकरण गुणात्मक रूप से तथ्यों की व्याख्या करने के लिए गुणात्मक अनुभवजन्य क्षेत्र अवलोकन और आमने-सामने

साक्षात्कार की ऑडियो रिकॉर्डिंग के साथ साक्षात्कार अनुसूची है। साक्षात्कार पद्धति ने झाबुआ और अलियाराजपुर की भील और भिलाला दोनों जनजातियों के बीच प्रचलित धारणाओं, वर्जनाओं, सामाजिक प्रतिबंधों और स्वास्थ्य समस्याओं की गहन जांच में काफी सहायता की। उस समय चल रहे COVID-19 महामारी के कारण सुविधाजनक नमूनाकरण को अपनाया गया था और केवल उन उत्तरदाताओं का चयन किया गया था जिन्होंने हमें आमने-सामने साक्षात्कार के लिए अग्रिम मौखिक सहमति दी थी अंततः 50 उत्तरदाताओं को अंतिम रूप दिया गया था। हालाँकि, COVID-19 सीमाओं के कारण जनसंख्या का नमूना आकार छोटा है और बहुत कम लोगों ने साक्षात्कार प्रक्रिया में भाग लेने के लिए सहमति प्रदान की।

विश्लेषण :

प्रस्तुत शोध अध्ययन में महिलाओं की औसत आयु 24-56 है (सारणी क्र. 1), और अधिकांश उत्तरदाता 15-25 आयु वर्ग के थे, उसके बाद 26-35, 36-45 आयु वर्ग के थे और अंत में 46 में से बहुत कम महिलाएँ उपलब्ध थीं, 50 आयु वर्ग तक। इसी विषय पर पिछले अध्ययन या तो किशोरों पर या केवल महिलाओं पर केंद्रित थे, जहां महिला उत्तरदाताओं की औसत आयु न्यूनतम तेरह वर्ष से अधिकतम सोलह वर्ष तक है।[11] इस विशेष अध्ययन को समग्र रूप से समझने के लिए महिलाओं के साथ-साथ किशोर लड़कियों को भी सम्मिलित किया गया है।

सारणी सं. 1
उत्तरदाताओं की आयु

चर-आयु	आवृत्ति	प्रतिशत
15.25	20	40
26.35	16	32
36.45	10	20
46.50	4	08
योग	50	100

सारणी सं. 2 से पता चलता है कि चयनित उत्तरदाताओं में से कोई भी भिलाला निरक्षर नहीं है और उन्होंने साक्षरता का कुछ स्तर प्राप्त कर लिया है और कम से कम प्राथमिक शिक्षा पूरी कर ली है। लेकिन जब भीलों की बात आती है तो तथ्यों से पता चलता है कि 26.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास भारतीय शैक्षिक ढांचे के भीतर किसी भी प्रकार की औपचारिक शिक्षा नहीं है। हालाँकि, 33.3 प्रतिशत भील उत्तरदाताओं ने माध्यमिक शिक्षा प्राप्त की है, जिनमें से केवल एक उच्च शिक्षा प्राप्त एक स्नातक लड़की है।[12] अध्ययन बताते हैं कि शैक्षिक प्राप्ति और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों से जनजातियों के बीच मासिक धर्म स्वास्थ्य और स्वच्छता में सुधार हो सकता है।

सारणी सं. 2
समुदायों का शैक्षिक स्तर

शैक्षणिक उपलब्धि	भील		भिलाला	
	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
शिक्षित नहीं	8	26.7	-	-
प्राथमिक शिक्षा	6	20.0	4	20
पूर्व माध्यमिक	2	6.7	8	40
माध्यमिक	10	33.3	4	20
उच्च शिक्षा	2	6.7	-	-
स्नातक	2	6.7	4	20
कुल	30	100	20	100

सारणी सं. 3 दो आदिवासी समुदायों की महिलाओं के जागरूकता स्तर को दर्शाती है जो भिलाला समुदाय के बीच तुलनात्मक रूप से बढ़ी हुई जागरूकता को दर्शाता है। दुर्भाग्य से, जब जागरूकता की बात आती है तो केवल कुछ लड़कियाँ ही इस घटना के प्रति सकारात्मक रूप से जागरूक होती हैं। भीलों में 86.67 प्रतिशत महिलाओं और 70 प्रतिशत महिलाओं को मासिक धर्म होने से पहले इसके बारे में पता नहीं होता है।

इसी तरह के निष्कर्ष भावसर[13] द्वारा दिखाए गए थे, जिन्होंने व्यक्त किया था कि भील समुदाय की आदिवासी लड़कियों की एक बड़ी जनसंख्या को मासिक धर्म होने से पहले इसके बारे में पता नहीं था। इसके अलावा,

आईसीएमआर की रिपोर्ट से यह भी पता चला कि 2015-2016 में भारत भर में लगभग 70 प्रतिशत किशोरियों को मासिक धर्म के प्रारंभ में मासिक धर्म चक्र के बारे में कोई जानकारी नहीं थी।[14]

सारणी सं. 3

दो समुदायों के बीच मासिक धर्म जागरूकता

जनजातीय महिलायें	रजोनिवृत्ति जागरूकता	आवृत्ति	प्रतिशत
भील	हाँ	4	13.3
	नहीं	26	86.7
	कुल	30	100.0
भिलाला	हाँ	6	30.0
	नहीं	14	70.0
	कुल	20	100.0

रजोनिवृत्ति जागरूकता के संदर्भ में, मासिक धर्म की घटना पहले से ही महिलाओं के जीवन की दिनचर्या बन गई है। लेकिन अचानक हुए बदलावों के लिए स्वच्छता के संदर्भ में कुछ स्वास्थ्य हस्तक्षेप और स्वयं की देखभाल की आवश्यकता होती है। सारणी के आंकड़ों के अनुसार, रजोनिवृत्ति से संबंधित जागरूकता काफी कम है। इस अध्ययन से पता चलता है कि 80 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं को रजोनिवृत्ति से संबंधित उचित ज्ञान नहीं है। गुणात्मक साक्षात्कारों में, यह भी पाया गया है कि अधिकांश महिलाएं रजोनिवृत्ति को मासिक धर्म के साथ भ्रमित करती हैं और इस संक्रमण को हल्के में लेती हैं। **शोध के** कई अंश लड़कियों की मासिक धर्म जागरूकता पर माता-पिता की शिक्षा के प्रभाव को दर्शाते हैं। लेकिन प्रस्तुत अध्ययन में यह पाया गया कि मां की शिक्षा का लड़की की मासिक धर्म संबंधी जागरूकता से कोई संबंध नहीं है, केवल शैक्षणिक उपलब्धि प्रभावी सिद्ध नहीं हुई है। यहां तक कि सबसे शिक्षित, आधुनिक और मुक्त परिवार भी मासिक धर्म को शहरी क्षेत्रों में वर्जित मानते हैं। परिणामस्वरूप, विषय खुले में चर्चा के क्षेत्र से बहुत दूर है और इसलिए स्थिति धरातल पर संगठित हस्तक्षेप की मांग करती है।[15]

साक्षात्कार में, कुछ उत्तरदाता इस बात पर सहमत हुए कि दोस्तों या पड़ोसी जैसे बाहरी लोगों के साथ जानकारी साझा करना अधिक आरामदायक है अन्यथा जानकारी को गुप्त रखना पसंद करते हैं। हालाँकि, जब भी जागरूकता की बात आती है तो अधिकांश को अपनी माँ से जानकारी मिलती है। इसलिए, कम उम्र में मासिक धर्म के संबंध में सटीक जानकारी प्रसारित करने में माँ की साक्षरता का प्रमुख तथा जागरूकता का स्तर प्रमुख हो सकता है। इस तथ्य से यह निष्कर्ष निकलता है कि सामाजिक रूढ़ियाँ समाज में गहराई से अपनी जड़ फैलाये हैं, जिसके फलस्वरूप शिक्षा के स्वरुप में भी परिवर्तन की आवश्यकता है।

रजोनिवृत्ति के लक्षण : अधिकांश महिलाओं को नींद की समस्या, मूड में बदलाव और ठंड अनुभव होना जैसे सामान्य लक्षणों का सामना करना पड़ता है। यहां तक कि आदिवासी महिलाओं के बीच रजोनिवृत्ति के अध्ययन में पाया गया कि महिलाएं रजोनिवृत्ति से पहले और बाद के चरणों के बीच महत्वपूर्ण अवसाद से गुजरती हैं। में नींद की समस्या और मूड में बदलाव से संबंधित समान पैटर्न भी पाए गए हैं। इसके अलावा, तुलनात्मक रूप से महिलाओं का एक छोटा समूह भी रजोनिवृत्ति का अनुभव एक दशक पहले तक करता है, जो वास्तव में गर्म चमक, नींद में बाधा और उसके बाद अवसाद जैसे सामान्य लक्षणों के साथ होता है और अध्ययन में महिलाओं की औसत आयु लगभग 51 वर्ष बताई गई है।[16] इसके अतिरिक्त, एक अन्य अध्ययन भी मासिक धर्म अनियमितताओं के प्रारंभ में अवसादग्रस्त लक्षणों से संबंधित निष्कर्षों को मान्य करता है।[17]

मासिक धर्म के दौरान प्रारंभिक संपर्क प्राथमिकता : यह तथ्य मासिक धर्म के संबंध में महिलाओं की अवचेतन धारणा को समझने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है और एक व्यक्ति को दूसरों के साथ जानकारी साझा करने के लिए क्या प्रेरित करता है। बहुसंख्यक आदिवासी लड़कियाँ मासिक धर्म को गुप्त रखना पसंद करती हैं। हालाँकि, हमारे अधिकांश उत्तरदाता परिवार के सदस्य विशेषकर माँ के साथ साझा करने में सहज अनुभव करते हैं। कुछ लोगों ने इसे डॉक्टरों, आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के साथ-साथ पड़ोसियों के साथ भी साझा किया। लेकिन हमारे फीडबैक सत्र में दो लड़कियों ने हमसे कहा कि - हम अपने रूढ़िवादी दृष्टिकोण के कारण अपनी दादी या दादी (दाई) से मासिक धर्म के बारे में ऐसी संवेदनशील जानकारी साझा करने से खुद को प्रतिबंधित करते हैं और अगर उन्हें पता भी चल जाता है कि हमारा चक्र चल रहा है तो वे हम पर विभिन्न प्रकार के प्रतिबंध लगा देते हैं। खान-पान की आदतों, धार्मिक और स्वच्छता के लिए।"(भील उत्तरदाता, आयु 24)

कभी-कभी अपने परिवार के सदस्यों की तुलना में अपने पड़ोसियों के साथ चल रहे मासिक धर्म के बारे में ऐसी जानकारी साझा करना अधिक आरामदायक होता है क्योंकि हमारे परिवार के सदस्य जिनमें स्वयं माँ भी सम्मिलित है- उन्होंने वर्जित माने जाने वाले विषयों को साझा करने और चर्चा करने के लिए घर पर ऐसा वातावरण नहीं दिया है। (भिलाला उत्तरदाता, आयु 20) **अधिकांश** लड़कियाँ मासिक धर्म से संबंधित चर्चा से बचना पसंद करती हैं। आश्चर्यजनक रूप से अध्ययन में सम्मिलित 88 प्रतिशत उत्तरदाता जानकारी को गुप्त रखना पसंद करती हैं। इसलिए, गोपनीयता बनाए रखना खराब मासिक धर्म स्वास्थ्य प्रबंधन का एक प्रमुख कारण हो सकता है। इस प्रकार, अध्ययन में सम्मिलित लगभग सभी लड़कियाँ मासिक धर्म को किसी न किसी तरह से एक अशुद्ध घटना मानती हैं।

सामाजिक चुनौतियाँ एवं बाधाएँ : भारत में, अनुमान है कि सभी संक्रमणों में से 70 प्रतिशत खराब मासिक धर्म स्वच्छता का परिणाम हैं। फिर भी, समाज इस पर चर्चा करने के लिए तैयार नहीं है। शिक्षित परिवारों में भी लोग मासिक धर्म को चित्रित करने के लिए कोड वर्ड का उपयोग करते हैं और अभी भी इसे वर्जित मानते हैं।[18] **प्रस्तुत** शोध तथ्यों से पता चलता है कि अधिकांश उत्तरदाताओं, अर्थात् 60 प्रतिशत ने सामान्य रक्त हानि आवृत्ति का अनुभव किया। हालाँकि, कुछ उत्तरदाताओं को सामान्य से अधिक रक्त हानि का अनुभव हुआ, जिसे दो अलग-अलग स्तरों में वर्गीकृत किया गया है, एक है कम (सामान्य से अधिक) रक्त प्रवाह जिसका सामना 24 प्रतिशत लोगों को करना पड़ता है और दूसरा, कम से अधिक (सीमा से अधिक) रक्त प्रवाह है जिसका सामना 16 प्रतिशत जनसंख्या को करना पड़ता है। यदि संयुक्त रूप से देखा जाए तो 40 प्रतिशत जनसंख्या खतरनाक रक्त हानि क्षेत्र में आती है भारी या बहुत रक्त हानि को आम तौर पर हाइपरमेनोरिया स्थिति के रूप में जाना जाता है।

सामाजिक प्रतिबंध : साक्षात्कारों के माध्यम से एकत्र किया गया हमारा प्राथमिक तथ्य आदिवासी समुदाय के बीच मासिक धर्म के मध्य अध्ययन जनसंख्या के 48 प्रतिशत लोगों द्वारा सामना किए जाने वाले धार्मिक प्रतिबंधों का संकेत देता है, जबकि स्नान की बाध्यता और भोजन प्रतिबंध को संयुक्त रूप से अन्य 48 प्रतिशत उत्तरदाताओं को सामना करना पड़ा। स्नान की बाध्यता मासिक धर्म से संबंधित अशुद्धता के मानदंड को और सुदृढ़ करती है और वयस्क समाजीकरण का हिस्सा बन गई है। इसके अलावा, अन्य प्रतिबंध जैसे सोने के लिए एक अलग जगह, सेक्स, खेल गतिविधियों में सम्मिलित नहीं होना, या मासिक धर्म चरण के बीच दर्पण के उपयोग से इनकार करना, और घर के अंदर रहने और स्कूल छोड़ने की अपेक्षा करना। इस तरह के प्रतिबंध सामाजिक धारणाओं को और सुदृढ़ करते हैं और वर्जनाएं मासिक धर्म के निकट ही घूमती हैं।

मासिक धर्म चक्र एक प्राकृतिक विशेषता है जिसका अनुभव हर महिला करती है लेकिन इस पर चर्चा करने का प्रयास केवल कुछ ही करते हैं। एक आयाम के रूप में धर्म के संदर्भ में, ऐसा प्रतीत होता है कि महिलाएं अभी भी मासिक धर्म चक्र को एक ऐसा पाप मानती हैं जो नहीं होना चाहिए। भले ही धर्म आदिवासी जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, यह महिला सशक्तिकरण में भी एक आवश्यक बाधा है और मासिक धर्म से जुड़े मिथकों और वर्जनाओं को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। रुचित्रा[19] ने अपने लेख में यह भी पुष्टि की है कि राष्ट्रव्यापी लॉकडाउन के मध्य महिलाओं को दोहरे लॉकडाउन का अनुभव हुआ, एक राज्य द्वारा प्रायोजित और दूसरा मासिक धर्म के दौरान धारणा और सामाजिक मानदंडों के माध्यम से लागू किया गया।

निष्कर्ष: समग्र निष्कर्षों और डेटा संग्रह के आधार पर यह कहा जा सकता है कि झाबुआ, मध्य प्रदेश की आदिवासी महिलाओं में मासिक धर्म से संबंधित वर्जनाएं, सामाजिक और भ्रमित धारणायें अभी भी विद्यमान हैं। यह अध्ययन इस मुद्दे को अद्वितीय आयाम प्रदान करता है क्योंकि इसमें जनसंख्या के दो अलग-अलग वर्गों (लड़कियों और महिलाओं) के साथ-साथ दो अलग-अलग आदिवासी समुदायों को भी सम्मिलित किया गया है।

एक अन्य अध्ययन का परिणाम यह है, कि हमारे अध्ययन में किसी भी भील आबादी की महिला ने कभी भी अपने शिक्षकों के साथ मासिक धर्म की जानकारी साझा नहीं की, जबकि केवल 7.3 प्रतिशत भिलाला ने इसे स्कूल स्तर पर शिक्षकों के साथ साझा किया और न ही शिक्षक उनकी जागरूकता का प्राथमिक स्रोत हैं, इसलिए जब महिलाएं परिवार या शिक्षकों के साथ चर्चा करने में सक्षम नहीं होती हैं, तो उन्हें अस्वच्छ

एमएचएम-MHM को अपनाना पड़ता है। अध्ययन में यह पाया गया कि माँ की शिक्षा का लड़की की मासिक धर्म जागरूकता से कोई संबंध नहीं है। इसलिए मूल्य आधारित शिक्षा की आवश्यकता होती है, और पोस्टर प्रतियोगिता और एनिमेटेड विज्ञापन जैसे रचनात्मक माध्यमों से जानकारी को बेहतर ढंग से प्रसारित किया जा सकता है।

एक किशोर उत्तरदाता ने हमें यह भी बताया कि : मुझे एक ही समय में डर और गुस्सा अनुभव हुआ, जिसे मैंने अपनी मां से साझा किया, तब उन्होंने मुझे आंगनवाड़ी कार्यकर्ता के साथ इस पर चर्चा करने के लिए भेजा। मेरे मासिक धर्म के दौरान ग्रामीणों ने मुझे स्कूल न जाने के लिए कहा, लेकिन फिर भी मैं स्कूल गई। मासिक धर्म चक्र के कारण स्कूल छोड़ने का अनपेक्षित परिणाम लड़की की गतिशीलता में बाधा उत्पन्न करता है क्योंकि स्कूल छोड़ने का मानदंड तेजी से सामाजिक अपेक्षा में परिवर्तित हो जाता है जिसका प्रभाव लड़कियों के संपूर्ण विकास पर पड़ता है।

अन्य प्रचलित प्रतिबंधों में उत्तरदाताओं ने बताया अलग शौचालय, बार-बार स्नान, सोने की अलग जगह, भोजन को न छूना, सेक्स और खेल गतिविधि पर प्रतिबंध, दर्पण में न देखना, और ज्यादातर मामलों में, घरों के अंदर रहने के लिए कहा जाता है।

अध्ययन से यह भी पता चलता है कि जब लड़की को गंध का अनुभव होता है तो वह तुरंत रक्षात्मक और अलग-थलग हो जाती हैं और अवचेतन रूप से हीन भावना और आत्मविश्वास की कमी जैसी भावनाओं को विकसित करना शुरू कर देती है, जिससे गंभीर एकाग्रता की समस्याएं उत्पन्न होती हैं जो सामाजिक गतिशीलता में बाधा उत्पन्न कर सकती हैं।

सुझाव : अध्ययन के आधार पर मासिक धर्म संबंधी बाधाओं को दूर करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं।

क) नीतियां एक-पक्षीय समाधान पर निर्भर होने के स्थान पर दो-पक्षीय बातचीत करके परिवार के सदस्यों और पूरे समुदाय को सम्मिलित करके रणनीतिक हस्तक्षेप पर आधारित होनी चाहिए।

ख) केवल शिक्षा प्रचलित सांस्कृतिक वर्जनाओं को तोड़ने में प्रभावी नहीं है, बल्कि घर में महिलाओं को सम्मिलित करने के साथ-साथ प्रशासनिक निर्णय लेने के लिए उचित तंत्र समुदाय के भीतर से महिलाओं को सशक्त बना सकता है।

ग) स्थानीय रूप से निर्मित सैनिटरी पैड के प्रचार को चरणबद्ध तरीके से तेज गति से बढ़ाया जाना चाहिए ताकि यह दुर्गम क्षेत्रों आदिवासी क्षेत्रो में भी इसका प्रभाव दिखाई दे ।

घ) लिंग संवेदीकरण सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है परिवार, इसी से संवेदनशीलता आरम्भ होनी चाहिए। उचित संवेदनशीलता वाला आज का बच्चा कल अपनी बेटियों, माताओं और महिला साथियों का समर्थन करेगा।

ङ) दूरस्थ क्षेत्रों में सकारात्मक आकार लेने के लिए प्रजनन स्वास्थ्य शिक्षा को स्कूली पाठ्यक्रम के साथ-साथ राजनीतिक एजेंडे का हिस्सा बनाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष : यदि इतिहास देखें, तो यह विदित होगा कि महिलाओं को सशक्त बनाने में पुरुषों योगदान रहा है। मासिक धर्म जागरूकता अभियान में भी सर्वप्रथम नाम निशांत बंगेरा हैं जिन्होंने खेल, नाटक और थिएटर गतिविधियों के माध्यम से मासिक धर्म संबंधी रूढ़ियों को तोड़ने के लिए 'पीरियड ऑफ शेयरिंग' नामक आंदोलन चलाया। ऐसे कई अन्य उदाहरण हैं जहां पुरुषों ने सांस्कृतिक चुप्पी को तोड़ने और मासिक धर्म को सामान्य बनाने के लिए सामाजिक कार्यकर्ता, शोधकर्ता या कार्यकर्ता के रूप में पहल की।

हालाँकि, जनजातीय समाज के अंदर समकालीन लिंग संबंधों को देखते हुए, भारत अभी भी पूर्ण मासिक धर्म स्वच्छता जागरूकता प्राप्त करने से बहुत दूर है। यह अध्ययन सामाजिक-स्वास्थ्य चुनौतियों की पहचान पर केंद्रित है और मासिक धर्म से संबंधित मिथकों और वर्जनाओं को नष्ट करने में कुछ प्रचलित बाधाएं पाई गईं।

जागरूकता में कमी के कारण स्वास्थ्य तथा स्वच्छता से सम्बंधित अनेक मुद्दे सामने आते हैं। स्वास्थ्य शिक्षा के महत्व में कमी को भी प्राथमिकता दी जानी चाहिये। आज पूरे में विश्व में मासिक धर्म स्वच्छता प्रबंधन भी समस्या है, जिस पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है, स्वच्छता प्रबंधन न होने के कारण प्रदूषण से गंभीर बीमारियां जैसे सर्वाइकल कैंसर होती हैं। अतः कम आयु से ही मासिक धर्म प्रबंधन एक महत्वपूर्ण चरण है।

इसके अलावा, अंतर्राष्ट्रीय महिला स्वास्थ्य गठबंधन की रिपोर्ट में दावा किया गया है कि भारत में, 70 प्रतिशत किशोरों को यह पता नहीं था कि जब वे अपने पहले मासिक चक्र पर थे तो क्या हो रहा था। जानकारी के अभाव में तथा सामाजिक वर्जनाओं के चलते यह एक जटिल समस्या के रूप में दिखाई देते है, जिसको सम्बंधित करने के लिए दोनों लिंगों की भागीदारी के साथ एक समग्र समुदाय-आधारित दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. Patil et al. *'The Effect of India's Total Sanitation Campaign on Defecation Behaviors and Child Health in Rural Madhya Pradesh: A Cluster Randomized Controlled Trial'*, Plos medicine, 2014, 1-2.
2. Sharma et al. 'Menstrual Hygiene Preparedness Among Schools in India: A Systematic Review and Meta-Analysis of System-and Policy-Level Actions', International Journal of Environmental Research and Public Health, 2020, p. 1.
3. Dutta & Bhaskar, '23 Million Women Drop Out Of School Every Year When They Start Menstruating In India', (2018, May 28), Retrieved May 03, 2021, from swachhindia.ndtv.com: https://swachhindia.ndtv.com/23-million-women-drop-out-of-school-every-year-when-they-start-menstruating-in-india 17838/#:~:text=A%202014%20report%20by%20the,up%20with%20some%20startling%20numbers.
4. Paria et al. 'A Comparative Study on Menstrual Hygiene Among Urban and Rural Adolescent Girls of West Bengal', Journal of Family Medicine and Primary Care, 2014, 1.
5. BRINK, S. (2015, August 11). 'Some Cultures Treat Menstruation With Respect'. Retrieved October 09, 2020, from www.npr.org: https://www.npr.org/sections/goatsandsoda/2015/08/11/431605131/attention-trump-some-cultures-treat-menstruation-with-respect
6. कुमार, ए, पी. शर्मा, 'भारतीय समाज में मासिक धर्मः एक सामाजिक अध्ययन', सामाजिक विज्ञान जर्नल, 2017 25(2), पृ. 118-129.
7. जोशी, 'मासिक धर्म और स्वास्थ्य : ग्रामीण भारत में अध्ययन' स्वास्थ्य और समाज, 2018, 10(3), 45-59.
8. दीक्षित, 'ग्रामीण भारत में मासिक धर्म स्वच्छता : एक वास्तविकता', स्वास्थ्य और समाज की दिशा, 2019 14(1), 56-70.
9. सिंह, यादव, 'भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में मासिक धर्म स्वच्छता की स्थिति' ग्रामीण स्वास्थ्य जर्नल, 2020, 12(4), 210-224.
10. चौरसिया प्रतिमा, सिंह कालिंदी 'भारतीय समाज में सामाजिक कलंक के रूप में मासिक धर्म : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन', राधा कमल मुकर्जी : चिंतन परम्परा, वर्ष 25 अंक 1 जनवरी - जून 2023 पृ. 85-93
11. J. A. 'Prevalence and Determinants of Premature Menopause among Indian Women: Issues and Challenges Ahead', National Association of Social Workers, 2017, pp. 1-5.
12. Kumar, B. A. *'Socio-Cultural Dimensions of Menstrual Health Among Tribal Communities In Kerala'*, Studies in Indian Place Names, 2020, pp. 3944-3947.
13. Bjawsar. L.A. 'Menstrual Practices and Reproductive Problems : A Study of Adolesent Girls in Rajasthan', Journal of Health Management-2005, pp.1-3.
14. Sara, H., 'Compaigns Tacking India's Manstruation Tabeo One Stigma At a Time', Retrived April 24 2011, from homeogrown.co.in https://homegrown.co.in/article/42815/11compaigns-tackling-indias-menstriation-taboo-one-stigma-at-a-time.
15. Elin, R. M. (2019, January 22). 'Still embarrassing to talk about menstruation'. Retrieved April 24, 2021, from kjonnsforskning.no: https://kjonnsforskning.no/en/2019/01/still-embarrassing-talk-about-menstruation
16. Jennifer, H. (2020, January 13). 'Everything You Should Know About Menopause'. Retrieved April 27, 2021, from www.healthline.com: https://www.healthline.com/health/menopause
17. Wariso et al. *'Depression During the Menopause Transition: Impact on Quality of Life, Social Adjustment, and Disability'*. Arch Womens Ment Health, 2017, pp. 1-3.
18. Isha, B. (2020, November 25). 'Opinion: When will India give Women the Right to Bleed?' Retrieved April 24, 2021, from www.dw.com: https://www.dw.com/en/opinion-when-will-india-give-women-the-right-to-bleed/a-55726138
19. Ruchitra, s. (2020, December 24). 'Women in India are Quarantining for Being 'Impure'. Retrieved April 24, 2021, from vocal.media: https://vocal.media/viva/women-in-india-are-quarantining-for-being-impure

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

निजी क्षेत्र के कर्मचारियों के बीच नौकरी संतुष्टि पर वेतन और पद के प्रभाव का विश्लेषण

❑ सुश्री मनीषा शेखर
❑ डॉ. सारिका पांडेय

सूचक शब्द : संगठन, नौकरी संतुष्टि, सकारात्मक वातावरण, वेतन, उत्पादकता।

कर्मचारियों में नौकरी संतुष्टि एक महत्वपूर्ण घटक है जिसका प्रभाव न केवल कर्मचारियों पर पड़ता है बल्कि संपूर्ण संगठन भी इससे प्रभावित होता है। उपलब्ध साक्ष्य यह बताते हैं कि नौकरी संतुष्टि और उत्पादकता के बीच सकारात्मक सहसंबंध होता है।[1] अर्थात कर्मचारियों में नौकरी संतुष्टि के बढ़ने से उनकी उत्पादकता में भी वृद्धि देखने को मिलती है। इसके साथ ही नौकरी संतुष्टि से कर्मचारियों पर अपने कार्य के प्रति प्रतिबद्ध होने तथा कड़ी मेहनत करने के लिए प्रेरित होने में सहायता मिलती है जिसके फलस्वरूप दीर्घकाल में उनके संबंधित व्यवसाय को लाभ प्राप्त होता है।[2] प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य वेतन, कार्य क्षेत्र तथा कार्य करने का वातावरण कर्मचारी की नौकरी संतुष्टि पर पढ़ने वाले प्रभाव का व्यापक अवलोकन प्रदान करना है। संगठनात्मक आकार और प्रकार के आधार पर सोद्देश्य निदर्शन विधि का उपयोग करते हुए अध्ययन में प्रतिभागियों के नौकरी संतुष्टि पर विभिन्न कारकों के द्वारा पड़ने वाले प्रभावों का समीक्षात्मक निरीक्षण किया गया है। निष्कर्ष से पता चलता है कि निजी क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों के नौकरी संतुलन पर वेतन का बहुत प्रभाव नहीं पड़ता लेकिन कार्य क्षेत्र तथा कार्य के वातावरण का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

साधारणतः लोग आजीविका का चुनाव करते समय नौकरी के विभिन्न आयामों की जाँच करते हैं, जिसमें उचित वेतन तथा कार्य क्षेत्र बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लोग नौकरी तलाश करते समय अपनी क्षमता तथा योग्यता के अनुरूप कार्य क्षेत्र तथा वेतन पाने की चाह रखते हैं। वेतन से व्यक्ति को समाज में क्रय शक्ति प्राप्त होती है तथा कार्य क्षेत्र व्यक्ति को सामाजिक सम्मान प्रदान प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है। दोनों का आपसी संतुलन व्यक्ति के लिए आवश्यक होता है। यदि किसी व्यक्ति को उसके कार्य क्षेत्र के अनुरूप उचित वेतन न प्राप्त हो तो उसमें अपनी नौकरी के प्रति असंतोष का भाव उत्पन्न हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप उसकी कार्य क्षमता प्रभावित होती है।[3] आज के समय में जहाँ प्रतिदिन विभिन्न महत्वपूर्ण अनुसंधान कार्य हो रहे हैं यह कहना कि उचित वेतन या उचित कार्य क्षेत्र से कर्मचारियों के संतुष्टि का स्तर भी उच्चतर होगा सही नहीं है, बल्कि यह एक आवश्यक पहलू है जिस पर और अधिक शोध की आवश्यकता है, क्योंकि नौकरी संतुष्टि का जीवन संतुष्टि पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।[4] इसलिए संगठन को कर्मचारियों के शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य में सुधार लाने के उद्देश्य से किसी भी नए अभ्यास को प्रभाव में लेने से पहले, नौकरी की संतुष्टि में सबसे अधिक बाधा उत्पन्न करने वाले कार्य व्यवहार की पहचान करने और उसे समाप्त करने के लिए तनाव प्रबंधन नीति के विकास को सम्मिलित करना चाहिए।[5]

निजी संगठन अपने कर्मचारियों की नौकरी में संतुष्टि सुनिश्चित करके संपूर्ण संगठनात्मक प्रदर्शन में सुधार कर सकते हैं। कुछ अध्ययन बताते हैं कि कर्मचारियों में नौकरी संतुष्टि के बढ़ने से उनके स्वास्थ्य, जीवन की गुणवत्ता तथा उनके आत्मसम्मान में भी वृद्धि होती है।[6] कुछ अध्ययनों में यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि संगठन की उन्नति तथा कर्मचारी के नौकरी संतुष्टि के बीच सकारात्मक अंतःसंबंध होता है।[7] ऐसे में संगठन को अपने कर्मचारियों के कल्याण के लिए नीति निर्माण करने से पूर्व उन सभी घटकों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है जिसके प्रभाव से कर्मचारियों में नौकरी संतुष्टि प्रभावित होती है। ऐसा करने से कर्मचारियों की वास्तविक स्थिति तथा आवश्यकताओं को

❑ शोध अध्येत्री समाजशास्त्र विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)
❖ सहायक प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

समझने में तथा उसके अनुसार योजनाओं का निर्माण करने में सहायता मिलेगी।

नौकरी संतुष्टि की परिभाषा - नौकरी में संतुष्टि से तात्पर्य किसी संगठन में कार्य करने वाले कर्मचारियों की स्थिति तथा एक ऐसा काम करने के वातावरण से है, जिसमें उसके सभी कर्मचारी समृद्धि तथा प्रसन्नता अनुभव कर सकें। चूँकि किसी भी संगठन की सफलता उसके कर्मचारियों की इच्छा शक्ति तथा कार्य कौशल पर निर्भर करती है, इसलिए संगठन की उत्पादकता तथा दक्षता बढ़ाने के लिए कर्मचारियों को प्रेरित, गतिशील तथा निरंतर बढ़ती चुनौतियों का सामना करने योग्य बनाए रखने के लिए प्रेरित करना संगठन के उत्तरदायित्व के साथ-साथ उनकी प्रमुख आवश्यकता भी है। **लोके** की नौकरी संतुष्टि की परिभाषा के अनुसार "नौकरी संतुष्टि किसी के नौकरी या नौकरी के अनुभव के मूल्यांकन से उत्पन्न सबसे खुश या सकारात्मक भावनात्मक स्थिति होती है।"[8] नौकरी संतुष्टि को समाजशास्त्र में विभिन्न श्रेणियों में एक चर माना जाता है, जो इस बात से संबंधित होता है कि प्रत्येक कर्मचारी अपने काम का मूल्यांकन कैसे करता है तथा उसके बारे में वह कैसे सोचता है।[9] इसके साथ ही नौकरी संतुष्टि का सीधा संबंध किसी कर्मचारी द्वारा किए गए कार्य के निष्पादन और गुणवत्ता से भी होता जिसके परिणामस्वरूप यह किसी संगठन की सफलता में परिवर्तित हो जाती है क्योंकि एक संतुष्ट कर्मचारी किसी भी संगठन की सफलता में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

कर्मचारियों के नौकरी में संतुष्टि के महत्व को समझते हुए इसका का आकलन करने के लिए विभिन्न विषयों के विद्वान बहुत समय से इस विषय पर शोध कार्य करते आ रहे हैं, जिसमे **एल्टन मायो** का नाम बहुत ही महत्वपूर्ण है। इन्होने सन 1927 में शिकागो में स्थित एक वेस्टर्न इलेक्ट्रिक हाथोर्न नामक संगठन के कार्यालय के कर्मचारियों पर बिजली के प्रभाव का अध्ययन किया, जिसमें उन्होंने पाया कि वहां के कर्मचारियों की उत्पादकता पर बिजली का बहुत ही साधारण प्रभाव था। इस अध्ययन को आधार बनाकर उन्होंने आगे और भी कई अध्ययन किये, जिसमें उन्होंने दूसरे घटकों को आधार बनाया जैसे कि तापमान, कार्य की अवधि आदि। उन्होंने इन सभी कारकों के प्रभाव को कर्मचारियों की उत्पादकता की जांच करने के लिए प्रयोग किया। इसके लिए उन्होंने नौकरी संतुष्टि को भंग करके उत्पादकता की जांच की। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि कर्मचारियों पर ध्यान देने से उनके मोटिवेशन और पॉजिटिविटी को बढ़ाया जा सकता है।[10] एल्टन मायो के इस अध्ययन ने कर्मचारियों के काम संतुष्टि पर शोध कार्य करने के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

नौकरी संतुष्टि पर किये गए विभिन्न शोध कार्यों से यह बात स्पस्ट होती है कि लचीले कार्य करने के घंटे, कम कार्यभार के सही तरीके, टीमवर्क दृष्टिकोण और सहायक शीर्ष प्रबंधन जैसे कुछ सार्थक परिवर्तन करने से कर्मचारियों के कार्य प्रदर्शन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जिससे कर्मचारियों की नौकरी संतुष्टि का स्तर ऊंचा होता है, कर्मचारी अपने व्यवसाय के प्रति अधिक प्रतिबद्ध होते हैं, कड़ी मेहनत करने के लिए अधिक प्रेरित होते हैं और अपनी कंपनी के लिए उच्च उत्पादकता प्राप्त करने के लिए अधिक तत्पर रहते हैं, जिससे दीर्घकाल में उनसे संबंधित व्यवसाय को लाभ प्राप्त होता है। प्रस्तुत शोध के माध्यम से नौकरी संतुष्टि पर पड़ने वाले विभिन्न कारकों में से तीन कारकों (कार्य क्षेत्र, वेतन तथा कार्य करने का स्थान) के प्रभाव का एक व्यापक अवलोकन किया गया है।

साहित्य समीक्षा

टी.ए. जज, आर.एफ. पिकोलो, एन.पी. पोड्स्कॉफ, जे. एस. शाव और बी.एल. रिच[11] ने अपने "द रिलेशनशिप बिटवीन पे एंड जॉब सेटिस्फेक्शनः ए मेटा एनालिसिस ऑफ द लिटरेचर" में वेतन तथा नौकरी संतुष्टि के मध्य स्थापित संबंध पर प्रकाश डाला है। उन्होंने अपने अध्ययन के माध्यम से बताया कि "उच्च वेतन से उच्च स्तर की नौकरी संतुष्टि प्राप्त होती है" जैसी धारणा की सत्यता की जांच की है, जिसमें उन्होंने पाया है कि वेतन तथा नौकरी की संतुष्टि के मध्य केवल सामान्य सहसंबंध ही होता है अर्थात उच्च नौकरी संतुष्टि को प्राप्त करने में उच्च वेतन का बहुत थोड़ा सा ही योगदान होता है।

मोहम्मद शहजाद चौधरी, हजूर मोहम्मद साबिर, तथा मसूद नवाज कल्यार[12] ने अपने अध्ययन में बताया है कि वेतन संतुष्टि था नौकरी संतुष्टि का आपस में सकारात्मक रूप से संबंध है। उनके अध्ययन के निष्कर्ष दर्शाते हैं कि सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों में कर्मचारियों की वेतन संतुष्टि निजी क्षेत्र के कर्मचारियों की तुलना में अधिक है। इसके साथ ही उनका कहना है कि क्योंकि

सार्वजनिक क्षेत्र के कर्मचारियों में अपनी नौकरी को लेकर सुरक्षा का भाव था तथा अपनी स्थिति को लेकर किसी प्रकार का भय नहीं था इसलिए इन लोगों ने अनजाने में ही अपनी वेतन संतुष्टि को नौकरी की सुरक्षा से जोड़ दिया था।

सी. रोबी, ए.एम. रयान, आर.ए. श्मैंडेर, एल.एफ. पार्रा तथा पी.सी. स्मिथ[13] के अध्ययन के अनुसार नौकरी की संतुष्टि तथा नौकरी स्तर के बीच उच्च स्तर का अभिसरण था। उन्होंने पाया कि जैसे-जैसे नौकरी के स्तर में वृद्धि हो रही है वैसे-वैसे नौकरी की संतुष्टि में भी वृद्धि देखने को मिलती है। इस प्रकार उन्होंने अपने शोध में नौकरी स्तर तथा नौकरी संतुष्टि के मध्य सकारात्मक संबंध बताते हुए यह कहा कि नौकरी के स्तर के बढ़ने से कर्मचारियों में नौकरी के संतोष को भी बढ़ाया जा सकता है।

सूनही किम[14] ने अपने अध्ययन "आईटी एम्प्लोयी जॉब सटिस्फैक्शन इन द पब्लिक सेक्टर" में निजी संगठन में कार्यरत सूचना-प्रौद्योगिकी (आईटी) कर्मचारियों में नौकरी की संतुष्टि की जांच के लिए विभिन्न कारकों को आधार बनाया जैसे कि वेतन, लिंग तथा परिवार अनुकूल नीति आदि। अपने शोध में उन्होंने पाया की सूचना-प्रौद्योगिकी कर्मचारियों की नौकरी की संतुष्टि पर उनके वेतन संतुष्टि का प्रभाव महत्वपूर्ण नहीं था। जबकि जहाँ एक ओर नौकरी की स्पष्टता का पुरुष कर्मचारियों की नौकरी की संतुष्टि पर सकारात्मक प्रभाव देखा गया, वहीं महिला कर्मचारियों में नौकरी की संतुष्टि के लिए नौकरी की स्पष्टता महत्वपूर्ण नहीं थी। उनके शोध के परिणाम यह दर्शाते हैं कि जहाँ एक ओर महिला कर्मचारियों के लिए लागू की गयी परिवार अनुकूल नीति का उनके नौकरी की संतुष्टि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा वहीं परिवार अनुकूल नीति का पुरुष कर्मचारियों के बीच नौकरी की संतुष्टि पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा।

लुट्ज बेल्ल्मान्न[15] ने अपने अध्ययन में घर से काम करने का नौकरी की संतुष्टि तथा कार्य-जीवन संतुलन पर पड़ने वाले प्रभाव की जांच की है, जिसमे उन्होंने पाया कि सामान्यतः घर पर रह कर कार्य करने से कार्य-जीवन संतुलन पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता है। उनके शोध में यह स्पष्ट होता है कि कार्य और जीवन का संतुलन निजी हित पर निर्भर करता है। वहीं इसके विपरीत उन्होंने अपने अध्ययन में पाया की घर के वातावरण में काम करना प्रारंभ में तो नौकरी से संतुष्टि को बढ़ाती है किन्तु आगे चलकर यह अस्थायी ही होता है। आगे अपने शोध में वे बताते हैं कि जब हम घर से काम कर रहे कर्मचारियों की तुलना घर से काम करना चाहने वाले कर्मचारियों से करते हैं, तो हम पाते हैं कि घर से काम कर रहे कर्मचारी अधिक प्रसन्न रहते हैं।

उपर्युक्त साहित्य के पुनरावलोकन से स्पष्ट होता है कि नौकरी संतुष्टि बहुत से कारकों से प्रभावित होती है, जैसे कि काम का समय, लिंग, वेतन संतुष्टि, परिवार अनुकूल नीति, कार्य का वातावरण, कार्य का स्तर तथा पद आदि। नौकरी संतुलन व्यक्ति विशेष तथा संगठन के क्योंकि सर्वांगीण विकास में एक अहम भूमिका निभाती है इसलिए इसकी महत्ता को समझते हुए इसके पूर्व में भी इससे संबंधित बहुत से महत्वपूर्ण शोध कार्य हुए हैं लेकिन निजी क्षेत्र में कार्य करने वाले कर्मचारियों के कार्य करने के वातावरण तथा विभिन्न कार्य क्षेत्र पर आधारित शोध कार्य नहीं हुए हैं और ना ही वेतन, कार्य क्षेत्र तथा कार्य के वातावरण में से किसका नौकरी संतुष्टि पर कितना प्रभाव पड़ता है इसका स्पष्ट विवेचन किया गया है।

शोध के उद्देश्य :

1. सार्वजनिक कंपनी में विभिन्न पदों पर कार्यरत कर्मचारियों तथा कार्य क्षेत्र के अनुसार नौकरी संतुष्टि के मध्य सहसंबंध का अध्ययन करना।
2. नौकरी संतुष्टि पर वेतन के प्रभाव का विवेचन करना तथा उनके मध्य सहसंबंध का विश्लेषण करना।
3. निजी क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों के कार्य करने के वातावरण का उनके नौकरी संतुष्टि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
4. वेतन, कार्यक्षेत्र तथा कार्य के वातावरण के आपसी सहसंबंध का अध्ययन करना और इसमें उनके नौकरी संतुष्टि पर पड़ने वाले प्रभाव का समग्र रूप से मूल्यांकन करना।

शोध पद्धति : प्रस्तुत शोध में समग्र से निदर्शन का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि द्वारा किया गया है। इसमें सर्वप्रथम ऐसे संगठनों का चुनाव किया गया है जिसमें घर से काम करने, कार्यालय से काम करने तथा मिश्रित (घर तथा कार्यालय दोनों जगह से कार्य करने की कार्य

करने) संस्कृति उपलब्ध हो। तत्पश्चात उन संगठनों में से विभिन्न कार्य क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों जिनमें व्यवस्थापक (एडमिन), सूचना-प्रौद्योगिकी (आई टी), मानव संसाधन (एच आर), वित्त (फाइनेंस), व्यवसाय (बिजनेस) सम्मिलित हैं का चुनाव किया गया है। समग्र का आकार वृहद होने की स्थिति में संपूर्ण समग्र से 30 प्रतिशत प्रतिनिधित्वपूर्ण उत्तरदाताओं का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि के द्वारा किया गया है क्योंकि उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि पूरे समग्र का सही प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रकार शोध कार्य के लिए कुल 150 उत्तरदाताओं का चयन किया गया। तथ्य संकलन के लिए प्राथमिक उपकरण के संदर्भ में साक्षात्कार विधि का प्रयोग किया गया तथा यंत्र के रूप में साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया। तथ्यों के विश्लेषण के लिए सहसंबंध परीक्षण का प्रयोग किया गया है। इसमें किसी भी चर में हस्तक्षेप किए बिना चरों के बीच के संबंधों को की जांच की गई है। चरों के मध्य सहसंबंध की जांच हेतु पियर्सन स्केल का प्रयोग किया गया है।

सारणी संख्या : 1

विभिन्न कार्य क्षेत्र में कार्यरत उत्तरदाताओं की संख्या

कार्य क्षेत्र	संख्या	प्रतिशत
व्यवस्थापक	3	2.00
व्यवसाय	71	47.33
वित्त	26	17.33
मानव संसाधन	13	8.67
सूचना-प्रौद्योगिकी	37	24.67
कुल	150	100.00

किसी भी संगठन में कार्यरत सभी कर्मचारी उपर्युक्त सारणी में दिखाए गए पाँच में से किसी एक क्षेत्र से आते हैं। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी कार्यशैली होती है और इनमें भिन्नताएं पायी जाती हैं। उपर्युक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि व्यवस्थापक के क्षेत्र में कार्यरत उत्तरदाताओं का प्रतिशत 2.00 है, 47.33 प्रतिशत उत्तरदाता व्यवसाय में कार्यरत हैं, 17.33 प्रतिशत उत्तरदाता वित्त में कार्यरत हैं, 8.67 प्रतिशत उत्तरदाता मानव संसाधन में कार्यरत हैं तथा 24.67 प्रतिशत उत्तरदाता सूचना - प्रौद्योगिकी में हैं। स्पष्ट है कि व्यवसाय के क्षेत्र में कार्यरत उत्तरदाताओं की संख्या सर्वाधिक है।

सारणी संख्या : 2

विभिन्न वेतन श्रेणियों में उत्तरदाताओं की संख्या

वेतन	संख्या	प्रतिशत
5 लाख तक	29	19.33
5 लाख - 10 लाख	29	19.33
10 लाख - 15 लाख	14	9.33
15 लाख से ऊपर	78	52.00
कुल	150	100.00

वेतन क्रय शक्ति का एक महत्वपूर्ण अभिकरण है। किसी व्यक्ति का वेतन जितना अधिक होता है उतनी ही उस व्यक्ति की क्रय शक्ति भी होती है। उपर्युक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 29 उत्तरदाताओं का वेतन 5 लाख तक है, 29 उत्तरदाताओं का वेतन 5 से 10 लाख के बीच है, 14 उत्तरदाताओं का वेतन 10 से 15 के बीच है तथा 78 उत्तरदाताओं का वेतन 15 लाख से ऊपर है। स्पष्ट है की 15 लाख से ऊपर का वेतन प्राप्त करने वाले उत्तरदाताओं की संख्या सर्वाधिक है।

सारणी संख्या : 3

कार्य स्थानों के आधार पर उत्तरदाताओं की संख्या

कार्य करने का स्थान	संख्या	प्रतिशत
घर से काम	38	25.33
दफ्तर से काम	27	18.00
मिश्रित	85	56.67
कुल	150	100.00

कोविड काल के बाद कार्य करने के पारम्परिक ढंग में परिवर्तन देखने को मिला। जहां पहले केवल दफ्तर में रह कर ही कार्य करने का चलन था वहीं अब कार्यालय के साथ-साथ घर पर रह कर कार्यालय के कार्यों का सम्पादन किया जा सकता है। उपर्युक्त सारणी कर्मचारियों के कार्य स्थान के आधार उत्तरदाताओं की संख्या को प्रदर्शित करती है। सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि घर से काम करने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 25.33 प्रतिशत है, कार्यालय से काम करने वाले कर्मचारियों की संख्या 18.00 प्रतिशत है और मिश्रित स्थान पर कार्यरत उत्तरदाताओं की संख्या 56.77 प्रतिशत है। स्पष्ट है कि मिश्रित स्थान पर कार्यरत उत्तरदाताओं की संख्या सर्वाधिक है।

सारणी संख्या : 4

नौकरी संतुष्टि के आधार पर उत्तरदाताओं की संख्या

नौकरी संतुष्टि	संख्या	प्रतिशत
बिल्कुल संतुष्ट नहीं	12	8.00
उदासीन	31	20.67
अर्द्ध संतुष्ट	51	34.00
पूर्ण संतुष्ट	56	37.33
कुल	150	100.00

नौकरी संतुष्टि किसी भी कर्मचारी तथा संगठन के सर्वांगीण विकास के लिए बहुत आवश्यक है। प्रत्येक कर्मचारियों में नौकरी संतुष्टि के स्तर में भी भिन्नता पायी जाती है। उपर्युक्त सारणी कर्मचारियों के नौकरी संतुष्टि के आधार पर उत्तरदाताओं की संख्या को प्रदर्शित करती है। सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि बिल्कुल संतुष्ट नहीं उत्तरदाताओं की संख्या 8 प्रतिशत है, उदासीन उत्तरदाताओं की संख्या 20.67 प्रतिशत है, अर्ध संतुष्ट उत्तरदाताओं की संख्या 34 तथा पूर्ण संतुष्ट उत्तरदाताओं की संख्या 37.33 प्रतिशत है। स्पष्ट है कि पूर्ण संतुष्ट उत्तरदाताओं की संख्या सर्वाधिक है।

सारणी संख्या : 5

नौकरी संतुष्टि तथा विभिन्न कार्य क्षेत्र के बीच सहसंबंध

उत्तरदाताओं की नौकरी संतुष्टि		उत्तरदाताओं की नौकरी संतुष्टि	उत्तरदाताओं का कार्य क्षेत्र
नौकरी संतुष्टि	पियर्सन सहसंबंध	1	.368**
	सीग. (2-टेल्ड)		0.003
	एन	150	150
कार्य क्षेत्र	पियर्सन सहसंबंध	.368**	1
	सीग. (2-टेल्ड)	0.003	
	एन	150	150
सहसंबंध 0.01 स्तर (2-टेल्ड) पर सार्थक है।			

उपर्युक्त सारणी में उत्तरदाताओं की नौकरी संतुष्टि और कार्य क्षेत्र के मध्य सहसंबंध को प्रदर्शित किया गया है जिसमें उत्तरदाताओं में नौकरी संतुष्टि पर कार्य क्षेत्र के प्रभाव को देखा जा सकता है। सारणी के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि नौकरी संतुष्टि तथा कार्य क्षेत्र के मध्य सहसंबंध 0.368 है। क्योंकि पियर्सन सहसंबंध का मान 0.3 से 0.7 के बीच में है इसलिए यह स्पष्ट होता है कि दोनों चरों के बीच संबंध है। अगर नौकरी संतुष्टि तथा कार्य क्षेत्र के के बीच सहसंबंध की प्रकृति की बात की जाए तो सारणी के अवलोकन से यह स्पष्ट है की दोनों चरों के बीच सकारात्मक संबंध है अर्थात कार्यक्षेत्र को उत्तम बनाने से नौकरी संतुष्टि भी उत्तम होगी। उपर्युक्त सारणी में सार्थकता का स्तर 0.05 से कम है इसलिए यह प्रमाणित होता है कि कार्य स्थान तथा नौकरी संतुष्टि के बीच का संबंध वर्तमान शोध संबंध के लिए सार्थक है।

सारणी संख्या : 6

नौकरी संतुष्टि तथा वेतन के मध्य सहसंबंध		उत्तरदाताओं का वेतन	उत्तरदाताओं में नौकरी संतुष्टि
उत्तरदाताओं का वेतन	पियर्सन सहसंबंध	1	.085**
	सीग. (2-टेल्ड)		0.007
	एन	150	150
उत्तरदाताओं में नौकरी संतुष्टि	पियर्सन सहसंबंध	.085**	1
	सीग. (2-टेल्ड)	0.007	
	एन	150	150
सहसंबंध 0.01 स्तर (2-टेल्ड) पर सार्थक है			

उपर्युक्त सारणी में उत्तरदाताओं की नौकरी संतुष्टि और वेतन के मध्य सहसंबंध को प्रदर्शित किया गया है जिसमें उत्तरदाताओं में नौकरी संतुष्टि पर वेतन के प्रभाव को देखा जा सकता है। सारणी के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि नौकरी संतुष्टि तथा वेतन के सहसंबंध 0.085 है। क्योंकि पियर्सन सहसंबंध का मान 0.3 से कम है इसलिए यह स्पष्ट होता है की दोनों चरों के बीच की निम्न है। अगर नौकरी संतुष्टि तथा वेतन के मध्य सहसंबंध की प्रकृति की बात की जाए तो दोनों चरों के बीच सकारात्मक संबंध है। अर्थात वेतन को उच्चतर बनाने से नौकरी संतुष्टि भी उच्चतर होगा किन्तु यह प्रभाव निम्न स्तर का होगा। सारणी में सार्थकता का स्तर 0.05 से कम है इसलिए यह प्रमाणित होता है कि वेतन तथा नौकरी संतुष्टि के बीच का संबंध वर्तमान शोध संबंध के लिए सार्थक है।

सारणी संख्या : 7

नौकरी संतुष्टि तथा कार्य स्थान के मध्य सहसंबंध		उत्तरदाताओं में नौकरी संतुष्टि	उत्तरदाताओं कार्य स्थान
उत्तरदाताओं में नौकरी संतुष्टि	पियर्सन सहसंबंध	1	.613**
	सीग. (2-टेल्ड)		0.009
	एन	150	150
उत्तरदाताओं कार्य स्थान	पियर्सन सहसंबंध	.613**	1
	सीग. (2-टेल्ड)	0.009	
	एन	150	150
सहसंबंध 0.01 स्तर (2-टेल्ड) पर सार्थक है			

उपर्युक्त सारणी में उत्तरदाताओं की नौकरी संतुष्टि और कार्य स्थान के मध्य सहसंबंध को प्रदर्शित किया गया है जिसमें उत्तरदाताओं में नौकरी संतुष्टि पर कार्य स्थान के प्रभाव को देखा जा सकता है। सारणी के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि नौकरी संतुष्टि तथा कार्य स्थान के सहसंबंध .613 है। क्योंकि पियर्सन सहसंबंध का मान 0.3 से 0.7 के बीच में है इसलिए यह स्पष्ट होता है की दोनों चरों के बीच का संबंध मध्यम है। अगर नौकरी संतुष्टि तथा कार्य क्षेत्र के बीच सहसंबंध की प्रकृति की बात की जाए तो दोनों चरों के बीच सकारात्मक संबंध है अर्थात कार्य स्थान को बेहतर बनाने से नौकरी संतुष्टि भी बेहतर होगी। सारणी में सार्थकता का स्तर 0.05 से कम है इसलिए यह प्रमाणित होता है कि कार्य स्थान तथा नौकरी संतुष्टि के बीच का संबंध वर्तमान शोध संबंध के लिए सार्थक है।

निष्कर्ष : उपर्युक्त तीनों सारणियों के आधार पर यह स्पष्ट होता है की नौकरी संतुष्टि पर कार्य क्षेत्र, वेतन तथा कार्यस्थान में से किसी भी चर का सबल प्रभाव नहीं पड़ता है। किंतु इसी के साथ ही यह बात भी स्पष्ट होती है कि नौकरी संतुष्टि पर कार्यस्थान, वेतन तथा नौकरी क्षेत्र का कुछ सीमा तक ही सही पर प्रभाव अवश्य पड़ता है। अतः तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर नौकरी संतुष्टि पर पढ़ने वाले प्रभाव के आधार पर तीनों चरों में भिन्नता देखी जा सकती है। नौकरी संतुष्टि पर जहां कार्यस्थान का प्रभाव सबसे अधिक पड़ता है वहीं कार्य स्थान से कम प्रभाव कार्यक्षेत्र का नौकरी संतुष्टि पर पड़ता है। वेतन का प्रभाव नौकरी संतुष्टि पर कार्य स्थल और कार्य क्षेत्र की तुलना में सबसे कम पड़ता है। कार्यस्थान के नौकरी संतुष्टि पर पड़ने वाले प्रभाव का विवेचना **अब्दुल रजिक और राहीला मौलाबख्श** ने भी अपने अध्ययन में किया है जिसमे वे बताते हैं की कार्य करने के वातावरण में परिवर्तन का सीधा प्रभाव नौकरी संतुष्टि पर पड़ता है।[16] कार्य स्थान की महत्ता को समझते हुए **आराधना एस. कुमार और जयंती बनर्जी दास** ने अपने अध्ययन में इस बात पर जोर दिया है कि निरंतर बदलती दुनिया में कर्मचारियों की दीर्घकालिक खुशी, स्वास्थ्य तथा नौकरी संतोष के लिए कार्य करने की आवश्यकता है। इसके लिए कंपनी के प्रबंधन और संस्कृति में पुनर्योजी कार्यस्थल को स्वीकार करना चाहिए।[17] ये सभी अध्ययन इस बात की पुष्टि करते हैं की कार्य स्थान एक महत्वपूर्ण कारक है नौकरी संतुष्टि के लिए। इसी प्रकार वेतन के नौकरी संतुष्टि पर पड़ने

वाले प्रभाव पर हुए अध्ययन के अनुसार अगर कर्मचारियों को उचित वेतन के साथ-साथ कुछ पुरस्कार (परिवहन भत्ता, चिकित्सा भत्ता आदि) भी निश्चित कर दिए जाये तो वे अपने कार्य के प्रति अधिक आकर्षित होंगे तथा उनमें नौकरी संतुष्टि भी बढ़ेगी क्योंकि वे अपने वेतन और पुरस्कार के बारे में अधिक निश्चिंत होंगे।[18] किन्तु कुछ यह भी बताते हैं कि केवल सामान्य परिस्थितियों में ही वेतन नौकरी संतुष्टि पर प्रभाव डालता है यदि कार्य कार्यान्वयन प्रक्रिया में अन्य प्रकार की बाधाएं सम्मिलित हो जायें तो ऐसी परिस्थिति में वेतन का नौकरी संतुष्टि पर कुछ विशेष प्रभाव नहीं रह जाता हैं।[19] इस प्रकार अध्ययनों के मध्य समानता इस बात को प्रमाणित करती है की वेतन नौकरी संतुष्टि को कुछ सीमा तक प्रभावित करता है। नौकरी संतुष्टि पर कार्य क्षेत्र के प्रभाव पर और भी शोध कार्य होने ही आवश्यकता है जिससे इससे पड़ने वाले प्रभाव का ठीक ठीक आकलन किया जाना संभव हो सके। प्रस्तुत शोध कार्य से यह सिद्ध होता है कि केवल नौकरी संतुष्टि पर केवल इन्हीं तीन कारकों का प्रभाव नहीं पड़ता बल्कि नौकरी संतुष्टि को प्रभावित करने वाले और भी कारक हो सकते हैं जिन पर भविष्य में शोध किए जाने की आवश्यकता है। इसके साथ ही आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि नौकरी संतुष्टि में तीनों ही कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। किंतु जहां वेतन का प्रभाव एक सीमा के बाद स्थिर होने लगता है वहीं कार्य स्थान तथा कार्य क्षेत्र का प्रभाव नौकरी संतुष्टि पर स्पष्ट देखने को मिलता है। किसी भी संगठन के नीति निर्माताओं को अपने कर्मचारियों को उत्तम कार्य वातावरण उपलब्ध कराने के लिए आवश्यतानुसार कदम उठाने चाहिए क्योंकि नौकरी संतुष्टि संगठन और उनके कर्मचारियों दोनों के लिए बहुत अधिक लाभप्रद है।

सुझाव :

1. नीति निर्माताओं को सूचना प्रौद्योगिकी के पद पर कार्यरत कर्मचारियों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। उनकी आवश्यकता को समझते हुए उचित उपाय करने चाहिए।
2. प्रबंधन को अपने कर्मचारियों के नौकरी संतोष को बढ़ाने के लिए एक ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिये जहां कर्मचारियों को समग्र निर्णय लेने की प्रक्रिया का हिस्सा बनाया जा सके।
3. संगठन के संचालकों को अपने कर्मचारियों की नौकरी संतुष्टि को बढ़ाने के लिए उनके कर्मचारी किस वातावरण में काम करने में ज्यादा संतुष्टि अनुभव करते हैं इसका सही-सही मूल्यांकन करके संगठन तथा कर्मचारियों के हितों को ध्यान में रखते हुए उचित निर्णय लेना चाहिए।
4. कर्मचारी की नौकरी असंतुष्ट होने की स्थिति कर्मचारी को अपनी क्षमता दिखाने और अपनी पूरी क्षमता से काम करने से रोकती है। इसलिए यह आवश्यक है कि संगठन को यह अनुभव हो कि अच्छे कामकाजी वातावरण का महत्व समझना आवश्यक है।
5. इसके साथ ही अभी भी नौकरी संतुष्टि को प्रभावित करने वाले बहुत से कारकों के मध्य शोध कार्य करना आवश्यक है जिससे नौकरी संतुष्टि को प्रभावित करने वाले सभी आयामों की ठीक-ठीक विवेचना की जा सके।

सन्दर्भ

1. Hoboubi, Naser, Alireza Choobineh, Fatemeh Kamari Ghanavati, Sareh Keshavarzi, and Ali Akbar Hosseini. *'The impact of job stress and job satisfaction on workforce productivity in an Iranian petrochemical industry'*. Safety and health at work 8, no. 1 (2017): pp. 67-71.
2. Raziq, Abdul, and Raheela Maulabakhsh. *'Impact of working environment on job satisfaction'*. Procedia economics and finance 23 (2015): pp.717-725.
3. Mardiyanti, Oktavika Alrina. 'The effect of Financial Compensation and Non Financial Compensation on Employees' Performance through Job Satisfaction (Study on Permanent Employees in PT Citra Perdana Kendedes)'. PhD diss., Universitas Brawijaya, 2018.
4. Lambert, Eric G., Nancy L. Hogan, Eugene A. Paoline III, and David N. Baker. 'The good life: The impact of job satisfaction and occupational stressors on correctional staff life satisfaction—An exploratory study'. Journal of Crime and Justice 28, no. 2 (2005): pp.1-26.
5. Faragher, E. Brian, Monica Cass, and Cary L. Cooper. *'The relationship between job satisfaction and health: a meta-analysis'*. Occupational and environmental medicine 62, no. 2 (2005): pp. 105-112.
6. Satuf, Cibele, Samuel Monteiro, Henrique Pereira, Graça Esgalhado, Rosa Marina Afonso, and Manuel Loureiro. 'The protective effect of job satisfaction in health, happiness, well-being and self-esteem'. International Journal of occupational safety and ergonomics 24, no. 2 (2018): pp. 181-189.

7. Rana, Anika.' Unlocking Success: The Significance of Job Satisfaction for Employee and Employer Performance'. International Conference on Digital Transformation at National Law University, Delhi 2024, pp. 2-15.
8. EA, LOCKE. *'The nature and cause of job satisfaction'*. Handbook of industrial and organizational psychology Rand MC Nally 130, 1976, pp. 1297-1343
9. Sypniewska, Barbara. 'Evaluation of factors influencing job satisfaction'. Contemporary economics 8, no. 1 2014 pp. 57-72.
10. Mayo, Elton. 'The Hawthorne Experiment'. The Human Factor 6 No.1, 1930, pp. 1-2.
11. Judge, Timothy A., Ronald F. Piccolo, Nathan P. Podsakoff, John C. Shaw, and Bruce L. Rich. 'The relationship between pay and job satisfaction: A meta-analysis of the literature'. Journal of vocational behavior 77, No. 2, 2010, pp. 157-167.
12. Chaudhry, Muhammad Shahzad, Hazoor Muhammad Sabir, Nosheen Rafi, and Masood Nawaz Kalyar. 'Exploring The Relationship Between Salary Satisfaction And Job Satisfaction: A Comparison Of Public And Private Sector Organizations'. Journal of Commerce (22206043) 3, no. 4, 2011, pp. 1-25.
13. Robie, Chet, Ann Mare Ryan, Robert A. Schmieder, Luis Fernando Parra, and Patricia C. Smith. 'The relation between job level and job satisfaction'. Group & Organization Management 23, no. 4, 1998, pp. 470-495.
14. Kim, Soonhee. 'IT employee job satisfaction in the public sector'. Intl Journal of Public Administration 32, no. 12, 2009, pp. 1070-1097.
15. Bellmann, Lutz, and Olaf Hübler. 'Job satisfaction and work-life balance: Differences between homework and work at the workplace of the company', International Journal of Manpower, 42 No. 3, 2021, pp. 424-441.
16. Laschinger, Heather K. Spence, Joan E. Finegan, Judith Shamian, and Piotr Wilk. 'A longitudinal analysis of the impact of workplace empowerment on work satisfaction'. Journal of Organizational Behavior: The International Journal of Industrial, Occupational and Organizational Psychology and Behavior 25, no. 4, 2004, pp. 527-545.
17. Kumar, Aradhana S., and Jayanti Banerjee Das. 'The impact of 'hybrid-work-model'on job satisfaction'. International Journal of Business Management & Research (IJBMR) 12, no. 1, 2022, pp. 71-82.
18. Jawaad, Mehwish, Abeera Amir, Aideed Bashir, and Tania Hasan. 'Human resource practices and organizational commitment: The mediating role of job satisfaction in emerging economy'. Cogent Business & Management, 2019, pp. 1-22
19. Agustiningsih, Hiqma Nur, Armanu Thoyib, H. Djumilah, and Noermijati Noermijati. 'The effect of remuneration, job satisfaction and OCB on the employee performance'. Science Journal of Business and Management 4, no. 6, 2016, pp. 212-222.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

समानता के सिद्धांत की उत्पत्ति व संरचना के संदर्भ में रूसों के विचारों का विश्लेषण

❑ डॉ. महेश जगोठा
❖ प्रोफेसर एम. एम. सेमवाल

सूचक शब्द : समानता, लोकतंत्र, प्राकृतिक अधिकार, विषमता, राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक अधिकार।

प्रस्तुत शोध पत्र समानता के सिद्धांत व संरचना की उत्पत्ति के संदर्भ में एक विस्तृत व व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसके अंतर्गत समानता के सिद्धांत की यथास्थिति का प्राचीन मध्य व आधुनिक काल में राजनीति विज्ञान में विचारकों के द्वारा किस प्रकार का चलन अलग-अलग रूपों में किया गया है, साथ ही प्राचीन व मध्यकाल में समानता को लेकर विचारक किस प्रकार के मिथक में नजर आये उसको भी चित्रित किया गया है। इसके अतिरिक्त आधुनिक काल में इसके विकास में रूसो के विचारों के योगदान से किस प्रकार इसके आधारभूत सिद्धांतों का निर्माण होकर, लोकतांत्रिक परंपराओं में यह एक मूलभूत सिद्धांत के रूप में उजागर हुआ का विस्तृत विवरण भी प्रस्तुत किया गया है।

विश्व में रहने वाले करोड़ों लोगों के बीच असंख्य असमानताओं का होना प्राकृतिक रुप से स्वाभाविक है। जिस कारण लोग बहुत से अर्थों में एक दूसरे से अलग व असमान होते है। जिसके अंतर्गत वे अलग-अलग नस्ल, धर्म, लिंग आदि के साथ ही शारीरिक, अनुवांशिक और मानसिक सक्षमताओं के साथ-साथ अपनी मनोवृत्तियों और क्षमताओं के संदर्भ में भी अलग होते है, इसके अतिरिक्त वे अलग-अलग ढंग से अपना जीवन जीते है या अलग-अलग ढंग से जीवन जीने की कल्पना करते हैं।[1] इस प्रकार राजनीति विमर्श में समानता का विचार प्राचीन काल से ही केन्द्रीय और विवादास्पद भूमिका निभाता आया है परंतु आधुनिक समाजों में समानता एक मूल्य भी है और सिद्धांत भी जिसकी यात्रा बड़ी लंबी रही है।[2] **समानता का** सिद्धांत भले ही आधुनिक सभ्य मानवीय सभ्यता व समाज की देन है, परंतु इसके संघर्ष का इतिहास बड़ा लंबा व कई चरणों से होकर विचरित हुआ है क्योंकि मानवीय सभ्यता के जन्म के साथ जो प्राकृतिक विषमताओं की जटिलता समाज व मानवीय सभ्यताओं में दृष्टिगोचर थी, उसके प्रत्युत्तर के लिए समानता के कई आधारों की संरचना को कर्मानुसार चित्रित कर निर्धारित किया गया। यह प्रक्रिया राज्य की उत्पत्ति के लिए दिए जाने वाले ऐतिहासिक सिद्धांत के समान ही रही, जिसमें राज्य की उत्पत्ति को लेकर ऐतिहासिक सिद्धांत समर्थक विचारक कहते हैं कि राज्य की उत्पत्ति इतिहास में होने वाली कमियों के सुधार का परिणाम हैं, ठीक उसी प्रकार समानता के सिद्धांत के निर्माण का विचार भी समय-समय पर मानवीय सभ्यता व समाजों में पैदा होने वाली सामाजिक जटिलता रुपी समस्याओं के समाधान का परिणाम है जहां प्राचीन काल में व्यक्ति की प्राकृतिक असमानता को ही वास्तविक व सत्य मानकर आचरण किया जाता था वहीं मध्यकाल में भी इसी प्रकार का आचरण देखने को मिलता है जिसका निदान समानता के सिद्धांत की उत्पत्ति के रुप में दिखाई दिया।

यदि हम समानता के विचार की बात करें तो समानता का विचार कुछ रुपों में तो प्राकृतिक रहा जैसे एक जैसा रक्त, शारीरिक संरचना आदि, जबकि दूसरी ओर यह बिल्कुल भी प्राकृतिक नहीं रहा है। जिसके अंतर्गत मान-मर्यादा, गरीब-अमीर, ऊंच-नीच आदि।[3] प्रकृति ने जहां मनुष्यों की त्वचा, रंग-रुप, कद-काठी, बल के रूप में पहले से भेदपूर्ण आचरण कर असमानता की रुपरेखा का निर्धारण करके मनुष्यों को अलग-अलग कर मानवीय सभ्यता व समाज को लंबे समय तक समानता के संदर्भ में भ्रमित कर जीने के लिए विवश किया है जिस कारण समानता की अवधारणा का चलन प्राचीन व मध्यकाल में

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, स्पर्श हिमालय विश्वविद्यालय, डोईवाला, देहरादून (उत्तराखण्ड)
❖ प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष राजनीति विज्ञान विभाग, हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल केंद्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखंड)

पूर्णतः गौण ही रहा, प्राचीन काल में जहां इस प्राकृतिक विषमता को ही वास्तविक व राज्य के आचरण के संदर्भ में समझा जाता था जैसे अरस्तु के द्वारा नागरिकता के संदर्भ में बच्चे व महिलाओं को नागरिकता से वंचित किया जाना, क्योंकि अरस्तु का मानना था कि बच्चे और स्त्रियां शारीरिक व मानसिक रुप से दुर्बल होते हैं जिस कारण वे राज्य को अपने कर्तव्यों के निर्वहन के संदर्भ में कम लाभ प्रदान करते हैं, जबकि पुरुषों के बारे में यह समस्या नहीं है। इसके साथ ही अरस्तु ने सामाजिक व्यवस्था के संचालन के लिए भी दास प्रथा का समर्थन किया।[4] वहीं मध्यकाल में राजतंत्रात्मक व्यवस्था व धर्म की सर्वोच्चता के साथ-साथ सामंतवादी व्यवस्था तो पूर्णतः विशेषाधिकारों पर ही आश्रित थी जिसमें राजा, राजा के मंत्री, पोप व सामंत सरदारों को ही विशेषाधिकार प्राप्त थे बाकी सभी इनके चाकर थे।[5]

मध्ययुग के अंतिम चरणों व आधुनिक समय के आगमन के दौरान तानाशाही शासकों के विरुद्व प्रतिक्रिया के साथ-साथ 14वीं से 17वीं सदी के बीच पुर्नजागरण काल के प्रादुर्भाव के कारण जैसे ही ज्ञान, कला, साहित्य का प्रसार हुआ तो इस समय अवधि में मानवीय प्रभुता का प्रसार हुआ जिसके बाद हॉब्स, लॉक व रूसो ने प्राकृतिक अधिकारों की बात की जिसमें रूसो ने अपनी बहुचर्चित कृति 'विषमता की उत्पत्ति (1754) पर वार्ता' के माध्यम से असमानता का वर्गीकरण कर प्राकृतिक समानता व परंपरागत समानता में भेद कर समानता के सिद्धांत की नीव रखी। तत्पश्चात आधुनिक युग में निरंकुश राजतंत्र को खत्म कर लोकतंत्र को स्थापित किया गया जिसके अंतर्गत 1779 में सर्वप्रथ अमेरिकी संविधान में स्वतंत्रा के सिद्धांत को व्यवहारिक रुप से लागू किया गया जिसमें रूसो के विचारों का बड़ा योगदान रहा।

साहित्य समीक्षा

हैरी जोन्स[6] ने अपने लेख में बताया है कि समानता नैतिक समानता के विचार से आती है जिसमें यह भाव मूलभूत रूप से उभरकर सामने आता है कि लोगों के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए। इस प्रकार समानता के बारे में सोचना हमें यह तय करने में सहायता कर सकता है कि समाज में वस्तुओं और सेवाओं के वितरण पर राज्य के प्रभाव के लिए उसे उत्तरदायी ठहराया जाए और इस प्रभाव का उपयोग सभी नागरिकों के लिए उचित व्यवहार सुनिश्चित करने के लिए किया जाए।

हैरोल्ड जे. लास्की[7] ने स्वतंत्रता के साथ-साथ समानता पर भी बात की है। लास्की के अनुसार समानता मोटे रूप में विचारों का वह तालमेल है जिसमें प्रत्येक स्थिति विशेष परीक्षण चाहती है, निःसंदेह यह एक विशेष प्रकार की सामान्यीकरण की प्रक्रिया है जिसका अर्थ है कि समाज में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं होना चाहिए कि वह अपने पड़ोसी को उस सीमा तक दबा सके कि बेचारे पड़ोसी की नागरिकता ही समाप्त हो जाये, अर्थात मैं श्रेष्ठ रूप में इस प्रकार अभिव्यक्त होऊं कि दूसरे लोग भी अपने श्रेष्ठ रूप में अभिव्यक्त हो सकें। इस प्रकार समानता सामाजिक तत्वों की एक ऐसी व्यवस्था है जो जीवन के श्रम और उसके लाभों में एक संतुलन स्थापित करती है, अर्थात समानता का अर्थ इस तत्व में निहित है कि मनुष्य की प्रकृति के अंदर उसकी इच्छा को अभिव्यक्त करने वाली प्रक्रियाएं प्रतिबिम्बित होनी चाहिए, जिससे उनकी सुनवाई हो सके।

मलफर्ड क्यू. सिबली[8] की पुस्तक राजनीतिक विचारकों व उनके मूलभूत सिद्वांतों का एक प्रमाणित दस्तावेज है, जिसमें प्राचीन काल में प्लेटो, अरस्तु, सिसरो व मध्य काल में अगस्टाइन, एक्वीनास के साथ-साथ आधुनिक काल में मैकियावली, हाब्स, लॉक, रूसो, हीगल व मार्क्स जैसे विचारकों के विचारों को दर्शाया गया है। इसके तृतीय भाग में रूसो के विचारों का विस्तृत विवेचन देखने को मिलता है, जिसमें समानता व प्राकृतिक अवस्था पर बात करते हुए रूसो का कहना है कि प्राकृतिक अवस्था में असमानता तो थी किंतु वह सीमित व नियंत्रित थी, अर्थात ऐसी असमानता जो प्रकृति ने दी है जो मूलतः शारीरिक शक्ति, अभिवृत्ति या चरित्र व आचरण के संदर्भ में प्राकृतिक रूप से भिन्न ही नजर आती थी, किंतु प्रकृति द्वारा मर्यादित इस सहज असमानता से आगे एक दूसरी प्रकार की असमानता भी है जो प्राकृतिक अवस्था में नही थी। यह असमानता उन व्यक्तियों के द्वारा उत्पन्न की गई जो प्राकृतिक अवस्था से विद्रोह की स्थिति में थे। इस प्रकार दूसरी असमानता का निर्माण होता है जिसका स्वरुप सामाजिक समझौते के पश्चात, समाज के निर्माण के बाद परंपरा व रीति रिवाजों के द्वारा कुछ आधारों पर असमानता व विषमता के आधारों को गढ़कर तैयार किया गया और ये ही वे आधार थे जिन्हें आगे चलकर असमानता की श्रेणी में रखा गया।

एरिक डी. गोल्ड और अलेक्जेंडर हिजेन[9] के द्वारा अपने शोध लेख में आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक समानता के आधारों व उसके प्रभावों का विश्लेषण किया गया है। इसमें कहा गया है कि आर्थिक असमानता पारिवारिक पृष्ठभूमि, व्यक्तिगत संबंधों या व्यक्तिगत योग्यता के स्थान पर केवल भाग्य से उत्पन्न नहीं होती है, यदि हम आर्थिक व सामाजिक असमानता को प्रकृति की देन व भाग्य की उपज मानकर चलें तो यह पूर्णतः अनुचित लग सकता है जो समाज में व्यक्तियों व सामाजिक संस्कृतियों के बीच, मानवता व बंधुत्व के विश्वासों को कमजोर कर सकता है। जब विषमता के संदर्भ में ऐसी स्थिति मनोवैज्ञानिक रुप से पनपती है तो असमानता के परंपरागत आधार अत्यधिक स्थायी होने लगते हैं जो सामाजिक गतिशीलता को अनेक अर्थों में सीमित करने लगते हैं, जिसके परिणामस्वरूप अवसरों की उच्च असमानता सामाजिक परिदृश्य में स्थाई रूप से अपनी परिपाटी तैयार कर गहरा विभाजन तैयार कर लेती है। **जार्ज एच. सेवाइन**[10] ने अपनी पुस्तक में यूनानी चिंतन का संपूर्ण समावेश किया है। इस पुस्तक के भाग दो के अठाइसवें अध्याय में रूसो के चिंतन को भी सम्मिलित किया गया है, जिसमें प्राकृतिक अवस्था में रूसो के विचारों की विस्तृत विवेचन के साथ-साथ विषमता व व्यक्ति की स्वतंत्रता को लेकर भी विस्तृत चर्चा प्रस्तुत की गई है।

उद्देश्य

1. समानता के बुनियादी आधारों की जांच कर इसका मूल्यांकन करना।
2. राजनीति विज्ञान में समानता की अवधारणा को प्राचीन, मध्य व आधुनिक काल के संदर्भों में समझकर इसका तुलनात्मक विवेचना करना।
3. समानता की आधुनिक अवधारणा के संदर्भ में रूसो के विचारों के योगदान का विश्लेषण करना।

शोध पद्धति :- प्रस्तुत शोध पत्र पुस्तकालय अध्ययन पर आधारित है। इस शोध पत्र में ऐतिहासिक, सैद्धांतिक, विवरणात्मक, तुलनात्मक तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन पद्धतियों का प्रयोग किया गया है, जिसमें मुख्यतः द्वितीय शोध सामग्री का उपयोग किया गया है, जिसके अंतर्गत विषय से संबंधित विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख एवं पुस्तकों की सहायता ली गई है। साथ ही समसामयिक मुद्दों एवं घटनाओं की जानकारी हेतु इंटरनेट से प्राप्त विषय सामग्री को भी प्रयोग में लिया गया है।

समानता से तात्पर्यः- यदि समानता के अर्थ की बात करें तो समानता मोटे रुप में विचारों का वह तालमेल है जिसमें प्रत्येक स्थिति विशेष परीक्षण चाहती है। निःसंदेह यह एक विशेष प्रकार के समीकरण वाली प्रक्रिया है जिसका अर्थ है कि समाज में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं होना चाहिए कि वह अपने पड़ोसी को उस सीमा तक दबा सके कि बेचारे पड़ोसी की नागरिकता ही समाप्त हो जाये, अर्थात इसका अर्थ है कि मैं अपने श्रेष्ठ रुप में इस प्रकार अभिव्यक्त हो जाऊं कि दूसरे लोग भी अपने श्रेष्ठ रुप में अभिव्यक्त हो सके।[11] इस प्रकार समानता का यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक के साथ एक जैसा व्यवहार किया जाये बल्कि समानता का सही अर्थ यह है कि कोई विशेषाधिकार वाला वर्ग न रहे और सबको उन्नति के समान अवसर प्राप्त हो।[12] उपयुर्क्त विचारों के विश्लेषण से आशय होता है कि समानता दो वस्तुओं या व्यक्तियों को दिए जाने वाले स्पेस (जगह) के बीच के तुलनात्मक अंतर से है उदाहरण के लिए एक परिवार में दो भाई है जिसमें (A) को सोने के लिए डबल बेड दिया गया है तो दूसरे (B) को भी डबल बेड ही दिया जाना चाहिए अर्थात यदि (A) को डबल बेड दिया जाए तथा (B) को सिंगल बेड दिया जाए तो (B) की तुलना में (A) को डबल बेड के रुप में मिलने वाला ज्यादा स्पेस असमानता की सीमा में आएगा। इस प्रकार समानता इन असमान आधारों को समाप्त कर समान स्पेस उपलब्ध कराने की वकालत करती है, जबकि लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के लिए समानता का एक अर्थ यह भी है कि एक परिवार में 5 बच्चों में एक बच्चा शारीरिक रुप में कमजोर है तो मां (अर्थात लोक-कल्याणकारी राज्य) उस बच्चे को उस सीमा तक ज्यादा अवसर देती है जिस सीमा तक वह 4 शक्तिशाली भाइयों की बराबरी कर सके।

समानता के सिद्धांत का विकास/उत्पत्ति के चरण :-

प्राचीन काल (800ई0पू0-476 या 5वीं सदी तक) :- प्राचीन काल में प्लेटो के आदर्श राज्य में राजनीतिक शक्ति दार्शनिक शासक के हाथ में होने की बात प्लेटो द्वारा अपने बहुचर्चित ग्रन्थ रिपब्लिक में की गई। वहीं अरस्तु के अनुसार सामाजिक व्यवस्था की संरचना में खेती-बाड़ी व अन्य शारीरिक काम दास करें और

विशिष्ट वर्ग केवल कला, संस्कृति एवं राजनीति से अपना संबंध रखे। इस प्रकार एथेन्स और यूनान में गुलामों, महिलाओं और विदेशियों को नागरिकता के अधिकार प्राप्त नहीं थे। संपत्ति के बंटवारे और तलाक आदि के विषय में महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त नही थे, अर्थात प्राचीन काल में समानता का विचार एक कोरी कंल्पना थी जो दूर-दूर तक दिखलाई नहीं देती है।

मध्यकाल (476 या 5वीं सदी से 15वीं शताब्दी तक) :- प्राचीनकाल की समाप्ति व मध्यकाल की उत्पत्ति के बीच के समय में तीसरी व छठी शताब्दी के बीच विश्व राज्य के सिद्धांत की उत्पत्ति के साथ मानवतावाद का विचार सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ जो समानता से संबंधित विचारों की ओर अग्रसर था परंतु छठी से नौवीं शताब्दी के बीच जैसे ही धार्मिक प्रभुत्व का प्रभाव उजागर होने लगा तो मानवतावाद के विचार को धर्म ने अपनी गोदी में लेकर अस्तितवविहीन कर दिया, जिस कारण समानता के संदर्भ में कोई खास निष्कर्ष इस समयावधि में भी प्राप्त नहीं हो सका।[13] मध्ययुगीन सामंतवादी व्यवस्था तो विशेषाधिकारों पर ही आश्रित थी जिसमें स्त्रियों को बड़ी हीन दृष्टि से देखा जाता था। मध्ययुग में प्रभु के समक्ष समता का बिचार पनपा परंतु यह अव्यवहारिक ही था। पुनर्जागरण काल (14-17वी सदी के बीच) में विद्या, कला और विज्ञान की लहर आयी जिसमें पुरानी मान्यताओं में परिवर्तन आया तथा 'मानवतावाद' की अवधारणा का जन्म हुआ। पुनर्जागरण काल में 'मानवतावाद' का मूल सार यह था कि "सब मनुष्य एक समान है।" मानवतावाद स्वतंत्रता व समानता के सिद्धांतों पर आधारित था किंतु इन सिद्धांतों के बाद भी मध्यकाल में समानता का सिद्वांत पुष्ट नही हो सका।

आधुनिक काल (15वीं शताब्दी-वर्तमान तक) :- यदि आधुनिक युग की बात करें तो पुनर्जागरण काल के बाद भी सन् 1772 तक इंग्लैंड में गुलामों की कानूनी स्थिति कुछ भी नही थी। महिलाएं अभी भी मताधिकार और संपत्ति के अधिकार से वंचित थीं। इसी क्रम में यूरोप में शोषण से पीड़ित प्रवासियों द्वारा अमेरिका में 4 जुलाई 1776 को अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी जिसमें उन्होंने कहा कि सभी मनुष्य समान उत्पन्न हुए हैं। इसके बाद 5 मई 1789 में फ्रांस की क्रांति होती है फ्रांसीसी क्रांति फ्रांस के निरंकुश राजतंत्र जो राजतंत्र के दैवीय सिद्वांत पर आधारित था जिसमें स्वेच्छावादी प्रवृत्ति पायी जाती थी। लुई 14वें के शासनकाल (1643-1715) में निरंकुशता अपनी पराकाष्ठा पर थी, उनका कथन था "मैं ही राज्य हूं" जो अपनी इच्छा अनुसार कानून बनाता था। इस प्रकार फ्रांस की क्रांति निरंकुश राजतंत्र को हटाने और गणतंत्र की स्थापना के लिए की गई थी। इस क्रांति के परिणामस्वरुप विश्व भर में निरपेक्ष राजतंत्र का ह्रास होना शुरु हुआ जिसके परिणामस्वरुप नये गणतंत्र और उदार प्रजातंत्र बने। फ्रांस की क्रांति मॉण्टेस्क्यू, वल्टियर और रूसो के विचारों से अत्यधिक प्रभावित थी, जिसने समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के आदर्शो को स्वीकार करने पर बल दिया।[14] इसके बाद अमेरिका का संविधान 1789 में लागू हुआ जिसमें मूल अधिकारों की घोषणा की गई। फ्रांस की क्रांति के 2 वर्ष बाद ही अमेरिकी संविधान में 10 संशोधन किए गए जिसमें नागरिकों को कुछ मौलिक अधिकार दिए गए जिसमें छठा, सातवां और आठवां तीन संशोधन 'कानून के समक्ष समता' पर बल देते हैं और जिसे विश्व के अनेक संविधानों ने ग्रहण किया। अमेरिका से ही प्रभावित होकर भारत ने भी अनुच्छेद 14-18 में समानता के अधिकार को मौलिक अधिकारों की श्रेणी में रखा है।

समानता के प्रकार या पहलू :- यदि हम समानता के पहलूओं पर दृष्टिपात करें तो समाज या राज्य के दायित्वों के परिणामस्वरुप इसके भिन्न-भिन्न पहलू उभरकर सामने आये है[15] जो निम्नवत हैं।

कानूनी समानताः- कानूनी समानता से तात्पर्य सभी को समान कानूनी सामार्थ्य प्रदान करना है। जे0जे0 रूसो ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'द सोशल काट्रैक्ट' (1762) के अन्तर्गत लिखा था कि सभी नागरिकों को कानूनी समानता प्रदान करना नागरिक समाज (Civil Socity) का कर्तव्य है। व्यक्ति की प्रकृति ने कितना भी विषम क्यों न बनाया हो परंतु कानून की दृष्टि में वे सब समकक्ष हैं। **अर्नेस्ट बार्कर** ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'प्रिंसिपल ऑफ सोशल एड पोलिटिकल थ्योरी' (1951) के अन्तर्गत लिखा है कि "राज्य का मूल सिद्वांत यह है कि वह हमें कानूनी व्यक्तित्व के एक जैसे मुखौटे पहना दे, हममें चाहे जो भी भिन्नता रही हो कानून के समक्ष हम सबका महत्व एक जितना होता है।" अतः समानता के सिद्वांत का अर्थ यह है कि मुझे अधिकारों के रुप में जो भी परिस्थितियां प्रदान की जाती है, वें उतनी ही मात्रा में दूसरों को भी प्रदान की जाएंगी और जो

अधिकार दूसरो को दिए जाते है, वे मुझे भी दिए जाएंगे। **यदि प्राचीन** काल में कानूनी समता को समझें तो इसका विवरण कुछ इस प्रकार से रहा है। प्राचीन समाजों में कानूनी समानता का विचार सर्वथा अज्ञात था। मनुस्मृति में अपराध के मामलों में भिन्न-भिन्न दण्ड की व्यवस्था की गई। अपराधी जितनी नीची जाति का होगा दंण्ड उतना ही कठोर होता था। वहीं अरस्तु ने भी यह सुझाव दिया है कि एक ही अपराध के लिए स्वतंत्रजन की तुलना में दास (Slave) को अधिक कठोर दण्ड देना चाहिए, क्योंकि दास कम संवेदनशील होते है। फ्रांसीसी क्रांति के पहले तक इंग्लैंड में दासों की कोई कानूनी क्षमता नही थी अर्थात कानून की दृष्टि में उनका कोई व्यक्तित्व ही नहीं था। वहीं 1870 तक इंग्लैंड में विवाहित स्त्रियों को संपत्ति के स्वामित्व का कानूनी अधिकार नही था। जबकि 1918 तक सभी स्त्रियों को मतदान के अधिकार से वंचित रखा गया था, इस संदर्भ में **जे.आर. ल्यूकास** ने अपनी कृति 'प्रिंसिपल ऑफ पॉलिटिक्स' (1976) के अंतर्गत कानून के समक्ष समता की बहुत सटीक परिभाषा दी-कानून के समक्ष समानता यह विश्वास नही दिलाती कि कानून सबके साथ समान व्यवहार करेगा बल्कि यह निश्चित करती है कि कानून का द्वार सभी के लिए खुला रहेगा।[16] अतः कानूनी समानता का अर्थ यह है कि सभी नागरिक समान रुप से कानून के अधीन होगें और सभी नागरिकों को कानून का समान संरक्षण प्राप्त होगा।

राजनीतिक समानता :- राजनीतिक समानता से तात्पर्य नागरिकों के राजनीतिक अधिकारों की समानता से है या फिर निर्णयन संस्थाओं में समानता के आधार पर प्रतिनिधित्व का अधिकार प्राप्त होना राजनीतिक समानता है। इसके अतर्गत किसी व्यक्ति को जन्म, लिंग या धर्म के आधार पर राजनीतिक पद प्राप्त करने से नहीं रोका जाएगा।[17] इस राजनीतिक समानता के संदर्भ में बार्कर कहता है 'सबके अधिकार समान हो सकते हैं पर सभी के पास उन अधिकारों को भोगने की समान शक्ति नही होती[18] राजनीतिक समानता की मांग कानूनी समानता की मांग के साथ शुरु हुई थी और शुरु में इनमे कोई अंतर नहीं था। **डी0डी0 रफील** ने अपनी कृति 'प्रॉब्लम ऑफ पोलिटिकल फिलॉसफी' (1976) के अंतर्गत लिखा है कि फ्रांसीसी क्रांतिकारी समानता की मांग करते समय उस तर्कशून्य विशेषाधिकार की मांग कर रहे थे जिसके अंतर्गत राजनीतिक अधिकार धनवान और कुलीन वर्ग तक सीमित थे। यही एक महत्वपूर्ण कारण था जिसमें पूंजीवाद के उग्र विकास से सामाजिक आर्थिक विषमता बढ़ती गई। **अलेक्सी द ताकवील** (1805-59) ने अपनी कृति 'डेमोक्रेसी इन अमेरिका' के अंतर्गत यह विचार व्यक्त किया कि राजनीतिक समानता और आर्थिक विषमता में जो विसंगति पायी जाती है उसे लोकतांत्रिक समाज अनिश्चित काल तक स्वीकार नहीं करेगा। ताकविले के अनुसार लोकतांत्रिक विश्व क्रांति का पहला दौर राजनीतिक परिवर्तन का काल था परंतु वह अनिवार्यतः उसके दूसरे काल को जन्म देगा जो मुख्यतः सामाजिक आर्थिक परिवर्तन का काल होगा।[19] इस प्रकार देखें तो राजनीतिक समानता राजनीतिक लाभ के पदों पर पहुंचने के लिए सभी को समान अवसर प्रदान करने की वकालत करती है।

सामाजिक समानता :- सामाजिक समानता किसी राष्ट्र या समाज की एक ऐसी स्थिति है जिसमें समाज के अंदर सभी व्यक्तियों को समान अधिकार, स्वतंत्रता और स्थिति प्राप्त होती है, जिसमें संभवतः नागरिक अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, स्वायत्तता और सामाजिक सेवाओं तक पहुंच सम्मिलित है। सामाजिक समानता के लिए कानूनी रूप से लागू सामाजिक वर्ग या जातीय सीमाओं की अनुपस्थिति और किसी व्यक्ति की पहचान के अविभाज्य हिस्से से प्रेरित भेदभाव की यथास्थिति की आवश्यकता होती है उदाहरण के लिए सामाजिक समानता के समर्थक लिंग, जातीयता, आयु, यौन अभिविन्यास, जाति, वर्ग, आय तथा संपत्ति की परवाह किए बिना सभी व्यक्तियों के लिए कानून के समक्ष समता में विश्वास करते है। इस प्रकार देखें तो सभी समानताओं के लिए सामाजिक समानता अति आवश्यक है, डॉ. अम्बेडकर ने भी इस संदर्भ में कहा है कि सामाजिक समानता सभी समानताओं का फल है। जब तक सामाजिक समानता नही है तब तक राजनीतिक व आर्थिक समानता अर्थहीन है। इस प्रकार सामाजिक समानता से तात्पर्य समाज में धर्म, जाति एव लिंग के आधार पर विभेद की समाप्ति है।[20] समाज में विशेषाधिकारों एवं विषमताओं का अंत करना तथा अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करना है यह तात्विक समानता की बात करती है जो सामाजिक परिवर्तन की प्रेरणा शक्ति है।

आर्थिक समानता :- इसका समर्थन कल्याणकारी राज्य के समर्थक एवं समाजवादी विचारक करते हैं। इसका

लक्ष्य न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करना और व्यक्तियों को काम का एक जैसा अधिकार प्रदान करना है। लास्की के अनुसार जिस देश में संपत्ति तथा उत्पत्ति के साधन कुछ गिने-चुने लोगों के हाथों में केंद्रित होते हैं। उस देश की राजनीतिक संस्कृति, शिक्षण संस्थाओं तथा न्यायपालिका पर पूर्णतया धन प्रभावी हो जाता है। रॉवर्ट कहते हैं कि जिस देश में आर्थिक विषमता होती है, वहां क्रांतिकारी परिवर्तन की अधिक संभावना होती है। इसलिए राजनीतिक स्थायित्व और सरकार के लोकतांत्रिक स्वरुप को बनाये रखने के लिए भूमि का समुचित वितरण कर आर्थिक क्षेत्र में समानता लाना होगा।[21] अर्थात आर्थिक समानता से तात्पर्य आर्थिक क्षमताओं में सभी की समान भागीदारी होने से है।

समानता की उत्पत्ति तथा संरचना के संदर्भ में रूसो के विचारों का विश्लेषण :- उपर्युक्त विवरण में समानता के संदर्भ में प्राचीन, मध्य व आधुनिक काल में रूसो से पहले तक कोई खास वर्गीकरण समानता के संदर्भ में देखने को नही मिलता है। रूसो ने अपनी रचना 'डिस्कोर्स ऑन ओरिजिन एंड फाउंडेशन्स ऑफ इनइक्वालिटी' (इसे सेकेंड डिस्कोंस भी कहा जाता है) में मनुष्यों के मनोविज्ञान और सामाजिक संस्थाओं के इतिहास के बारे में अपने विचार व्यक्त किए, इसके साथ ही उन्होंने मनुष्यों के बीच की असमानता के मुद्दे पर गहराई से विचार करते मनुष्यों के बीच की पाई जाने वाली विविध तरह की असमानताओं का वर्णन भी किया कि किस तरह की असमानता प्राकृतिक और किस तरह की असमानता अप्राकृतिक है। रूसो समाज और असमानता के प्रारंभ के बारे में अपने विश्लेषण को एक ऐतिहासिक विवरण के रुप में प्रस्तुत करते हैं। यह विवरण तुलनात्मक रुप से बहुत ही सरल है, लेकिन इसमें बहुत ही सशक्त संदेश है, जिसके अंतर्गत यह बताने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार से प्राकृतिक विषमता पर हमारी परंपरागत विषमता हावी हो जाती है, जो समाज में ऊंच-नीच गरीब-अमीर की बड़ी सी खाई तैयार कर जाती है। रूसो यह मानते हैं कि शक्तिशाली या अमीर लोगों के पास शक्ति आ जाती है और वे मालिक बन जाते हैं, जबकि गरीबों की स्थिति में इस तरह से बदलाव होता है कि वे लगातार गरीब-कमजोर और दास बने रहते है। रूसो के अनुसार इन विषमताओं की भी एक सीमा होती है जिसके बाद परंपरागत असमानताओं में भी ज्यादा असमानता संभव नहीं होती है। ऐसी स्थिति में नई क्रांतियां पैदा होती हैं जो सरकार को पूरी तरह से विघटित कर देती हैं या इसे वैध संस्था के करीब ले आती हैं।

रूसो अपने सेकेंड डिस्कोंस में यह बताते है कि प्राकृतिक अवस्था में लोगों के बीच केवल प्राकृतिक असमानता ही होती है। वास्तव में यह प्राकृतिक असमानता लोगों की शारीरिक क्षमता में अंतर का परिणाम होती है। रूसो के अनुसार, आधुनिक समाज में कानून और संपत्ति के निर्माण के कारण प्राकृतिक मनुष्य भ्रष्ट हो गया है। इसने नई तरह की असमानताओं को जन्म दिया है जो प्राकृतिक कानून के अनुरुप नहीं था। रूसो इस तरह की असमानता को अन्यायपूर्ण और अस्वीकार्य मानते हैं।[22]

रूसों के अनुसार मनुष्यों में विषमताएँ

प्राकृतिक विषमता Netural Inequality **(प्रकृति की देन)**	**परंपरागत विषमता** Conventional Inequality **(समाज की देन)**
प्राकृतिक विषमाताएँ प्रकृति की देन है और ये अपरिवर्तनीय है। (स्त्री-पुरूष बड़ा-छोटा, गोरा-काला आदि।)	परम्परागत विषमताए धन सम्पदा, मान-मर्यादा और शक्ति की भिन्नताओं को सूचित करती है और ये किसी व्यक्ति या समुदाय को कुछ विशेषाधिकार देती हैं जबकि अन्य इन विशेषाधिकारों से वंचित रहते हैं। उदाहरण के लिए अमीर-गरीब, ऊंच-नीच, हीन और शक्तिशाली ये सब परंपरागत विषमताएं समाज की देन हैं जो समाज में असमानता को बढ़ावा देती है। रूसो के अनुसार परंपरागत विषमता को समाप्त करके समानता लायी जा सकती है।[23] अर्थात परंपरागत विषमता की पहचान कर उसको समाप्त किए जाने वाले वैकल्पिक प्रयास ही समानता है।

इस प्रकार रूसो द्वारा विषमता के परंपरागत व प्राकृतिक वर्गीकरण में अन्तर के परिणामस्वरुप ही आधुनिक युग में वास्तविक असमानता के स्वरुप को पहचान मिल सकी जिसके निदान के वैकल्पिक आधारों ने ही आधुनिक युग

में समानता के सिद्धांत की नीव रखी।

निष्कर्ष- समानता के संदर्भ में प्राचीन काल से ही अज्ञानता का आवरण प्रचलन में रहा जिसके अंतर्गत प्राकृतिक विषमता को ही प्रकृति की देन मानकर राज्य के आचरण के संदर्भ में देखा जाता था। प्राचीन काल में राजनीति विज्ञान के पिता कहे जाने वाले अरस्तु ने जहां इस प्राकृतिक असमानता को ही अपने राजनीतिक विचारों व सिद्वांतों का मूलभूत आधार माना, वहीं मध्यकाल में भी समानता के संदर्भ में कोई विशेष पहल इसके लिए हमें देखने को नहीं मिलती है। मध्यकाल में पुनर्जागरण काल तथा कठोर निरंकुश शासकों की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरुप हॉब्स व लॉक के द्वारा प्राकृतिक अधिकारों की मांग कर समानता के संदर्भ में सर्वप्रथम विचारों की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है जिसके बाद रूसो के द्वारा अपनी पुस्तक 'डिस्कोर्सेज' में असमानता पर महत्वपूर्ण विचार कर इसके आधारों व रूपों का वर्गीकरण देखने को मिलता है, प्राकृतिक विषमता अर्थात जो प्रकृति के द्वारा निर्धारित की गई है, में जहां रूसो किसी भी प्रकार का परिवर्तन करने की बात नहीं करते हैं, वहीं परंपरागत विषमता जिसे समाज के द्वारा निर्धारित किया गया है को ही वह वास्तविक असमानता के आधार के रुप में चित्रित करते हैं। इस प्रकार रूसो के इसी वर्गीकरण ने राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में समानता के अधिकार के वैकल्पिक मार्ग का सर्वप्रथम अवलोकन करवाया जिसके पश्चात ही लोकतांत्रिक परंपरा में समानता का सिद्धांत राज्य की ओर से नागरिकों को दिए जाने वाली एक अमूल्यवान धरोहर के रुप में चिन्हित होकर उजागर हुआ। इस प्रकार समानता के सिद्धांत की उत्पत्ति संरचना व विकास के संदर्भ में रूसो के विचारों का अमूल्य योगदान हमें राजनीति विज्ञान में दृष्टिगत होता है।

सन्दर्भ

1. भार्गव, राजीव और आचार्य अशोक, 'राजनीति सिद्धांत एक परिचय', पियर्सन इंडिया एजुकेशन सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2020 पृ0 60.
2. आढ़ा, आर0 एस0, 'राजनीति विज्ञान', पिंकसिटी पब्लिशर्स जयपुर, 2021 पृ0 34.
3. गाबा, ओम प्रकाश, 'राजनीति विज्ञान विश्वकोष', मयूर पेपर बैक्स नयी दिल्ली, 2017 पृ0 237
4. अरोड़ा, एन0 डी0, 'राजनीतिक विज्ञान', मेकग्रा हिल एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2016, पृ0 10.54
5. गाबा, ओम प्रकाश, पूर्वोक्त, पृ0 236.
6. जोन्स हैरी, 'विकास में समानता: यह क्यों महत्वपूर्ण है और इसे कैसे प्राप्त किया जाए', ओडीआई, 13 नवंबर 2009 https://odi.org/en/publications/equity-in-development-why-it-is-important-and-how-to-achieve-it/
7. लास्की, हैरोल्ड जे. शर्मा, प्रभुदत्त, 'राजनीति की व्याकरण', राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2011 पृ0 136,127
8. सिबली, मलफर्ड क्यू., और शर्मा, प्रभुदत्त, 'राजनीति विचार और विचारधाराएं (राजनीतिक चिंतन का इतिहास)', राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2020 पृ0 536, 537.
9. गोल्ड, एरिक डी. और हिजेन, अलेक्जेंडर, 'समानता में हम भरोसा करते हैं', इंटरनेशनल मोनेटरी फंड, मार्च 2017 https://www.imf.org/external/pubs/ft/fandd/2017/03/gould.htm
10. सेवाइन, जॉर्ज एच. और गुप्त विश्वप्रकाश, 'राजनीति-दर्शन का इतिहास' एस. चंद एंड कंपनी, नई दिल्ली, 1977 पृ0 546, 547.
11. लास्की, हैरोल्ड जे0 और शर्मा, प्रभुदत्त, पूर्वोक्त, पृ0 136, 137.
12. मीना, कैलाश, 'समानता अर्थ, प्रकार, महत्व', के0 एजुकेशन 2 दिसम्बर 2022 https#// wwwÆailasheducation.com/2020/09/samanta-arth-prakar.html
13. सेबाइन, जॉर्ज एच0 और गुप्त विश्वप्रकाश, पूर्वोक्त, पृ0 131.
14. सिबली, मलफर्ड क्यू., पूर्वोक्त, पृ0 586
15. एनोनोमास, 'समानता का अर्थ, परिभाषा स्वरुप महत्व', प्रफेक्ट तैयारी, 2022. https#// www.perfecttaiyari.com/2023/05/samanta-kya-hai.html?m=1
16. गाबा, ओम प्रकाश, पूर्वोक्त, पृ0 242, 243
17. सेंगर, शैलेन्द्र, 'राजनीति विज्ञान के सिद्वांत', एटलांटिक एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स (प्रा0) लि0, नई दिल्ली, 2008 पृ0 252.
18. अरोड़ा, एन0 डी0, पूर्वोक्त, पृ0 4.18
19. गाबा, ओम प्रकाश, पूर्वोक्त, पृ0 242, 244.
20. चंद. एस, 'राजनीतिक सिद्धांत', एस चंद एण्ड कंपनी, नई दिल्ली, 2008 पृ0 283, 284.
21. अग्रवाल, आर.सी, 'राजनीति सिद्धांत', एस, चांद एण्ड कंपनी, नई दिल्ली, 2010 पृ0 198.
22. भार्गव, राजीव, और आचार्य, अशोक, पूर्वोक्त, पृ0 63
23. गाबा, ओम प्रकाश, पूर्वोक्त, पृ0 244.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

21वीं सदी में भारत-रूस संबंधों में विस्तारित साझेदारी

❑ डॉ. जितेन्द्र कुमार पाण्डेय
❖ प्रोफेसर सुमन शर्मा

सूचक शब्द : द्विपक्षीय सहयोग, शिखर सम्मेलन, रणनीतिक साझेदार, विशेष और विशेषाधिकार साझेदार, पैरेस्त्रोइका तथा ग्लोसनोस्त।

रूस भारत का दीर्घकालिक और समय की कसौटी पर खरा उतरा साझेदार रहा है। दोनों देशों ने 2024 में 77 साल के राजनयिक संबंधों को साझा किया है। भारत और रूस की दोस्ती दशकों पुरानी है। दोनों देश मित्रता व सहयोग की संधियों से बंधे हुए है। दोनों ही एक-दूसरे के संकट में अनेक बार बेहद सक्रिय रूप से काम आ चुके हैं। भारत और रूस वर्तमान समय में मित्रता के जिस स्तर पर पहुँचे हैं उसकी यात्रा का व्यवहारिक प्रारंभ 1954 में स्टालिन के बाद हुआ, जिसका चरमोत्कर्ष बांग्लादेश संकट के समय, भारत रूस 1971 की शांति, मैत्री और सहयोग संधि के रूप में देखने को मिला।[4] श्रीमति गांधी और रूसी राष्ट्रपति ब्रेझनेव के काल में दोनों देशों के बीच संबंध सुदृढ़ हुए व ऐतिहासिक रूप से एक-दूसरे के पूरक हो गए। मिखाइल गोर्वाचोव के लोकतात्रिक एवं राजनीतिक सुधार के अभियानों से रिश्तों में ठहराव आया, लेकिन शीतयुद्ध के समापन एवं सोवियत संघ के विघटन के साथ ही यह प्रश्न उठने लगा कि क्या अब भी रूस कुछ अर्थ रखता है।

सोवियत संघ पहला देश था जिसके साथ भारत ने 1947 में राजनयिक संबंधों की स्थापना की थी। 1953 में स्टालिन की मृत्यु के बाद, भारत-रूस द्विपक्षीय सहयोग में विस्तार और विविधता आयी। नवम्बर 1955 में बुल्गेनियन ख्रुश्चेव की यात्राा से द्विपक्षीय संबंधों में एक नए युग का प्रारंभ हुआ। भिलाई, बोकारो और दुर्गापुर इस्पात संयंत्र रूस के तकनीकी सहयोग से ही संभव हुआ। 1960 के दशक में सैन्य तकनीकी सहयोग का उद्भव और 1971 में शांति, मैत्री और सहयोग संधि प्रारंभ हुई।[1] रूस दशकों से रक्षा, परमाणु ऊर्जा, अंतरिक्ष, तेल और अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भारत का अग्रणी भागीदार रहा है। लगातार उच्चतम स्तर पर आपसी संबंधों का मार्गदर्शन करने के लिए हमारी साझा इच्छा को दर्शाते हुए वर्ष 2000 में वार्षिक शिखर बैठकों का संस्थागत आधार दिया, वर्ष 2000 में ही प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी और रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन के द्वारा भारत-रूस के बीच सामरिक भागीदारी के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर हुए है। दिसम्बर 2010 में रणनीतिक साझेदारी को ''विशेष और विशेषाधिकार प्राप्त रणनीतिक साझेदारी'' के स्तर तक बढ़ा दिया गया।[2] तब से लेकर अब तक 22 शिखर सम्मेलनों का आयोजन हुआ है। 22वें शिखर सम्मेलन के दौरान रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन ने भारत और रूस के बीच रणनीतिक साझेदारी और दोनों देशों के लोगों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों के विकास में उनके विशिष्ट योगदान के लिए भारतीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी को रूस के सर्वोच्च नागरिक सम्मान ''आर्डर ऑफ सेंट एंड्रयू द एपोस्टल'' से सम्मानित किया।[3]

आखिर महाशक्ति होने का रूस का दावा अब शरद ऋतु में मास्को में छाई रहने वाली धुंध से ज्यादा कुछ नहीं लगता। सोवियत संघ के विघटन के बाद रूस का जी.डी.पी. आधे पर आ गया। किसी औसत रूसी की वार्षिक आय किसी अमेरिकी, ब्रिटिश और फ्रांसीसी नागरिक से पाँच गुना कम है। आर्थिक दृष्टि से रूस अब तीसरी दुनिया का हिस्सा है, पुतिन यह जानते हैं और भारत तथा शेष विश्व भी इससे भलीभांति परिचित है, फिर भी रूस और पुतिन भारत के लिए एवं भारत, रूस के लिए कुछ अर्थ रखते हैं। शायद यही कारण है कि कूटनीति के नए खेल में रूस ने भारत के साथ रणनीतिक संधि की पहल की और अमेरिका से भारत के मधुर होते रिश्तों की काट पेश करने का प्रयास किया।

साहित्य समीक्षा

प्रस्तुत शोध पत्र के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का अध्ययन किया। इस विषय पर अभिजीत शोध की पुस्तक 'इण्डिया एण्ड एशिया टुवार्डस न्यू स्ट्रेटजिक रिलेशंस'[5] महत्वपूर्ण है। इस पुस्तक में भारत-रूस के बीच रणनीतिक संबंधों का विस्तृत विश्लेषण किया गया

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, लेडी श्रीराम कॉलेज फॉर वूमेन, दिल्ली विश्वविद्यालय (दिल्ली)
❖ प्राचार्या, लेडी श्रीराम कॉलेज फॉर वूमेन, दिल्ली विश्वविद्यालय (दिल्ली)

है। इस पुस्तक में रूस को भारत का एक महत्वपूर्ण सामरिक सहयोगी के रूप में चिन्हित किया गया है। उसी विषय पर बी.डी. चोपड़ा की पुस्तक 'इंडो रशियन रिलेशंस : पास्पेक्ट्स प्रॉब्लम्स'[6] 2001 भी प्रासंगिक हैं जिसमें दोनों साझेदारी के बीच बहुआयामी संबंधों की समीक्षा की गयी है। इस पुस्तक में भारत-रूस के बीच ऐतिहासिक संबंधों के साथ-साथ दोनों देशों के बीच आर्थिक संबंधों को और अधिक बेहतर होने की संभावना व्यक्त की गई है।

द्वितीयक स्रोतों के अतिरिक्त विदेश मंत्रालय द्वारा प्रकाशित विभिन्न वार्षिक रिपोर्टे की भी विस्तृत समीक्षा की गयी। इस रिपोर्ट के माध्यम से दोनों देशों के बीच समसामयिक आर्थिक, रणनीतिक और सामरिक संबंधों को विश्लेषित करने के लिए यह वार्षिक रिपोर्ट एक प्रमुख स्रोत के रूप में प्रासंगिक रही।

भारत-रूस संबंधों का विकास :

1950 के दशक में भारत-सोवियत संघ संबंध : भारत ने अपनी स्वतंत्रता के पश्चात गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण अपनी स्वतंत्र विदेश नीति के अनुसरण के लिए किया तो तत्कालीन रूसी राष्ट्रपति स्टालिन निराश हो गए। 1953 में उनकी मृत्यु तक रिश्ते ठंडे रहे, उनके उत्तराधिकारी निकिता ख्रुश्चेव ने सोचा कि भात अमरीका के साथ नहीं तो समझो रूस के साथ ही है। नेहरू को भी वहाँ का समाजवादी मॉडल भाया जिससे दोनों देश एक-दूसरे के समीप आते गए। 1956 में अपनी भारत यात्राओं के दौरान निकोलाई बुलगानिन और अलेक्सी कोसिगन जैसे सोवियत नेताओं ने जम्मू-कश्मीर को भारत का अभिन्न अंग बताया। भारत के लिए कश्मीर एक केंद्रीय सुरक्षा मुद्दा था। इसलिए भारत के नेताओं ने सोवियत संघ के इस रूख का स्वागत किया। इसके जवाब में भारत ने संयुक्त राष्ट्र महासभा में सोवियत संघ के आधिपत्य वाले देश हंगरी के लोकतांत्रिक चुनावों की मांग के प्रस्ताव पर सोवियत पक्ष का समर्थन किया।[7]

1960 के दशक तथा 1970 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में इस क्षेत्र की भौगोलिक राजनीतिक स्थिति में आए भारी परिवर्तन के फलस्वरूप भारत-सोवियत सुरक्षा सहयोग में अत्यधिक बढ़ोत्तरी हुई। पाकिस्तान की सहायता से चीन के साथ संबंध सुधारने के अमेरिका के सैनिक रवैये का भारत ने यह अर्थ निकाला कि इन तीन देशों की नई शक्ति-धुरी पनप रही है। उन्हीं दिनों पूर्वी पाकिस्तान में राजनीतिक उथल-पुथल का भारत की सुरक्षा और अर्थव्यवस्था पर बुरा असर पड़ा। 1971 में भारत और पाकिस्तान के बीच तीसरा युद्ध छिड़ने से पहले भारत ने अगस्त 1971 में सोवियत संघ के साथ ऐतिहासिक शांति, मैत्री और सहयोग संधि पर हस्ताक्षर कर लिए थे।

भारत ने अपनी आवश्यकता के अधिकतर शस्त्र सोवियत संघ से प्राप्त किए। अस्थायी अनुमान के अनुसार भारत ने थलसेना के 60 प्रतिशत, नौसेना के 70 प्रतिशत और वायुसेना के 80 प्रतिशत हथियार सोवियत संघ से प्राप्त किए हैं। यही नहीं, शीत युद्ध के काल में विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मामलों पर दोनों देशों का व्यवहार भी एक जैसा होता था।[8]

1960 के दशक में भारत-रूस संबंध : ब्रेझनेव ने रिश्ते प्रगाढ़ किए :

लियोनिद ब्रेझनेव ने 1960 में राष्ट्रपति पद का कार्यभार संभाला और भारत से रिश्ते प्रगाढ़ करने की कोशिश की जिनमें उन्हें सफलता भी मिली। चीन के अमेरिका की ओर झुकाव से सोवियत संघ चीन से दूर हो गया। इसी अवधि में भारत ने रूस से रक्षा खरीदारी की। रूस ने भारत में ऊर्जा, तेल और इस्पात के क्षेत्र में बड़ा निवेश किया, रूस के सहयोग से ही बी.एस.एल. की स्थापना हुई। यही वह दौर था, जब रूस ने भाई चीन की अपेक्षा मित्र (भारत) का साथ निभाने का निर्णय लिया भारत ने बड़े पैमाने पर सोवियत संघ से सामरिक शस्त्रों का आयात किया।[9]

निर्णायक राजनीतिक रूख - शांति, मैत्री और सहयोग संधि अगस्त 1971 :

1971 में भारत-सोवियत मैत्री संधि के साथ दोनों देशों के संबंध सुदृढ़ हुए, हालांकि कई बार आलोचक यह आरोप लगाते हैं कि भारत ने इस संधि के बाद गुटनिरपेक्षता की नीति त्याग दी। उसी वर्ष बांग्लादेश युद्ध के मध्य रूस ने चीन और अमेरिका की गलत प्रयासों को असफल किया। भारत ने 1974 में जब पहली बार परमाणु परीक्षण किया तो उससे शेष विश्व नाराज हो गया। जहाँ तक रूस का प्रश्न था तो उसने इन परीक्षणों के लिए भारत की हल्की-फुल्की आलोचना भी की एवं 1975 में जब श्रीमति गांधी ने आपातकाल की घोषणा की तो विश्व भर में इसकी आलोचना हुई लेकिन सोवियत संघ ने उनका सहर्ष सपरिवार आतिथ्य स्वीकार

किया इसी काल में रूस के साथ भारत का आर्थिक सहयोग भी प्रारंभ हुआ।[10]

1980 के दशक में भारत-रूस संबंध - पैरेस्त्रोइका तथा ग्लोसनोस्त की कीमत :

राष्ट्रपति मिखाइल गोर्बाचेव व प्रधानमंत्री राजीव गांधी के बीच आपसी संबंध बेहतर थे लेकिन गोर्बाचेव अपने देश में शुरू किए राजनैतिक सुधारों में इतनी बुरी तरह व्यस्त थे कि भारत की ओर ध्यान नहीं दे पाए इसलिए भारत-रूस संबंध फीके पड़ने लगे।[11] इसी दौर में सोवियत संघ पश्चिमी यूरोप तथा संयुक्त राज्य के साथ नरमी प्रदर्शित कर रहा था। वाशिंगटन, मास्को तथा बीजिंग से सोवियत संघ, संयुक्त राज्य और चीन के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों के संकेत मिलने लगे थे। इससे भारत भी पश्चिमी लोकतांत्रिक देशों के साथ अपने राजनीतिक तथा रक्षा संबंध स्थापित करने के लिए मुक्त हो गया।[12] इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि परमाणु अप्रसार संधि पर भारत के रूख तथा कश्मीर जैसे अति संवेदनशील मुद्दों पर सोवियत समर्थन में अब परिवर्तन आने लगा था। अब गोर्बाचेव संयुक्त राज्य और अन्य पश्चिमी लोकतांत्रिक देशों के साथ सकारात्मक समीकरण बनाना चाहते थे। फलस्वरूप भारत-सोवियत संबंधों में पूरी तरह से विचार करने की आवश्यकता उभरने लगी।[13]

1990 के बाद नए रूस ने पश्चिम की ओर देखो की नीति अपनाई - एक युग का अवसान :

सोवियत संघ के विघटन के बाद येल्तसिन की अगुआई में नया रूस अपने कष्टों का समाधान पश्चिम में ढूंढने लगा। जिससे भारत रूस के रिश्ते ठंडे पड़ गए थे, यह इसी से स्पष्ट है कि 1993 में येल्तीसीन ने नई दिल्ली यात्रा के दौरान रूस को भारत का अतीत के राजनैतिक पाखण्डों के बिना स्वाभाविक सहयोगी बताया था। उस समय येल्तीसीन ने जिस संधि पर हस्ताक्षर किए उसमें सामरिक सहयोग की बात का जिक्र नहीं था। इस दौर में भारत समेत तीसरी दुनिया के अपने सहयोगियों की तरफ पीठ कर ली थी।[14]

कारण कुछ और भी था, नकदी के संकट से त्रस्त रूस खुलकर यह माँग कर रहा था कि भारत वर्षों से रुपए में अपने बकाया कुल 32,000 करोड़ रुपए का भुगतान विदेशी मुद्रा में करें, यह दबाव तब आया जब भारत में विदेशी मुद्रा भंडार की स्थिति खराब थी। सोवियत संघ के विघटन और रूस के उदय के साथ विदेश नीति के परंपरागत उद्देश्यों और लक्ष्यों में कई बदलाव आए। नए रूसी परिसंघ द्वारा विदेश नीति के नए सिद्धांतों और दिशा-निर्देशों की तलाश के प्रयासों में तीन तत्वों के कारण भारत को रूस की नीतिगत दृष्टि से ओझल होना पड़ा। पहला यह कि राष्ट्रपति बोरिस येल्तसिन ने रूस की विदेश नीति को विचारधारा से मुक्त करने पर जोर दिया जिसके फलस्वरूप भारत के प्रति 'देखो और प्रतीक्षा करो' की नीति अपनाई गई। दूसरा तत्व यह था कि रूस के राजनेता दो गुटों - 'पश्चिमी या एटलांटिकवादी' और 'एशिया पहले' के बीच विभाजित थे। तीसरा तत्व यह था कि भारत के साथ संबंधों के बारे में रूस के विदेश मंत्री एंड्रेई कोज़ीरेफ के नेतृत्व में नए चिंतकों का गुट सामने आया जिनकी दृष्टि में रूस की विदेश नीति और सुरक्षा संबंधी उद्देश्य प्राप्त करने के लिए पाकिस्तान अधिक महत्वपूर्ण था। हालांकि 1990 के मध्य तक रूस का पश्चिम से मोहभंग हो गया क्योंकि वादे के अनुरूप निवेश नहीं हो सका और रूसी अर्थव्यवस्था की हालत खस्ता हो गई। प्रो सर्जेई लोउनेव स्वीकार करते हैं कि ''प्रारंभ में रूस ने पश्चिम की ओर रूख करके अपने सभी राजनयिक संबंधों को ठंडे बस्ते में डालकर अनाड़ीपन दिखाया।'' हमें जल्दी एहसास हो गया कि यह बड़ी भूल थी। तब येल्तसिन की अगुवाई में रूस ने नए सिरे से अपनी विदेश नीति को धार देना शुरू किया, इसका मूल तत्व था अमेरिकी एकाधिकारवाद के विरूद्ध एक एशियाई शक्ति का निर्माण करना। इसलिए उसने चीन से भी अपने रिश्ते प्रगाढ़ किए, वह भारत की अमेरिका से संबंध बेहतर करने के प्रयासों से भी नाराज नहीं हुआ। कूटनीति के नए खेल में जिसमें भारत का महत्व बढ़ गया है, अमेरिका से संबंध बढ़ाने का मतलब रूस से संबंधों में खटास आना नहीं है। भारत ने रूस से ऐसे समझौते करने का आग्रह किया है, जिससे दोनों के सुदृढ़ पारम्परिक संबंध पुनर्जीवित हो सके।[15]

सन्तुलन साधने के इस खेल में भारत अब तेजी से प्रवीण होता जा रहा है, वैसे रूस ने 1998 में रूस, चीन और भारत के बीच एक त्रिकोणीय रणनीतिक समझौते का संकेत अवश्य दिया था, जब रूसी प्रधानमंत्री येवगेनी प्रीमाकोव भारत दौरे पर आए थे, इस पर चीन का रूख ठंडा था क्योंकि वह द्विपक्षीय समझौते में अधिक विश्वास करता है। भारत भी उसके प्रति इच्छुक नहीं था। लेकिन कटु सत्य तो यह है कि तीनों देशों के पास अन्तर्राष्ट्रीय

मंच पर एक साथ होने के लिए इस्लामी आतंकवाद से लेकर अमेरिकी एकाधिकारवाद के विरोध जैसे कई मुद्दे हैं।[16]

2000 नया सामीत्य एवं नई पहल – रूसी रास्ट्रपति की भारत यात्रा से नए संबंधों के रूप में एक नया प्रतिमान उभरा एवं पिछले एक दशक से ठंडे पड़े संबंध में जान फूँकने का सफल प्रयास किया गया।

अपनी यात्रा के बीच पुतिन ने कहा "आतंकवाद के विरुद्ध संघर्ष में वे भारत के साथ हैं।" उन्होंने भारत के साथ दीर्घकालिक साझेदारी का संकल्प प्रकट करते हुए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में भारत की स्थायी सदस्यता के दावे का भी समर्थन किया और कहा कि ''रूस भारत को अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में उचित और महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हुए देखना चाहता है, क्योंकि यह रूस और भारत दोनों के राष्ट्रीय हित में होगा।'' वास्तव में रूस अमेरिका के पक्ष में झुके एकध्रुवीय विश्व की काट में चीन और भारत को महत्वपूर्ण मानता हैं। इस यात्रा के दौरान भारत और रूस ने परमाणु रक्षा व आर्थिक क्षेत्र में ऐतिहासिक सामरिक भागीदारी की घोषणा पर हस्ताक्षर करने के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद व धार्मिक कट्टरवाद से निपटने के लिए संयुक्त घोषणा पत्र भी जारी किए गए।''[17]

1. गोपनीय दस्तावेजों का संरक्षण करना।
2. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी क्षेत्र में 10 वर्षों के लिए एकीकृत सहयोग।
3. सांस्कृतिक शिक्षा एवं विज्ञान के क्षेत्र में 10 वर्षों के लिए सहयोग।
4. प्रांतीय स्तर पर सहयोग बढ़ाने की योजना।

तीन अरब डॉलर का रक्षा समझौता – 4 अक्टूबर 2000 को भारत ने रूस के साथ अब तक का सबसे बड़ा रक्षा सौदा किया, जिसमें प्रमुख है –

1. सुखोई 30 – युद्धक विमान संख्या-150 लागत 2 अरब
2. टी. 90 – मुख्य युद्धक टैंक – संख्या-310 लागत 45 करोड़
3. एडमिरल गोर्शकोव – विमान वाहक पोत संख्या-1 लागत 55 करोड़
4. स्मर्च – एमबीआरल – संख्या-6 लागत तय नहीं
5. होक – जेट ट्रेनर संख्या-66 1.9. अरब डॉलर (भावी)

इस काल में भारत और रूस संबंधों में सबसे दुर्बल पहलू व्यापार का ही है। इस दौर में सूचना प्रौद्योगिकी जैसे कुछ क्षेत्रों में बढ़त रही लेकिन आवश्यकता निजी निवेश विशेषतः संयुक्त उपक्रम लगाने की है, और जब पुतिन सुदृढ़ होने का संकेत दे रहे हैं तो रूस अबूझ नहीं रह गया है। भारत की सड़कों पर आशा की बातें सुनायी पड़ने लगी है, हालांकि अभी भी उनका जोर व्यवहारिक होने पर है पुतिन की यात्रा को इसी सन्दर्भ में देखा जा सकता है। भारत-रूस संबंध की अगली कड़ी में 6 नवम्बर 2001 की भारतीय प्रधानमंत्री वाजपेयी की मास्को यात्रा है, दोनों देशों के बीच 6 नवम्बर 2001 को 6 समझौते पर हस्ताक्षर हुए।[18] इनमें कुंड कुलम परमाणु विद्युत परियोजना की स्थापना हेतु आवश्यक सामान की आपूर्ति भारत के एक्जिम बैंक व रूस के बेनस्कोम बैंक के मध्य साख सुविधा के विस्तार, बायोटेक्नोलोजी के क्षेत्र में सहयोग संवर्धन के लिए भारत में रूस-भारत टेक्नोलॉजी संस्थान की स्थापना प्रमुख हैं। साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद पर मास्को घोषणा पत्र में कहा गया है कि आतंकवाद के विरुद्ध संघर्ष केवल कुछ संगठन के विरुद्ध नहीं वरन् उन राष्ट्रों के विरुद्ध भी होना चाहिए जो आतंकवादियों को वित्तीय सहायता एवं प्रशिक्षण संरक्षण प्रदान करते हैं। यह घोषणा-पत्र कश्मीर व चेचन्या के मामलों में भारत व रूस की चिन्ताओं पर केन्द्रित प्रपत्र है। इसी क्रम में 8 फरवरी 2002 को अमेरिकी विदेश मंत्री इगोर इवानोव की भारत की यात्रा प्रमुख है, इवानोव एवं जसवंत सिंह की बातचीत के बाद जारी संयुक्त वक्तव्य में रूस ने कहा कि पाकिस्तान को सीमा पर से आयोजित आतंकवाद को पूरी तरह कुचलना होगा और आतंकवादी गतिविधियाँ पाकिस्तान में ही नहीं पाक नियंत्रित क्षेत्र में भी पूरी तरह खत्म होनी चाहिए। रूसी विदेश मंत्री का इस यात्रा का एक सुखद परिणाम भारत, चीन और, रूस, त्रिदेशीय सहयोग बढ़ाने की कोशिश को पुनः दोहराना था जिसकी बात प्रिमकोव कर चुके थे।

अतः स्पष्ट है कि इक्कीसवीं सदी में दोनों देशों के सकारात्मक दृष्टिकोण के चलते भारत-रूस संबंधों में पुनः गरमाहट लौट आई जो दोनों के हित में हैं।[19]

पुतिन द्वारा भारत और रूस के बीच सामरिक भागीदारी की घोषणा पर हस्ताक्षर किए गए थे तब रूस भारत का पहला रणनीतिक साझेदार बन गया था। 'रणनीतिक

साझेदार' के एक और अधिक उदार के उपयोग के साथ लंबी अवधि के, निकट और विश्वसनीय अभिसारी हितों के साथ देशों के बीच संबंध सहित भारत के अब दो दर्जन से अधिक सामरिक भागीदार है। दोनों देशों द्वारा अन्य रणनीतिक साझेदारी से किए गए गुणात्मक अंतर ने, भारत-रूस संबंधों को संयुक्त रूप से वर्ष 2010 में "विशेष और विशेषाधिकार प्राप्त रणनीतिक साझेदारी" के रूप में चिन्हित किया गया।[20]

रूसी अर्थव्यवस्था के वर्तमान स्तंभों में से कई, जैसे, तेल और गैस, रक्षा और परमाणु उर्जा, भारत और रूस के पहले से ही निकट सहयोग के क्षेत्र हैं। भारत-रूस रक्षा संबंध आधी सदी से अधिक खिंचाव और भारतीय बाजार पर अन्य देशों के हथियार उत्पादकों की कड़ी प्रतिस्पर्धा के बावजूद विकसित हुये हैं। दूसरी ओर, भारत ने भी अक्सर अन्य स्रोतों से रक्षा मदों को खरीदा है जैसे, एंग्लो-फ्रेंच जगुआर, फ्रेंच मिराज 2000, स्विडिश बोफोर्स 155 मिमी तोपखाने, चेक टाट्रा ट्रकों, इजरायल स्पाइक मिसाइल, स्विस पिलाटस पीसी -7 ट्रेनर्स और यूएस सी -17 ग्लोबमास्टर सैन्य परिवहन विमान।

भारत वर्तमान में टी-90 टैंकों और सु-30 एमकेआई फाइटर्स सहित कई रूसी हथियारों का उत्पादक है। इन वर्षों में भारत-रूस रक्षा संबंधों को उन्नत हथियार प्रणालियों और प्लेटफार्मों के संयुक्त डिजाइन, अनुसंधान, विकास और उत्पादन को सम्मिलित करते हुये एक खरीदार-विक्रेता रिश्ते को बदल दिया है। ब्रह्मोस सुपरसोनिक क्रूज मिसाइल, "मेक इन इंडिया" का एक अच्छा उदाहरण है जिसने एक विश्वस्तरीय हथियार का उत्पादन किया है। रूस में आर्थिक स्थिति और उस पर पश्चिमी प्रतिबंधों के उपरान्त भी भारत संयुक्त परियोजनाओं को लागू करने में रूस के साथ सहयोग करना जारी रखेगा जैसेकि पांचवीं पीढ़ी के लड़ाकू विमान और बहुउद्देशीय परिवहन विमान। हमारे रक्षा सहयोग में निरंतरता को दोहराते हुए प्रधानमंत्री मोदी ने दिसंबर 2014 में भारत के लिए पुतिन की यात्रा के दौरान इस बात पर जोर देकर सार्वजनिक रूप से कहा कि "भारत के विकल्पों में चाहे आज वृद्धि हुई है फिर भी रूस हमारे सबसे महत्वपूर्ण रक्षा भागीदार के रूप में रहेगा।"

परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में भारत-रूस सहयोग हमारे संबंधों का एक अन्य पूर्ण रूप से विकसित स्तंभ है। कुडनकुलम में दूसरा परमाणु बिजली संयंत्र अब पूरा होने वाला है। कुडनकुलम परमाणु बिजलीघरों का निर्माण शुरू करने के लिए 3 व 4 के अनुबंध पर दिसंबर 2014 में हस्ताक्षर करना यह दर्शाता है कि परमाणु क्षति के लिए भारत के नागरिक देयता 2010 के अधिनियम से उत्पन्न होने वाली देयता चिंताओं के आसपास रास्ता पाया गया है। परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग के लिए सामरिक दृष्टि की रूपरेखा वाले दस्तावेज दिसंबर 2014 में भारत-रूस शिखर सम्मेलन के दौरान हस्ताक्षर किए गए थे। अगले दो दशकों के दौरान 1,000 मेगावाट प्रत्येक की, कम से कम एक दर्जन से अधिक परमाणु बिजली इकाइयों के निर्माण और कमीशनिंग के लिए के लिए दोनों पक्ष प्रतिबद्ध हैं।[21]

सोवियत काल की ही भांति, रक्षा क्षेत्र में आपसी संबंध मंद पड़े हुए हैं जो दोनों देशों के बीच कमजोर कड़ी को दर्शाता है। भारत-रूस व्यापार को बढ़ावा देने ठोस प्रयासों की आवश्यकता है। इसके लिए उपयोगी वस्तुओं की बास्केट के विविधीकरण की आवश्यकता, बढ़ावा देने के लिए एक महत्वपूर्ण साधन है। हमारा देश भारत-रूस अंतर सरकारी कमीशन के अंतर्गत इसके लिए फ्रेमवर्क प्रदान कर रहा है जो वार्षिक रूप से मिलता है और ये सबसे व्यापक ऐसा निकाय है जो भारत का किसी भी देश के साथ है। दोनों देशों के बीच वित्तीय वर्ष 2023-24 में 65.70 बिलियन डॉलर का व्यापार हुआ जिसे 2030 में इसमें 100 बिलियन डॉलर तक बढ़ाने का लक्ष्य रखा गया है।[22] भारतीय कारोबार को और अधिक लगातार रूस के क्षेत्रों तक पहुँचने और अधिक उद्यमशीलता के साथ और रूस में व्यापार के अवसरों के प्रति सक्रियता के लिए उत्तरदायी होना चाहिए और इसी प्रकार रशिया को भी। दोनों पक्षों को अवसरों के प्रति जागरुकता को बढ़ावा देने और एक-दूसरे के नवीनतम उपलब्धियों और क्षमताओं के प्रति उन्मुक्तता में वृद्धि करनी चाहिए, ताकि पुरानी मानसिकता और लकीर के फकीर द्वारा ही निर्देशित नहीं होते रहें।

वर्तमान परिदृश्य में सबसे अधिक विकास क्षमता की संभव्यताओं का क्षेत्र दवाइयां हैं जो रूस के लिए भारत की सबसे बड़ी निर्यात मद है। रूस में चिकित्सा की कीमतों में पिछले एक साल में 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई है और यदि रूस इस प्रवत्ति को रिवर्स नहीं करता, तो वह इसे रोकना चाहेगा। रूस अपने बाजार पर हावी बहुराष्ट्रीय दवा कंपनियों का अनुसमर्थन नहीं करता है,

लेकिन उन पर कम या अधिक निर्भर होना चाहता है। रूस के फार्मा 2020 की रणनीति के अनुसार भारतीय दवा कंपनियों द्वारा रूस में निवेश के रूप में रूस के लिए प्रतिस्पर्धात्मक मूल्य, गुणवत्ता भारतीय दवाइयों के बढ़ते निर्यात से दोनों पक्षों को लाभ होगा। एक ही समय में, भारतीय कंपनियों को रूसी रूबल की अस्थिरता के विरूद्ध स्वयं को अलग करना होगा।

रूसी काउंटर-अनुसमर्थनों ने रूस के लिए भारतीय जमे हुए समुद्री भोजन, गोजातीय मांस, दूध और दूध उत्पादों, अंडा पाउडर और अन्य खाद्य उत्पादों के निर्यात के लिए अवसर खोल दिये हैं। आईटी और आईटी समर्थित सेवाओं ने भी, जिसकी वर्तमान उपस्थिति रूस में बैंकिंग/वित्त क्षेत्र के लिए काफी हद तक सीमित है, भारतीय कंपनियों के लिए संभव्यता प्रदान की है। अच्छी संभव्यता के साथ एक और खंड ऑटो पार्ट्स का है।

हीरे में प्रत्यक्ष भारत-रूस व्यापार लेन-देन लागत को, जो दुनिया के हीरे काटने और पॉलिश पर खर्च होती है, भारतीय व्यापारियों के लिए कम कर देंगे। यह भी ब्रसेल्स के माध्यम से रूसी हीरे के निर्यात को रोकने में नई यूरोपीय संघ के प्रतिबंधों के खतरे को दूर करेगा।

भारत और रूस ब्रिक(एस) के संस्थापक सदस्य भी हैं। ब्रिक्स के लिए भारत की आकांक्षाओं को हमारे देशों के बेहतर समकालीन और उभरते वैश्विक वास्तविकताओं को प्रतिबिंबित करने के लिए दुनिया के एक शांतिपूर्ण और व्यवस्थित परिवर्तन सुरक्षित करने के लिए हाथ मिलाने की परिकल्पना की गई है। यह न सिर्फ वैश्विक वित्तीय, मौद्रिक और व्यापार प्रणालियों के लिए सुधार के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि समान रूप से इस तरह के संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के रूप में संरचनाओं के सुधार के लिए लागू होता है।

यह शायद सभी जन नहीं जानते कि प्रधानमंत्री मोदी के लिए रूस कोई नई बात नहीं है, जब वे गुजरात के मुख्यमंत्री थे तब 2001, 2006, और 2009 में उन्होंने रूस का भ्रमण किया है। प्रधानमंत्री बनने के बाद से, जुलाई 2014 में फ़ोर्टालेज़ा में ब्रिक्स शिखर सम्मेलन के अवसर पर पुतिन के साथ और नवंबर 2014 में और ब्रिस्बेन में जी-20 शिखर सम्मेलन में ठोस वार्ताएं की, नई दिल्ली में 11 दिसंबर, 2014 को 15वीं भारत-रूस वार्षिक शिखर सम्मेलन में उसका स्वागत करने से पूर्व। उस वार्षिक शिखर सम्मेलन में मोदी ने भारत-रूस करीबी संबंधों को और उनके सतत और बढ़ती प्रासंगिकता के महत्व का समर्थन किया। मोदी और पुतिन ने भी एक संयुक्त बयान में भारत-रूस संबंधों के भविष्य को "द्रजबहा-दोस्ती" के रूप में अपने विज़न को व्यक्त किया। अन्य बातों के साथ उनके विशेष और विशेषाधिकार प्राप्त भारत-रूस सामरिक भागीदारी में विश्वास को दोहराया और संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की मंजूरी के बिना वाले आर्थिक अनुसमर्थन का विरोध किया।

भारत-रूस के बीच 21वां वार्षिक शिखर सम्मेलन 6 दिसंबर, 2021 को नई दिल्ली में आयोजित हुआ। सम्मेलन में प्रधानमंत्री मोदी और रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन के बीच द्विपक्षीय वार्ता एवं कोविड महामारी से उत्पन्न चुनौतियों से निपटने के लिए तौर-तरीकों पर विस्तृत चर्चा हुई। इसी शिखर सम्मेलन के दौरान विदेश और रक्षा मंत्रियों की 2+2 वार्ता की पहली बैठक और सैन्य एवं सैन्य-तकनीकी सहयोग पर अंतर-सरकारी आयोग की बैठक सम्पन्न हुई।[23] प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने 22वें भारत-रूस वार्षिक शिखर सम्मेलन में भाग लेने के लिए रूस की यात्रा की। शिखर सम्मेलन में दोनों देशों के बीच रणनीतिक साझेदारी को रेखांकित किया, जिसमें महत्वपूर्ण राजनयिक सम्मान, महत्वाकांक्षी आर्थिक लक्ष्य सम्मिलित है।[24]

निष्कर्ष : भारत-रूस दोस्ती दुनिया में उथल-पुथल भरे परिवर्तन के उपरान्त भी समृद्ध है। दोनों देशों के आपसी संबंध 77 वर्षों से सुदृढ़ और स्थिर बने हुए हैं। भारत-रूस साझेदारी समकालीन युग में दुनिया के प्रमुख साझेदारी में सबसे स्थिर और टिकाऊ रही है। पिछले 5 वर्षों में द्विपक्षीय व्यापार में काफी विस्तार हुआ है। रूस के साथ हमारी भागीदारी में किसी भी तरह दुर्बल पड़ना भारत की विदेश नीति के एक महत्वपूर्ण इमारत ब्लॉक को कमजोर करेगा और नकारात्मक रूप से चीन की ओर भी रूस से हमारा सुरक्षा परिदृश्य प्रभावित होगा और पाकिस्तान के लिए भी एक ओपनिंग प्रदान करेगा। समान रूप से, भारत को अमेरिका के साथ सुदृढ़ और अपने संबंधों को बढ़ावा देना चाहिए। वास्तव में भारत को विकसित होने के लिए समय और स्थान की आवश्यकता है और उन सभी देशों को जो सही मायने में इसके आर्थिक विकास में योगदान करना चाहते हैं भागीदार के रूप में साथ लेने लिए भारत को तैयार रहना चाहिए। भारत को एक बहु वेक्टर विदेश नीति,

का पालन करना चाहिए जो सभी के साथ दोस्ती और किसी के साथ भी दुश्मनी नहीं के द्वारा निर्देशित हो।

सन्दर्भ

1. दीक्षित जे.एन., 'भारतीय विदेश नीति के बदलते आयाम', प्रभात प्रकाशन, 2002, नई दिल्ली, पृ. 287-288.
2. https://indianembassy.moscow.gov.in/billateral-relations-india-russia.
3. Joint Statment 22nd India-Russia Annual Summit. July 7, 2024. www.mea.gov.in
4. www.mea.gov.in/billateral-relations-india-russia.
5. Ghosh Abhijeet, *'India and Russia : Towards New Strategic Relations'*, New Delhi, Pearson, 2009.
6. Chopra V.D., *'Indo-Russian Relations : Prospects, Problems and Russia Today'*, Gyan Publishing House, 2001.
7. गांगुली सुमित, 'भारत की विदेश नीति पुनरावलोकन एवं संभावनाएँ', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2018, पृ. 269.
8. Raj Nayar Baldev, Paul T.V., *'India in the World Order : Searching for Major-Power Status'*, Cambridge University Press, 2003, pp. 115-118.
9. वही, पृ. 119.
10. दीक्षित जे.एन., पूर्वोक्त, पृ. 292.
11. दत्त, वी.पी., 'बदलती दुनिया में भारत की विदेश नीति', हिन्दी माध्यम क्रियान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2003, पृ. 93.
12. वही, पृ. 94-95.
13. हिन्दुस्तान टाइम्स (नई दिल्ली), 22 मई 1990.
14. टाइम्स ऑफ इण्डिया (नई दिल्ली), 24 जुलाई 1990.
15. गांगुली सुमित, पूर्वोक्त, पृ. 289-91.
16. द हिन्दू (नई दिल्ली), 6 अक्टूबर 2000.
17. Bakshi Jyotsna, 'India-Russia Defence Cooperation, Strategic Analysis', 30, 2006, pp. 449-56.
18. वार्षिक रिपोर्ट - 2010-11, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 128-129.
19. वही, पृ. 121-132.
20. द हिन्दू (नई दिल्ली), 15 दिसंबर 2010.
21. मल्होत्रा अजय, सेवानिवृत्त, राजपूत, विशिष्ट व्याख्यान, 20 मार्च 2015, http://www.mea.gov.in
22. भारत-रूस संबंध, https://www.sanskritias.com
23. 21वां भारत-रूस वार्षिक शिखर सम्मेलन, पत्र एवं सूचना ब्यूरो, प्रधानमंत्री कार्यालय, 3 दिसम्बर 2021.
24. दैनिक जागरण (नई दिल्ली), 8 जुलाई 2024.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

कानपुर नगर के अनुदानित एवं गैर अनुदानित बी. एड. महाविद्यालयों में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का अध्ययन

❑ सुश्री रचना वर्मा
❑ डॉ. पंकज सिंह

सूचक शब्द : बी. एड. महाविद्यालय, अनुदानित, गैर अनुदानित, स्ववित्तपोषित शिक्षक, कार्य संतुष्टि।

प्रस्तुत शोध पत्र में कानपुर नगर के अनुदानित एवं गैर अनुदानित बी.एड. महाविद्यालयों में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि का अध्ययन किया गया है। इस शोध अध्ययन में न्यादर्श के रूप में कानपुर नगर में स्थित छत्रपति साहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर से सम्बद्ध अनुदानित एवं गैर अनुदानित बी. एड. महाविद्यालय में वर्ष में अध्यापनरत 100 स्ववित्तपोषित शिक्षकों का चयन साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन विधि द्वारा किया गया। मीरा दीक्षित द्वारा निर्मित परीक्षण कार्य संतुष्टि मापनी का प्रयोग किया गया। प्राप्त आंकड़ों की सार्थकता स्पष्ट करने हेतु वर्णनात्मक सांख्यिकी का प्रयोग किया गया। आंकड़ों के विश्लेषण के पश्चात निष्कर्ष स्वरुप पाया गया कि अनुदानित एवं गैर अनुदानित बी. एड. महाविद्यालय में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों की एवं शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि में सार्थक अंतर है।

शिक्षा का क्षेत्र किसी भी समाज के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और इस क्षेत्र के मुख्य घटक शिक्षकों की कार्य संतुष्टि और उनकी पेशेवर दक्षता, समग्र शैक्षिक गुणवत्ता को प्रभावित करती है। शिक्षा एवं शिक्षण व्यवस्था की प्रक्रिया शिक्षकों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। पहले की तुलना में शिक्षकों के दायित्व एवं कार्य अधिक जटिल बन गये हैं तथा इनकी कठिनाइयाँ एवं जटिलतायें समय परिवर्तन के साथ बढ़ती ही जा रही हैं। शिक्षकों को वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के प्रति जागरूक रहना आवश्यक हो गया है। आधुनिक समय में विकास की द्रुत गति से उत्पन्न सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं शैक्षिक समस्याओं के निराकरण हेतु शिक्षकों को तैयार करना आवश्यक हो गया है। परिवर्तन के फलस्वरूप परिस्थितियों का व्यापक प्रभाव शिक्षक पर पड़ता है। शिक्षक में तनाव की अधिकता एवं कार्य संतुष्टि का अभाव उसकी शिक्षण दक्षता एवं क्षमता को प्रभावित करता है जिससे शिक्षक अपना सर्वोत्तम देने में असमर्थ हो जाता है। ये समस्याएं जिन शिक्षकों में पायी जाती हैं, उनमें व्यवसाय के प्रति प्रतिकूल तथा अस्वस्थ मनोवृत्ति का विकास हो जाता है। कार्य संतुष्टि से अभिप्राय शिक्षक के कार्य से जुड़े विभिन्न आयामों के प्रति उसके सकारात्मक या नकारात्मक दृष्टिकोण से है, जिसमें वेतन, कार्यभार, शैक्षणिक वातावरण, प्रशासनिक सहयोग और अन्य सुविधाएं सम्मिलित हैं।[1] शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षकों की कार्य संतुष्टि एक महत्वपूर्ण घटक है, जो न केवल उनकी व्यक्तिगत सफलता बल्कि संस्थान की समग्र शैक्षिक गुणवत्ता को भी प्रभावित करता है। कार्य संतुष्टि से आशय उस मानसिक अवस्था से है, जिसमें एक शिक्षक अपने कार्य के प्रति संतोष और समर्पण का अनुभव करता है। विभिन्न अध्ययन इस बात की पुष्टि करते हैं कि कार्य संतुष्टि का स्तर शिक्षकों की कार्यक्षमता, उत्पादकता और विद्यार्थियों की शैक्षिक प्रगति पर गहरा प्रभाव डालता है।[2]

एक प्रभावशाली शिक्षक किसी भी शिक्षण संस्थान की महत्वपूर्ण कुंजी माना जाता है। किसी भी देश के भाग्य का स्वरूप उसके विद्यालय की कक्षाओं में देखा जा सकता है। कक्षा का वातावरण अध्यापक के गुण एवं व्यवहार पर निर्भर करता है। वास्तव में शिक्षण प्रक्रिया को शिक्षकों की कार्य संतुष्टि द्वारा समझा जा सकता है क्योंकि शिक्षक की कार्य संतुष्टि ही शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावी बनाती है। शिक्षकों की कार्य संतुष्टि न केवल उनके व्यक्तिगत और व्यावसायिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि यह शिक्षण गुणवत्ता और छात्रों की

❑ शोध अध्येत्री शिक्षा संकाय (कमच्छा), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
❖ असिस्टेंट प्रोफेसर शिक्षा संकाय (कमच्छा), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

शिक्षा पर भी गहरा प्रभाव डालती है। इसलिए, यह आवश्यक है कि इन दोनों प्रकार के संस्थानों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए, ताकि नीति निर्माताओं और शिक्षण संस्थानों को सुधारात्मक कदम उठाने हेतु सहायता मिल सके।

अध्ययन की आवश्यकता : व्यक्ति की संपूर्ण शिक्षा प्रक्रिया में उसकी महाविद्यालय की शिक्षा को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। इसके पीछे एक प्रबल तर्क यह है क्योंकि यहाँ हमारी शिक्षा को विस्तृत स्वरूप का आधार मिलता है। यह आधार शिक्षक द्वारा ही सुदृढ़ किया जा सकता है। किन्तु आज के परिवेश में शिक्षण प्रशिक्षण संस्थानों में शिक्षकों पर शिक्षा के बढ़ते दबाव के फलस्वरूप उत्पन्न तनाव का प्रभाव एवं कार्य संतुष्टि का अभाव परिलक्षित हो रहा है। भारत में शिक्षा का तेजी से विस्तार हो रहा है, और इस प्रक्रिया में बी. एड. महाविद्यालयों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। इन महाविद्यालयों में अनुदानित और गैर-अनुदानित दोनों प्रकार के संस्थान सम्मिलित हैं। अनुदानित महाविद्यालयों में शिक्षकों को सरकारी सहायता प्राप्त होती है, जबकि गैर-अनुदानित महाविद्यालयों में स्ववित्तपोषित शिक्षकों को अधिकतर स्वयं के प्रयासों से अपने व्यावसायिक जीवन का प्रबंधन करना पड़ता है। इन दो प्रकार के संस्थानों के बीच संसाधनों, वेतन संरचना, और कार्य परिस्थितियों में अंतर देखा जाता है, जो शिक्षकों की कार्य संतुष्टि को प्रभावित कर सकता है। कार्य संतुष्टि शास्त्रीय एवं व्यवहारिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। व्यक्ति की जिस कार्य में रूचि न हो उसे वह करना पसंद नहीं करेगा। यदि परिस्थितियों ने कार्य का संपादन करने में विवश किया तो उसे वह अनिच्छा से करेगा जिसके अनेक दुष्परिणाम होंगे। अनिच्छा से किये गये कार्य में लापरवाही दृष्टिगत होगी तथा लापरवाही से कार्य बिगड़ जायेगा। इसलिए व्यवसाय में व्यक्ति की रूचि का होना आवश्यक है जो व्यक्ति के स्वाभाव के अनुकूल कार्य मिलने से ही संभव है, यदि रूचि का व्यवसाय मिल जाये तो व्यक्ति उसे पूरी लगन व मेहनत से करता है। इस प्रकार शिक्षकों का अपने शिक्षण कार्य में संतुष्ट होना आवश्यक है क्योंकि मानव समाज एवं देश की उन्नति उत्तम शिक्षकों पर निर्भर है। शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावी बनाने में शिक्षक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। अतः शिक्षक की कार्य संतुष्टि अति आवश्यक है। इसी कारण शिक्षकों की कार्य संतुष्टि को शोध अध्ययन में सम्मिलित किया गया है।

साहित्य समीक्षा

शिक्षकों की कार्य संतुष्टि पर किए गए विभिन्न अध्ययनों में यह स्पष्ट हुआ है कि यह कई कारकों से प्रभावित होती है, जिनमें वेतन, कार्य का परिवेश, प्रशासनिक समर्थन, और करियर विकास के अवसर सम्मिलित हैं। कार्य संतुष्टि के इन कारकों का शिक्षा की गुणवत्ता और शिक्षकों की दीर्घकालिक व्यावसायिक वृद्धि पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

मिश्रा, ए.[3] के अध्ययन में शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में वेतन संरचना के प्रभाव को विश्लेषित किया गया। अध्ययन से पता चला कि वेतन शिक्षकों की संतुष्टि का एक महत्वपूर्ण कारक है, विशेष रूप से स्ववित्तपोषित संस्थानों में कार्यरत शिक्षकों के लिए। यहां, उचित वेतन संरचना होने पर शिक्षकों में संतुष्टि का स्तर अधिक पाया गया। वेतन में असमानता या कमी से संतोष में कमी आती है। अध्ययन संकेत देता है कि संतोषजनक वेतन संरचना कार्य संतुष्टि को बढ़ावा देने में सहायक है।

सरीन, के.[4] के अध्ययन में शिक्षकों की कार्य संतुष्टि और कार्य वातावरण के बीच संबंध का विश्लेषण किया गया। अध्ययन के निष्कर्षों से पता चला कि एक सकारात्मक और सहयोगी कार्य वातावरण शिक्षकों की संतुष्टि को बढ़ाता है। जब शिक्षकों को अनुकूल वातावरण मिलता है, तो उनका काम में मन लगता है और संतुष्टि का स्तर भी बढ़ता है। कार्यस्थल पर सहकर्मियों और प्रबंधन से मिलने वाला सहयोग उनकी संतुष्टि पर गहरा प्रभाव डालता है। इससे संकेत मिलता है कि अच्छा कार्य वातावरण शिक्षकों की कार्य संतुष्टि के लिए महत्वपूर्ण है।

गुप्ता, आर.[5] के अध्ययन में शिक्षकों की कार्य संतुष्टि पर प्रशासनिक समर्थन के प्रभाव का विश्लेषण किया गया। अध्ययन से पता चला कि जब शिक्षकों को प्रशासन से सहयोग और समर्थन मिलता है, तो उनकी कार्य संतुष्टि में वृद्धि होती है। प्रशासनिक समर्थन में संसाधनों की उपलब्धता, प्रोत्साहन, और उचित मार्गदर्शन सम्मिलित हैं, जो शिक्षकों के आत्मविश्वास को बढ़ाते हैं। सहयोगपूर्ण प्रशासनिक वातावरण शिक्षकों को अपने दायित्वों को बेहतर तरीके से निभाने में सहायक होता है। अध्ययन यह दर्शाता है कि प्रशासनिक समर्थन शिक्षकों की संतुष्टि

के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है।

राठी, पी.[6] के अध्ययन में करियर विकास के अवसरों और शिक्षकों की कार्य संतुष्टि के बीच संबंध की जांच की गई। अध्ययन के परिणामों से पता चला कि शिक्षकों को मिलने वाले करियर विकास के अवसर, जैसे पदोन्नति, नई जिम्मेदारियाँ, और प्रशिक्षण, उनकी संतुष्टि को बढ़ाते हैं। करियर में प्रगति की संभावना से शिक्षकों में उत्साह और प्रेरणा बढ़ती है। ऐसे अवसर शिक्षकों को अपने कार्य में अधिक समर्पित और संतुष्ट बनाते हैं। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि करियर विकास कार्य संतुष्टि के लिए एक महत्वपूर्ण घटक है।

सिंह, वी.[7] के अध्ययन में अनुदानित और गैर-अनुदानित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य संतुष्टि के स्तर का विश्लेषण किया गया। अध्ययन में पाया गया कि अनुदानित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की संतुष्टि का स्तर गैर-अनुदानित महाविद्यालयों की तुलना में अधिक है। इसका कारण अनुदानित महाविद्यालयों में मिलने वाली स्थिरता, सुविधाएँ और वेतन संरचना हो सकता है। अनुदानित संस्थानों में शिक्षकों को अधिक प्रशासनिक और वित्तीय समर्थन मिलता है, जिससे संतुष्टि बढ़ती है। अध्ययन दर्शाता है कि संस्थान का प्रकार कार्य संतुष्टि पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकता है।

कपूर, ए.[8] के अध्ययन में शिक्षक-छात्र संबंधों का शिक्षकों की कार्य संतुष्टि पर प्रभाव का विश्लेषण किया गया। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि जब शिक्षकों और छात्रों के बीच सकारात्मक और सहयोगपूर्ण संबंध होते हैं, तो शिक्षक अपनी नौकरी में अधिक संतुष्ट होते हैं। अच्छे रिश्ते शिक्षकों को अपनी भूमिका में सहज और प्रेरित महसूस कराते हैं, जिससे उनका कार्य प्रदर्शन भी बेहतर होता है।

मल्होत्रा[9] के अध्ययन में शिक्षकों की कार्य संतुष्टि और मानसिक स्वास्थ्य के बीच संबंध का विश्लेषण किया गया। अध्ययन में यह पाया गया कि जब शिक्षकों की कार्य संतुष्टि उच्च स्तर पर होती है, तो उनके मानसिक स्वास्थ्य में सुधार होता है। संतुष्ट शिक्षक मानसिक रूप से स्वस्थ रहते हैं और तनाव कम अनुभव करते हैं। कार्य संतुष्टि से मानसिक स्थिति में सुधार आने से शिक्षक अपने उत्तरदायित्वों को बेहतर तरीके से निभा पाते हैं। अध्ययन यह दर्शाता है कि कार्य संतुष्टि का मानसिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

इन अध्ययनों में शिक्षकों की कार्य संतुष्टि को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों का अध्ययन किया गया है। वेतन संरचना, कार्य वातावरण, प्रशासनिक समर्थन, करियर विकास के अवसर, और कार्य-जीवन संतुलन को शिक्षकों की संतुष्टि के प्रमुख कारक माना गया है। अध्ययन बताते हैं कि सकारात्मक कार्य वातावरण, पदोन्नति, व्यक्तिगत मूल्यों का मेल, और संस्थान की संस्कृति शिक्षकों की संतुष्टि को बढ़ाते हैं। आयु, अनुभव, नेतृत्व, और सामाजिक जीवन का भी संतुष्टि पर सकारात्मक प्रभाव देखा गया है। इन निष्कर्षों से संकेत मिलता है कि शिक्षकों की कार्य संतुष्टि कई व्यक्तिगत और संस्थागत तत्वों पर निर्भर करती है और इन सभी कारकों का शिक्षण की गुणवत्ता और शिक्षकों के व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन पर गहरा प्रभाव होता है।

अध्ययन के उद्देश्य :-

इस शोध अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

1. कानपुर नगर के अनुदानित बी. एड. महाविद्यालयों में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों व शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. कानपुर नगर के गैर-अनुदानित बी.एड. महाविद्यालयों में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों व शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. कानपुर नगर के अनुदानित एवं गैर-अनुदानित बी. एड. महाविद्यालयों में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
4. कानपुर नगर के अनुदानित एवं गैर-अनुदानित बी. एड. महाविद्यालयों में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएं-

इस शोध अध्ययन की निम्न शून्य परिकल्पनाएं हैं-

1. कानपुर नगर के अनुदानित बी. एड. महाविद्यालयों में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों व शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. कानपुर नगर के गैर-अनुदानित बी.एड. महाविद्यालयों में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों व शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. कानपुर नगर के अनुदानित एवं गैर-अनुदानित बी.

एड. महाविद्यालयों में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

4. कानपुर नगर के अनुदानित एवं गैर-अनुदानित बी. एड. महाविद्यालयों में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध पद्धति :- प्रस्तुत शोध हेतु वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। इस अध्ययन हेतु कानपुर नगर में संचालित अनुदानित बी. एड. महाविद्यालयों के 50 शिक्षकों एवं गैर-अनुदानित बी. एड. महाविद्यालयों के 50 शिक्षकों को साधारण यादृच्छिक विधि (लाटरी विधि) द्वारा सम्मिलित किया गया है।

तालिका सं. 1

चयनित शिक्षक एवं शिक्षिकाओ की संख्या			
कानपुर नगर के बी. एड. महाविद्यालय	अनुदानित	गैर-अनुदानित	
शिक्षक	25	25	
शिक्षिकाएँ	25	25	
योग	50	50	कुल योग = 100

आंकड़ों को एकत्रित करने हेतु मीरा दीक्षित द्वारा निर्मित कार्य संतुष्टि मापनी का प्रयोग किया गया जिसमे कुल 52 कथन सम्मिलित हैं, जो विभिन्न आयामों (वेतन, कार्य की प्रकृति, सहकर्मियों से संबंध, पर्यवेक्षण, संवर्धन और उन्नति, कार्य स्थितियां, सुरक्षा) पर आधारित हैं।

प्रयुक्त सांख्यिकी विधि : प्रस्तुत अध्ययन में मध्यमान, मानक विचलन, टी-परीक्षण का प्रयोग किया गया। अध्ययन से सम्बंधित आंकड़ों का विश्लेषण तालिका सं. 2., 3., 4. व 5. में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका सं. 2.

अनुदानित बी. एड. महाविद्यालयों में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों व शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	टी-परीक्षण मान	स्वतंत्रता अंश	0.05 सार्थकता स्तर
स्ववित्तपोषित शिक्षक	121.88	5.36	1.47	48	सार्थक नहीं
स्ववित्तपोषित शिक्षिकाएँ	119.52	5.98			

विश्लेषण एवं व्याख्या (उद्देश्य 1.) - तालिका सं. 2. से स्पष्ट होता है कि कार्य संतुष्टि स्तर पर कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों का मध्यमान 121.88 प्रमाणिक विचलन 5.36 है इसी प्रकार स्ववित्तपोषित शिक्षिकाओं का मध्यमान 119.52 तथा प्रमाणिक विचलन 5.98 है। **दोनो वर्गो** के लिए टी-परीक्षण मान की गणना करने पर 1.47 प्राप्त हुआ। 0.05 सार्थकता स्तर पर एवं 48 स्वतंत्रता अंश पर टी-परीक्षण मान 2.01 है। गणना द्वारा टी-परीक्षण मान तालिका मान से कम है अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत हुई अर्थात अनुदानित बी. एड. महाविद्यालयों में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों व शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

तालिका सं. 3.

गैर अनुदानित बी. एड. महाविद्यालयों में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों व शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	टी-परीक्षण मान	स्वतंत्रता अंश	0.05 सार्थकता स्तर
स्ववित्तपोषित शिक्षक	112.12	11.39	0.08	48	सार्थक नहीं
स्ववित्तपोषित शिक्षिकाएँ	112.4	13.77			

विश्लेषण एवं व्याख्या (उद्देश्य 2.)- तालिका सं. 3. से स्पष्ट होता है कि कार्य संतुष्टि स्तर पर गैर-अनुदानित बी. एड. महाविद्यालय में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों का मध्यमान 112.12 तथा प्रमाणिक विचलन 11.39 है इसी प्रकार स्ववित्तपोषित शिक्षिकाओं का मध्यमान 112.4 तथा प्रमाणिक विचलन 13.77 है।

दोनो वर्गो के लिए टी-परीक्षण मान की गणना करने पर 0.08 प्राप्त हुआ। 0.05 सार्थकता स्तर पर एवं 48 स्वतंत्रता अंश पर टी-परीक्षण मान 2.01 है। गणना द्वारा टी-परीक्षण मान तालिका मान से कम है अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत हुई। अर्थात गैर-अनुदानित बी. एड. महाविद्यालयों में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों व शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

तालिका सं. 4.

कानपुर नगर के अनुदानित एवं गैर अनुदानित बी. एड. महाविद्यालयों में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	टी-परीक्षण मान	स्वतंत्रता अंश	0.05 सार्थकता स्तर
अनुदानित बी. एड. महाविद्यालय	121.88	5.36	3.88	48	सार्थक
गैर-अनुदानित बी. एड. महाविद्यालय	112.12	11.39			

विश्लेषण एवं व्याख्या (उद्देश्य 3.)- तालिका सं. 4. से स्पस्ट होता है कि कार्य संतुष्टि स्तर पर अनुदानित बी. एड. महाविद्यालय में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों का मध्यमान 121.88 तथा प्रमाणिक विचलन 5.36 है इसी प्रकार गैर- अनुदानित बी. एड. महाविद्यालय स्ववित्तपोषित शिक्षिकाओं का मध्यमान 112.12 तथा प्रमाणिक विचलन 11.39 है।

दोनो वर्गो के लिए टी-परीक्षण मान की गणना करने पर 3.88 प्राप्त हुआ। 0.05 सार्थकता स्तर पर एवं 48 स्वतंत्रता अंश पर टी-परीक्षण मान 2.01 है। गणना द्वारा टी-परीक्षण मान तालिका मान से अधिक है। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत हुई अर्थात अनुदानित एवं गैर- अनुदानित बी. एड. महाविद्यालय में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर पाया गया।

तालिका सं. 5.

अनुदानित एवं गैर अनुदानित बी. एड. महाविद्यालयों में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	टी-परीक्षण मान	स्वतंत्रता अंश	0.05 सार्थकता स्तर
अनुदानित बी. एड. महाविद्यालय	119.52	5.98	2.37	48	सार्थक
गैर अनुदानित बी. एड. महाविद्यालय	112.4	13.77			

विश्लेषण एवं व्याख्या (उद्देश्य 4.)- तालिका सं. 5. से स्पस्ट होता है कि कार्य संतुष्टि स्तर पर अनुदानित बी. एड. महाविद्यालय में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षिकाओं का मध्यमान 119.52 तथा प्रमाणिक विचलन 5.98 है इसी प्रकार गैर- अनुदानित बी. एड. महाविद्यालय स्ववित्तपोषित शिक्षिकाओं का मध्यमान 112.4 तथा प्रमाणिक विचलन 13.77 है।

दोनो वर्गो के लिए टी-परीक्षण मान की गणना करने पर 2.37 प्राप्त हुआ। 0.05 सार्थकता स्तर पर एवं 48 स्वतंत्रता अंश पर टी-परीक्षण मान 2.01 है। गणना द्वारा टी-परीक्षण मान तालिका मान से अधिक है अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत हुई अर्थात अनुदानित एवं गैर- अनुदानित बी. एड. महाविद्यालय में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर पाया गया।

निष्कर्ष : आंकड़ों के विश्लेषण से निम्नलिखित परिणाम

प्राप्त हुए-

1. कानपुर नगर के अनुदानित बी. एड. महाविद्यालयों में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों व शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।
2. कानपुर नगर के गैर- अनुदानित बी. एड. महाविद्यालय में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों व शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।
3. कानपुर नगर के अनुदानित एवं गैर- अनुदानित बी. एड. महाविद्यालय में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर पाया गया।
4. कानपुर नगर के अनुदानित एवं गैर- अनुदानित बी. एड. महाविद्यालय में कार्यरत स्ववित्तपोषित शिक्षिकाओं की कार्य संतुष्टि में सार्थक अन्तर पाया गया।

सुझाव : कोई भी शोध अपने आप में पूर्ण एवं अंतिम नहीं होता। प्रस्तुत अध्ययन के समय अनुभव किया कि समस्या संबंधित अन्य पहलुओं पर अध्ययन की आवश्यकता है जो भावी शोधार्थियों को सुझाव के रूप में दिया जा सकता है-

1. प्रस्तुत शोध में कार्य-संतुष्टि को केवल एक कारक के रूप में अध्ययन किया गया है, अतः इसके साथ अन्य कारकों के प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है।
2. भविष्य में कार्य-संतुष्टि का शिक्षकों पर पड़ने वाले प्रभाव को आयु वर्ग के सन्दर्भ में अध्ययन किया जा सकता है।
3. प्रस्तुत अध्ययन केवल बी. एड. महाविद्यालय से है भविष्य में इस समस्या का अध्ययन स्नातक और परास्नातक महाविद्यालय में अलग-अलग/ समूह रूप में किया जा सकता है।
4. इस शोध में केवल कानपुर नगर के शिक्षकों को सम्मिलित किया गया है। अतः प्रदेश के अन्य जिलों के शिक्षकों का अध्ययन किया जा सकता है।
5. स्ववित्तपोषित शिक्षकों की भांति अन्य शिक्षकों का अध्ययन किया जा सकता है।

प्रस्तुत शोध समयाभाव के कारण बहुत ही छोटे क्षेत्र तथा छोटे न्यादर्श पर किया गया है जिससे परिणाम की सार्थकता भी प्रभावित हो सकती है इसे बड़े न्यादर्श पर प्रशासित करके परिणाम की विश्वसनीयता बढ़ाई जा सकती है।

शैक्षिक निहतार्थ : शैक्षिक दृष्टिकोण से इस शोध पत्र में उठाई गई समस्या महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में यह आवश्यक है कि शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का विभिन्न आयामों से अध्ययन किया जाये क्योंकि यदि शिक्षक अपने कार्य से संतुष्ट है तो वह विद्यालय में अपनी भूमिका का प्रभावी निष्पादन करने सक्षम होगा। अतः शिक्षक की कार्यशैली, कक्षा-व्यवहार व सहयोगियों के साथ सकारात्मक व्यवहार कों बढ़ावा देने का प्रयास किया जाना चाहिए। इस निष्कर्ष के आधार पर प्रत्येक शिक्षक को कार्य से संतुष्ट होना चाहिए ताकि राष्ट्र अपेक्षित उन्नति कर सके।

सन्दर्भ

1. शर्मा, पी. 'शिक्षकों की कार्य संतुष्टि और इसके विभिन्न आयाम', भारतीय शैक्षिक पत्रिका, 39(1), 2016, पृ. 102-110
2. कुमार, आर. 'शिक्षक कार्य संतुष्टि और शैक्षिक गुणवत्ता पर इसका प्रभाव', शैक्षिक अनुसंधान पत्रिका, 45(2), 2018, पृ. 67-75
3. मिश्रा, ए. 'शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में वेतन संरचना की भूमिका', शैक्षिक अध्ययन पत्रिका, 52(3), 2017, पृ. 112-120
4. सरीन, के. 'कार्य वातावरण और शिक्षक संतुष्टि के बीच संबंध', भारतीय शिक्षा पत्रिका, 44(4), 2018, पृ. 98-106।
5. गुप्ता, आर. 'प्रशासनिक समर्थन और शिक्षक संतुष्टिः एक अध्ययन', शैक्षणिक प्रबंधन पत्रिका, 37(2), 2019, पृ. 75-82
6. राठी, पी. 'करियर विकास और कार्य संतुष्टिः शिक्षकों के दृष्टिकोण', व्यावसायिक विकास पत्रिका, 61(1), 2020, पृ. 47-54
7. सिंह, वी. 'अनुदानित और गैर-अनुदानित महाविद्यालयों में कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन', शिक्षा और समाज, 29(3), 2021, पृ. 130-138
8. कपूर, ए. 'शिक्षक-छात्र संबंधों का शिक्षकों की संतुष्टि पर प्रभाव', शिक्षण और अधिगम पत्रिका, 38(2), 2015, पृ. 77-84
9. मल्होत्रा, एस. 'शिक्षकों की कार्य संतुष्टि और मानसिक स्वास्थ्य', शिक्षा में मानसिक स्वास्थ्य पत्रिका, 42(1), 2016, पृ. 89-95
10. अरोड़ा, आर, के. 'टीचर्स एन्जायटी एंड डिफरेंट लेवेल्स ऑफ जॉब सटिसफैक्सन', इंडियन एजुकेशनल रिव्यू 21 (1), 1986, पृ. 151-157
11. गुप्ता, एस. पी. 'ए स्टडी जॉब सटिसफैक्सन एंड देयेर लेवल ऑफ टीचिंग', इंडियन एजुकेशनल रिव्यू 18 (2), पृ. 75-78
12. रेटिंग एस. एंड पसमनिक बी. 'स्टेटस एंड जॉब सटिसफैक्सन ऑफ पब्लिक स्कूल टीचर्स', एच. एड. सी. 87, पृ. 113-116

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

तृतीयलिंग (ट्रांसजेंडर) समुदाय की पारिवारिक स्थिति : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

❑ राज मोहन

सूचक शब्द : तृतीयलिंग समुदाय, परिवारिक विस्थापन, लिंग भेद।

भूमंडलीकरण के दौर में परिवार/समाज में गतिशीलता और परिवर्तन तेजी से हो रहे हैं। आज जहाँ एक ओर मानवतावादी और नव-मानवतावादी दृष्टिकोण सामने आया है, वहीं दूसरी ओर सभ्य और आधुनिक कहा जाने वाला समाज लैंगिक भेदभाव के आधार पर तृतीय लिंग या ट्रांसजेंडर समुदाय को विस्थापित करता है। एक अध्ययन से पता चला है कि इन्हें 02 प्रतिशत परिवारों में ही स्वीकार्यता मिलती है। इन्हें अपने परिवार में ही कई समस्याओं और चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। स्वछंद जीवन (वस्त्र, श्रृंगार और पसंद की जिंदगी) न जीकर कुंठित जीवन यापन करते हैं। परिवार, पड़ोस, रिश्तेदार व अन्य लोगों के ताने, तिरस्कार और उपहास सुनकर आत्महत्या की कोशिश करते हैं अथवा किशोरावस्था के पहले ही परिवार का त्याग कर देते हैं। सभी के घरों में दिव्यांग और जानवरों का पालन-पोषण तो होता है, किंतु जननेंद्रिय एवं हार्मोन असंतुलन के कारण लांछित व्यक्ति परिवारिक विस्थापन व अपमान युक्त जीवन जीते हैं। अन्ततोगत्वा गौण समाज के संपर्क में आकर आजीवन कई तरह के संघर्ष (आंतरिक एवं बाह्य) से जूझते रहते हैं। संवैधानिक व मौलिक अधिकार मिलने के बाद भी अपनी पहचान और अधिकार से वंचित परिवारिक स्वीकार्यता के अभाव में तिरस्कृत जीवन यापन करते हैं। प्रस्तुत आलेख ट्रांसजेंडर समुदाय की पारिवारिक स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का एक प्रयास है।

आज पूरा विश्व भूमंडलीकरण के दौर से गुजर रहा है जो पिछले तीन दशकों से चर्चा में है। भूमंडलीकरण सामाजिक न्याय एवं आर्थिक प्रगति के लिए अनिवार्य प्रतीत होता है। इसका उद्देश्य है पूरे विश्व को एक परिवार के रूप में परिवर्तित कर देना। देश की सीमाएं तो समाप्त हो रही हैं, समय और दूरी कम हो रही है, जिससे परसंस्कृति का आदान प्रदान कर सामान्य संस्कृति का विकास हो रहा है, किंतु मन के विस्तार नहीं होने के कारण कई समस्याएं जन्म ले रही हैं। आज भी लिंग आधारित भेदभाव एक बड़ा उदाहरण है।[1] जिसका आज भी अल्पसंख्यक समुदाय के तृतीय लिंग (Transgender) शिकार हैं जिसकी अनुमानित संख्या विश्व में 2.5 करोड़ है।[2]

तृतीय लिंग समुदाय के लिए वैश्विक स्तर पर ट्रांसजेंडर शब्द का प्रयोग किया गया है। ट्रांसजेंडर शब्द का प्रयोग 1960 के दशक से प्रारंभ हुआ। जिसका अर्थ होता है- ट्रांसजेंडर='उल्टा लिंग'। व्यापक रूप से 1980 के दशक से जन्म के समय लिंग के विपरीत जीवन यापन, चाल-ढाल, कपड़े, मेकअप, व्यवहार, श्रृंगार इत्यादि करने वाले लोगों को ट्रांसजेंडर से संबोधित किया जाने लगा। तृतीय लिंग शब्द अंग्रेजी के थर्डजेंडर का हिंदी पर्याय है।[3] तृतीय लिंग के लोक प्रचलित रूप किन्नर हैं। किन्नरों का इतिहास प्राचीन और संस्कृति गौरवशाली रहे हैं। किन्नर, किन्नर, किन्नर! इतना सुंदर, इतना आकर्षक, इतनी मधुरता का समावेश - यह क्या नर है? क्या यह मनुष्य है? किन्नर का शाब्दिक अर्थ देवताओं की एक योनि जिसका मुंह घोड़े के जैसा होना माना जाता है। देवयोनि की जाति के रूप में पुरख्यानों में किन्नरों की कीर्तिगाथा संरक्षित है। देवयोनि शब्द का अर्थ है जिसमें देवतुल्य गुणों का कुछ समावेश है अर्थात धनात्मक अनुजीवत (पॉजिटिव माईक्रोवाइटम) है। यह समुदाय देवयोनी (यक्ष, किन्नर, गंधर्व, विद्याधर, प्रकृतिलिंग, विदेहलीन और सिद्ध) है। इस लिए किसी दूसरे को हानि नहीं पहुचाते।[4]

ट्रांसजेंडर को मेक्सिको में (Muxe), थाईलैंड में कथोय (Cathoey) और दक्षिण एशिया में किन्नर के नाम से संबोधित किया जाता है। विदेशों में अम्बिगेंडेर (Imbigender), अन्द्रों क्वीन (Indroqueen), बिजेंडर (Bigender),

❑ शोध अध्येता स्नातकोत्तर समाजशास्त्र-विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची (झारखण्ड)

बिसेक्सयूएल (Bisexual), सिसजेंडेर (Cisgender), केओस ड्रेसर (Crossdresser), ड्रगक्वीन (Drugqueen), यूनच (Eunuch), गेंडेर्गवीर (Gendergveer), हरम फरोडिट (Herma Phrodite), इंटर जेंडर (Intergender), थर्डजेंडर (Thirdgender), ट्रांसजेंडर (Transgender) तथा इस वर्ग समुदाय को किन्नर, मंगलामुखी, सखी, बीचवाला, मीठा, कोथी, हिजड़ा, उभयलिंग, शिखंडी, अरावनी, मागा, मामू, गूउ, कोज्जा, पवैया, सुखरा, ख्वाजासरा, तृतीय लिंग इत्यादि नामों से जानते है।[5]

यूरोपीय देशों में जर्मनी ने सर्वप्रथम बच्चों के जन्म प्रमाण पत्र में स्त्री, पुरुष के साथ तीसरा वर्ग एक्स रखा है। ब्रिटेन में पुरूष के लिए मिस्टर, स्त्री के लिए मिसेज और तृतीयलिंग के लिए मिक्स प्रयोग में किया जाता है। इनके अनुकूल बहुत शानदार कानून अर्जेंटीना और डेनमार्क में बनाया गया है।[6] इनके लिए प्रतिकूल अच्छे देश के सर्वे में क्रमशः स्पेन, स्वीडेन, अर्जेंटा, कनाडा, जर्मनी, यू.के, बेल्जियम, भारत, आस्ट्रिया और अमेरिका है अर्थात भारत 8वें स्थान पर है।[7]

वैश्विक स्तर पर ट्रांसजेंडर अपने अधिकार और मानवीय अधिकार प्राप्त करने के लिए लंबे समय से संघर्ष कर रहे हैं अमेरिका, कनाडा, जर्मनी, इंग्लैंड, नीदरलैंड, ऑस्ट्रेलिया, पाकिस्तान, नेपाल, अर्जेंटीना इत्यादि देशों में लैंगिक पहचान मिल गई है। सर्वोच्च न्यायालय ने 15 अप्रैल 2014 को दिए गए एक ऐतिहासिक फैसले में किन्नरों को एक विशिष्ट सांस्कृतिक वर्ग तृतीय लिंग (Thirdgender) की संज्ञा दी है। जबकि सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार-'जन्मतः लिंग के विपरीत मन और शरीर के साथ- साथ उसके व्यवहार के मिलन नही होने वाले व्यक्ति को तृतीयलिंग कहा है।' भारत सरकार सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, नई दिल्ली द्वारा गठित विशेषज्ञ समिति के अनुसार तृतीयलिंग समुदाय के मुख्य रूप से पांच उप वर्ग (हिजड़ा, जोगप्पा, ट्रांसवुमेन, ट्रांसमेन और कोथी) हैं।[8] भारतीय जनगणना 2011 के अनुसार इनकी जनसंख्या 4.88 लाख है।

परिवार प्रस्थिति-

मानव समाज के लिए परिवार समाज की महत्वपूर्ण एवं आवश्यक संस्था है। प्रत्येक मनुष्य परिवार में जन्म लेता है, बड़ा होता है और जीवन की अंतिम सांस तक परिवार (एकांकी, संयुक्त परिवार या विस्तृत परिवार) में व्यतीत करता है। परिवार में ना केवल व्यक्ति का समाजीकरण होता है, बल्कि सहयोग, आत्मत्याग, मानव सेवा, विश्वबंधुत्व, प्राणीमात्र से प्रेम, परोपकार इत्यादि गुण आत्मसात करता है। परिवार सामाजिक संस्था के रूप में मनुष्य जीव विज्ञान, मनोविज्ञान, आर्थिक सहयोग, और सामाजिक आवश्यकताओं (भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, चिकित्सा एवं रोजगार) की पूर्ति करता है। परिवार के महत्व एवं कार्यों से ऐसा प्रतीत होता है, कि - परिवार के बिना मनुष्य अपने जीवन अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकता है।[9]

तृतीय लिंग समुदाय भी हमारे और आपके जैसा परिवार में ही जन्म लेता हैं। आधुनिक समाज जन्मजात मानसिक बीमार, दिव्यांग यहां तक कि अपने घरों में पशु पक्षी को जीवन प्रदान करता है, लेकिन जनेन्द्रिय विकृत या हार्मोन असंतुलन के कारण लिंग के विपरीत व्यवहार करने वाले परिवार/समाज से विस्थापित कर दिये जाते हैं। जन्म के समय लैंगिक पहचान होते हैं मार डालने का प्रयास होता है या फिर जीव दया के बाद सोच कर उन्हें उन्हीं के समान लोगों के समुदाय में छोड़ आते हैं। किशोरावस्था से पूर्व हार्मोन असंतुलन के कारण हुई लैंगिक पहचान के बाद शारीरिक व मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जाता है। परिवार/रिश्तेदारों के द्वारा यौन शोषण तक से इन्हें गुजरना पड़ता है। इनकी मोटी आवाज, शारीरिक चाल- ढाल या लिंग के अनुकूल व्यवहार नहीं किए जाने पर तिरस्कृत, उपेक्षित और विस्थापित जीवन जीने के लिए विवश होते हैं। इस समुदाय के लोगों में मानसिक अवसाद के कारण कई बीमारियां अनिद्रा, तनाव इत्यादि के साथ-साथ आत्महत्या का प्रयास भी किया करते हैं। परिवारिक अस्वीकार्यता और उपहास के कारण किशोरावस्था के पहले ही घर का परित्याग कर अपने तथाकथित समुदाय का सदस्य बन जाते हैं।[10] आम इंसान की तरह ट्रांसजेंडर का जन्म मां के गर्भ से परिवार में होता है, लेकिन उन्हें परिवार का सुख प्राप्त नहीं होता है। इन्हें न तो माता-पिता की पहचान मिल पाती है न ही परिवार की। विद्यालयों में लिंग भेद, उपहास और यौन उत्पीड़न के कारण पढ़ाई छोड़ देते हैं।

मन के अनुकूल स्वतंत्र रूप से आचरण करने पर इनकी शारीरिक व मानसिक प्रताड़ना होती है। इनके स्वभाव, चाल- ढाल, मोटी-आवाज, वस्त्र, पसंद इत्यादि पर आपत्ति होती है, परिवार वालों के अनुसार जन्म के समय लिंग के अनुसार व्यवहार करने की शारीरिक और

मानसिक प्रताड़ना होती है। आज के बदलते दौर में तृतीय लिंग को आत्मीयता पूर्वक समझा जाए तो उनकी मानवीय विशेषताएं बुद्धिमता, कला कुशलता, नव मानवतावादी सोच सब कुछ हमारे और आपके जैसा ही है हमारे और आपके जैसा ही परिवार और समाज के लिए वह सब कुछ कर सकते हैं जो हम और आप करते हैं।[10]

परिवार में 02-04 वर्ष तक के बच्चों का पसंद, नापसंद, खेल इत्यादि उनके लिंग भावना से निश्चित नहीं होती। इस आयु सीमा में लड़का या लड़की को लेकर परिवार द्वारा पहचान या व्यवहार करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। जिस पहचान को झुठलाना बच्चों के लिए कठिन कार्य हो जाता है। जबकि लड़के या लड़की के अंदर की पहचान उसके अंदर 4 से 5 वर्ष की उम्र में लिंग भाव से आती है। जन्म के समय लिंग के विपरीत पसंद, व्यवहार, भाव इत्यादि देखकर वे दुविधा में हो जाते है।[11] आज अज्ञानतावश परिवार या समाज में ऐसी धारणा है कि बच्चे जन्म से ही तृतीयलिंग के होते हैं। ऐसे बहुत कम होते हैं जिनका जनेन्द्रिय के आधार पर लिंग अस्पष्ट होता है। जन्म से ही ऐसे जन्मजात ट्रांसजेंडर कम होते हैं जिनका जननांग स्पष्ट होता है अधिकांशतः बच्चे के जन्म के समय ज्ञानेंद्रिय के आधार पर शिशु का लिंग निर्धारण किया जाता है। अधिकांश ट्रांसजेंडर में लिंग के विपरीत मन का विकास हो जाता है जिसका मुख्य कारण स्त्री/पुरुष निर्धारण करने वाले क्रोमोजोम के असंतुलन प्रभाव को माना जाता है।[12]

रेडियो एंकर शालिनी सिंह "ट्रांसफॉरमेशन एक नई पहल" वर्षों से कार्यक्रम चलाती हैं। ये ट्रांसजेंडर द्वारा दिये गए साक्षात्कार के अनुभव के आधार पर बताती हैं कि आज चिकित्सा विज्ञान के समय में ट्रांसजेंडरों को शरीर व मन के अनुकूल लिंग प्रत्यारोपण से नई जिंदगी मिल रही है। यह सत्य है कि अधिक खर्चीला होने के कारण सभी ट्रांसजेंडर लाभ नहीं ले पा रहे हैं। शिक्षित व सुखी संपन्न परिवार में इनकी परिवारिक स्वीकार्यता हो रही है जबकि, मध्यम व निम्न परिवार में लोक-लाज व पुरुषवादी मानसिकता पारिवारिक स्वीकार्यता में बड़ा रोड़ा बन रही है।[13]

झारखंड के पड़ोसी राज्य उत्तर प्रदेश ने कानूनी रूप से ट्रांसजेंडर को परिवार के सदस्य के रूप में स्वीकार किया है जिससे इन्हें समान अधिकार, सामाजिक समानता के साथ-साथ मौलिक अधिकार और उत्तराधिकार प्राप्त हो सकेगा। सरकार ने राजस्व संहिता संशोधन विधेयक 2020 को स्वीकृति दी है। नए संशोधन में थर्ड जेंडर को मूल खाते धारक के सदस्य के रूप में सम्मिलित करने के लिए धारा- 4(10), 108(2), 109और धारा 110 में संशोधन किया गया है। धीरे-धीरे नये कानूनी परिवर्तन से परिवार और समाज में बदलाव देखने को मिलेगा। अब ऐसा प्रतीत होता है कि धीरे-धीरे अन्य राज्यों में भी इनके समान अधिकार के नए कानून बनाने के लिए मार्ग प्रशस्त होगा, जो ट्रांसजेंडरों के उज्ज्वल भविष्य की ओर संकेत है।[14]

परिवारिक में योगदान-

तृतीय लिंग के लोगों ने हमारे और आपके जैसे हर क्षेत्र में अपनी उपस्थिति अंकित कराई है। नर्स, डॉक्टर, वकील, नृत्य- संगीत, सरकारी नौकरी, सामाजिक कार्य, राजनीतिक इत्यादि क्षेत्रों में उपस्थिति अंकित कराई है। जैसे- शबनम मौसी, नर्तकी नटराज, लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, मानवी बंदोपाध्याय, किलिक सुब्रमण्यम, पद्मिनी प्रकाश, प्रीथिका याशिनी, रोज वेंकटेशन, अक्काई पदमशाली, मधुबाई किन्नर, सोनिया मौसी, मनकाका दास, सत्य श्री शर्मिला, ज्योता मंडल, शाबी, जिया दास, सिमरन, गजल, रिया दास, विद्या, धनंजय चौहान, डॉ. रेशमा प्रसाद, विद्या राजपूत, रवीना बरिहा, अमरजीत शेर गिल, रहीम मंसूरी, अमृता सोनी, गौरी सावंत, देविका देवेंद्र एस मंगलामुखी, पायल इत्यादि। इन्होंने प्रतिकूल परिस्थिति में यह सिद्ध किया है कि यदि स्त्री और पुरुष जैसा समान अवसर तथा समान सुविधा मिले तो ये भी किसी से कम नहीं हैं।[15]

परिवार/समाज में प्रासंगिकता कल थी, आज है और कल रहेगी भी। परिवार में आर्थिक सहयोग, परिवार का सेवक और वृद्ध मां पिताजी के लिए लाठी का सहारा बन सकते हैं। जहाँ वैवाहिक जीवन में बंधने के बाद लड़कियां ससुराल चली जाती हैं लड़के एकल परिवार में रहते हैं या अत्यधिक धन प्रतिष्ठा की इच्छा से विदेश चले जाते हैं ऐसी परिस्थिति में ट्रांसजेंडर माता-पिता को सहारा दे सकते हैं। जहाँ एक तरफ इन्हें परिवार का सुख व फिर स्वतः सामाजिक स्वीकार्यता मिलेगी वहीं दूसरी ओर सभ्य समाज के माथे से कलंकित वृद्ध आश्रम का टीका मिटेगा। बस! आवश्यकता है आज इनके विशेष गुण, कला व क्षमता को पहचान कर

प्रशिक्षित (इस्माइल कौशल विकास योजना) समान अवसर और सम्मान देने की जिससे गरिमामय जीवन का अवसर प्राप्त होगा।

तृतीय लिंग समुदाय की परिवारिक चुनौतियां -

संघर्ष ही जीवन है किंतु ट्रांस जेंडरों का जीवन महासंग्राम है। जन्म से लेकर मृत्यु तक कई समस्याओं एवं चुनौतियों से जूझते रहते हैं। यह संघर्ष और चुनौतियां उनके परिवार से ही प्रारंभ होती हैं। उनकी कुछ सामान्य चुनौतियां इस प्रकार है-

परिवारिक अधिकारिता- परिवार लोक लाज के भय से अपने ही जन्में जिगर के टुकड़े का परित्याग कर देता है। जबकि इसके स्वभाव से किसी को (परिवार/समाज) हानि नहीं होती। यह सहयोगी, सेवाभावी और राष्ट्र के विकास में अपना बहुमूल्य योगदान दे रहे हैं। जबकि परिवार कपटाचारी (चोर, बदमाश, बलात्कारी इत्यादि) को परिवारिक संरक्षण देता है।

शारीरिक बनावट- शरीर की गलत संरचना लिंग के विपरीत मन के कारण यह हमेशा दुविधा भरे जीवन जीते हैं। शरीर कुछ और आदेश देता है, किंतु मन उसके विपरीत कहता है। ये हमेशा (लिंग परिवर्तन से पूर्व) असमंजस में रहते हैं।

आर्थिक/रोजगार का संकट- अर्थोपार्जन का स्थान सभी मनुष्य को चाहिए, क्योंकि, आवश्यकताओं की पूर्ति इन्हीं से होनी है। ये समुदाय परिवारिक असहयोग, समान अवसर नही होने व लिंग भेद के कारण दक्षता और गुण संपन्न होने के बाद भी इन चुनौतियों का सामना करते रहते हैं। आर्थिक व रोजगार के बीच अशिक्षा कारण बनता था। किंतु, आज के बदलते दौर में हजार चुनौतियों के बाद भी शिक्षा व्यवसायिक शिक्षा और कौशल प्रशिक्षण ग्रहण कर रहे हैं।[16]

झारखंड प्रदेश के स्थापनाकाल के 22 वर्ष पूरे हुए, कितनी सरकार बदली लेकिन इन सुविधाविहीन समुदाय पर दृष्टि किसी सरकार की नहीं गयी। जबकि पड़ोसी राज्यों (बिहार, छत्तीसगढ़ और उत्तर प्रदेश) में सरकार ने अच्छी पहल का प्रारंभ किया है जो स्वागत योग्य है। बिहार सरकार ने बिहार पुलिस की नियुक्तियों में थर्ड जेंडर को 51पद आरक्षित कर उदाहरण स्थापित किया है जिससे समाज की मुख्यधारा में लाने तथा समाज के अंदर इनके प्रति नकारात्मक दृष्टि को सकारात्मक दृष्टि में बदलने में सहायता भी मिलेगी।[17]

झारखंड में तृतीय लिंग वोटर-

जहाँ सरकार पशु गणना करना आवश्यक समझती है वहाँ अभी तक तृतीय लिंग की निश्चित संख्या का पता नहीं। झारखंड प्रदेश के संदर्भ में बात करें तो पिछले कुछ सालों में इनकी मतदाताओं की संख्या में 34 प्रतिशत वृद्धि आयी है। झारखंड में सबसे अधिक 53 किन्नर वोटर पूर्वी सिंहभूम जिले में है जो कुल झारखंडी किन्नर मतदाताओं का 25 प्रतिशत हैं। 30 जनवरी 2019 तक कुल पंजीकृत मतदाताओं की संख्या 2.19 करोड़ है, जिसमें तृतीय लिंग मतदाताओं की संख्या 307 है, जबकि 2013 में इनकी कुल पंजीकृत संख्या 09 थी। 2014 ई में 16, 2015 में 30, 2016 में 29, 2017 में 123, 2018 में 290 तथा 2019 में 307 किन्नरों की पंजीकृत जनसंख्या थी। लेकिन मतदाता पुनरीक्षण में कई किन्नरों के नाम हटा दिए गए। अब इनकी पंजीकृत संख्या मात्र 212 रह गई है। जबकि 05 जनवरी 2023 को नई मतदाता सूची जारी करते हुए के रवि कुमार ने बताया कि थर्ड जेंडर की संख्या 368 है।[18]

टाटा स्टील कंपनी ने तृतीय लिंग को दी नौकरी-

जमशेदपुर (झारखंड) की टाटा स्टील कंपनी ने छः ट्रांसजेंडर को एमईएमएम ऑपरेटर की नौकरी देकर मार्ग प्रशस्त किया। किंतु आज 26जनवरी 2023 तक 102 ट्रांसजेंडरों को स्थायी नौकरी देकर प्रशंसनीय और अन्य कंपनियों के लिए अनुकरणीय कार्य किया है। वर्तमान में 70 ट्रांसजेंडर कार्यरत हैं, जिनमें जमशेदपुर शहर के 04 (03 ट्रांस वीमेन औए 01 ट्रांसमैन) हैं। ये जॉब मिलने से इस सुविधा वंचित समुदाय में खुशी है हिम्मत बढ़ी है साथ ही साथ स्वालंबन का सपना साकार होते दिख रहा है। आज टाटा स्टील कम्पनी का अनुकरण जिंदल स्टील कंपनी भी कर रही है कुछ निश्चित पद (क्रेन ऑपरेटर और लोको ऑपरेटर) थर्ड जेंडर के लिए आरक्षित किये हैं।

झारखंड में तृतीय लिंग के लिए आवश्यक कार्य-

झारखंड सरकार की एक बड़ी जिम्मेवारी है कि तृतीय लिंग के निश्चित संख्या का पता लगाना तथा इनकी समस्याओं से अवगत होकर संभावित समाधान हेतु अन्य राज्यों की तरह पहल करना, जिससे इस समुदाय की सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक एवं राजनीतिक उत्थान हो सके। अन्य पड़ोसी राज्यों के अनुरूप 'किन्नर कल्याण बोर्ड' का गठन कर इन्हें समाज के मुख्यधारा में जोड़ना,

स्पेशल आरक्षण, तृतीयलिंग के लिए आश्रय गृहध्गरिमा गृह (जहाँ शुल्करहित आवास, भोजन, कौशल प्रशिक्षण और आर्थिक स्वालंबन के लिए सहायता का केंद्र) झारखंड में लैंगिक अध्ययनों के अंतर्गत किन्नरों से जुड़े हुए वाद-विवाद तथा विमर्श का आलोचनात्मक अध्ययन को बढ़ावा देना तथा विश्वविद्यालयों में शोध संस्थान बनाना, साथ में उक्त समुदाय के लिए बनाई गई सरकारी नीतियों और योजनाओं तथा इनकी संवेदनशीलता के अध्ययन को न सिर्फ बढ़ावा देना चाहिए बल्कि शोधार्थियों को विशेष आर्थिक प्रोत्साहन भी देना चाहिए, ताकि इनकी समस्याएं एवं सामाजिक समाधान से समाज की मुख्यधारा में आकर सम्मानजनक जीवन यापन कर सकें। इनके संबंध में नई पीढ़ी को जानकारी देने की दृष्टि से झारखंड सरकार को नए पाठ्यक्रमों में तमिलनाडु, छत्तीसगढ़ एवं केरल (विजयराजा मल्लिका का जीवन, छत्तीसगढ़ में विद्या राजपूत जी) का संघर्ष राज्यों के अनुरूप किन्नरों से संबंधित पाठ सम्मिलित करना चाहिए।

14 अप्रैल 2014 में भारत के शीर्ष न्यायिक संस्था सुप्रीम कोर्ट ने किन्नरों को 'तीसरे लिंग' के रूप में पहचान दी है। नेशनल लीगल सर्विसेज अथॉरिटी (एन एलएसए) की प्रार्थना पर फैसला सुनाया था। इस फैसले के फलस्वरूप सभी को जन्म प्रमाण पत्र, राशन कार्ड, पासपोर्ट और ड्राइविंग लाइसेंस में तीसरे लिंग के रूप में पहचान प्राप्त करने का अधिकार मिला। उन्हें एक दूसरे से शादी करने तथा तलाक देने का अधिकार भी प्राप्त है। वह बच्चे को गोद ले सकते हैं और उन्हें उत्तराधिकार कानून के वारिस होने एवं अन्य अधिकार मिला है। इतना ही नहीं विधेयक में दंडात्मक प्रावधान के अनुसार किन्नरों के उत्पीड़न या प्रताड़ित करने पर किसी व्यक्ति को कुछ वर्षों तक जेल की सजा का प्रावधान है, किंतु प्रश्न है कि कानूनी अधिकार ही काफी नहीं है सामाजिक अधिकार मिले तब तो?

अध्ययन का उद्देश्य-

1) भूमंडलीकरण के दौर में तृतीय लिंग की वर्तमान परिवारिक स्थिति को ज्ञात करना।
2) भूमंडलीकरण के दौर में तृतीय लिंग की सामाजिक एवं परिवारिक उपयोगिता ज्ञात करना।
3) भूमंडलीकरण के दौर में तृतीय लिंग की परिवारिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव।

शोध पद्धति-

प्रस्तुत अध्ययन तृतीय लिंग (ट्रांसजेंडर) समुदाय की पारिवारिक स्थितिः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन झारखंड प्रदेश के जमशेदपुर नगर के ट्रांसजेंडर समुदाय पर आधारित है। अध्ययन की प्रकृति वर्णनात्मक है जिसमें वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार आंकड़ों का निरीक्षण, सत्यापन, वर्गीकरण तथा विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तुत आलेख को पूर्ण करने के लिए प्राथमिक और द्वितीयक दोनों ही प्रकार के आंकड़ों का संकलन किया गया है। प्राथमिक आंकड़ों के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची विधि का प्रयोग किया गया है, जबकि द्वितीय आंकड़ों का संकलन तृतीय लिंग संबंधित प्रकाशित पुस्तकें, प्रकाशित शोध आलेख, पत्र-पत्रिकाएं, समाचार पत्र, इंटरनेट इत्यादि से किया गया है।

इस आलेख को पूर्ण करने के लिए अध्ययन कर्ता ने स्नोबॉल सैंपलिंग तकनीक विधि का प्रयोग करते हुए उत्तरदाताओं तक पहुंच बनाई है। इस प्रकार उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि का प्रयोग करते हुए 88 तृतीयलिंग (ट्रांसमैन, ट्रांसवीमेन और कोथी) उत्तरदाताओं के साक्षत्कार के आधार पर प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण के आधार पर अध्ययन पूर्ण हुआ है।

आंकड़ों का विश्लेषण

तालिका नम्बर -01

उत्तरदाताओं का लिंग

लिंग	संख्या	प्रतिशत
ट्रांस वीमेन	48	54
ट्रांस मैन	04	05
कोथी	36	41
कुल	88	100

सरणी संख्या- 01 में 88 तृतीय लिंगी उत्तर दाताओं से प्राथमिक आंकड़ों का संग्रह किया गया, जिसमें 54 प्रतिशत ट्रांस वीमेन, 05 प्रतिशत ट्रांस मैन, 41 प्रतिशत कोथी थे। औद्योगिक शहर जमशेदपुर में ट्रांस वीमेन सबसे अधिक स्वतन्त्र रूप से स्त्रियोचित श्रृंगार के साथ जीवन बिता रही हैं। जबकि दूसरी ओर 41 प्रतिशत जन्म के समय लैंगिक पहचान के साथ जी रही हैं।

तालिका संख्या -02

उत्तरदाताओं के शैक्षणिक स्थिति :-

शैक्षणिक योग्यता	संख्या	प्रतिशत
10वीं पास से कम	12	13-63
10वीं पास	16	18-18

12वीं पास	16	18-18
स्नातक	32	36-36
स्नातकोत्तर	12	13-63
कुल	88	100-00

तालिका संख्या-02 में दिए गये आंकड़ों से स्पष्ट है कि- कुल 88 उत्तरदाताओं में 13.63 प्रतिशत 10वीं पास से भी कम शिक्षा प्राप्त की हैं, जबकि क्रमशः 18.18 प्रतिशत 10 वीं पास, 18.18 प्रतिशत 12 वीं पास, 36. 36 प्रतिशत स्नातक और 13.63 प्रतिशत स्नातकोत्तर पास हैं। स्पष्ट है कि आज भी परिवार में रहकर स्नातक और स्नातकोत्तर करने वालों की संख्या कम ही हैं। सारणी से एक उल्लेखनीय तथ्य यह उजागर होता है कि कोई भी सूचनादाता अशिक्षित वर्ग से नहीं है।

तालिका संख्या -03

उत्तरदाताओं के अर्थोपार्जन के साधन

आय के साधन	संख्या	प्रतिशत
सरकारी नौकरी	12	13.63
गैर सरकारी नौकरी	36	40.90
स्वरोजगार	20	22.72
बधाई मांगना	12	13.63
भीख/देह व्यापार	00	00
परिवार पर आश्रित	08	09.09
कुल	88	100

तालिका संख्या-03 में प्रस्तुत आंकड़ों में तृतीय लिंग समुदाय के पास अर्थ उपार्जन के साधनों में सरकारी नौकरी 13.63 प्रतिशत, गैर सरकारी 40.90 प्रतिशत, स्वरोजगार 27.72 प्रतिशत, बधाई मांगने का कार्य 13. 63 प्रतिशत जबकि परिवार पर आश्रित 09.09 प्रतिशत थे। अतः स्पष्ट है कि समय के बदलते दौर में यह समूह भी स्त्री-पुरूष की तरह आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए सरकारी, गैर सरकारी और स्वरोजगार के क्षेत्र में आगे बढ़ रहा है।

तालिका संख्या-04

उत्तरदाताओं के साथ परिवार में हुई हिंसा

हिंसा से सहमत	संख्या	प्रतिशत
पूर्ण सहमत	44	50
थोड़ा सहमत	16	18
असहमत	04	05
थोड़ा असहमत	00	00
पूर्ण असहमत	24	27
कुल	88	100

उपर्युक्त तालिका संख्या-04 के विश्लेषण से स्पष्ट है कि परिवारिक हिंसा से 50 प्रतिशत उत्तरदाता पूर्ण सहमत हैं, 18 प्रतिशत थोड़ा सहमत हैं, 05 प्रतिशत असहमत, 27 प्रतिशत परिवारिक हिंसा से पूर्ण असहमत हैं। स्पष्ट है की आज भी परिवार में ऐसे समूह के साथ परिवारिक हिंसा हो रही है, जबकि एक चौथाई से अधिक परिवारों में इनके साथ सामान्य व्यवहार हो रहा है।

तालिका संख्या -05

उत्तरदाताओं के परिवार त्यागने का कारण :-

परिवार में स्वीकार्यता व परिवार त्यागने के कारण	संख्या	प्रतिशत
परिवार में स्वीकार्यता	34	38.63
स्वेच्छा से परिवार त्याग	10	11.36
परिवार के प्रताड़ना से	04	4.54
लैंगिक भेद-भाव से	24	27.27
परिवार के लोक-लाज के कारण	12	13.63
अन्य कारण	04	04.54
कुल	88	100

तालिका संख्या -05 के अनुसार ट्रांस व्यक्ति को परिवार में 38.64 प्रतिशत परिवारिक स्वीकार्यता है, 11.36 प्रतिशत तृतीय लिंग ने अपनी इच्छा से परिवार का त्याग किया, परिवार के प्रताड़ना से 04.54 तथा 27.27 प्रतिशत किन्नर लैंगिक भेद-भाव के कारण, 13.63 प्रतिशत लोग परिवार के लोक -लाज के कारण परिवार त्याग किया है, जबकि 04.54 प्रतिशत तृतीय लिंग यानी कारणों से परिवार छोड़े हैं। स्पष्ट है कि परिवार में इनकी उपयोगिता या स्वीकार्यता बढ़ी है।

तालिका संख्या -06

उतरदाताओं के मासिक आय

मासिक आय हजार रु. में	संख्या	प्रतिशत
परिवार पर आश्रित	36	41
10000 से कम	16	18
10000 से 20000	16	18
20000 से 30000	12	14
30000 से 40000	6	7
40000 से अधिक	2	2
कुल	88	100

तालिका संख्या-06 में तृतीय लिंगी 41 प्रतिशत परिवार पर आर्थिक रूप से निर्भर हैं जिनकी अपनी मासिक आय कुछ भी नहीं है, 18 प्रतिशत ट्रांस व्यक्ति का मासिक आय 10,000 रूपये से भी कम है। 18 प्रतिशत ट्रान्स व्यक्ति का प्रतिमाह 10,000-20,000 रूपये कमाते

हैं, 14 प्रतिशत ट्रांस व्यक्ति 20,000-30,000 रूपये तक कमाते हैं जबकि 07 प्रतिशत ही मात्र तृतीय लिंगी 30,000-40,000 रूपये प्रतिमाह का आय है। 02 प्रतिशत तृतीय लिंग 40,000 रूपये से अधिक रुपये कमाते हैं। स्पष्ट है कि आर्थिक रूप से न सिर्फ आत्मनिर्भर हो रहें हैं बल्कि परिवार को भी अधिक सहयोग करते हैं।

सुझाव : आज आवश्यकता है तृतीयलिंग परिवार की परिवारिक स्वीकार्यता, परिवारिक सम्पति में और अधिकार, उत्तराधिकार, समान शिक्षा और समान अवसर देने की। यह समुदाय अपनी पहचान के अभाव में सरकार एवं गैर सरकारी लाभों से वंचित है। इसलिए अबिलंब इन्हें पहचान पत्र निर्गत करने चाहिए। इस तरह के आपदा या संपूर्ण बंदी में भोजन के लिए लाले ना पड़ें भीख व नेग मांगने को छोड़ इन्हें शिक्षा और रोजगार से जोड़कर बिना भेदभाव के रोजगार उपलब्ध कराना चाहिए। इनके अंदर छुपे विशेष गुणों के आधार पर रोजगारोन्मुखी शिक्षा को न सिर्फ बढ़ावा देना चाहिए बल्कि योग्यता और कुशलता के आधार पर शत प्रतिशत रोजगार की गारंटी भी देनी चाहिए। परिवार और समाज के स्वीकारता पर बने कानून को कठोरता से लागू करना चाहिए ताकि किसी भी तृतीयलिंग को परिवार को ना छोड़ना पड़े। समाज की मुख्यधारा में सम्मिलित करने के अभियान को और तेज करना चाहिए।

निष्कर्ष : प्रस्तुत विश्लेषणात्मक शोध परक आलेख के आधार पर यह कहा जा सकता है, कि - भूमंडलीकरण के दौर में तृतीय लिंग समुदाय की पारिवारिक स्थिति भारतीय परिपेक्ष्य में 14 अप्रैल 2014 के बाद संवैधानिक विशिष्ट पहचान एवं मौलिक अधिकार प्राप्ति के बाद बदलाव धीरे-धीरे दिखाई दे रहे हैं। इस समूह के संवेदनशील मुद्दों पर सरकार गंभीर नहीं है सत्य तो यह है कि संवैधानिक अधिकार लाख प्राप्त होने के बाद भी सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं हुए हैं परिवार में इनकी लाख प्रासंगिकता के बाद भी बहिष्कृत किया जा रहा है यह समुदाय सकारात्मक ऊर्जा के साथ बहिष्कृत अपना भविष्य तलाश रहे हैं। तृतीय लिंग समुदाय परिवारिक विस्थापन और आर्थिक विपन्नता में अपनी अस्तित्व की रक्षा कर रही है। आर्थिक विपन्नता ने भोजन, दवा और अन्य बुनियादी सुविधाओं के अभाव में बड़ी लाचारी पूर्वक कष्ट में जीवन यापन कर रहे हैं।

हमारा सभ्य समाज जो इस समुदाय (तृतीय लिंग) से अछूतों जैसा व्यवहार करता है, राह चलते इन पर हंसता है, मजाक उड़ाता है तथा अश्लीलता के चश्मे से हर वक्त घूरता रहता है। आज यही वर्ग परिवारिक त्रासदी की घड़ी में हर संभव सहायता के लिए सामने आती है। इसलिए इन्हें समझने की आवश्यकता है साथ साथ इनके प्रति सकारात्मक मानसिकता रखने की आवश्यकता है ताकि यह वर्ग भी हमारे और आपके जैसा आनंदमय जीवन यापन कर सके।

सन्दर्भ

1. पंत, पुष्पेश, 'भूमंडलीकरण की अवधारणा', एक्सेस पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 03
2. दैनिक हिंदुस्तान, नई दिल्ली, 07 दिसंबर 2022, पृ. 1
3. लक्ष्मी, त्रिपाठी 'मैं हिजड़ा .....मैं लक्ष्मी', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 169-170
04. सरकार, प्रभात, 'रहस्यमय अणुजीवत्', आनंदमार्ग प्रकाशन, पश्चिम बंगाल, 2018, पृ. 120-21
05. सर्राफ राम गोपाल 'मनमीत' (मासिक पत्रिका) : किन्नर विशेषांक, आजमगढ़ एवं दिल्ली, मई 2014, पृ. 37
06. शर्मा, तेजेन्द्र, 'अभी बहुत कुछ समझना बाकी है'....(किन्नर सेक्स और सामाजिक स्वीकार्यता-नारायण, प्रियंका) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृ. 14
07. वही, पृ. 15
08. बरिहा रवीना 'तृतीय प्रकृति', समाज कल्याण विभाग, छत्तीसगढ़ शासन, 2019, पृ. 6
9. भारद्वाज, भूषण 'किन्नर समुदाय की प्रगति', भार्गव भूषण प्रकाशन, वाराणसी, 2002, पृ. 02-03
10. वही, पृ. 19-108
11. त्रिपाठी, लक्ष्मीनारायण, पूर्वोक्त, पृ. 19
12. वही, पृ. 165-166
13. अमर उजाला, लखनऊ (मेरा शहर लखनऊ) 05 सितंबर 2022, पृ. 01
14. अमर उजाला लखनऊ (प्राची प्रीतम), 19 अगस्त 2022
15. नारायण, प्रियंका, 'किन्नर सेक्स और सामाजिक स्वीकार्यता', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृ. 141-152
16. प्रताप, रजनी 'किन्नर समुदाय की चुनौतियाँ' (थर्डजेंडर विमर्श-सं. शरद सिंह), 2020, पृ. 84-86
17. हिंदी दैनिक प्रभात खबर, रांची, 15 मार्च 2019,
18. नई दुनिया, पटना, 30 मार्च 2016, (naidunia.com)
19. हिन्दी दैनिक जागरण, राँची, 05 जनवरी 2023, रांची, पृ. 03

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

ग्रामीण विकास में कृषि आधारित उद्यमिता की भूमिका : संभावनाएं, चुनौतियां एवं समाधान

❑ डॉ. राम रतन

सूचक शब्द : कृषि उद्यमिता, कृषि अर्थव्यवस्था, ग्रामीण बेरोजगारी, ग्रामीण विकास।

भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है तथा देश के कुल निर्यात का 13 प्रतिशत हिस्सा कृषि आधारित उद्योगों से प्राप्त होता है। कृषि एवं खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को बढ़ावा देने से रोजगार सृजन की संभावना बढ़ सकती है क्योंकि यह एक श्रम गहनता वाला उद्योग है। यह उद्योग ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सामाजिक एवं आर्थिक उन्नयन में यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कृषि, अर्थव्यवस्था का आधारभूत स्तम्भ है। आर्थिक समीक्षा[1] 2023-24 के अनुसार यह क्षेत्र देश की जीडीपी में लगभग 18.20 प्रतिशत का योगदान करता है और साथ ही साथ देश की कुल जनसंख्या के 42.30 प्रतिशत भाग को रोजगार उपलब्ध कराता है। कृषि उद्यमिता का विकास करके कृषकों को ''उत्पादक'' से ''उद्यमी'' बनाया जा सकता हैं।[2] कृषि आधारित उद्योग ग्रामीण युवाओं, महिलाओं और सभी किसानों के आर्थिक सशक्तिकरण को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। इस लिए यह आवश्यक है कि इन उद्यमों को स्थापित करने संबंधी नीतियों में उपयुक्त परिवर्तन करके कृषकों के अनुकूल बनाया जाए जिससे कृषि आधारित उद्योग, ग्रामीण विकास के प्रमुख उत्प्रेरक एवं संवाहक के रूप में कार्य कर सकें।

कृषि आधारित उद्योगों से अभिप्राय ऐसे उद्योगों होता है जो अपनी उत्पादन प्रक्रिया में कृषि उत्पादों को कच्चे माल के रूप में उपयोग करते हैं। भारत में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के संचालन में कृषि आधारित उद्योगों की महत्वपूर्ण भूमिका है। भारत सरकार के वित्त मंत्रालय ने केन्द्रीय बजट[3] 2024-25 में कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय हेतु 151851 करोड़ रुपए का प्रावधान किया है जो कृषि की उत्पादकता को बढ़ाने तथा ग्रामीण जनजीवन को रूपांतरित करने में सहायता करेगा। कृषि विभाग की वार्षिक रिपोर्ट कृषि सांख्यिकी एक झलक[4] 2023 के अनुसार देश में लगभग 330 मिलियन टन खाद्यान्न का उत्पादन हो रहा है। भारत का कृषि और उससे संबंधित वस्तुओं का निर्यात वर्ष 2021-22 के 375662 करोड़ रुपए से बढ़कर वर्ष 2022-23 में 427667 करोड़ रुपए हो गया। भारत प्रतिवर्ष लगभग 5638 करोड़ रुपए के 8.23 लाख टन फलों और 5679 करोड़ रुपए की 31.92 लाख टन सब्जियों का निर्यात करता है। कृषि क्षेत्र में स्वरोजगार के अवसरों में वृद्धि से ग्रामीण क्षेत्र के लोगों के जीवन स्तर में सुधार होगा। पिछले कुछ वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था के कृषि क्षेत्र में प्रभावी एवं क्रांतिकारी बदलाव देखने को मिलता है। कृषि क्षेत्र 'खेत-खलिहान' से आगे बढ़कर कृषि उद्यमिता के क्षेत्र में प्रवेश कर गया है। कृषि से संबंधित अनेक कार्य जैसे मधुमक्खी पालन, पशुपालन, डेयरी, पोल्ट्री, मत्स्य पालन इत्यादि में भी उद्यमिता को बढ़ावा मिला है जिससे कृषि एवं कृषि आधारित उद्योगों की आय में वृद्धि और ग्रामीण जीवन की गुणवत्ता में सकारात्मक सुधार देखने को मिलता है।

कृषि उद्यम को दृढ़ता प्रदान करने के लिए आर्थिक सहायता, प्रोत्साहन, तकनीकी मार्गदर्शन, बाजार से संपर्क जैसे अनेक प्रभावी कदम उठाने की आवश्यकता है। नवाचार के माध्यम से कृषि उद्यम और आजीविका में सुधार तथा कृषि क्षेत्र की अनेक समस्याओं का समाधान होता है। इस संदर्भ में कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा सन् 2017 में ''एग्रीकल्चर ग्रैंड चैलेंज अभियान'' चलाया गया था जिसमें 12 समस्याओं के लिए नवाचारी समाधान आमंत्रित किए गए थे। इनमें मृदा की जांच से लेकर, बाजार संपर्क, उपज अनुमान आदि बढ़ाने के उपाय भी सम्मिलित थे। ग्रामीण क्षेत्र में इन सभी प्रयासों एवं उपायों के एकीकरण से कृषि उद्यमिता की लहर दिखाई पड़ती है किंतु अभी भी इस क्षेत्र में अनेक चुनौतियां विद्यमान हैं। सरकार के प्रयास के बावजूद अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में परिवहन, संचार, सड़क, बिजली, पानी, मार्केटिंग नेटवर्क आदि जैसी अनेक

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली (उ.प्र.)

आधारभूत सुविधाएं अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुंच पायी हैं। कृषकों में शिक्षा एवं जागरूकता की कमी के कारण कृषक, कृषि उद्यमिता पर आधारित योजनाओं का लाभ प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

साहित्य समीक्षा

सम्बन्धित साहित्य से अभिप्राय अनुसंधान की समस्या से सम्बन्धित उन सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञानकोष पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशित एवं अप्रकाशित शोध प्रबंधों, लघु शोध प्रबंधों और अभिलेखों आदि से हैं जिनके अध्ययन से अनुसंधानकर्ता को अपनी समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण एवं अध्ययन की रूपरेखा तैयार करने और कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है।

अग्रवाल अमित कुमार[5] ने 2022 छत्तीसगढ़ के रायपुर जिले में सामाजिक आर्थिक विकास पर कृषि आधारित उद्योगों का प्रभाव विषय पर अपने शोध में यह निष्कर्ष निकाला कि कृषि आधारित उद्योग ग्रामीण क्षेत्र के सामाजिक एवं आर्थिक विकास को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं। पिछले 10 वर्षों में कृषि आधारित उद्योगों का तीव्र गति से विकास हुआ है जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में तीव्र सुधार परिलक्षित हो रहा है। इन्होंने बताया कि कृषि आधारित उद्योगों की कुछ प्रमुख समस्याएं हैं जैसे पूंजी की कमी, उन्नत तकनीकी का अभाव, अल्प संचालन अवधि आदि, उन्हें सरकार के द्वारा पूंजी एवं तकनीकी कौशल उपलब्ध कराकर अधिक लाभकारी बनाया जा सकता है।

रईस, एम., एस. आचार्य, और एन. शर्मा[6] ने उत्तर प्रदेश की कृषि व्यवसाय और कृषि प्रसंस्करण की पद्धति और प्रणाली विषय एक अध्ययन किया, जिसका उद्देश्य कृषि आधारित उद्योगों में अप्रयुक्त क्षमता पर प्रकाश डालना था। भूमि, पूंजी और मानव, पशुधन, अनाज और कृषि प्रसंस्करण संचालन जैसे महत्वपूर्ण घटकों की क्षमताओं, सीमाओं, संभावनाओं और चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए, अनुकूल नीतिगत सहायता से उत्तर प्रदेश में इन उद्योगों को विकसित किया जा सकता है। कृषि आधारित उद्योगों में वस्तुओं का विविध मिश्रण, पशुधन की संरचना, मिट्टी की विविधता, विशाल भौगोलिक कवरेज, कृषि-जलवायु स्थितियों की विविधता, श्रम की प्रचुरता, राज्य में कृषि कच्चे माल की विविध आपूर्ति उच्च मूल्य वाले कृषि आधारित उद्योगों के विकास और कृषि-व्यवसाय को बढ़ावा देने के लिए उत्कृष्ट संभावनाएं प्रदान करती हैं। यूपी के बाजार नीतियों को बेहतर ढंग से क्रियान्वित करके, कृषि आधारित उद्योगों के लिए संरचनागत सुधार एवं कृषि व्यवसाय के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उपलब्ध कराकर इस क्षेत्र की समस्या को हल किया जा सकता है।

कुमार, आर., ए.के. दीक्षित, ए. कुमार, और एस. सिंह[7] ने हरियाणा राज्य में, गाँव-स्तरीय कृषि उद्योगों के विकास का अध्ययन किया है और कृषि-औद्योगीकरण में बाधा डालने वाले मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। गाँव के गुड़, तेल, घानी और खांडसारी के पारंपरिक प्रसंस्करण के परिणाम समय के साथ तालमेल स्थापित नहीं कर पा रहे हैं लेकिन फिर भी अनाज और दाल प्रसंस्करण उद्योग और फल संरक्षण और प्रसंस्करण हाल के दिनों में गति पकड़ रहे हैं। यह स्थिति विशेष रूप से दाल मिलिंग, तेल निष्कर्षण और गुड़ की वसूली के लिए उपयुक्त कटाई के बाद की मशीनरी के निर्माण और अपनाने के कारण है। भूमि अधिग्रहण में प्रक्रियागत कठिनाई और उच्च दरें, छोटे व्यवसायों के लिए अपर्याप्त वित्तपोषण, विशेषज्ञता और ज्ञान की कमी, उच्च उपकरण लागत और कम विपणन और नीति समर्थन जैसे कारक ग्राम-स्तरीय प्रसंस्करण के विकास में बाधा डालते हैं। इसलिए, एक समग्र नीति स्थापित करना महत्वपूर्ण है जिसमें राज्य में कृषि प्रसंस्करण में सुधार के लिए भौतिक, कार्यात्मक और बाजार आधारभूत ढांचे का निर्माण, एकल खिड़की ढांचे का प्रावधान, कर छूट और निर्यात सब्सिडी सम्मिलित हो।

अध्ययन का उद्देश्य

1. ग्रामीण विकास में कृषि उद्यमिता की संभावनाओं का पता लगाना।
2. कृषि आधारित उद्योग एवं उद्यमिता में आने वाली चुनौतियों का अध्ययन करना।

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध पत्र में विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग किया गया है। यह शोध पत्र द्वितीयक स्त्रोतों से प्राप्त आंकड़ों पर आधारित है। आंकड़ों का संग्रहण भारत सरकार के केंद्रीय बजट, आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार के विभिन्न मन्त्रालयों की रिपोर्टो, सरकारी एवं अर्द्ध सरकारी संस्थाओं की रिपोर्टो, विभिन्न जर्नलों, पत्र-पत्रिकाओं, समाचार पत्रों एवं विभिन्न प्रकार की पुस्तकों की सहायता से किया गया है।

ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में कृषि उद्यमिता की संभावनाएं : भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि उद्यमिता का विकास हुआ है, कृषि से

जुड़ी विभिन्न क्रियाओं में नवीन विधियों एवं प्रविधियों के उपयोग से अनेक अवसर उत्पन्न हुए हैं। प्राथमिक कृषि कार्य ने विभिन्न उद्यमों को प्रेरित किया है। कृषि पर आधारित उद्योगों में डेयरी उद्योग, मुर्गी पालन, मधुमक्खी पालन, मशरूम की खेती, चीनी उद्योग आदि सम्मिलित हैं जो कृषि की उत्पादकता को बढ़ाने एवं ग्रामीण बेरोजगारी तथा शहरी पलायन को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में कौशल विकास, उद्यमिता संवर्धन और रोजगार को बढ़ाने के लिए भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालय एवं विभाग, नीतियों, कार्यक्रमों और योजनाओं को समय-समय पर लागू करते हैं जिसका उद्देश्य कृषि को लाभकारी बनाना है। इसके अंतर्गत वित्तीय सहायता, अवसंरचना का निर्माण, कृषि उद्यमिता और नवोन्मेषों को बढ़ावा देना, किसानों को आर्थिक दृढ़ता प्रदान करना तथा जोखिम को कम करना सम्मिलित है।

भारत के सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय के उद्यम पंजीकरण बुलेटिन[8] के अनुसार पंजीकृत इकाइयों की संख्या निम्न प्रकार है-

तालिका-1

वर्ष 2023 में उद्यम पंजीकरण पोर्टल पर पंजीकृत कृषि उद्यम

कृषि उद्यमिता का प्रकार	उपक्रमों की संख्या	प्रतिशत
कृषि सिंचाई उपकरण का संचालन	31594	3.2
कृषि के लिए बीज प्रसंस्करण	16137	1.6
डेयरी उत्पादों का निर्माण	137224	14.0
अनाज मिल उत्पादों का निर्माण	163063	16.6
बेकरी उत्पादों का निर्माण	86104	8.8
चीनी निर्माण	13191	1.3
खाद्य उत्पादों का निर्माण	245510	26.0
अन्य उद्यम	288488	28.5
कुल योग	981311	100

स्रोत- उद्यम पंजीकरण बुलेटिन, 2023, भारत सरकार।

सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग मंत्रालय ने कृषि उद्यम को बढ़ाने के लिए ग्रामोद्योग विकास योजना को प्रारम्भ किया है। इसका उद्देश्य गावों में उद्योग स्थापित कर कलाकारों के पारंपरिक कौशलों को पुनर्जीवित करना है। इसमें डेयरी उद्योग, मुर्गी पालन, शहद और मधुमक्खी पालन, मशरूम की खेती, चीनी उद्योग, गुण और खांडसारी, फल और सब्जी प्रसंस्करण, दाल और अनाज प्रसंस्करण, मसाला प्रसंस्करण, लघु वन उत्पाद संग्रह, बांस, बेंत आदि से सम्बन्धित कृषि उद्योगों को प्राथमिकता प्रदान की गयी है। इनमें से कुछ प्रमुख उद्योगों का विश्लेषण निम्न प्रकार है।

डेयरी उद्योग : भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पशुपालन एवं डेयरी उद्योग का महत्वपूर्ण स्थान है। कृषकों के लिए डेयरी उद्योग एक अच्छा व्यवसाय है, जो ग्रामीण क्षेत्र की आर्थिक रूप रेखा को परिवर्तित करने में सहयोग प्रदान करेगा। भारत सरकार के एमओएसपीआई के द्वारा मई 2024 में जारी सकल मूल्य संवर्धन (जीवीए)[9] के अंतिम अनुमानों के अनुसार वित्तीय वर्ष 2022-23 के दौरान पशुधन क्षेत्र का सकल मूल्य वर्धन में कुल योगदान चालू कीमतों पर लगभग 1355460 करोड़ रुपए है। जोकि कृषि और सहायक क्षेत्र के जीवीए का लगभग 30.23 प्रतिशत है। भारत में वर्ष 2023-24 में 239.30 मिलियन टन दूध का उत्पादन किया गया। वर्ष 2014-15 से 2023-24 तक डेयरी उद्योग के विकास (दुग्ध उत्पादन) एवं प्रति व्यक्ति दूध उपलब्धता को निम्न तालिका के द्वारा प्रदर्शित किया गया है-

तालिका-2

भारत में दूध उत्पादन एवं प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता[10]

वर्ष	दूध उत्पादन (मिलियन टन में)	प्रति व्यक्ति प्रतिदिन दूध उपलब्धता (ग्राम में)
2014-15	146.3	322
2015-16	155.5	337
2016-17	165.4	355
2017-18	176.3	375
2018-19	187.7	394
2019-20	198.4	406
2020-21	210.9	427
2021-22	221.1	444
2022-23	230.6	459
2023-24	239.3	471

स्रोत- बुनियादी पशुपालन सांख्यिकी, 2024, भारत सरकार।

चित्र-1. भारत में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन दूध उपलब्धता (ग्राम में)

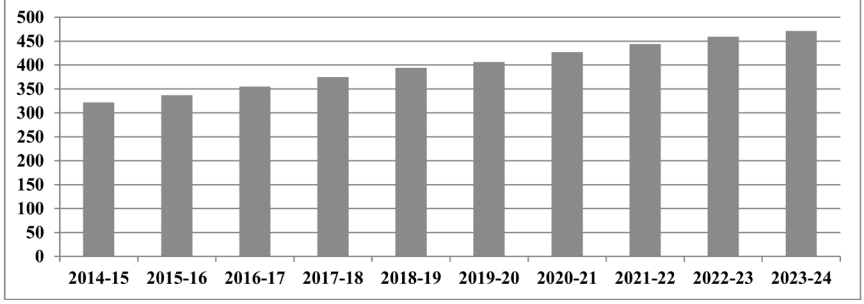

स्रोत- बुनियादी पशुपालन सांख्यिकी, 2024, भारत सरकार।

भारत में दिन प्रतिदिन दूध का उत्पादन बढ़ता जा रहा है जिसके कारण भारत में प्रति व्यक्ति प्रति दिन दूध उपलब्धता 2014-15 के 322 ग्राम के स्तर से बढ कर 2023-24 में 471 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रति दिन के स्तर पर पहुच गयी। डेयरी उद्योग कृषकों के आजीविका के एक प्रमुख विकल्प के रूप में विकसित हो रहा है। दूध तथा दूध से बने उत्पादों को बाजार में बेचकर दुग्ध उत्पादक लाभ प्राप्त कर रहे हैं, जिससे उनके आय वृद्धि हो रही है तथा जीवन स्तर में सुधार परिलक्षित हो रहा है। परिणाम स्वरुप ग्रामीण क्षेत्र की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो रही है।

मुर्गी पालन : ग्रामीण क्षेत्र में मुर्गी पालन एक अच्छा व्यवसाय है, जो रोजगार की संभावनाओं को बढ़ाता है। भारत में वर्ष 2019 में मुर्गी पालनों में कुक्कुटों की संख्या लगभग 851 मिलियन थी जोकि वर्ष 2023 में बढ कर 986 मिलियन के स्तर तक पहुच गयी।[11] विश्व में भारत का अंडा उत्पादन में अमेरिका और चीन के बाद तीसरा स्थान है। ग्रामीण क्षेत्र में मुर्गी पालन रोजगार उपलब्ध कराने महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस उद्योग में कम पूंजी के साथ बेहतर लाभ प्राप्त किया जा सकता है। वर्तमान समय में अंडे और मांस की मॉंग बढ़ती जा रही है, जिससे ग्रामीण रोजगार में सकारात्मक परिवर्तन हो सकता है।

मधुमक्खी पालन : मधुमक्खी पालन ग्रामीण क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्टार्टअप है। मधुमक्खी पालन एवं शहद उत्पादन के द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के नए अवसर उपलब्ध हो रहे हैं जिससे लोगों की आय में वृद्धि हो रही है। मधुमक्खी पालन को बढ़ावा देने के लिए सरकार भी प्रयत्नशील है तथा इस क्षेत्र के विकास के लिए सब्सिडी आधारित पूंजी उपलब्ध करा रही है। भारत में शहद का उत्पादन 2012 में 14350 मिलियन टन था[12], जोकि 2012 से 2024 के दौरान 10.5 प्रतिशत चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर से 28057 मिलियन टन तक पहुंचने का अनुमान है। भारत में पांच प्रकार की मधुमक्खियां पाई जाती हैं।

तालिका-3

प्रति छत्ता प्रतिवर्ष औसत शहद उपज

मधुमक्खी	औसत शहद उपज
एपिस डोरसटा	36 किलोग्राम (1300 औंस)
एपिस मेलीफेरा	25 किलोग्राम (880 औंस)
एपिस सेराना इंडिका	6 किलोग्राम (210 औंस) से 8 किलोग्राम (280 औंस)
एपिस फ्लोरिया	500 ग्राम (18 औंस)
ट्रेटागोनुला इरिडीपेनिस	100 ग्राम(3.5 औंस)

स्रोत- वार्षिक प्रगति रिपोर्ट 2021, खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग, भारत सरकार।

भारतीय शहद उद्योग में बड़ी कंपनियां डाबर, पतंजलि, बैद्यनाथ आदि सक्रिय रूप से कार्यरत हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी को दूर करने के लिए मधुमक्खी पालन सुनहरा स्वरोजगार है।

मशरूम की खेती : ग्रामीण क्षेत्र में मशरूम की खेती कृषकों की आय बढाने में सहयोग कर रही है। भारतीय बाजार में मशरूम की मांग में तेजी से वृद्धि हुई है। ऐसी स्थिति में किसान मशरूम की खेती करके अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। मशरूम का उत्पादन करनें में अधिक पूंजी आवश्यक नहीं होती, बल्कि कम पूंजी में ही मशरूम की खेती करके अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं इसके उत्पादन के लिए तकनीकी ज्ञान का होना आवश्यक है। मशरूम के उत्पादन को बढाकर किसान अपनी आय में वृद्धि कर सकता है। दिल्ली, कोलकाता, मुंबई जैसे बड़े महानगरों में इसकी मांग बढ़ रही है। इसलिए पिछले 3 वर्षों में इसके उत्पादन में लगभग 10 गुना वृद्धि हुई है। वर्ष 2020 में भारत में मशरूम का उत्पादन 48700 टन था जो वर्ष 2023 में बढ़कर लगभग 496500 टन हो गया।[13]

चीनी उद्योग : भारत में चीनी उत्पादन का शुभारम्भ बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में हुआ है। भारत में चीनी का उत्पादन करने वाले प्रमुख राज्य उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात आदि हैं। चीनी उद्योग के लिए कच्चा माल (गन्ना) कृषि से प्राप्त होता है। चीनी उद्योग उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों बस्ती, गोंडा, गोरखपुर, देवरिया, सीतापुर, लखीमपुर, शाहजहॉपुर, मेरठ, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, बिजनौर आदि में स्थित है। चीनी उद्योग ग्रामीण रोजगार में वृद्धि करने तथा कृषकों के जीवन स्तर को उच्च करने में सहायक होता है।

तालिका- 4

बड़े चीनी उत्पादक राज्यों में उत्पादन की स्थिति (लाख टन में)

वर्ष	महाराष्ट्र	उत्तर प्रदेश	कर्नाटक	गुजरात	कुल उत्पादन
2015-16	84.24	68.55	40.49	11.68	251.25
2016-17	92.38	87.73	21.44	8.85	202.62
2017-18	107.05	120.50	36.58	10.67	323.28
2018-19	107.21	118.22	44.29	11.23	331.62
2019-20	91.70	126.37	33.00	9.30	237.85
2020-21	106.30	110.59	44.65	10.50	311.20
2021-22	138.30	125.70	60.40	12.60	355.50
2022-23	105.40	157.30	62.60	10.20	385.52
2023-24	113.37	177.43	56.40	17.45	396.70

स्रोतः वार्षिक रिपोर्ट, (2023-24) राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम, भारत सरकार।

चीनी उद्योग में व्याप्त समस्याएं जैसे अच्छी किस्म के गन्ने का अभाव, अल्प पेराई सत्र, गन्ने की कीमत के भुगतान में देरी, उत्पादन की गैर आर्थिक प्रगति आदि को दूर करके देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ कर सकते हैं।

धान की भूसी की कलाकृतियां : भारतीय कृषि में धान एक मुख्य फसल है। धान की भूसी एक 'वेस्ट' है। किंतु पिछले कुछ वर्षों में धान की भूसी से कलाकृतियां बनाने की कला तेजी से उभरी है। बिहार के कुछ किसान धान की भूसी से सुंदर दृश्यावाली, वाल हैंगिंग, सजावट के सामान आदि बनाकर सफलतापूर्वक अपनी आजीविका अर्जित कर रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्र में धान की भूसी की उपलब्धता अधिक होने से ग्रामीण युवा इस कला को आसानी से सीख सकते हैं। जिससे उनकी आय में वृद्धि होगी जो ग्रामीण जनजीवन को रूपांतरित करने में सहायक सिद्ध होगा। धान की भूसी के उपयोग से 45X60 सेमी की एक वॉल हैंगिंग बनाने की लागत लगभग 1150 रूपये आती है जो की बाजार में

लगभग 2000 से 2500 रुपए में बिकती है। इस प्रकार औसतन 1000 रूपये प्रति यूनिट का लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

कृषि उद्यमिता के समक्ष चुनौतियां (समस्याएं) : भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि उद्यमिता में वृद्धि हुई है लेकिन इसे तीव्र गति से बढ़ाने में अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। संक्षेप में कृषि उद्यमिता की प्रमुख समस्याएं निम्नलिखित हैं-

पूंजी की समस्या : कृषि आधारित उद्योगों में पूंजी की कमी इनके विकास में सबसे बडा बाधक है। प्रायः इन उद्योगों में पूंजी एवं साख का अभाव पाया जाता है क्योकि कृषि आधारित उद्योग अधिकांशतः ग्रामीण क्षेत्रों में पाये जातें हैं ग्रामीणों का पूंजी आधार काफी कमजोर होता है तथा पूंजी के अभाव में किसी भी वस्तु उत्पादन एवं विपणन सम्भव नहीं है। वर्तमान समय में सरकार लगातार इस दिशा में प्रयासरत है कि छोटे कृषि आधारित उद्योगों को भी आसानी से बैंको से ऋण उपलब्ध हो सके लेकिन फिर भी अभी इस मामले में पर्याप्त सफलता नही मिली है।

कच्चे माल की समस्या : कच्चे माल की समस्या कृषि आधारित उद्योगों की प्रमुख समस्या है। कच्चे माल के अभाव में यह उद्योग प्रायः वर्ष के 5-6 महीने ही क्रियाशील रहते हैं, शेष अवधि में इन्हें कच्चा माल नहीं प्राप्त हो पाता, जिसके कारण इन उद्योगों का उत्पादन प्रभावित होता है जैसे चीनी उद्योग, शहद उद्योग, मशरूम उद्योग आदि। चीनी उद्योग को एक वर्ष में औसतन 140 से 160 दिन ही कच्चा माल अर्थात गन्ना प्राप्त होता है जो इस उद्योग के विकास को बाधित करता है।

तकनीकी ज्ञान की समस्या : कृषि आधारित उद्योगों को संचालित करने के लिए तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है। लेकिन कृषि श्रमिक तकनीकी रूप से कुशल नहीं होते हैं, जिसके वह उन्नत तकनीकी का प्रयोग नही कर पातें हैं जिसके कारण उत्पादन और उत्पादकता दोंनों प्रभावित होती है तथा उत्पादन में गुणवत्ता की कमी पायी जाती है।

उत्पादों के ग्रेडिंग की समस्या : कृषि आधारित उद्योगों में उत्पादों की ग्रेडिंग करना भी एक बडी समस्या हैं क्योंकि उसका कोई निश्चित मानक न होने के कारण कृषि आधारित उद्योगों में किये गये उत्पादन का ग्रेडिंग नहीं हो पाता है जिसके परिणाम स्वरुप किसानों को उनके उत्पाद का उचित कीमत प्राप्त नहीं होता है जिससे उनका लाभ घट जाता है और अगले चरण में निवेश भी कम हो जाता है।

कृषि उद्योगों की मौसमी प्रकृति : मौसमी प्रकृति कृषि आधारित उद्योगों की एक बडी समस्या है क्योंकि यह उद्योग एक विशेश मौसम में ही पूर्ण क्षमता के साथ संचालित किये जा सकते हैं तथा वर्ष के अन्य समय में इनको या तो बन्द कर दिया जाता है, या तो केवल जीवित रखा जाता है। जैसे चीनी उद्योग को बंद कर दिया जाता है तथा शहद उद्योग को वर्षा एवं शीत ऋतु में केवल जीवित रखा जाता है और उत्पादन बहुत कम हो जाता है।

विपणन की समस्या : कृषि आधारित उद्योगों में उत्पादित वस्तुओं का विपणन करना भी एक बड़ी चुनौती है। इन उत्पादों की न तो कोई ग्रेडिंग होती है, और न ही कोई ब्रान्ड होता है जिसके कारण इन उत्पादों के विपणन में अनेक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। क्योंकि वर्तमान समय में लोग पश्चिमीकरण के चकाचौध में केवल बडे उद्योगों में बने हुए पैकेटबन्द एवं ब्रान्डेड सामान लेना पसंद करते हैं।

बड़े पैमाने के उद्योगों से प्रतियोगिता : कृषि आधारित उद्योगों की एक बडी समस्या बाजार में स्थापित बडे उद्योगों से प्रतियोगिता होती है जिसके कारण यह उद्योग बाजार में अधिक समय तक नहीं टिक पातें हैं। कृषि आधारित उद्योगों में परम्परागत तकनीकि से उत्पादन होने के कारण इनकी कीमतें अपेक्षाकृत अधिक होती हैं, और गुणवत्ता अपेक्षाकृत कम होती है जबकि बड़े उद्योगों में आधुनिक तकनीकि से उत्पादन होने के कारण इनकी कीमतें कम होती हैं और वे कम कीमत पर ही बेची जा सकती हैं, जिसके कारण भी कृषि आधारित छोटे उद्योग विकसित होने के पहले ही बन्द हो जाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कृषि आधारित उद्यमों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिसके कारण कुछ कृषि उद्योग विकसित नहीं हो पाते हैं। केवल वही कृषि आधारित उद्योग विकसित होते हैं जिनका पूंजी आधार सुदृढ़ होता है।

कृषि उद्यमिता के समस्याओं के समाधान के उपाय : कृषि उद्यमिता की समस्याओं को दूर किए बिना कृषि उद्यमिता को बढ़ावा देना एक कठिन कार्य है। संक्षेप में कृषि उद्यमिता की प्रमुख समस्याओं को दूर करने के लिए निम्न उपाय किया जाना आवश्यक है-

1. कृषि उद्यमिता के विकास के लिए कृषकों तक पूंजी

की पहुँच को सुनिश्चित करना।

2. कृषि आधारित उद्यमों के लिए कच्चे माल की पर्याप्त व्यवस्था सुनिश्चित करना।
3. कृषकों के लिए तकनीकी प्रशिक्षण की व्यवस्था।
4. कृषि आधारित उद्यमों के उत्पादों के विपणन के लिए नियमित बाजार की व्यवस्था।
5. कृषि आधारित उद्यमों के उत्पादों के लिए ग्रेडिंग की व्यवस्था करना।
6. बड़े उद्योगों के साथ प्रतियोगिता से कृषि उद्यमों की सुरक्षा की व्यवस्था।
7. कृषि उद्यमिता की समस्याओं को दूर करने के लिए विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक संस्थानों के पाठ्यक्रमों में उद्यमिता को विषय के रूप में सम्मिलित करना।
8. ग्रामीण युवाओं में कृषि उद्यमिता के बारे में जागरूकता बढ़ाना।
9. कृषि उद्यमिता के पूर्ण उपयोग के लिए मिट्टी, बीज, पानी जैसे तत्वों का उचित प्रबंधन।
10. उद्यमिता को सफल बनाने के लिए केंद्र एवं राज्य सरकारों के विभिन्न विभागों और मंत्रालयों के बीच सही तालमेल होना चाहिए।

निष्कर्ष : उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि कृषि उद्यमिता भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में मील का पत्थर सिद्ध हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों में अदृश्य बेरोजगारी पाई जाती है इसे दूर करने के लिए कृषि संबंधित स्वरोजगार हेतु कुटीर उद्योगों को विकसित होने के लिए आवश्यक परिस्थितियो का निर्माण करना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्र में डेयरी उद्योग स्वरोजगार के लिए बेहतर अवसर है। इस संदर्भ में डेयरी उद्योग को देखा जाए तो 2023-24 मे भारत ने 239.30 मिलियन टन दूध का उत्पादन किया था। दूध से बनने वाले खाद्य पदार्थों के विक्रय से भूमिहीन ग्रामीण युवाओं को रोजगार का अवसर प्राप्त हुआ।

चीनी उद्योग ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के अवसर उपलब्ध कराता है। देश के कई राज्यों में चीनी का उत्पादन तीव्र गति से हो रहा है जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करेगा। कृषि उद्यमिता को बढ़ावा भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास और समावेशी विकास के लिए मूलभूत अवसर और परिवेश का कार्य करेगा। इससे एक ओर मानव पूंजी में वृद्धि तथा दूसरी ओर आर्थिक क्षेत्र में समृद्धि आएगी। कृषि उद्यमिता से पर्यावरण प्रबंधन में भी सहायता मिलेगी साथ ही दूरगामी विकास के लिए दिशा निर्धारित होगी।

सन्दर्भ

1. आर्थिक समीक्षा, वित्त मंत्रालय, आर्थिक कार्य विभाग नई दिल्ली, भारत सरकार, अध्याय- 09, च.299 (2023.24)।
2. सक्सेना जगदीप, 'कृषि में उद्यमिता विकास की अपार संभावनाएं', कुरुक्षेत्र मासिक पत्रिका, अक्टूबर 2022, पृ. 1-12।
3. केन्द्रीय बजट, वित्त मंत्रालय, बजट प्रभाग, भारत सरकार, च.15 (2024.25)।
4. 'कृषि सांख्यिकी एक झलक', कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय, कृषि एवं किसान कल्याण विभाग, अर्थ, सांख्यिकी एवं मूल्यांकन प्रभाग, भारत सरकार, 2023, पृ.17
5. अग्रवाल, अमित कुमार, 'छत्तीसगढ़ के रायपुर जिले में सामाजिक आर्थिक विकास पर कृषि आधारित उद्योगों का प्रभाव', पीएचडी शोध प्रबंध, मैट्स विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़, 2022 पृ.44-101।
6. Rais, M., Acharya, S. and Sharma, N. (2013) 'Food Processing Industry in India: S & T Capability, Skills and Employment Opportunities', Journal of Food Processing & Technology, Year-2013, Volume-4, p-260.
7. Kumar, R., Dixit, A.K., Kumar, A. and Singh, S., 'Agro Processing Industries in Haryana: Status, Problems and Prospects', Economic Affairs, New Delhi Publishers, Year-2016 Volume- 61, Issue- 4, pp. 707-715.
8. उद्यम पंजीकरण बुलेटिन-VII, (2023) सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय, भारत सरकार, पृ.24.26।
9. वार्षिक रिपोर्ट (2023.24) पशुपालन और डेयरी विभाग, मत्स्य पालन पशुपालन और डेयरी उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 5 एवं 61।
10. वर्षान्त समीक्षा (2023) पशुपालन और डेयरी विभाग, मत्स्य पालन पशुपालन और डेयरी मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 1-2।
11. वार्षिक रिपोर्ट (2023.24) पशुपालन और डेयरी विभाग, मत्स्य पालन पशुपालन और डेयरी उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार, पृ.139।
12. वार्षिक प्रगति रिपोर्ट (2023-24), हनी मिशन, खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग, भारत सरकार, पृ.11।
13. वार्षिक रिपोर्ट, (2023-24) भारत में मशरूम उत्पादन, कृषि विज्ञान केंद्र, राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, पृ.106।
14. वार्षिक रिपोर्ट, (2022-23) राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम, भारत सरकार, पृ.215।

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता का अध्ययन

❑ डॉ. मो. अख़तर रजा
❖ डॉ. माहेजबीं

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता का अध्ययन करना है। अध्ययन में साइबर सुरक्षा जागरूकता स्केल का उपयोग किया गया है। अध्ययन में आजमगढ़ शहर के बी.एड. के छात्रों को निदर्शन के रूप में सम्मिलित किया गया है। विश्लेषण करने बाद शोधकर्ता ने पाया कि आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता का स्तर उच्च है। अध्ययन में पाया गया कि लिंग के आधार पर भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं है और क्षेत्र के आधार पर भी भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं है जबकि विषय के आधार पर भावी शिक्षक का साइबर सुरक्षा जागरूकता में सार्थक अंतर है। विज्ञान और सामाजिक विज्ञान विषय के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता में सार्थक अंतर पाया गया। सामाजिक विज्ञान विषय के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता स्तर विज्ञान के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता की तुलना में अधिक है।

सूचक शब्द : साइबर सुरक्षा जागरूकता, भावी शिक्षक और साइबर सुरक्षा का ज्ञान

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (ICT) ने हमारे जीवन के हर पहलू और क्षेत्र में प्रवेश कर लिया है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी अनगिनत अवसर और सुविधाएं प्रदान कर रही है, जो मानव जीवन को और अधिक आरामदायक बनाते हैं। यद्यपि, इन अवसरों और सुविधाओं से जुड़ी कुछ चुनौतियाँ भी हैं। साइबर सुरक्षा एक विचार है, जो यह सुनिश्चित करने पर केंद्रित है कि उन्नत जानकारी और संसाधनों का आभासी दुनिया में लोगों और संगठनों के लिए एक स्थान है। **प्रसाद और रोहोकाले**[1] ने साइबर सुरक्षा को संगठनों, प्रोग्रामिंग, कंप्यूटर में व्यक्तिगत जानकारी और उपकरणों तक अनुचित पहुंच या दुरुपयोग की ओर संकेत करने वाले हमलों से बचाने की प्रक्रियाओं के रूप में वर्णित किया है। **टेलर, फ्रिट्च और लीडरबैक**[2] ने साइबर अपराधों को व्यापक रूप से परिभाषित किया और उन्होंने साइबर अपराधों को कंप्यूटर की मदद से किए जाने वाले अपराधों के रूप में उद्धृत किया है। **वैन शाइक एटल**[3] ने ऑनलाइन हो रहे धोखा-धड़ी को साइबर अपराध के रूप में माना है। **वॉन सोल्म्स और वॉन सोल्म्स**[4] ने ऑनलाइन माध्यम से लोगों को आर्थिक और मानसिक रूप से चोट पहुंचाना और व्यक्तिगत सूचना को दूसरों से साझा करने को साइबर अपराध माना है। सामान्यतः साइबर अपराधों को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है, साइबर अपराधों की पहली श्रेणी में ऐसे अपराध हैं, जहां कंप्यूटर या नेटवर्क किसी अपराध का मुख्य लक्ष्य होते हैं, दूसरी श्रेणी ऐसे अपराध को रखा गया है जिसमें कंप्यूटर का उपयोग धोखाधड़ी और साइबर उत्पीड़न सहित अपराध करने के लिए उपकरण के रूप में किया जाता है। तीसरे प्रकार का अपराध वह है, जिसमें अपराध के उत्पाद के रूप में कंप्यूटर का उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए, मनी लॉन्ड्रिंग हो सकती है। चौथी और अंतिम श्रेणी में कंप्यूटर के व्यापक उपयोग के कारण होने वाले अपराध से है, जैसे-बौद्धिक संपदा का उल्लंघन, जालसाजी और पहचान की चोरी आदि साइबर अपराध के प्रकार हैं। अंत में, सबसे प्रसिद्ध डिजिटल खतरों में वायरस, कुंजी लॉगर और ट्रोजन जैसे दोषपूर्ण प्रोग्रामिंग (मैलवेयर), फिशिंग और सोशल इंजीनियरिंग जैसी दुर्भावनापूर्ण रणनीतियां सम्मिलित हैं जिनका उद्देश्य लोगों को आर्थिक और मानसिक रूप से चोट पहुंचाना और व्यक्तिगत सूचना की चोरी तथा उसका दुरुपयोग करना है। **चक्रवर्ती**[5] ने साइबर सुरक्षा को साइबर हमलों से इंटरनेट के उपयोग को सुरक्षित या संरक्षित करने की क्षमता के रूप में माना है। **कारा और आयडोस**[6] ने साइबर सुरक्षा को इंटरनेट के माध्यम से हो रहे हैकिंग से अपने संचार के साधनों को बचाने के रूप में माना है। **प्रेम और रेड्डी**[7]

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर मौलाना आजाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद, कॉलेज ऑफ टीचर एजुकेशन, दरभंगा (बिहार)
❖ असिस्टेंट प्रोफेसर, श्री अग्रसेन महिला महाविद्यालय आजमगढ़ (उ.प्र.)

ने संदिग्ध ईमेल को फिल्टर करके और उन्हें स्पैम के रूप में चिह्नित करके या उन्हें फिशिंग हमलों के विरुद्ध सुरक्षा करने को साइबर सुरक्षा माना है। **सीएनएसएस**[8] के रिपोर्ट के अनुसार साइबर पेशेवर इस बात से सहमत हैं कि साइबर अपराधों से अनजान किसी भी संगठन के उपयोगकर्ता साइबर हमलों के लिए सबसे कमजोर कड़ी हैं। **एजुकॉस**[9] के सर्वेक्षण के अनुसार, साइबर-सुरक्षा, जिसे सूचना सुरक्षा के रूप में भी जाना जाता है, एक रणनीतिक महत्व की चिंता बनी हुई है और इसे सबसे महत्वपूर्ण चिंता के रूप में माना जाता है।

दैनिक जीवन में कार्यों को आसानी से निपटाने के लिए उन्नत हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर की जरूरत होती है। इंटरनेट पर बढ़ती निर्भरता के कारण, साइबर सुरक्षा से संबंधित संपूर्ण जानकारी होना अति आवश्यक हो गया है। यह डिजिटल दुनिया हमें बहुत सारे लाभ प्रदान करती है, लेकिन साथ ही साथ नए खतरे भी प्रस्तुत करती है, जिन्हें कभी-कभी अनदेखा कर दिया जाता है। इंटरनेट के विकास की गति इंटरनेट डेवलपर्स की अपेक्षाओं और भविष्यवाणियों से कहीं अधिक है। इंटरनेट के अचानक तेजी से विकास के कारण, उपयोगकर्ता साइबर सुरक्षा मुद्दों से अनजान हैं। साइबरस्पेस के बढ़ते उपयोग को बनाए रखने के लिए संगठनों और समाज ने साइबरस्पेस शिक्षा को तेजी से तैयार, विकसित और प्रसारित नहीं किया। परिणामस्वरूप, नियमित इंटरनेट प्रौद्योगिकी उपयोगकर्ता (कॉलेज के छात्र, शिक्षक, डॉक्टर, इंजीनियर, पेंटर आदि) इलेक्ट्रॉनिक्स के असुरक्षित उपयोग से उत्पन्न अपनी सुरक्षा और व्यक्तिगत विवरण के खतरों से अनजान हैं। **किम**[10] के अनुसार, डिजिटल उपकरणों के अधिकतर उपयोगकर्ता सामान्यतः वे होते हैं, जो साइबर सुरक्षा चिंताओं और रोकथाम के बारे में जागरूक नहीं होते हैं। जबकि अधिकांश लोग अपने भौतिक संपत्ति और स्थान की सुरक्षा के बारे में चिंतित हैं, वे साइबरस्पेस में अपनी जानकारी और संपत्ति की सुरक्षा के बारे में चिंतित नहीं हैं।

साइबर सुरक्षा

ऑनलाइन खतरों से बचाने के लिए व्यक्तियों और संगठनों के लिए साइबर सुरक्षा जागरूकता महत्वपूर्ण है। इसमें जोखिमों को समझना, फिशिंग प्रयासों को पहचानना, सशक्त पासवर्ड का उपयोग करना, सॉफ्टवेयर को अपडेट रखना और ऑनलाइन व्यक्तिगत जानकारी से सावधान रहना सम्मिलित है। डिजिटल दुनिया में सुरक्षित रहने के लिए नियमित प्रशिक्षण और साइबर सुरक्षा का ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है। यहां साइबर सुरक्षा जागरूकता के कुछ महत्वपूर्ण बिंदु दिए गए हैं।

फिशिंग जागरूकता : व्यक्तिगत जानकारी मांगने वाले या तत्काल सूचना का आग्रह करने वाले संदिग्ध ईमेल, विषयवस्तु या संदेशों से सावधान रहें। प्रेषक की पहचान सत्यापित करें और संदिग्ध लिंक पर क्लिक करने या अज्ञात स्रोतों से अटैचमेंट डाउनलोड करने से बचें।

पासवर्ड प्रबंधन : इसके अंतर्गत प्रत्येक खाते के लिए सशक्त, अद्वितीय पासवर्ड का उपयोग करने और उन्हें सुरक्षित रूप से संग्रहीत और प्रबंधित करने के लिए एक पासवर्ड मैनेजर का उपयोग करने पर बल दिया जाता है। अतिरिक्त सुरक्षा के लिए जहां तक और जब भी संभव हो दो-कारक प्रमाणीकरण प्रयोग करें।

सॉफ्टवेयर को नियमित रूप से अपडेट करें : सॉफ्टवेयर को नियमित रूप से अपडेट करना चाहिए और ऑपरेटिंग सिस्टम, एंटीवायरस प्रोग्राम और एप्लिकेशन सहित सभी सॉफ्टवेयर को नवीनतम सुरक्षा कवच और अपडेट के साथ अपडेट रखें ताकि आप साइबर क्राइम और धोखाधड़ी से बच सकें।

सुरक्षित वाई-फाई नेटवर्क : एन्क्रिप्टेड वाई-फाई कनेक्शन, का उपयोग करना चाहिए और संवेदनशील लेनदेन या गतिविधियों से बचने के लिए सार्वजनिक वाई-फाई नेटवर्क से कनेक्ट नहीं होना चाहिए। सार्वजनिक वाई-फाई का उपयोग करते समय अतिरिक्त सुरक्षा के लिए वर्चुअल प्राइवेट नेटवर्क (वीपीएन) का उपयोग करने पर विचार करें।

डेटा बैकअप : साइबर हमलों, हार्डवेयर की खराबी या अन्य आपात स्थितियों के मामले में डेटा हानि को रोकने के लिए सुरक्षित, ऑफलाइन स्टोरेज या क्लाउड सेवाओं के लिए महत्वपूर्ण फाइलों और डेटा का नियमित रूप से बैकअप लेना चाहिए।

सोशल मीडिया गोपनीयता : आपकी जानकारी कौन देख सकता है, यह नियंत्रित करने के लिए आपके द्वारा ऑनलाइन साझा किए जाने वाले व्यक्तिगत डेटा की मात्रा को सीमित करने के लिए सोशल मीडिया खातों पर गोपनीयता सेटिंग्स करनी चाहिए।

संशयवादी बनें : व्यक्तिगत या वित्तीय जानकारी के लिए

अनचाहे अनुरोधों खासकर, उन प्रस्तावों पर संदेह कर, जो अतिआवश्यक या धमकी भरी भाषा में हो। संदेह होने पर, अन्य चैनलों के माध्यम से संचार की वैधता की पुष्टि करनी चाहिए।

संदिग्ध गतिविधि की रिपोर्ट करें : किसी भी संदिग्ध साइबर सुरक्षा घटना, जैसे फिशिंग प्रयास या मैलवेयर संक्रमण, की रिपोर्ट अपने संगठन के आईटी विभाग या संबंधित अधिकारियों को करें, ताकि आगे के नुकसान को रोकने में मदद मिल सके।

साइबर सुरक्षा जागरूकता को बढ़ावा देने और इन सर्वोत्तम सुझावों का पालन करके कोई भी व्यक्ति और संगठन साइबर खतरों का शिकार होने के जोखिम को काफी कम कर सकते हैं।

समीक्षा

रेविला, मोंटोया और राममूर्ति[11] ने दो लैटिन अमेरिकी विश्वविद्यालयों में अध्यनरत छात्रों के साइबर सुरक्षा जागरूकता का अध्ययन किया और पाया कि 1.89 प्रतिशत छात्रों का साइबर सुरक्षा संबंधित ज्ञान बहुत उच्च है, 26.42 प्रतिशत छात्रों का साइबर सुरक्षा संबंधित ज्ञान उच्च है, 47.17 प्रतिशत छात्रों का साइबर सुरक्षा संबंधित ज्ञान सामान्य है, 18.86 प्रतिशत छात्रों का साइबर सुरक्षा संबंधित ज्ञान निम्न है और 5.66 प्रतिशत छात्रों का साइबर सुरक्षा संबंधित काफी निम्न है। अध्ययन में कहा गया कि साइबर सुरक्षा संबंधित ज्ञान को बढ़ाने के लिये विश्वविद्यालयों में साइबर सुरक्षा जागरूकता कार्यक्रमों को व्यापक रूप से कराने की आवश्यकता है।

एग्बो-ओला[12] ने संगठन में कार्यरत कर्मचारियों का साइबर सुरक्षा जागरूकता को बढ़ाने के उपायों का अध्ययन किया और पाया कि कर्मचारियों का साइबर सुरक्षा जागरूकता का स्तर काफी निम्न है। इसे बढ़ाने की लिए संचार तकनीकों का संपूर्ण जानकारी होना अति आवश्यक है, साथ ही साथ शोधकर्ता ने यह सुझाव भी दिया गया कि संगठन के कर्मचारियों के लिए मार्गदर्शन एवं साइबर सुरक्षा से संबंधित ट्रेनिंग प्रोग्राम का भी आयोजन समय-समय पर किया जाना चाहिए।

भास्कर[13] ने साइबर सुरक्षा जागरूकता का अध्ययन किया, जिसका उद्देश्य अपने कर्मचारी के साइबर सुरक्षा जागरूकता के स्तर को जानना और उसकी साइबर सुरक्षा जागरूकता के स्तर को कैसे बेहतर बनाया जा सकता है, उसकी पहचान करना था। उन्होंने अध्ययन में पाया कि कर्मचारियों का साइबर सुरक्षा का स्तर बेहतर नहीं है। साइबर सुरक्षा जागरूकता के स्तर को बेहतर बनाने के लिए सुरक्षा से संबंधित ट्रेनिंग प्रोग्राम का आयोजन समय-समय करना आवश्यक है।

रहमान और अहमद[14] ने उच्च शिक्षण संस्थान में अध्यनरत छात्रों के साइबर सुरक्षा जागरूकता का अध्ययन किया, जिसका मुख्य उद्देश्य था, लिंग और प्रोग्राम के आधार पर छात्रों की साइबर सुरक्षा जागरूकता को जानना। शोधकर्ता ने अपने शोध में पाया कि महिला छात्र की तुलना में पुरुष छात्र का साइबर सुरक्षा जागरूकता का स्तर बेहतर है जबकि कंप्यूटर साइंस के छात्रों का साइबर सुरक्षा जागरूकता बिजनेस कंप्यूटिंग के छात्रों कि तुलना में बेहतर है।

केम्पर[15] ने कंपनी के कर्मचारियों की साइबर सुरक्षा जागरूकता के बारे जानने के लिए एक अध्ययन किया जिसमें उन्होंने पाया कि कंपनी के कर्मचारी साइबर अपराधों एवं साइबर सुरक्षा के बारे संपूर्ण जानकारी नहीं रखते हैं जो कंपनी के लिए काफी निराशाजनक स्थिति है । इसके लिए शोधकर्ता ने यह सुझाव दिया कि कंपनी के कर्मचारियों को साइबर सुरक्षा से संबंधित ट्रेनिंग प्रोग्राम का आयोजन समय-समय पर किया जाना चाहिए ताकि वह साइबर सुरक्षा के बारे में संपूर्ण जानकारी रख सकें और विपरीत परिस्थिति में कंपनी के डेटा को सुरक्षित रख सकें।

अल-जनाबी और अल-शौरबाजी[16] ने मध्य पूर्व के शैक्षिक वातावरण में कर्मचारियों, शोधकर्ताओं, स्नातक छात्रों और कर्मचारियों के बीच सूचना सुरक्षा जागरूकता का विश्लेषण किया और पाया कि इनके बीच सूचना सुरक्षा जागरूकता के महत्व और दैनिक कार्य में उनके व्यावहारिक अनुप्रयोग का अपेक्षित ज्ञान और समझ नहीं है। हालाँकि इस स्थिति को व्यापक जागरूकता और प्रशिक्षण कार्यक्रमों के साथ-साथ संस्थान के सभी स्तरों पर सभी आवश्यक सुरक्षा उपायों को अपनाने के माध्यम से ठीक किया जा सकता है ताकि ये छात्र, शैक्षणिक कर्मचारी और अन्य कर्मचारी अपने महत्वपूर्ण डेटा को सुरक्षित रख सकें।

प्रमोद और रमन[17] ने स्मार्टफोन सुरक्षा के बारे में 20 से 30 वर्ष की आयु के सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) स्नातक युवाओं और गैर-आईटी शिक्षा पृष्ठभूमि वाले

युवाओं की जागरूकता का अध्ययन किया और पाया कि 20 से 30 वर्ष की आयु के सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) स्नातक युवाओं और गैर-आईटी शिक्षा पृष्ठभूमि वाले युवाओं का स्मार्टफोन सुरक्षा की जागरूकता का स्तर निम्न है, जबकि उनके बीच स्मार्टफोन सुरक्षा की जागरूकता में सार्थक अंतर पाया गया और महिला की तुलना में पुरुष का स्मार्टफोन सुरक्षा जागरूकता का स्तर उच्च है।

किम[18] ने बिजनेस कॉलेज के स्नातक छात्रों की सूचना सुरक्षा जागरूकता की स्थिति को जानने के लिए बिजनेस कॉलेज के स्नातक छात्रों का सर्वेक्षण किया और पाया कि बिजनेस कॉलेज के स्नातक के छात्रों का सूचना सुरक्षा जागरूकता का स्तर राष्ट्रीय मानक और प्रौद्योगिकी संस्थान (NSIT) की विशेष रिपोर्ट मानक की तुलना में कम है। उन्होंने यह सुझाव दिया कि छात्रों के सुरक्षा जागरूकता स्तर को बढ़ाने के लिए सूचना सुरक्षा प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।

मेहता और सिंह[19] ने भारतीय समाज में कर्मचारियों, छात्रों का लिंग के आधार पर साइबर कानूनों के प्रति जागरूकता का एक अध्ययन किया। अध्ययन में पाया गया कि छात्रों और कर्मचारियों के बीच साइबर कानूनों के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर है और कर्मचारियों का साइबर कानूनों के प्रति जागरूकता का स्तर छात्रों के साइबर कानूनों के प्रति जागरूकता के स्तर से अधिक है। यह भी पाया कि पुरुष, महिला समकक्ष की तुलना में भारतीय साइबर कानूनों के प्रति अधिक जागरूक हैं।

अध्ययन का औचित्य

आज कल साइबर सुरक्षा की जानकारी होना बहुत आवश्यक क्योंकि साइबर क्राइम तेजी से बढ़ रहा है साथ ही साथ आपकी ईमेल के डेटा, सोशल साईट पर उपलब्ध अकाउंट हेकिंग और बैंक धोखाधड़ी का मामलों में काफी तेजी से वृद्धि हो रही है। इसलिए, हम इस प्रकार की दुर्घटना से कैसे बच सकते हैं, इसकी जानकारी हमें अवश्य होनी चाहिए। शिक्षक के लिए और भी आवश्यक हो जाता है कि साइबर सुरक्षा की जानकारी रखें ताकि वह स्वयं और भावी पीढ़ी को इन खतरों से सुरक्षित रख सकें। इसके अलावा, मोबाइल उपकरणों के माध्यम से जुड़े रहने की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता के कारण व्यक्तियों को ऑनलाइन जोखिमों का सामना करना पड़ता, जैसा कि **प्रमोद और रमन**[20] की एक रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि उच्च शिक्षा के छात्र मोबाइल का उपयोग अपने शिक्षण कार्य हेतु करते तो हैं, लेकिन वे सभी सुरक्षा कमजोरियों और आवश्यक सुरक्षा पूर्वाभ्यास से अनभिज्ञ हैं। **प्रिटोरियस**[21] ने छात्रों में साइबर सुरक्षा की संपूर्ण जानकारी के लिए प्रशिक्षण और जागरूकता कार्यक्रमों का सुझाव दिया। **रहमान, और अहमद**[22] ने अपने शोध में पाया कि महिला की तुलना में पुरुष का साइबर सुरक्षा जागरूकता का स्तर बेहतर है जबकि प्रोग्राम के आधार पर पाया की कंप्यूटर साइंस के छात्रों का साइबर सुरक्षा जागरूकता बिजनेस कंप्यूटिंग के छात्रों कि तुलना में बेहतर है। **किम**[23] ने कहा कि विश्वविद्यालयों को छात्रों के लिए आसानी से साइबर सुरक्षा प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान करना चाहिए। छात्रों को उनके सुरक्षा जागरूकता स्तर को बढ़ाने के लिए साइबर सुरक्षा प्रशिक्षण में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए व्यावहारिक सुझाव प्रदान किये जाने चाहिए। **कांत**[24] ने अध्ययन किया कि भारत में साइबर-सुरक्षा जागरूकता में उच्च शिक्षा के छात्र कितने जागरूक हैं। इस विषय पर और अधिक अध्ययन करने का सुझाव दिया। **एग्बो-ओला**[25] ने एक संगठन के भीतर साइबर सुरक्षा जागरूकता का अध्ययन किया और उसने जागरूकता की प्रभावशीलता को मापने के लिए मार्गदर्शन कार्यक्रम भी प्रदान किया है, जिससे साइबर सुरक्षा जागरूकता को प्रेरित किया जा सके। **भास्कर**[26] ने भी साइबर सुरक्षा जागरूकता का अध्ययन किया। उसने सुझाव दिया कि साइबर सुरक्षा जागरूकता को बेहतर बनाने के लिए ट्रेनिंग प्रोग्राम का आयोजन करना जरूरी है, इसके अलावा जर्मेन ज्वेल **जीन-पियरे**[27] **प्रमर, स्टीन और बर्ग**[28], **तलपे**[29], **यूलियाना**[30] **औरयूं**[31] ने भी स्नातक स्तर के विद्यार्थियों का साइबर सुरक्षा पर अध्ययन किया। उपरोक्त सभी ने इस विषय पर और अधिक अध्ययन करने का सुझाव दिया।

समस्या कथन

"आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता का अध्ययन"

संक्रियात्मक परिभाषा

1. **साइबर सुरक्षा जागरूकता** : साइबर सुरक्षा जागरूकता डिजिटल सूचना और प्रणालियों की सुरक्षा से संबंधित विद्यार्थियों की मापनीय समझ

और व्यवहार को संदर्भित करती है। इसमें साइबर सुरक्षा के खतरों को पहचानना, सर्वोत्तम अभ्यास को समझना और जोखिमों को कम करने के लिए उचित कार्रवाई करना सम्मिलित है।

2. **भावी शिक्षक :** इस अध्ययन में भावी शिक्षक से तात्पर्य आजमगढ़ शहर के महाविद्यालयों के बी.एड. पाठ्यक्रम में अध्यनरत विद्यार्थियों से है।

अध्ययन के चर

मुख्य चर (आश्रित चर) : भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता

स्वतंत्र चर :

1. लिंग : पुरुष और महिला
2. निवास स्थान : ग्रामीणऔर शहरी
3. विषय : सामाजिक विज्ञान और विज्ञान

अध्ययन के उद्देश्य

1. आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता के स्तर का अध्ययन करना।
2. लिंग के आधार पर आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता का अध्ययन करना।
3. क्षेत्र के आधार पर आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता का अध्ययन करना।
4. विषय के आधार पर आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता का अध्ययन करना।

शून्य परिकल्पनाएं :

H_{02} लिंग के आधार पर आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं है। (उद्देश्य संख्या 2 से संबंधित)

H_{03} क्षेत्र के आधार पर आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं है। (उद्देश्य संख्या 3 से संबंधित)

H_{04} विषय के आधार पर आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं है। (उद्देश्य संख्या 4 से संबंधित)

शोध प्रविधि

1. प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया गया है।
2. अध्ययन आजमगढ़ शहर के सभी महाविद्यालयों के बी. एड. के छात्र एवं छात्राओं को अध्ययन की जनसंख्या के रूप में सम्मिलित किया गया है ।
3. अध्ययन के अंतर्गत संपूर्ण जनसंख्या से प्रतिदर्श का चयन स्तीकृत यादृच्छिक तकनीक के उपयोग से विभिन्न महाविद्यालयों से बी.एड. के 200 छात्रों का चयन किया गया हैं प्रतिदर्श का विवरण इस प्रकार है - पुरूष-100, महिला-100, ग्रामीण-100, शहरी-100, विज्ञान-100, सामाजिक विज्ञान-100।

प्रयुक्त उपकरणः इस अध्ययन में अख्तर रजा और माहेजबीं द्वारा निर्मित एवं मानकीकृत 'साइबर सुरक्षा जागरूकता सकेल' 2023 का उपयोग छात्रों के साइबर सुरक्षा जागरूकता का आकलन करने के लिए किया गया है। इस उपकरण की विश्वसनीयता का मान 0.90 है जिसे अर्द्धविच्छेद (Split Halt) विधि से प्राप्त किया गया है।

एकत्रित डेटा को SPSS 21.0 संस्करण की सहायता से वर्णनात्मक सांख्यिकी, पैरामीट्रिक परीक्षण, टी परीक्षण का उपयोग करके आँकड़ों का विश्लेषण किया गया है।

विश्लेषण और निष्कर्ष

1. आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता के स्तर का अध्ययन।

तालिका संख्या 01

भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता के स्तर का अध्ययन।

चर	उत्तरदाताओं की संख्या	माध्य	मानक विचलन
साइबर सुरक्षा जागरूकता	200	96.50	12.81

उपर्युक्त तालिका से देखा जा सकता है कि उत्तरदाताओं की संख्या 200 जिसका माध्य 96.50 और मानक विचलन 12.81 है। इन आँकड़ों को साइबर सुरक्षा जागरूकता मापनी उपकरण की मानक तालिका से तुलना किया गया तो यह पाया गया कि आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता का स्तर उच्च है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता को और अधिक बढ़ाने की आवश्यकता है जिससे वह उच्चतम स्तर तक पहुँच सके।

2. लिंग के आधार पर आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता का अध्ययन।

H_{02} लिंग के आधार पर आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका संख्या 02

टी परीक्षण लिंग के आधार पर भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता।

चर	ग्रुप	संख्या	माध्य	मानक विचलन	df	t-मान	परिणाम
साइबर सुरक्षा जागरूकता और लिंग	पुरुष	100	101.24	11.74	198	1.73	NS*
	महिला	100	104.90	12.64			

*NS: Not Significant सार्थक स्तर 0.05 पर

तालिका संख्या 02 से देखा जा सकता है कि टी मान 1.73 पाया गया, जो कि 198 के साथ 0.05 सार्थक स्तर पर सारणीबद्ध मान 1.96 से कम है। अतः टी-मान सार्थक नहीं है अतः शून्य परिकल्पना स्वीकार की जाती है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लिंग के आधार पर आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं है। लेकिन तालिका के अनुसार पुरुष भावी शिक्षकों और महिला भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता का स्तर उच्च है।

3. क्षेत्र के आधार पर आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता का अध्ययन।

H_{03} क्षेत्र के आधार पर आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका संख्या 03

टी परीक्षण क्षेत्र के आधार पर भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता

चर	ग्रुप	संख्या	माध्य	मानक विचलन (SD)	Df	t-मान	परिणाम
साइबर सुरक्षा जागरूकता और क्षेत्र	ग्रामीण	100	104.34	12.43	198	0.167	NS*
	शहरी	100	103.91	11.87			

*NS: Not Significant सार्थक स्तर 0.05 पर

तालिका संख्या 03 में देखा जा सकता है कि टी-मान 0.167 पाया गया, जो कि 198 के साथ 0.05 सार्थक स्तर पर सारणीबद्ध मान 1.96 से कम है। अतः टी-मान सार्थक नहीं है अतः शून्य परिकल्पना स्वीकार की जाती है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि क्षेत्र के आधार पर आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं है। लेकिन तालिका के अनुसार शहरी क्षेत्र के भावी शिक्षकों और ग्रामीण क्षेत्र के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता का स्तर उच्च है।

विषय के आधार पर आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता का अध्ययन करना।

H_{04} विषय के आधार पर आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका संख्या 04

टी-परीक्षण विषय के आधार पर भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता

चर	ग्रुप	संख्या	माध्य	मानक विचलन	Df	t-मान	परिणाम
साइबर सुरक्षा जागरूकता और क्षेत्र	विज्ञान	100	100.10	12.14	198	2.702	S*
	सामाजिक विज्ञान	100	103.14	11.44			

*S: Significant at सार्थक स्तर 0.05 पर

तालिका संख्या 04 में देखा जा सकता है कि टी-मान 2.702 पाया गया, जो कि 198 के साथ 0.05 सार्थक स्तर पर सारणीबद्ध मान 1.96 से अधिक है। अतः टी-मान सार्थक है अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकार की जाती है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सामाजिक विज्ञान के भावी शिक्षकों की और विज्ञान के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता के बीच सार्थक अंतर है। विज्ञान और सामाजिक विज्ञान के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता का स्तर उच्च है, लेकिन सामाजिक विज्ञान के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता विज्ञान के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता तुलना में बेहतर है।

शोध के परिणाम उद्देश्य के क्रमानुसार :

1. आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता का स्तर उच्च है।
2. लिंग के आधार पर आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
3. क्षेत्र के आधार पर आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
4. विषय के आधार पर आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता में सार्थक अंतर पाया गया। सामाजिक विज्ञान विषय के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता स्तर विज्ञान के भावी शिक्षकों की तुलना में अधिक पाया गया।

शोध में पाया कि भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता का स्तर उच्च है, लेकिन उनकी साइबर सुरक्षा जागरूकता के स्तर को और बढ़ाने के लिए बी. एड. के पाठ्यचर्या में इस विषय को सम्मिलित किया जाये और समय समय पर सेमिनार और कार्यशालाओं का आयोजन कराया जाना चाहिए।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आजमगढ़ के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकत का स्तर उच्च है। लिंग और क्षेत्र के आधार पर आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया, जबकि विषय के आधार पर आजमगढ़ शहर के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता में सार्थक अंतर पाया गया है, और सामाजिक विज्ञान विषय के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता का स्तर विज्ञान के भावी शिक्षकों की साइबर सुरक्षा जागरूकता का स्तर की तुलना में बेहतर है, लेकिन साइबर सुरक्षा का संपूर्ण ज्ञान नहीं है जो चिंता का विषय है। इसलिए साइबर सुरक्षा जागरूकता एवं उसके संपूर्ण ज्ञान के लिए प्रमुख रूप से उच्च माध्यमिक से लेकर स्नातक, परस्तनातक और बी.एड. के भी पाठ्यचर्य में इससे संबंधित विषय वस्तु को अनिवार्य रूप से सम्मिलित करने की आवश्यकता है, जिससे छात्र इस तरह की समस्या को आसानी से हल कर सकें एवं साइबर क्राइम से बच सकें।

सन्दर्भ

1. Prasad, R., & Rohokale, V. 'Cyber security: The Lifeline of Information and Communication Technology', Switzerland: Springer, 2020, DOI:10.1007/978-3-030-31703-4
2. Taylor, R. W., Fritsch, E. J., & Lindenbach, J. 'Digital Crime and Digital Terrorism, Upper Saddle River: NJ Prentice Hall Press, 2014
3. Van Schaik, P., Jeske, D., Onibokun, J., Coventry, L., Jansen, J., & Kusev, P. 'Risk Perceptions of cyber-security and Precautionary Behaviour'. Computers in Human Behaviour, 2017, 75, pp. 547-559. Retrieved on 9thApril, 2024 fromhttps://doi.org/10.1016/j.chb.2017.05.038
4. Von Solms, B., &von Solms, R. 'Cybersecurity and information security–what goes where?' Information & Computer Security, 26(1), 2018, pp-2-9. DOI:10.1108/ICS-04-2017-0025
5. Chakraborty, S. 'Malware attack and malware analysis: A research', International Journal of Scientific Research in Computer Science, 5(3), 2019, 268-272. doi:10.32628/CSEIT195379
6. Kara, İ., & Aydos, M. 'The ghost in the system: Technical analysis of remote access Trojan'. International Journal on Information Technologies & Security, 11(1), 2019, 73-84. Retrieved on 8th June, 2024
7. Prem, S. P., & Reddy, B. I. 'Phishing and anti-phishing Techniques', International Research Journal of Engineering and Technology, 6(7), 2019, 1446-1452. Retrieved on 7th March, 2024 fromhttps://www.irjet.net/archives/V6/i7/IRJET-V6I7184.pdf
8. CNSS. (2010). National Information Assurance (IA) Glossary CNSS Instruction No. 4009. Washington DC: Committee on National Security Systems (CNSS) Glossary Working Group., 2010, Retrieved on 7th March, 2024 from https://rmf.org/wp-content/uploads/2017/10/CNSSI-4009.pdf
9. EDUCAUSE (2015). 'Top 5 strategic information security issues for 2015'. Louisville: Educause. Retrieved

on 8th April, 2024 fromhttps://er.educause.edu/articles/2015/1/top-10-it-issues-2015-inflection-point
10. Kim, E. B. 'Information Security Awareness Status of Business College: Undergraduate Students', Information Security Journal: A Global Perspective, 22(4), 2013, 171-179. Retrieved on 9th Jan, 2024 fromhttps://doi.org/10.1080/19393555.2013.828803
11. Revilla, L., Montoya, J. & Ramamoorthi 'Exploring Cybersecurity Awareness Among Students from Two Latin American Universities', An Empirical Analysis, 2023, DOI: 10.1109/WEEF-GEDC59520.2023.10344151
12. Agbo-ola, A. Motivating Cybersecurity Awareness within an Organisation An explorative study from an awareness practitioner's perspective, 2022, Retrieved on 7th March, 2024 fromhttps://www.diva-portal.org/smash/get/diva2:1667742/FULLTEXT01.pdf
13. Bhaskar, R. 'Better Cybersecurity Awareness through Research', ISACA Journal, 2022, Vol-3. Pp-56-66. Retrieved on 7th March, 2024 from https://www.isaca.org/resources/isaca-journal/issues/2022/volume-3/better-cybersecurity-awareness-through-research
14. Rahman, N.H. A. & Ahmad, A. 'Cyber Security Awareness In Using Digital Platforms Among Students In A Higher Learning Institution', Asian Journal of University Education (AJUE), 2022, No.3(18). Retrieved on 7th March, 2024 from https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1348600.pdf
15. Kemper, G. 'Improving Employees' cyber security awareness. Computer Fraud & Security, 2019(8), 11-14. Retrieved on 15th March, 2024 fromhttps://doi.org/10.1016/S1361-3723(19)30085-5
16. Al-Janabi, S. & Al-Shourbaji, I. (2016). A Study of Cyber Security Awareness in Educational Environment in the Middle East. Journal of Information & Knowledge Management 15(1). Retrieved on 7th March, 2024 fromhttps://doi.org/10.1142/S0219649216500076
17. Pramod, D., & Raman, R. (2014). A study on the user perception and awareness of smartphone security. International Journal of Applied Engineering Research, 9(23), 19133-19144.Retrieved on 7th March, 2024 fromhttps://www.researchgate.net/publication/289748976_A_study_on_the_user_perception_and_awareness_of_smartphone_security
18. Kim, E. B. op. cit., pp. 171-179.
19. Mehta, S., & Singh, V. 'A Study of Awareness About Cyber Laws in the Indian Society', International Journal of Computing and Business Research (IJCBR), 2013, 4(1):1-8 Retrieved on 12thJuly, 2024 fromhttp://www.researchmanuscripts.com/January2013/3.pdf
20. Pramod, D., & Raman, R. op. cit., pp. 19133-19144.
21. Pretorius, B. 'Cyber-security and governance for ICS/SCADA in South Africa'. Unpublished Dissertation, 2016 Retrieved on 8th February, 2024 fromhttps://ukzndspace.ukzn.ac.za/bitstream/handle/10413/15261/Pretorius_Barend_H_2016.pdf?sequence=1&isAllowed=y.
22. Rahman, N.H. A. & Ahmad, A. op. cit., pp.756-766
23. Kim, E.B., op.cit., pp. 171-179
24. Kant, R. 'Cyber -security Awareness in India: How Much students of Higher Education are Aware?' GESJ: Education Science and Psychology, 2023, 2(27). Retrieved on 7th March 2024 from https://www.researchgate.net/publication/371958991_cyber-security_awareness_in_india_how_much_students_of_higher_education_are_aware
25. Agbo-ola, A., op.cit., pp. 1-2
26. Bhaskar, R., op.cit., pp. 57-58
27. Jean-Pierre Jermaine Jewel 'User Awareness and Knowledge of Cybersecurity and the Impact of training in the Commonwealth of Dominica', 2021, Retrieved on 11th May, 2024 fromhttps://scholarworks.waldenu.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=11861&context=dissertations
28. Prummer, J., Steen, T. & Berg, B. 'A Systematic Review of Current Cybersecurity Training Methods', Computer & Security, 2024, Vol.136 (ELSEVIER) Retrieved on 7th March, 2024 from https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S0167404823004959
29. Talpe, G. 'Cyber Security Awareness Among College Students', International Research Journal of Modernization in Engineering Technology and Science, 5(10), 2023, Retrieved on 7th March, 2024 from https://www.irjmets.com/uploadedfiles/paper//issue_10_october_2023/45484/final/fin_irjmets1698293129.pdf
30. Yuliana 'The Importance of Cybersecurity Awareness for Children', Lajil, 2021, 4(1). DOI:10.25041/lajil.v4i1.2526.
31. Yun, T. Z. 'Cybersecurity: Staying Ahead of Cyber Criminals. The Edge Malaysia', 2021, Retrieved on 7th March, 2024 from https://www.theedgemarkets.com/article/cybersecurity/staying-ahead-cybercriminals

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

भारत-बांग्लादेश द्विपक्षीय संबंधों में चुनौतियाँ एवं सहयोग

❑ अनुज
❖ प्रोफेसर रमेश कुमार

सूचक शब्द : भारत, बांग्लादेश, रोहिंग्या शरणार्थी, भूमि सीमा समझौता, अवैध प्रवासन, तस्करी।

भारत-बांग्लादेश द्विपक्षीय संबंधों में ऐतिहासिक, भौगोलिक और सामाजिक-आर्थिक कारकों को दर्शाते हुए सहयोग और चुनौतियों का एक जटिल परस्पर संबंध सम्मिलित है। दोनों राष्ट्र भाषाई और ऐतिहासिक समानताओं पर आधारित सशक्त सांस्कृतिक और लोगों से लोगों के बीच संबंध साझा करते हैं। व्यापार, क्षेत्रीय स्थिरता और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने सहित विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग फला-फूला है। भूमि सीमा समझौते जैसे ऐतिहासिक समझौतों ने लंबे समय से चले आ रहे विवादों का समाधान किया है, जिससे आपसी विश्वास बढ़ा है। हालाँकि, चुनौतियाँ बनी हुई हैं, विशेष रूप से सीमा सुरक्षा, अवैध आप्रवासन और समुद्री विवाद आदि। शेख हसीना सरकार के पतन के बाद इन चिंताओं को दूर करने और सहयोग के सकारात्मक प्रक्षेप पथ को बनाए रखने के बीच संतुलन बनाना आवश्यक है। प्रस्तुत अध्ययन भारत-बांग्लादेश द्विपक्षीय संबंधों की विकसित प्रकृति में अंतर्दृष्टि प्रदान करने के लिए ऐतिहासिक विश्लेषण और नीति मूल्यांकन को मिलाकर एक व्यापक विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाता है। पिछले सहयोग की सफलताओं और विफलताओं की जांच करके, यह शोध अधिक स्थिर और समृद्ध भविष्य के संबंधों के लिए संस्तुतियाँ प्रस्तुत करता है। अंततः, यह अध्ययन दक्षिण एशिया में भारत-बांग्लादेश द्विपक्षीय संबंधों की जटिलताओं और संभावित प्रक्षेप पथों की गहरी समझ में योगदान देता है।

भारत और बांग्लादेश के बीच द्विपक्षीय संबंध सहयोग और चुनौतियों की जटिलताओं के प्रमाण के रूप में खड़े हैं जो अक्सर पड़ोसी देशों के बीच बातचीत को परिभाषित करते हैं। साझा इतिहास, संस्कृति और भौगोलिक निकटता में निहित, इन दो दक्षिण एशियाई देशों के बीच संबंध समय के साथ विकसित हुए हैं, जो सहयोगात्मक प्रयासों और लगातार बाधाओं का एक गतिशील मिश्रण प्रस्तुत करते हैं। भारत-बांग्लादेश द्विपक्षीय संबंधों की नींव सदियों से चले आ रहे सांस्कृतिक संबंधों और ऐतिहासिक समानताओं पर आधारित हैं। भौगोलिक रूप से आपस में जुड़े हुए और एक खुली सीमा साझा करते हुए, दोनों देशों ने लोगों के बीच एक अनूठा संबंध विकसित किया है, जो उनकी जनसंख्या के बीच गहरे संबंधों को दर्शाता है। इसने व्यापार सहित विभिन्न क्षेत्रों में बहुमुखी सहयोग का मार्ग प्रशस्त किया है, जो क्षेत्रीय स्थिरता और आर्थिक विकास में योगदान देगा।[1]

फिर भी, यह संबंध चुनौतियों से रहित नहीं है। सीमा सुरक्षा एक गंभीर चिंता बनी हुई है, जिसके लिए साझा सीमाओं को प्रभावी ढंग से प्रबंधित और संरक्षित करने के लिए संयुक्त प्रयासों की आवश्यकता है। अवैध आप्रवासन जैसे मुद्दों ने समय-समय पर संबंधों में तनाव पैदा किया है, जिससे मानवीय विचारों के साथ सुरक्षा चिंताओं को संतुलित करने के लिए नाजुक नेविगेशन की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, समुद्री विवाद, विशेष रूप से बंगाल की खाड़ी में, कभी-कभी अन्यथा सहकारी परिदृश्य पर छाया डालते हैं। रोहिंग्या शरणार्थी संकट, अपने मानवीय निहितार्थों के साथ, एक महत्वपूर्ण चुनौती के रूप में उभरा है, जो संकट से निपटने और टिकाऊ समाधानों की दिशा में काम करने के लिए सहयोगात्मक प्रतिक्रियाओं की आवश्यकता को रेखांकित करता है। इन चुनौतियों के बावजूद भारत और बांग्लादेश ने राजनयिक चैनलों के माध्यम से मतभेदों को हल करने, सार्क और बिम्सटेक जैसे क्षेत्रीय मंचों में सक्रिय रूप से भाग लेने और शांतिपूर्ण और समृद्ध क्षेत्र के अपने साझा दृष्टिकोण को सुदृढ़ करने के लिए द्विपक्षीय शिखर सम्मेलन में सम्मिलित होने की प्रतिबद्धता प्रदर्शित की है।[2] इस संदर्भ में, प्रस्तुत शोध लेख भारत-बांग्लादेश

❑ शोध अध्येता राजनीति विज्ञान विभाग, हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेन्द्रगढ़ (हरियाणा)
❖ प्रोफेसर राजनीति विज्ञान विभाग, हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेन्द्रगढ़ (हरियाणा)

द्विपक्षीय संबंधों की बहुमुखी प्रकृति पर प्रकाश डालता है, सहयोग और चुनौतियों के आयामों की खोज करता है जो इस महत्वपूर्ण दक्षिण एशियाई साझेदारी को आकार देना जारी रखते हैं।

शोध पत्र का उदेश्यः प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य भारत-बांग्लादेश द्विपक्षीय संबंधों में चुनौतियों एवं सहयोग का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। मुख्य उद्देश्य के अतिरिक्त कुछ अन्य उदेश्य भी हैं-

1. भारत-बांग्लादेश द्विपक्षीय संबंधों को प्रभावित करने वाली सुरक्षा चुनौतियों, जैसे सीमा पार आतंकवाद, अवैध अप्रवासन, मानव तस्करी आदि चुनौतियों की व्यवस्थित रूप से पहचान करना और उनका विश्लेषण करना।
2. भारत-बांग्लादेश के मध्य भूमि और समुद्री सीमा विवादों के समाधान का विश्लेषण करना।

शोध प्रविधिः प्रस्तुत शोध पत्र ऐतिहासिक एवं व्याख्यात्मक अध्ययन हैं जो कि वर्णनात्मक प्रविधि पर आधारित है। इस शोध पत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोतों के अंतर्गत गृह और विदेश मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट आदि सम्मिलित हैं। द्वितीयक स्रोतों में विषय से संबंधित शोध पत्र, पुस्तकों, समाचार पत्र एवं विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों का प्रयोग किया गया है।

साहित्य समीक्षाः

जहूर ए. राथर[3] द्वारा लिखित लेख 'इंडिया-बांग्लादेश बॉर्डर इश्यूजः चैलेंजेज एंड ऑपच्यरुनिटीज' भारत और बांग्लादेश के बीच 4096 किमी लंबी सीमा के आसपास की जटिल गतिशीलता की विस्तृत जांच प्रस्तुत करता है। यह उपनिवेशवाद और विभाजन के ऐतिहासिक संदर्भ पर प्रकाश डालता है, जिसके परिणामस्वरूप खराब परिभाषित और छिद्रपूर्ण सीमाएँ उत्पन्न हुई हैं जो अवैध प्रवास, तस्करी और सीमा पार आतंकवाद को बढ़ावा देती हैं। लेखक अवैध प्रवासन के सामाजिक-आर्थिक निहितार्थों पर चर्चा करता है, जो भारत के लिए महत्वपूर्ण राष्ट्रीय सुरक्षा चिंताएँ पैदा करता है, और प्रभावी सीमा प्रबंधन की आवश्यकता पर जोर देता है। सीमा विवादों को हल करने के उद्देश्य से ऐतिहासिक समझौतों, जैसे नेहरू-नून समझौता और इंदिरा-मुजीब समझौते को भी संबोधित करते हैं तथा उनके अधूरे कार्यान्वयन पर ध्यान देते हैं। कुल मिलाकर, राथर का लेख सीमा को प्रभावी ढंग से प्रबंधित करने, मानवीय विचारों के साथ सुरक्षा को संतुलित करने के लिए सहकारी रणनीतियों की आवश्यकता को रेखांकित करता है, और दोनों देशों की परस्पर जुड़ी नियति पर प्रकाश डालता है।

पुष्पिता दास[4] द्वारा संपादित 'इंडियास बॉर्डर मैनेजमेंटः सेलेक्ट डाक्यूमेंट्स', आधिकारिक दस्तावेजों का एक व्यापक संकलन है जो भारत के सीमा प्रबंधन की जटिलताओं को संबोधित करता है। यह पुस्तक भारत की सीमाओं के ऐतिहासिक संदर्भ पर प्रकाश डालती है, जो राजनीतिक उथल-पुथल के बीच खींची गई थी, जिससे अवैध प्रवास, तस्करी और सीमा विवाद जैसी महत्वपूर्ण चुनौतियाँ पैदा हुईं। पुस्तक में सीमा सुरक्षा बढ़ाने में प्रौद्योगिकी और बुनियादी ढांचे के विकास की भूमिका पर भी चर्चा की गई है। कुल मिलाकर, यह पुस्तक भारत के सीमा प्रबंधन मुद्दों में रुचि रखने वाले शोधकर्ताओं, नीति निर्माताओं और शिक्षाविदों के लिए एक मूल्यवान संसाधन के रूप में कार्य करती है, जो ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और समकालीन विश्लेषण का मिश्रण पेश करती है।

गौरी नूलकर-ओक[5] द्वारा लिखित लेख 'जियोपोलिटिक्स ऑफ़ वाटरः कन्फ्लिक्ट्स इन द तीस्ता रिवर बेसिन' भारत और बांग्लादेश के बीच बहने वाली तीस्ता नदी के आसपास के बहुमुखी जल संघर्ष का व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। लेखक का तर्क है कि विवाद केवल जल बंटवारे के बारे में नहीं हैं बल्कि घरेलू राजनीति, क्षेत्रीय भू-राजनीति और सामाजिक-आर्थिक कारकों से गहराई से जुड़े हुए हैं। साक्षात्कार और फील्डवर्क सहित गुणात्मक अनुसंधान के माध्यम से, नूलकर-ओक स्थानीय समुदायों के लिए नदी के महत्व पर जोर देते हुए, संघर्ष के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय आयामों पर प्रकाश डालता है। शोध लेख विद्यमान समझौतों की अपर्याप्तता की आलोचना करता है, यह सुझाव देता है कि वे नदी के पारिस्थितिक स्वास्थ्य और इसके तटवर्ती जनसंख्या की आवश्यकता को संबोधित करने में विफल हैं। कुल मिलाकर, यह कार्य सीमा पार जल प्रबंधन पर चर्चा में एक मूल्यवान योगदान है, जो व्यावहारिक समाधानों की वकालत करता है जो पारिस्थितिक संरक्षण की तत्काल आवश्यकता के साथ राजनीतिक हितों को संतुलित करता है।

आशीष शुक्ला[6] का लेख 'स्ट्रेंग्थेनिंग कोऑपरेशन एंड रेडूसिंग इर्रिटेन्ट्सः इंडिया-बांग्लादेश रिलेशन्स टुडे'

ऐतिहासिक संबंधों, सामाजिक-सांस्कृतिक समानताओं और सहकारी प्रयासों पर प्रकाश डालते हुए भारत और बांग्लादेश के बीच बहुमुखी संबंधों का व्यापक विश्लेषण प्रदान करता है। लेखक दोनों देशों द्वारा साझा की गई 4096 किलोमीटर की सीमा के महत्व पर जोर देता है, जो सहयोग के लिए चुनौतियों और अवसरों दोनों को बढ़ावा देता है। यह लेख बांग्लादेश के मुक्ति संग्राम के दौरान भारत द्वारा निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिका को दर्शाता है और चल रहे सैन्य और मानवीय सहयोग को रेखांकित करता है। शुक्ला ने बांग्लादेश के लिए भारतीय बाजारों तक शुल्क मुक्त और कोटा मुक्त पहुंच और भारत की पर्याप्त क्रेडिट लाइन जैसी प्रमुख पहलों पर चर्चा की, जो भारत की 'पड़ोसी पहले' नीति के प्रति प्रतिबद्धता को प्रदर्शित करती है। कुल मिलाकर, यह लेख भारत-बांग्लादेश संबंधों के एक व्यावहारिक अवलोकन के रूप में कार्य करता है, जो संबंधों को सुदृढ़ करने और पुरानी परेशानियों को दूर करने के लिए निरंतर बातचीत और सहयोग की आवश्यकता पर जोर देता है।

भारत-बांग्लादेश संबंधः ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

भारत और बांग्लादेश के बीच संबंध वास्तव में ऐतिहासिक, भौगोलिक और सांस्कृतिक निकटता की विशेषता रहे हैं। हालाँकि, उनके साझा संबंधों और एक-दूसरे के लिए महत्व के बावजूद, द्विपक्षीय संबंधों ने अलग-अलग समय पर उतार-चढ़ाव दोनों का अनुभव किया है। बांग्लादेश में भारत के योगदान का एक महत्वपूर्ण पहलू 1971 में स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान उसका समर्थन था। भारत ने बांग्लादेश को पाकिस्तान से स्वतंत्रता दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नए राष्ट्र के उद्भव के लिए यह समर्थन अनिवार्य था और भारत बांग्लादेश को एक संप्रभु राज्य के रूप में मान्यता देने वाला पहला देश था। स्वतंत्रता के बाद, भारत और बांग्लादेश ने मित्रता, सहयोग और शांति की संधि पर हस्ताक्षर किए, जिसका उद्देश्य दोनों देशों के बीच सुदृढ़ और सहकारी संबंधों को बढ़ावा देना था। यह संधि एक-दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने से परहेज करते हुए एक-दूसरे की स्वतंत्रता, संप्रभुता और क्षेत्रीय अखंडता के लिए पारस्परिक सम्मान के सिद्धांतों पर आधारित थी। इन सकारात्मक पहलुओं के बावजूद, यह स्वीकार करना महत्वपूर्ण है कि भारत-बांग्लादेश संबंधों को भी पिछले कुछ वर्षों में जटिलताओं और चुनौतियों का सामना करना पड़ा है, जैसा कि उद्धरण में बताया गया है। क्षेत्र के इतिहास में दोनों देशों के बीच तनाव, संकट और आरोप-प्रत्यारोप के दौर सम्मिलित हैं।

एक अचिह्नित और छिद्रपूर्ण भारत-बांग्लादेश सीमा की चुनौतियाँ : भारत और बांग्लादेश दुनिया की पांचवीं सबसे लंबी अंतरराष्ट्रीय सीमाओं में से एक साझा करते हैं, जो लगभग 4096 किलोमीटर तक फैली हुई है। जबकि लगभग 60 प्रतिशत सीमा पर बाड़ लगाई गई है, एक महत्वपूर्ण हिस्सा नदियों, मछली के तालाबों, खेत, गांवों और यहां तक कि उन संपत्तियों सहित विविध परिदृश्यों से गुजरता है जहां दोनों देशों में एक संरचना के हिस्से विद्यमान हैं। यह अद्वितीय भौगोलिक लेआउट सीमा निगरानी और नियंत्रण के कार्य को जटिल बनाता है। सीमावर्ती क्षेत्र उचित सड़कों और चुनौतीपूर्ण इलाकों की कमी के कारण चुनौतियां पेश करते हैं। ये कारक सीमा की सुरक्षा को एक जटिल प्रयास बनाते हैं। अपर्याप्त बुनियादी ढांचे और कठिन परिदृश्यों की विद्यमानता अवैध समूहों द्वारा छिद्रपूर्ण हिस्सों के शोषण की सुविधा प्रदान करती है। अच्छी तरह से स्थापित सड़कों की अनुपस्थिति और इलाके की विविध प्रकृति इन कमजोर क्षेत्रों का शोषण करने के लिए अवैध गतिविधियों जैसे अवैध प्रवास, तस्करी, मानव तस्करी और अन्य आपराधिक प्रयासों को आसान बनाती है।

अवैध प्रवासनः सीमा की छिद्रपूर्ण प्रकृति अवैध सीमा पार आवागमन को सुविधाजनक बनाती है, और इसके परिणामस्वरूप बांग्लादेश की स्वतंत्रता के बाद से भारत में अवैध प्रवासन का एक निरंतर पैटर्न सामने आया है। रॉय, बंदोपाध्याय और चक्रवर्ती के अनुसार, दो प्राथमिक कारक इस प्रवासन को संचालित करते हैंः 'पुल बल' और 'पुश बल'। मुख्य 'खींचने वाली ताकतों' में चाय बागानों में रोजगार के अवसर और खेती के लिए उपजाऊ भूमि की उपलब्धता सम्मिलित थी।[7] असम में रयोतारी भूमि कार्यकाल प्रणाली, जिसने प्रवासियों को मालिक कृषक बनने की अनुमति दी, एक और आकर्षक कारक था। इस प्रणाली ने भूमि मालिकों के रूप में एक नए जीवन का मौका दिया, जिससे कई प्रवासी आकर्षित हुए। दूसरी ओर, प्रवासन को प्रेरित करने वाली प्राथमिक 'प्रेरक शक्तियाँ' पर्यावरणीय दबाव, राजनीतिक उथल-पुथल और पूर्वी बंगाल में भूमि और स्थायी निपटान प्रणाली से संबंधित मुद्दे थे। इस प्रणाली के अंतर्गत, प्रवासियों को

अक्सर किरायेदारों या यहां तक कि आभासी बंधुआ मजदूरों के रूप में अपनी स्थिति के कारण जमींदारों से उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है।[8] 20वीं सदी के प्रारंभिक दशकों में, अप्रयुक्त भूमि पर अधिकार करने के लिए विदेशी प्रवासी पूर्वोत्तर क्षेत्र में पहुंचे। यह प्रवृत्ति 1931 की जनगणना के दौरान जारी रही और भारत के विभाजन के दौरान बढ़ गई, जिससे अक्सर असम में विरोध प्रदर्शन हुए। इसके विपरीत, प्रवासियों को त्रिपुरा में अधिक स्वागत योग्य वातावरण मिला, जहां उन्हें घाटियों में उपलब्ध पर्याप्त भूमि पर खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। कुछ मामलों में, प्रवासियों की संख्या स्थानीय जनजातीय जनसंख्या से अधिक थी।

बांग्लादेश से भारत में प्रवास की घटना को दो अलग-अलग चरणों में विभाजित किया जा सकता है, प्रत्येक अलग-अलग कारकों और परिस्थितियों से प्रेरित है। पहले चरण के दौरान, जो मुख्य रूप से 1980 से 1990 के दशक तक चला, प्रवासियों का आगमन, मुस्लिम और हिंदू दोनों, मुख्य रूप से आर्थिक विचारों से प्रेरित थी। हालाँकि, इस अवधि के दौरान मुस्लिम प्रवासियों की संख्या हिंदू प्रवासियों की तुलना में काफी अधिक थी।[9] बेहतर नौकरी के अवसर और बेहतर जीवन स्थितियों की तलाश जैसे आर्थिक कारकों ने इस प्रवासन लहर को चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रवासन के दूसरे चरण की विशेषता राजनीतिक कारण थे। एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में बांग्लादेश की स्थापना के बाद प्रारंभिक वर्षों में, और विशेष रूप से 1992 में बाबरी मस्जिद के विध्वंस जैसी महत्वपूर्ण घटनाओं के बाद, राजनीतिक परिदृश्य में बदलाव ने भारत में हिंदुओं के बड़े पैमाने पर बलात प्रवास को प्रेरित किया। इस चरण के दौरान, इन प्रवासियों ने अक्सर अपने उन रिश्तेदारों द्वारा दिए गए सामाजिक और आर्थिक समर्थन का लाभ उठाया जो पहले ही पलायन कर चुके थे या जो पहले भारत में बस गए थे।[10]

इस प्रवासन की व्यापक मान्यता के बावजूद, प्रवासन करने वाले व्यक्तियों की सटीक संख्या के संबंध में सटीक और विश्वसनीय डेटा का अभाव है। विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि आंकड़े संभावित रूप से लाखों तक बढ़ सकते हैं। **माधव गोडबोले** के नेतृत्व में सीमा प्रबंधन पर टास्क फोर्स ने 2001 में अपने निष्कर्ष प्रस्तुत किए, जिसमें अवैध प्रवासियों की संख्या लगभग 15 मिलियन होने का अनुमान लगाया गया था। रिपोर्ट के अनुसार, हर महीने लगभग 300000 बांग्लादेशी अवैध रूप से भारत में प्रवेश कर रहे थे। अवैध प्रवासियों की इस महत्वपूर्ण आगमन के कारण कई सीमावर्ती राज्यों की जनसांख्यिकीय संरचना में बदलाव आया है, जिसके परिणामस्वरूप उन क्षेत्रों में अलगाववादी आंदोलनों को बढ़ावा मिला है।[11] जैसा कि रिपोर्ट में बताया गया है, अवैध प्रवासियों की घुसपैठ ने प्रभावित क्षेत्रों पर दूरगामी प्रभाव डाला है, जिससे उनके सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य को नया आकार मिला है। अवैध प्रवासन के कारण जनसंख्या में वृद्धि ने कुछ क्षेत्रों में तनाव और अलगाववाद के आह्वान में योगदान दिया है। यह बांग्लादेश से भारत में अवैध प्रवासन से उत्पन्न चुनौतियों की जटिल और बहुआयामी प्रकृति को रेखांकित करता है। इस स्थिति ने विशेष रूप से भारत के कई क्षेत्रों, विशेष रूप से पूर्वोत्तर में, पर्याप्त सुरक्षा चिंताओं और सामाजिक तनाव को जन्म दिया है। अवैध प्रवासन के परिणामों ने कुछ भारतीय सीमावर्ती राज्यों की जनसांख्यिकीय संरचना पर दूरगामी प्रभाव डाला है, जिससे महत्वपूर्ण जातीय मतभेद पैदा हुए हैं।

रोहिंग्या शरणार्थीः म्यांमार देश की भेदभाव पूर्ण नीति के कारण रोहिंग्या नागरिकता एवं मौलिक अधिकारों के अभाव में 'राज्यविहीन' हो गए। बांग्लादेश ने विगत कई दशकों तक म्यांमार से अवैध रूप में आए रोहिंग्या शरणार्थियों को उदारतापूर्वक सुरक्षा प्रदान की है, विशेष रूप से अगस्त 2017 की घटनाओं के बाद रोहिंग्या बड़ी पैमाने पर म्यांमार से बांग्लादेश के काक्स बाजार में शरणार्थी के रूप में रहने लग गए। बांग्लादेश में लगभग 923,179 रोहिंग्या में रह रहे हैं। सुविधाओं के अभाव के कारण कई अंतराष्ट्रीय मानवाधिकार संगठनों ने रोहिंग्या शरणार्थियों को लेकर चिंता जताई है।[12]

दूसरी ओर बांग्लादेश यह चाहता है कि म्यांमार रोहिंग्या शरणार्थियों को वापिस बुलाने का कार्य करें परंतु म्यांमार सरकार का मानना है कि बांग्लादेश में जो रोहिंग्या हैं वो 'बांग्लादेशी प्रवासी' हैं जो कि म्यांमार में अवैध तरीके से रह रहे थे। इस प्रकार देखा जाए तो बांग्लादेश शरणार्थी तथा अवैध प्रवासन मुद्दों पर दोहरी मार झेल रहा है जहां एक तरफ म्यांमार हुकूमत रोहिंग्या समुदाय को अपना नागरिक मानने से इंकार कर रही है वहीं दूसरी तरफ भारत सरकार द्वारा लाए गए सी.ए.ए. 2019 तथा

एन.आर.सी. कानून से भारत-बांग्लादेश संबंधों में अनेक भ्रांतियां पैदा हो गई हैं। बांग्लादेश को भारत के इन दोनों कानूनों के कारण यह चिंता है कि भारत में अवैध बंगाली घुसपैठियों को पुनः बांग्लादेश भेज सकता है परंतु 2019 में शेख हसीना द्वारा नई दिल्ली की यात्रा के दौरान भारत सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया कि सी.ए.ए. 2019 और एन.आर.सी. कानून भारत के आंतरिक मामले हैं और इनसे बांग्लादेश को कोई संकट नहीं हैं। **भारत दुनिया** का सबसे सफल लोकतांत्रिक देश है यदि भारत की संस्कृति एवं प्राचीन परंपराओं को देखा जाए तो इसमें 'वसुदेव कुटुंबकम' जैसे मूल्यों को बड़ी प्रबलता से अपनाया गया है परंतु भारत सरकार राष्ट्रीय सुरक्षा एवं अखंडता को देखते हुए सभी रोहिंग्या शरणार्थियों को अवैध प्रवासी मानती हैं और इन्हें इनके मूल राष्ट्र में वापस भेजने के लिए प्रभावी समझौते की तलाश में है। हैं। 20 दिसंबर 2017 को राज्यसभा में तात्कालिक गृहमंत्री किरण रिज्जू ने अतारांकित प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि भारत में 40,000 से अधिक अवैध रोहिंग्या रह रहे है। ज्यादातर रोहिंग्या जम्मू और कश्मीर, तेलंगाना, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, दिल्ली और राजस्थान राज्यों में रह रहे हैं।[13] परंतु अक्टूबर 2018 में यू.एन.एच.सी.आर. के आंकड़ों के अनुसार, भारत में 18,000 रोहिंग्या शरणार्थी रह रहे हैं, उनमें से लगभग दो-तिहाई हैदराबाद और जम्मू शहरों में हैं, जहां बड़े मुस्लिम समुदाय हैं। अन्य लोग राजधानी नई दिल्ली सहित पूरे भारत में अलग-अलग शहरों में रह रहे।[14]

भारत एक बड़ी जनसंख्या वाला देश हैं उसे अपने नागरिकों को संसाधन उपलब्ध कराने में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है इसलिए भारत सरकार रोहिंग्या को देश के संसाधनों पर एक अनावश्यक बोझ के रूप में देखती है। रोहिंग्या म्यांमार तथा बांग्लादेश से भारत की पूर्वोत्तर सीमा के माध्यम से भारत में अवैध रूप से आ रहे हैं। भारत के पूर्वोत्तर के राज्यों में अवैध प्रवासन का मुद्दा भावनात्मक ही नहीं बल्कि जातीय अस्मिता, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक चिंताओं का भी है जो इस क्षेत्र की परिस्थितियों को ओर अधिक जटिल बनाता हैं। ऐसी स्थिति में भारत के पूर्वी राज्यों में उग्रवाद, अलगावाद तथा संप्रदायवाद की समस्या ओर अधिक पनपने लगती है।[15] अवैध प्रवासन तथा शरणार्थी समस्या के कारण भारत के पूर्वी राज्यों का जनसांख्यिकीय स्वरूप लगातार बदल रहा है। भारत के पूर्वी राज्यों में अवैध प्रवासन के कारण मुस्लिम जनसंख्या की वृद्धि के संदर्भ में असम के गुवाहाटी विश्वविद्यालय के राजनीति शास्त्र के प्रोफेसर **मोनिरुल हुसैन** का मानना है कि मुस्लिम आबादी में इतनी अधिक वृद्धि का आधार सिर्फ घुसपैठ ही नहीं है। घुसपैठ में एक से दो प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है परंतु इतनी ज्यादा वृद्धि का मुख्य कारण पड़ोसी देशों की गरीबी एवं शिक्षा हैं।[16]

भारत ने अभी तक वर्ष 1951 के 'यू.एन. कन्वेंशन ऑन द स्टेटस ऑफ रिफ्यूजीस' पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं वास्तव में इस कन्वेंशन पर हस्ताक्षर करने वाले देश की यह कानूनी बाध्यता हो जाती है कि वह शरणार्थियों को अपने देश में शरण देने से इंकार नही कर सकता है। भले ही भारत ने अंतर्राष्ट्रीय कन्वेंशन पर हस्ताक्षर नहीं किया है परंतु भारत ने रोहिंग्या समस्या के समाधान हेतु अनेक प्रयास किए हैं। भारत ने 2017 में बांग्लादेश में बड़ी संख्या में शरणार्थियों के आगमन के कारण उत्पन्न मानवीय संकट के उत्तर में बांग्लादेश को सहायता देने का निर्णय लिया जिसे 'ऑपरेशन इंसानियत' का नाम दिया गया।[17]

तस्करी : भारत और बांग्लादेश के बीच सीमा की छिद्रपूर्ण प्रकृति ने सीमा पार आपराधिक गतिविधियों के विभिन्न रूपों को सुविधाजनक बनाया है, जिसमें पशुओं की तस्करी, मानव तस्करी (विशेष रूप से महिलाओं और बच्चों की) और नकली भारतीय मुद्रा का प्रचलन सम्मिलित है। इन अवैध गतिविधियों के प्रसार में एक महत्वपूर्ण योगदान कारक भारत द्वारा लगाया गया निर्यात प्रतिबंध है। बांग्लादेश में गोमांस की भारी मांग है, फिर भी इसकी आपूर्ति सीमित है। इसके विपरीत, भारत में पशुओं की अधिकता है लेकिन गोमांस की मांग अपेक्षाकृत कम है।[18] सीमित मांग के कारण, भारत दक्षिण एशियाई क्षेत्र में पशु अधिशेष वाले देश के रूप में उभरा है।[19] सीमा पार मवेशियों की तस्करी का पैमाना महत्वपूर्ण है, अनुमान से संकेत मिलता है कि लगभग 20000 से 25000 पशुओं, जिनकी कीमत लगभग 81000 अमेरिकी डॉलर है, को दैनिक आधार पर भारत से बांग्लादेश में अवैध रूप से ले जाया जाता है।[20] तस्करी की यह उच्च मात्रा बांग्लादेश में पशुओं और गोमांस की पर्याप्त मांग को रेखांकित करती है, जबकि भारत में पशुओं की अधिकता और गोमांस की तुलनात्मक रूप से कम मांग

इस अवैध व्यापार को पनपने के लिए अनुकूल वातावरण बनाती है। यह मुद्दा सीमा पर हिंसा और जानमाल की हानि की घटनाओं से जुड़ा हुआ है। इन घटनाओं में मारे गए लोगों में से कई पशु तस्कर हैं, जिन्हें बांग्लादेशी मीडिया अक्सर पशु व्यापारी कहता है। यह ध्यान देने योग्य है कि पशु तस्करी स्थानीय आबादी, सीमा रक्षकों और कानून प्रवर्तन एजेंसियों की भागीदारी और समर्थन पर निर्भर करती है। सीमावर्ती क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के सामने आने वाली आर्थिक चुनौतियों ने भी इन अवैध गतिविधियों के बढ़ने में योगदान दिया है। ये क्षेत्र महत्वपूर्ण आर्थिक असमानताओं और अविकसितता का अनुभव करते हैं, जो ऐसे व्यापार के विस्तार के लिए अनुकूल वातावरण बनाता है।

बांग्लादेश से नकली भारतीय मुद्रा की अवैध तस्करी एक चिंताजनक मुद्दा बनी हुई है। नकली भारतीय मुद्रा, जो अक्सर पाकिस्तान से आती है, बांग्लादेश के माध्यम से भेजी जाती है और फिर गुप्त रूप से भारत में लाई जाती है। इस अवैध गतिविधि का प्राथमिक हॉटस्पॉट भारत-बांग्लादेश सीमा है।[27] भारत-बांग्लादेश सीमा के पार नकली मुद्रा की तस्करी में सम्मिलित गतिविधियों की गुप्त प्रकृति इस समस्या की सीमा का व्यापक आकलन करने के प्रयासों में बाधा डालती है।

मानव तस्करी : भारत-बांग्लादेश सीमा पर मानव तस्करी एक महत्वपूर्ण और चिंताजनक मुद्दा है। इसकी विशेषता इसकी व्यापकता और घटित होने में सापेक्ष सहजता है। शोध से संकेत मिलता है कि बांग्लादेश से भारत में तस्करी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा विशिष्ट प्रवेश बिंदुओं के माध्यम से होता है, जिसमें से लगभग आधा बांग्लादेश के जेसोर जिले में बेनापोल के माध्यम से होता है। अन्य प्रमुख प्रवेश बिंदुओं में भारत में थानुरबैरी चंदुरिला, काइबा सुल्तानपुर, चोदरपुर, चपैनाबाबगुज, हिल अखवारा, चुआडांगा और पोलाडांगा सम्मिलित हैं। 2020 में, अगस्त तक, संदिग्ध मानव तस्करी के कारण भारत और बांग्लादेश के बीच अंतर्राष्ट्रीय सीमा पर 915 महिलाओं को पकड़ा गया। पिछले वर्षों में, संख्या 2019 में 936, 2018 में 1,107 और 2017 में 572 थी। सीमा सुरक्षा बल के सहयोग से मानव तस्करी विरोधी एनजीओ जस्टिस एंड केयर द्वारा किए गए एक अध्ययन से चौंकाने वाले आंकड़े सामने आए हैं। यह इंगित करता है कि पिछले एक दशक में 12 से 30 वर्ष की आयु के बीच 500,000 से अधिक बांग्लादेशी महिलाओं और बच्चों को अवैध रूप से भारत ले जाया गया है।[22] हालाँकि, इस मुद्दे के पैमाने का सटीक आकलन करने में कम रिपोर्टिंग एक महत्वपूर्ण बाधा बनी हुई है। पारिवारिक सम्मान, शर्म और डर जैसे सामाजिक कारक बचे लोगों को आगे आने और अपने दर्दनाक अनुभवों को साझा करने से रोक सकते हैं, जिससे मानव तस्करी की घटनाओं पर व्यापक डेटा इकट्ठा करना कठिन हो जाता है।

भारत-बांग्लादेश सीमा पशु तस्करी, मादक पदार्थों की तस्करी, हथियारों का व्यापार, व्यक्तियों की अवैध आवागमन और यहां तक कि आतंकवाद सहित कई सीमा पार आपराधिक गतिविधियों के लिए संवेदनशील रही है। इससे सीमा को खोलने से जुड़े संभावित संकटों के बारे में दोनों पक्षों में चिंता पैदा हो गई है। हालाँकि, दोनों देशों में यह मान्यता बढ़ रही है कि सीमा प्रबंधन के लिए शांतिपूर्ण और सहयोगात्मक दृष्टिकोण आर्थिक समृद्धि और पारस्परिक लाभ ला सकता है। यह विचार जोर पकड़ रहा है कि शांतिपूर्ण भारत-बांग्लादेश सीमा विकास के लिए उत्प्रेरक का काम कर सकती है। मुख्य चुनौती प्रभावी नीति उपकरण और तंत्र विकसित करने में है जो शांति, स्थिरता और सुरक्षा बनाए रखने की अनिवार्यता के साथ वैध वस्तुओं और लोगों की निर्बाध आवागमन की आवश्यकता को संतुलित करती है। इस संतुलन को बनाए रखने के लिए भारत और बांग्लादेश के बीच सावधानीपूर्वक समन्वय और सहयोग की आवश्यकता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि सीमा के खुलने से दोनों देशों के लिए सकारात्मक परिणाम हों। इन चुनौतियों का समाधान करके और सुरक्षा चिंताओं को दूर करते हुए वैध सीमा पार गतिविधियों को बढ़ावा देने वाले तंत्र स्थापित करने के लिए मिलकर काम करके, भारत और बांग्लादेश अपनी साझा सीमा पर सहयोग और समृद्धि बढ़ाने का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

तीस्ता नदी विवादः भारत और बांग्लादेश का 54 नदियों पर साझा स्वामित्व उनके द्विपक्षीय संबंधों में सर्वोपरि महत्व रखता है। इन साझा नदियों से पानी का समान वितरण उनके सहयोग का एक महत्वपूर्ण पहलू है। वर्तमान में, इनमें से दो नदियोंः गंगा और फेनी के लिए जल-बंटवारे की व्यवस्था स्थापित की गई है।[23] हालाँकि, सबसे उल्लेखनीय और विवादास्पद मुद्दा तीस्ता नदी का

जल-बंटवारा समझौता बना हुआ है। तीस्ता नदी के जल-बंटवारे की बातचीत में काफी प्रगति हुई है, दोनों देश 2011 में भारतीय प्रधान मंत्री मनमोहन सिंह की बांग्लादेश की निर्धारित यात्रा के दौरान एक समझौते को अंतिम रूप देने के करीब आ गए हैं। दुर्भाग्य से, पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी की आपत्तियों के कारण हस्ताक्षर स्थगित कर दिया गया था, जिन्होंने अंतिम समय में प्रस्तावित फॉर्मूले के बारे में चिंता जताई थी।[24] इस देरी के कारण तीस्ता समझौता लगातार स्थगित हो रहा है, जो भारत और बांग्लादेश के बीच विवाद का एक उल्लेखनीय मुद्दा बन गया है। तीस्ता नदी जल-बंटवारा समझौते पर हस्ताक्षर करने में लंबे समय से हो रही देरी दोनों देशों के बीच तनाव का एक बड़ा स्रोत बनकर उभरी है। बांग्लादेश के भीतर भारत विरोधी भावनाओं को भड़काने के लिए विभिन्न निहित स्वार्थों द्वारा इस अनसुलझे मुद्दे का फायदा उठाया गया है। यह मामला सार्वजनिक असंतोष को भड़काने और कूटनीतिक चुनौतियों को बढ़ाने की क्षमता रखता है, क्योंकि असमान जल बंटवारे की धारणाओं को राजनीतिक लाभ के लिए आसानी से हेरफेर किया जा सकता है।

विवादास्पद मुद्दों का शांतिपूर्ण समाधान : भारत और बांग्लादेश के बीच द्विपक्षीय संबंधों को दो महत्वपूर्ण विवादों - समुद्री सीमा और भूमि सीमा समझौते (एलबीए) के सफल और शांतिपूर्ण समाधान द्वारा चिह्नित किया गया है।

समुद्री सीमा का समाधानः हाल के वर्षों में, भारत और बांग्लादेश ने जटिल चुनौतियों का सहयोगात्मक ढंग से समाधान करने की अपनी क्षमता का प्रदर्शन किया है, जिसका उदाहरण भूमि और समुद्री सीमाओं सहित जटिल मुद्दों का सफल समाधान है। इस द्विपक्षीय सहयोग में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर 2014 में आया जब हेग में एक अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने बांग्लादेश के पक्ष में फैसला सुनाया जिसने भारत को बंगाल की खाड़ी में विवादित क्षेत्र के एक बड़े हिस्से पर अपने संप्रभु दावों को स्वेच्छा से छोड़ने के लिए प्रेरित किया। हेग स्थित स्थायी मध्यस्थता न्यायालय (पीसीए) ने विवाद की मध्यस्थता करने और निष्पक्ष और स्वीकार्य फैसले पर पहुंचने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। परिणामस्वरूप, भारत विवादित 25,692 वर्ग किलोमीटर में से लगभग 19,467 वर्ग किलोमीटर पर अपना संप्रभु अधिकार छोड़ने पर सहमत हो गया। इस महत्वपूर्ण समझौते ने शांतिपूर्ण और राजनयिक समाधानों के लिए देशों की साझा प्रतिबद्धता को प्रदर्शित किया, जिससे उनके सौहार्दपूर्ण संबंधों में वृद्धि हुई। स्थायी मध्यस्थता न्यायालय के फैसले को व्यापक स्वीकृति मिली और इसे दोनों पक्षों द्वारा एक सकारात्मक कदम के रूप में पेश किया गया।[25]

भूमि सीमा समझौता : भारत-बांग्लादेश भूमि सीमा समझौता, जिसका उद्देश्य एन्क्लेव से संबंधित लंबे समय से चले आ रहे सीमा विवाद को हल करना था, दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय संबंधों में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर साबित हुआ। एन्क्लेव एक देश के क्षेत्र के वे हिस्से हैं जो पूरी तरह से दूसरे देश के क्षेत्र से घिरे हुए हैं। इस मामले में, बांग्लादेश के अंदर भारतीय परिक्षेत्र और भारत के भीतर बांग्लादेशी परिक्षेत्र स्थित थे, जिससे एक जटिल और अनोखी स्थिति पैदा हुई। इस मुद्दे के समाधान के लिए, भारत और बांग्लादेश दोनों ने एन्क्लेव समस्या को हल करने की पहल की। सितंबर 2011 में, दोनों सरकारों ने कुल 162 परिक्षेत्रों की अदला-बदली करने के अपने इरादे की घोषणा की। इसमें सीमाओं को अधिक सुसंगत रूप से संरेखित करने और इन परिक्षेत्रों के निवासियों को राष्ट्रीयता का विकल्प प्रदान करने के लिए क्षेत्रों को संबंधित देशों में स्थानांतरित करना सम्मिलित था। समझौते के अंतर्गत, भारत को भारत के अंदर स्थित 51 बांग्लादेशी एन्क्लेव प्राप्त करने के लिए निर्धारित किया गया था, जिनका कुल क्षेत्रफल 7,110 एकड़ था। दूसरी ओर, बांग्लादेश को बांग्लादेश के अंदर स्थित 111 भारतीय परिक्षेत्र प्राप्त होने थे, जिनका कुल क्षेत्रफल 17,160 एकड़ था।[26] (चित्र 1)

चित्र 1: भारत-बांग्लादेश अंतर्राष्ट्रीय सीमा पर परिक्षेत्र (पश्चिम बंगाल सेक्टर)

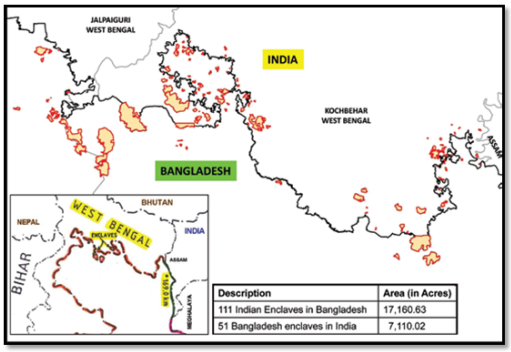

स्रोतः भारत-बांग्लादेश भूमि सीमा समझौता, विदेश मंत्रालय, भारत सरकार

बांग्लादेश लगभग 10,000 एकड़ भूमि का अधिग्रहण करने के लिए तैयार है, साथ ही अपने वर्तमान 4,617 एकड़ के दाहग्राम-अंगरपोटा एन्क्लेव का स्वामित्व भी बनाए रखेगा। इन परिक्षेत्रों के निवासी उन संबंधित देशों के नागरिकों के रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिए उत्सुक हैं जिनके अंदर ये परिक्षेत्र स्थित हैं। दोनों पड़ोसी देशों के बीच सहयोगात्मक प्रयासों से विवाद को सुलझाने में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। यह भारत और बांग्लादेश ने सितंबर 2011 में भूमि सीमा समझौते के समय संभव हुआ।

एन्क्लेव के आदान-प्रदान से संबंधित 2013 का संविधान संशोधन विधेयक भारतीय संसद से अनुमोदन की प्रतीक्षा कर रहा था, जबकि बांग्लादेश ने पहले ही इसका अनुसमर्थन दे दिया था। यह विधेयक 18 दिसंबर, 2013 को कांग्रेस के नेतृत्व वाली यू.पी.ए. सरकार के कार्यकाल के दौरान राज्यसभा में पेश किया गया था। हालांकि, इसे असम गण परिषद और भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) जैसे राजनीतिक दलों के विरोध का सामना करना पड़ा। जिन्होंने तर्क दिया कि इससे बांग्लादेश को क्षेत्रीय नुकसान होगा। हाल ही में, प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी और उनकी सरकार के नेतृत्व में, सौदे के लिए अनुसमर्थन सुनिश्चित करने के लिए नए सिरे से प्रयास किया गया है। विशेष रूप से, द्विपक्षीय चर्चाओं के बाद 2011 में दोनों देशों के बीच 6.1 किमी तक फैली सीमा के एक हिस्से का सफलतापूर्वक सीमांकन किया गया था।

7 मई 2015 को, भारतीय संसद ने भूमि सीमा समझौते को लागू करने के लिए एक महत्वपूर्ण विधेयक को सर्वसम्मति से पारित करके एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर प्राप्त किया, जिससे भारत और बांग्लादेश के बीच 41 वर्षों से चले आ रहे सीमा विवाद का समाधान हो गया। यह विकास भारत की 'पड़ोसी-पहले' नीति के प्रति प्रतिबद्धता का उदाहरण है। लोकसभा ने एक दुर्लभ सर्वसम्मति का प्रदर्शन किया क्योंकि इसने संविधान (119वें संशोधन) विधेयक का समर्थन किया, जिससे 1974 के भारत-बांग्लादेश भूमि सीमा समझौते के कार्यान्वयन को सुविधाजनक बनाया गया। विधेयक को सदन में उपस्थित सभी 331 सदस्यों का समर्थन प्राप्त हुआ, जिससे यह संसद द्वारा सफलतापूर्वक पारित किया गया 100वां संवैधानिक संशोधन बन गया।

भारतीय संसद द्वारा भूमि सीमा समझौते (एलबीए) की सर्वसम्मति से स्वीकृति को बांग्लादेश में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर माना जाता है, विशेषकर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की देश की आगामी यात्रा की प्रत्याशा में। यह अधिनियम बांग्लादेश के प्रति भारत के समग्र मैत्रीपूर्ण रुख की पुष्टि के रूप में भी कार्य करता है। बांग्लादेश के विश्लेषक और विशेषज्ञ इस बात पर जोर देते हैं कि यह कदम उनके देश के भीतर भारत के प्रति सकारात्मक धारणा बनाने में काफी महत्व रखता है। एलबीए के समर्थन को बांग्लादेश के साथ निष्पक्षता और सहयोग के प्रति भारत की प्रतिबद्धता के प्रमाण के रूप में देखा जाता है। इस भावना को बांग्लादेश की कार्यवाहियों से बल मिलता है, जिसमें उसकी सीमाओं के अंदर शरण लेने वाले विद्रोही नेताओं को संबोधित करने में उसका सहयोग और आपसी साझेदारी को प्रदर्शित करते हुए विभिन्न कनेक्टिविटी और बुनियादी ढांचा परियोजनाओं पर भारत के साथ सहयोग करने की इच्छा सम्मिलित है। इस समझौते की परिणति भारत और बांग्लादेश के नेतृत्व के बीच अपने संबंधों को सुदृढ़ करने और सद्भावना को बढ़ावा देने के साझा संकल्प का प्रतीक है। यह बांग्लादेश के प्रयासों की भारत की मान्यता और पारस्परिक रूप से लाभकारी पहलों पर सहयोग बढ़ाने की उसकी उत्सुकता का प्रतीक है।

विश्लेषण एवं निष्कर्ष : अंत में, भारत-बांग्लादेश द्विपक्षीय संबंधों का प्रक्षेप वक्र ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक बंधनों द्वारा जटिल रूप से जुड़े हुए साझा सहयोग और विकट चुनौतियों की एक कहानी को समाहित करता है। पिछले कुछ वर्षों में, दोनों देशों ने विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग बढ़ाने, क्षेत्रीय स्थिरता को बढ़ावा देने और लोगों से लोगों के बीच संबंधों को बढ़ावा देने के लिए एक लचीली प्रतिबद्धता का प्रदर्शन किया है। चुनौतियों का डटकर सामना करने के संकल्प से उल्लेखनीय सफलताएँ मिली हैं, जिसका उदाहरण लंबे समय से चले आ रहे सीमा विवादों का समाधान और मानवीय संकटों से निपटने के लिए संयुक्त प्रयास हैं। भूमि सीमा समझौता और प्राकृतिक आपदाओं से निपटना राजनयिक जुड़ाव और आपसी समझ की प्रभावकारिता के प्रमाण के रूप में खड़ा है।

फिर भी, सौहार्दपूर्ण संबंधों का मार्ग बाधाओं से रहित नहीं है। अवैध अप्रवास, जल-बंटवारे विवाद और रोहिंग्या संकट जैसे मुद्दों ने संबंधों के लचीलेपन का

परीक्षण किया है। जिस तरह से इन चुनौतियों से निपटा गया वह द्विपक्षीय जुड़ाव की परिपक्वता और टिकाऊ समाधानों की सामूहिक खोज को रेखांकित करता है। चूँकि दोनों देश आर्थिक विकास, कनेक्टिविटी और क्षेत्रीय सहयोग के रास्ते खोज रहे हैं, इसलिए यह स्वीकार करना अनिवार्य है कि चुनौतियाँ बनी हुई हैं। इस संदर्भ में, भारत-बांग्लादेश द्विपक्षीय संबंधों की यात्रा राजनयिक परिपक्वता, समझौता करने की कला और प्रत्येक राष्ट्र की प्राथमिकताओं की बारीकियों को पहचानते हुए अधिक से अधिक अच्छाई को अपनाने की क्षमता में एक गहरा सबक का प्रतीक है। दोनों देश चुनौतियों पर काबू पाने, अवसरों का लाभ उठाने और गहरे सहयोग, आपसी सम्मान और अपने लोगों और पूरे क्षेत्र के लिए समृद्धि की साझा खोज द्वारा चिह्नित भविष्य को बढ़ावा देने के लिए तैयार हैं।

सन्दर्भ

1. Datta, S. 'India and Bangladesh: Domestic Perceptions and Bilateral Relations', Strategic Analysis, vol. 35, no. 4, 2011, pp. 595-611.
2. Uddin, S. 'India-Bangladesh Relations in the Context of Regional Cooperation', South Asian Survey, vol. 28, no. 2, 2021, pp. 134-151.
3. Rather, Z.A. 'India–Bangladesh Border Issues', International Studies, vol. 50, no. 1-2, 2013, pp. 130–144
4. Das, P, 'India's Border Management : Select Documents', Institute of Defence Studies and Analysis, 2010.
5. Noolkar Oak, Gauri 'Geopolitics of Water Conflicts in the Teesta River Basin, Both Ends', 2017
6. Shukla Ashish, 'Strengtening Cooperation and Reducing Irritants : India-Bangladesh Relations Today', Indian Forign Affairs Journal, Vol.15, No.3 July 2020.
7. Roy, K.B., S. Bandyopadhyay, and D. Chakraborty, 'Migration from Bangladesh to the Northeast of India: A Review of a Century'. Foreign Policy Research Centre Journal, vol. 16, no. 4, 2013, pp. 61–70.
8. Rathor Z.A., op. cit., pp. 130-144
9. Datta, S. *'Bangladesh Illegal Migration and Challenges for India, India's Neighbourhood Challenges in the Next Two Decades'*, edited by R. Dahiya and A.K. Behuria, 2012, pp. 19–34.
10. Ibid. p. 12.
11. Das, P. op.cit., pp. 9-10
12. Refugee, R., and Bangladesh, R. 'Rohingya Population by Location Total Rohingya Population' Demographic Profile Specific Needs Family Size. 2022. P 1.
13. Rajya Sabha. Government of India Ministry of Home Affairs, 2017. https://mha.gov.in/MHA1/Par2017/pdfs/par2017-pdfs/rs-20122017/534.pdf.
14. Development and Justice Initiative, 'Rohingya Migration to India', Patterns, Drivers and Experiences, 2019, https://mixedmigration.org/wpcontent/uploads/2019/04/063_briefingpaper_Rohingya_India.pdf.
15. Chaudhary, Samrat, and Preeti Gill. *'Insider-Outsider Belonging and Under-Belonging in North-East India'*, Manjul Publishing House, 2019, pp. 11-14.
16. Hussain, Monirul. *'Interrogative Development: State Displacement and Popular Resistance in North-East India'*. SAGE Studies on India North-East, 2010, p. 15.
17. Operation Insaniyat: 'Humanitarian Assistance to Bangladesh on Account of Influx of Refugees'. Ministry of External Affairs, Sept. 2017. https://mea.gov.in/pressreleases.htm?dtl/28944/Operation_Insaniyat__Humanitarian_assistance_to_Bangladesh_on_account_of_influx_of_refugees.
18. Rammohan, E.N. 'The Indo-Bangladesh Border', Journal of the United Service Institution of India, vol. 141, no. 586, 2011, pp. 548–554.
19. Ibid., pp. 548–554.
20. Chowdhury, S.T. 'A Border Too Far for Bangladesh', Asia Times Online, 7 Feb. 2012, http://www.atimes.com/atimes/South_Asia/NB07Df01.html.
21. Ibid.
22. Ray, Shantanu Guha. *'Bengal New Epicentre of Human Trafficking'*, Sunday Guardian, 14 Jan. 2018.
23. Noolkar-Oak, Gauri, 'Geopolitics of Water Conflicts in the Teesta River Basin', Both Ends, 2017, p. 57.
24. Majumdar, A. Dutta. 'Why Mamata Banerjee is Opposed to Sharing Teesta Waters', Livemint, 11 Apr. 2017, https://www.livemint.com/Politics/dtlGtxiSUVDJgo7eoBxxDL/Why-Mamata-Banerjee-is-opposed-to-sharing-Teesta-waters.html.
25. Shukla, Ashish, 'Strengthening Cooperation and Reducing Irritants: India-Bangladesh Relations Today', Indian Foreign Affairs Journal, vol. 15, no. 3, July 2020, pp. 245-253.
26. LBA, Instrument of Ratification, 2015.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

भारत की एक्ट ईस्ट नीति और इंडोनेशिया के साथ रक्षा सहयोग : 2014–2024 का विश्लेषण

❑ रशवंत सिंह
❖ डॉ. विमल कुमार कश्यप

सूचक शब्द : एक्ट ईस्ट नीति, रक्षा सहयोग, हिंद-प्रशांत क्षेत्र, क्षेत्रीय सुरक्षा तथा दक्षिण पूर्व एशिया।

भारत की विदेश नीति के एक महत्वपूर्ण स्तंभ के रूप में, दक्षिण-पूर्व एशिया भारत के लिए हमेशा से रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है। इस क्षेत्र में भारत की सांस्कृतिक उपस्थिति हजारों वर्षों से रही है, जिसमें व्यापार, धर्म, कला और वास्तुकला के माध्यम से गहरे संबंध बने रहे हैं। हालांकि, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से भारत ने कई दशकों तक इस क्षेत्र में उतनी प्रभावी भूमिका नहीं निभाई थी। लेकिन, 1990 के दशक में प्रारंभ की गई 'लुक ईस्ट पॉलिसी' ने इस दिशा में एक नया मोड़ लिया, जिससे भारत ने इस क्षेत्र में अपनी आर्थिक और कूटनीतिक स्थिति को सुदृढ़ किया। इस नीति के अंतर्गत, भारत ने दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों के साथ अपने व्यापारिक संबंधों को सुदृढ़ कर, क्षेत्रीय सुरक्षा सहयोग को बढ़ावा दिया और बहुपक्षीय मंचों पर अपनी भागीदारी को और सशक्त बनाया ।जहां पहले कभी इस क्षेत्र में चीन का प्रभाव अधिक था, आज भारत की स्थिति श्रेष्ठतर है। भारत न केवल आर्थिक सहयोग के मामले में बल्कि क्षेत्रीय सुरक्षा और स्थिरता में भी एक महत्वपूर्ण भागीदार बन चुका है। इसके साथ ही, 'एक्ट ईस्ट पॉलिसी' ने इन संबंधों को और गहरा किया, जिससे न केवल व्यापार और निवेश में वृद्धि हुई, बल्कि सांस्कृतिक और जनसंपर्क भी सुदृढ़ हुए हैं। दक्षिण-पूर्व एशिया में भारत की बढ़ती उपस्थिति और प्रभाव ने इस क्षेत्र में भारत की नेतृत्वकारी भूमिका को भी पुनःस्थापित किया है, जिससे यह क्षेत्र भारत की विदेश नीति का एक अभिन्न हिस्सा बन गया है।

भारत की अपने भौगोलिक व प्राकृतिक संसाधनों के कारण हमेशा से यह इच्छा रही है कि, वह एशियाई देशों का नेतृत्व कर एक अहम भूमिका को निभा सके ताकि एशियाई क्षेत्र विशेषकर दक्षिण एशियाई देशों व दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में किसी बाहरी शक्ति का हस्तक्षेप ना हो सके। दक्षिणी एशियाई और दक्षिण पूर्व एशियाई क्षेत्र सुरक्षा व समृद्धि की दृष्टि से हमेशा महत्वपूर्ण रहा है। इसीलिए स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारत ने यह दावा भी किया कि भारत अपने भौगोलिक क्षेत्र व आर्थिक एवम् सैन्य क्षमता होने के कारण विश्व स्तर पर विशेष रूप से एशिया में जिस स्तर का अपना स्थान रख सकता है इसे वह नहीं मिल पाया। अतएव भारतीय विदेश नीति निर्माताओं ने कहा है कि, भारतीय विदेश नीति का ये उद्देश्य रहेगा कि भारत का जो खोया हुआ गौरव है उसे पुनः प्राप्त करे। **इस लक्ष्य** की प्राप्ति हेतु भारत के द्वारा अपनी विदेश नीति में वि-उपनिवेशीकरण के सिद्धांत को लागू कर दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के साथ एक सामान्य जुड़ाव को स्थापित करने का प्रयास किया ताकि इन देशों का भारत के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण तैयार हो सके और भारत की नेतृत्व करने की भूमिका को सहज रूप से स्वीकार कर सकें। इस कार्य हेतु भारत ने अपनी स्वतंत्रता से पूर्व व पश्चात् कई अथक प्रयास किये जैसे सन 1928 में ही कांग्रेस ने यह घोषणा की कि "स्वतंत्रता के लिए भारत की जनता का संघर्ष साम्राज्यवाद के विरुद्ध व्यापक वैश्विक संघर्ष का हिस्सा है", मार्च, 1947 में दिल्ली में एशियन संबंधों पर कांफ्रेंस आयोजित करना, 1949 में इंडोनेशिया की आजादी हेतु कांफ्रेंस आयोजित करना इत्यादि।[1] **भारत द्वारा** किये गये इन अथक प्रयासों का सकारात्मक परिणाम भी स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होने लगा अर्थात 1955 में, इंडोनेशिया के शहर बांडुंग में हुए बांडुंग सम्मेलन में जब कई नव एशियन-अफ्रीकन स्वतंत्र देश आए तो इन नव स्वतंत्र देशों के मध्य एकता को सुदृढ़ करने हेतु किसी देश के नेतृत्व की आवश्यकता थी तो ऐसे में उस समय भारत ही मात्र एक ऐसा देश था जो इन नव स्वतंत्र देशों का नेतृत्व कर सकता था और भारत ने ऐसा किया भी किन्तु भारत अपनी इस भूमिका को एशिया में विशेष तौर पर दक्षिण

❑ शोध अध्येता राजनीति विज्ञान विभाग, सप्त सिन्धु परिसर, देहरा, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, कांगड़ा (हि.प्र.)
❖ सहायक आचार्य राजनीति विज्ञान विभाग, सप्त सिन्धु परिसर, देहरा, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, कांगड़ा (हि.प्र.)

पूर्व एशिया के देशों में लंबे समय तक नहीं निभा पाया। इसके पीछे मुख्य कारण 1962 में भारत चाइना युद्ध में भारत की हार। दूसरी ओर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बदलती परिस्थिति और समीकरण जैसे पाकिस्तान और चाइना का भारत के शत्रु के रूप में उभरना दक्षिण पूर्व एशियाई देशों का अमेरिका के प्रति निष्ठावान होना। 1970 के दशक में तेल संकट के कारण भारत का ऊर्जा सुरक्षा हेतु पश्चिमी एशियाई देशों की ओर होना इत्यादि उत्तरदायी थे। इस तरह इन संबंधों के कारण 1960, 1970 और 1980 तक भारत और दक्षिण पूर्व एशिया देशों के संबंधों में भारी गिरावट आयी और भारतीय विदेश नीति में दक्षिण पूर्व एशियाई क्षेत्रों को अनदेखा कर दिया गया।[2]

1980 के बाद, भारत को धीरे-धीरे दक्षिण पूर्व एशियाई देशों की कीमत का अनुभव होने लगा जिसका मुख्य कारण था इन पूर्वी एशियाई देशों का बढ़ता आर्थिक विकास और भारत में हुआ वित्तीय-आर्थिक संकट (1991)। इन कारणों से भारत ने अनुभव किया कि फिर से दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के साथ संबंध स्थापित करने की आवश्यकता है। इसलिये 1992 में भारत के प्रधानमंत्री पी.वी नरसिम्हा राव के द्वारा 'पूर्व की ओर देखो नीति' को प्रस्तुत किया ताकि भारत के इन देशों के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित हो सकें। यहाँ पर इस पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करने का यही उद्देश्य है कि भारत के लिए दक्षिण पूर्व एशियाई देश सुरक्षा व समृद्धि की दृष्टि से आरंभ से ही महत्वपूर्ण रहे हैं। आज तत्कालीन परिस्थिति को देखें तो दक्षिण पूर्व एशिया का क्षेत्र और अधिक महत्वपूर्ण हो गया है क्योंकि चीन अलग-अलग प्रोजेक्ट के माध्यम से यहां पर अपनी उपस्थिति को दिन प्रतिदिन बढ़ा रहा है। अगर सामाजिक रचनात्मक सिद्धांत को लागू कर देखें तो चीन का दक्षिण पूर्व एशियाई क्षेत्र में बढ़ता प्रभाव भारत की सुरक्षा एवम् समृद्धि के लिए कोई अच्छा संकेत नहीं है क्योंकि चीन लंबे समय से भारत के साथ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर शत्रुतापूर्ण व्यवहार करता आया है। इसीलिए इस क्षेत्र में चीन भारत के लिए एक चिंता का विषय है।

2014 में, भारत की घरेलू राजनीति में एक बहुत बड़ा परिवर्तन आया जिसका प्रभाव अंतरराष्ट्रीय राजनीति में भी प्रदर्शित हुआ अर्थात लगभाग 30 साल बाद भारत में फिर से पूर्ण बहुमत वाली सरकार (भारतीय जनता पार्टी) का निर्माण हुआ। भारतीय जनता पार्टी जैसे-ही सत्ता में आयी वैसे ही भारतीय विदेश नीति में परिवर्तन कर यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाया गया अर्थात 2014 से पहले भारत के द्वारा अपनी विदेश नीति में कोई भी निर्णय लेते समय यह देखा जाता था कि उस निर्णय से उसके किसी मित्र राज्य को तो हानि नहीं हो रही। किन्तु 2014 के बाद भारत के द्वारा इस उपागम का प्रयोग करना बंद कर दिया गया। अब किसी निर्णय से भारत का राष्ट्रीय हित पूर्ण होता है या फिर राष्ट्रीय सुरक्षा को बढ़ावा मिलता है तो भारत उस निर्णय को अवश्य लेगा चाहे फिर इससे किसी अन्य देश को आपत्ति ही क्यों न हो। इस तरह 2014 के बाद भारतीय विदेश नीति में बहुत बड़ा परिवर्तन आया और यही परिवर्तन शोध पत्र के समय (2014 से 2024) के निर्धारण का आधार बना।

भारतीय विदेश नीति में आये इस परिवर्तन के उपरांत, भारत के द्वारा दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के प्रति व्यवहारिक परिवर्तन भी आना आरंभ हो गया था। जिसका शुभ आरंभ 'पूर्व की ओर देखो' नीति को बदल कर उसे एक्ट ईस्ट नीति में परिवर्तित कर देना था। भारत के द्वारा किये-गये इस परिवर्तन का हेतु यही था कि वह दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के साथ अपने संबंधों को और अधिक बहु-आयामी कर, सुदृढ़ कर सके। ताकि भारत इस क्षेत्र में अपनी उपस्थिति को सुदृढ़ कर चीन के प्रभाव को बढ़ने से रोक सके और ऐसा तभी संभव हो सकता था जब भारत आर्थिक क्षेत्र के साथ-साथ रक्षा-क्षेत्र में भी अपनी उपस्थिति को प्रस्तुत कर सके। अगर 2014 के बाद देखा जाये तो रक्षा-क्षेत्र में भारत के द्वारा महत्वपूर्ण कदम उठाये जा रहे हैं और इसी तर्क को प्रस्तुत करने के लिए प्रस्तुत शोध पत्र में भारत इंडोनेशिया के बीच के रक्षा-सहयोग संबंधों का विश्लेषण किया गया है।

शोध पत्र का उदेश्यः भारत-इंडोनेशिया के बीच रक्षा सहयोग के महत्व का विश्लेषण करना।

शोध प्रविधिः इस शोध पत्र में ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक शोध पद्धतियों का प्रयोग किया गया है, इसमें प्राथमिक और द्वितीयक आंकड़ों को उपयोग में लिया गया है।, प्राथमिक आंकड़ों में सरकारी रिपोर्ट, गैर-सरकारी रिपोर्ट, राष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित रिपोर्ट इत्यादि सम्मिलित की गई है। द्वितीय आंकड़ों में शोध

पत्रों, पुस्तकों, समाचार पत्रों इत्यादि को प्रयोग में लिया गया है।

भारत की एक्ट ईस्ट नीति 2014 में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के कार्यकाल में एक विस्तारित और पुनः परिभाषित नीति के रूप में उभरी, जिसका उद्देश्य दक्षिण-पूर्व एशिया, पूर्वी एशिया, और व्यापक हिंद-प्रशांत क्षेत्र में भारत के रणनीतिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक संबंधों को सुदृढ़ करना था। यह नीति, 1991 में शुरू की गई लुक ईस्ट नीति का एक स्वाभाविक विस्तार है, जो तब आर्थिक सुधारों और वैश्वीकरण की पृष्ठभूमि में दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों के साथ आर्थिक और व्यापारिक संबंधों पर केंद्रित थी। लेकिन, वैश्विक और क्षेत्रीय भू-राजनीतिक परिदृश्य में परिवर्तन, खासकर चीन के उदय, और हिंद-प्रशांत क्षेत्र के बढ़ते महत्व ने भारत को अपनी पूर्वी नीतियों का फ़िर से आकलन करने और उन्हें पुनः सुदृढ़ करने की आवश्यकता को अनुभव कराया। भारत ने इस नीति के अंतर्गत दक्षिण-पूर्व एशिया के कई देशों जैसे इंडोनेशिया, वियतनाम, मलेशिया के साथ अपने रणनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संबंधों को न केवल बढ़ावा दिया, बल्कि विभिन्न बहुपक्षीय मंचों जैसे आसियान क्षेत्रीय फोरम (ARF), पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन (EAS), और बिम्सटेक में भी सक्रिय रूप से भाग लिया है। इसके अंतर्गत रक्षा सहयोग, समुद्री सुरक्षा और कनेक्टिविटी परियोजनाओं में उल्लेखनीय प्रगति हुई है, जिनका उद्देश्य क्षेत्रीय सुरक्षा और स्थिरता सुनिश्चित करना है। हालाँकि, इंडोनेशिया के साथ भारत के रक्षा सहयोग पर व्यापक रूप से अध्ययन कम ही हुआ है, जबकि यह क्षेत्रीय सुरक्षा के दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इंडोनेशिया, जो हिंद और प्रशांत महासागरों के बीच एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है, भारत की सुरक्षा और रणनीतिक साझेदारी के लिए एक आवश्यक घटक के रूप में उभर कर आया है। इसके साथ गरुड शक्ति जैसे सैन्य अभ्यासों ने दोनों देशों के बीच विश्वास और सामरिक सहयोग को बढ़ावा दिया है।

भारत की रक्षा नीति पारंपरिक रूप से पाकिस्तान और चीन के साथ युद्ध की स्थिति तथा आतंकवाद और उग्रवाद जैसे आंतरिक सुरक्षा खतरों का प्रबंधन करने पर केंद्रित रही है, मुख्य रूप से पाकिस्तान स्थित आतंकवादी संगठनों से।[3] इस बीच भारत के आसियान सदस्य देशों के साथ व्यापक रक्षा संबंध नहीं थे। 1950 से 1980 के दशक तक पाकिस्तान और चीन के प्रति भारत की रक्षा नीति इस बात का संकेत करती थी कि पूर्व और दक्षिण-पूर्व एशिया नई दिल्ली के रणनीतिक क्षेत्र से दूर थे तथा शीत युद्ध के बाद के दौर में ही, खासकर 11 सितंबर, 2001 को अमेरिका पर खुले समुद्र द्वारा होने वाले हमले के बाद, भारत ने समुद्र रक्षा को महत्व देते हुए दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों के साथ घनिष्ठ रक्षा संबंध विकसित करना शुरू किये।

इसी समय, भारत दक्षिण-पूर्व एशिया में तेजी से सक्रिय हो गया। इस क्षेत्र के देशों के साथ अपने रक्षा संबंधों को सुदृढ़ करने के साथ ही अप्रैल 2004 में भारत ने अपने नए समुद्री सिद्धांत का अनावरण किया। इस सिद्धांत के अनुसार, भारत का समुद्री क्षेत्र फारस की खाड़ी से मलक्का जलडमरू मध्य तक फैला हुआ था।[4] भारत के नौसेना प्रमुख द्वारा जारी किए गए दस्तावेज में नई दिल्ली की विदेश और रक्षा नीतियों का समर्थन करने में भारतीय नौसेना के लिए चार प्रमुख भूमिकाओं की पहचान की गई। सबसे पहले, सैन्य कार्य ने बल प्रक्षेपण की क्षमता के विकास और विदेशी नौसेनाओं के साथ विश्वास और अंतर-संचालन का निर्माण करने पर जोर दिया। दूसरा, नौसेना का कूटनीतिक कार्य भारत के अपने पड़ोसियों और हिंद महासागर क्षेत्र में रणनीतिक महत्व के देशों के साथ संबंधों को बढ़ाना था, जिसमें सिंगापुर, मलेशिया, इंडोनेशिया, थाईलैंड और म्यांमार जैसे दक्षिण-पूर्व एशियाई देश सम्मिलित थे। तीसरा, नौसेना का रक्षक कार्य हिंद महासागर क्षेत्र में स्थिरता बनाए रखने के लिए तट रक्षक के साथ सहयोग करना था, जिसका उद्देश्य मध्य पूर्व और पूर्वी एशिया के बीच समुद्री वाणिज्य और ऊर्जा आपूर्ति में व्यवधान को कम करना था। अंत में, सिद्धांत ने नौसेना की मानवीय भूमिका पर जोर दिया, जिसमें खोज और बचाव मिशन और बाढ़, सुनामी और भूकंप जैसी आपदाओं के दौरान सहायता सम्मिलित थी।[5]

भारत इंडोनेशिया रक्षा सहयोग का विकास

भारत लंबे समय से इंडोनेशियाई नौसेना को रक्षा उपकरणों की आपूर्ति कर रहा है। इंडोनेशिया ने तारपीडो के लिए बैटरी, पांचवी श्रेणी के कोरवेट के लिए इंजन जैसी वस्तुओं के आयात में रुचि दिखाई है, साथ ही टाइप 209 पनडुब्बियों के लिए मरम्मत सुविधाओं की मांग आपूर्ति भी की। दोनों देशों ने 1995 में रक्षा

सहयोग पर एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए, जो आपूर्ति, प्रौद्योगिकी, संयुक्त उत्पादन और संयुक्त परियोजनाओं पर केंद्रित था। 28 नवंबर 2005 में इंडोनेशियाई राष्ट्रपति सुसीलो बामबांग युधोयोनो की यात्रा के दौरान, दोनों देशों ने वार्षिक वरिष्ठ अधिकारी स्तर की रणनीतिक वार्ता आयोजित करने पर सहमति व्यक्त की, जिसकी पहली बैठक 2006 की पहली छमाही में आयोजित की गई। दोनों देशों के राजनयिक प्रशिक्षण संस्थानों के बीच सहयोग पर एक समझौता ज्ञापन पर भी हस्ताक्षर किए गए हैं। भारत ITEC-I कार्यक्रम के आधीन इंडोनेशियाई सैन्य अधिकारियों को प्रशिक्षण प्रदान कर रहा है।[6]

जुलाई 2004 में भारत और इंडोनेशिया ने अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद से निपटने के लिए एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए, जिसमें आतंकवाद से निपटने के लिए एक संयुक्त कार्य समूह (जे डब्ल्यू जी) के गठन का प्रावधान किया गया था। जे डब्ल्यू जी ने फरवरी 2005 में नई दिल्ली में अपनी पहली बैठक की और सूचना एवं गोपनीय जानकारी के आदान-प्रदान, क्षमता निर्माण, कानूनी सहयोग के माध्यम से आतंकवाद, अन्य अंतरराष्ट्रीय अपराधों से निपटने और समुद्री सुरक्षा में द्विपक्षीय सहयोग को सुदृढ़ करने पर सहमति व्यक्त की जिसमें इंडोनेशियाई और भारतीय नौसेनाएं अंतर-संचालन क्षमता बढ़ाने के लिए संयुक्त अभ्यास कर रही हैं। सितंबर 2006 में दोनों नौसेनाओं ने अंडमान सागर में समुद्री डकैती की जाँच के लिए अपना पहला संयुक्त गश्त अभियान चलाया। जून 2007 में भारतीय विदेश मंत्री प्रणब मुखर्जी की इंडोनेशिया यात्रा के दौरान, दोनों देशों ने द्विपक्षीय सुरक्षा सहयोग को सुदृढ़ करने की आवश्यकता की पुष्टि की। द्विपक्षीय सहयोग के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्र मलक्का जलडमरूमध्य में और उसके आसपास समुद्री आतंकवाद और समुद्री डकैती से बचाव के लिए इस सहयोग का मुख्य हिस्सा भारतीय नौसेनाओं द्वारा इंडोनेशियाई बंदरगाहों का दौरा और संयुक्त नौसैनिक अभ्यास और अंडमान सागर में इंडोनेशियाई जहाजों की सुरक्षा करना रहा है।[7] 1995 से, इंडोनेशिया, सिंगापुर, थाईलैंड और मलेशिया के साथ, भारत द्वारा आयोजित नौसेनाओं की द्विवार्षिक सभा 'मिलान' में भाग ले रहा है। भारत इंडोनेशिया के साथ खोज और बचाव अभियान इंडोपुरा SAREX भी आयोजित कर रहा है। 1997 से, इस द्विपक्षीय SAREX को एक बहुपक्षीय समुद्री अभियान में बदल दिया गया है जिसमें मलेशिया और सिंगापुर भी सम्मिलित हुए।

इंडोनेशिया पारंपरिक रूप से मलक्का जलडमरूमध्य में विदेशी भागीदारी का विरोध करता रहा है, लेकिन मार्च 2009 में उसने औपचारिक रूप से भारत से जलडमरूमध्य को सुरक्षित करने में सहायता का अनुरोध किया और अपनी साझा समुद्री सीमा पर समन्वित नौसैनिक गश्त इंड-इंडो कॉर्पेट जारी रखी। भारत से सहायता का अनुरोध न केवल इसलिए किया गया क्योंकि भारत और इंडोनेशिया दोनों की समुद्री सीमाएँ समान हैं, बल्कि इसलिए भी क्योंकि दोनों मलक्का जलडमरूमध्य में अमेरिकी नौसैनिक परिसंपत्तियों की तैनाती का विरोध करते हैं। 2004 की सुनामी के बाद, भारत ने जनवरी 2005 में ऑपरेशन गंभीर प्रारंभ किया और अपने अस्पताल जहाज आईएनएस निरुपक और कोरवेट आईएनएस खुखरी के माध्यम से इंडोनेशिया को खाद्य और चिकित्सा आपूर्ति भेजी। राष्ट्रपति युधोयोनो ने नवंबर 2005 में अपनी भारत यात्रा के मध्य और इंडोनेशियाई उपराष्ट्रपति डॉ. जुसुफ कल्ला ने जनवरी 2007 में अपनी यात्रा के मध्य सुनामी राहत कार्यों में भारत की सहायता के लिए अपने देश की ओर से आभार व्यक्त किया। नौसेनाओं ने अंडमान सागर में समुद्री डकैती की जाँच के लिए अपना पहला संयुक्त गश्त अभियान चलाया।

दक्षिणपूर्व एशिया-भारत बहुपक्षीय रक्षा सहयोग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली बात अक्टूबर 2010 में हनोई में पहली बार आयोजित आसियान रक्षा मंत्रियों की बैठक प्लस 8 (एडीएमएम प्लस 8) फोरम में भारत की भागीदारी थी। पहली एडीएमएम 2006 में आयोजित की गई थी और मई 2009 की एडीएमएम बैठक में ही एडीएमएम प्लस फोरम बनाने पर सहमति बनी थी, जिसका समापन एडीएमएम प्लस 8 में हुआ, जिसमें भारत भी सदस्य के रूप में सम्मिलित था (अन्य देश ऑस्ट्रेलिया, चीन, जापान, न्यूजीलैंड, दक्षिण कोरिया, रूस और संयुक्त राज्य अमेरिका हैं)। एडीएमएम प्लस 8 में भारत का प्रतिनिधित्व रक्षा मंत्री ए.के. एंटनी ने किया। हालांकि यह पहली बार नहीं है कि किसी भारतीय रक्षा मंत्री ने दक्षिण-पूर्व एशियाई मंच में भाग लिया है भारत 2003 से शांगरी-ला वार्ता में भाग ले रहा है

एडीएमएम प्लस 8 में भारत का सम्मिलित होना इस बात का स्पष्ट संकेत है कि इसे दक्षिण-पूर्व एशियाई क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण सुरक्षा खिलाड़ी माना जाता है, और संगठन में इसकी सदस्यता के माध्यम से इसे औपचारिक रूप से मान्यता दी गई है।[9] जैसा कि ए.के. एंटनी ने तर्क दिया था, एडीएमएम प्लस 8 में भारत की भागीदारी का उद्देश्य क्षेत्रीय शांति और सुरक्षा चुनौतियों का समाधान करना था, पूरे क्षेत्र के लिए संतुलित और समावेशी सुरक्षा वास्तुकला प्रदान करना और आसियान देशों के रक्षा प्रतिष्ठानों के बीच आपसी विश्वास और आत्मविश्वास बनाने के अवसर प्रदान करना।[10]

एशिया के दो महत्वपूर्ण खिलाड़ियों, आसियान, जो अलग-अलग देशों का एक क्षेत्रीय समूह है और भारत, जो एक प्रमुख एशियाई शक्ति है, के बीच बढ़ते रक्षा संबंधों के महत्वपूर्ण राजनीतिक सुरक्षा निहितार्थ हैं। सबसे पहले, उन्होंने कई तरीकों से दक्षिणपूर्व एशियाई देशों की रक्षा क्षमताओं में वृद्धि की है। भारत के सशस्त्र बलों के साथ संयुक्त अभ्यास ने दक्षिणपूर्व एशिया की सेनाओं को भारतीय सैन्य सिद्धांतों से लाभ उठाने की अनुमति दी है। साथ ही, अधिकांश दक्षिणपूर्व एशियाई देशों के पश्चिम के साथ लंबे समय से चले आ रहे संबंधों के कारण अधिकांश आसियान देशों के बड़े पैमाने पर पश्चिमी समर्थक सैन्य सिद्धांतों को संतुलित किया जा सकता है क्योंकि दक्षिणपूर्व एशियाई सेनाओं के पश्चिमी सेनाओं से अलग भौगोलिक वातावरण में काम करने की सबसे अधिक संभावना है।

एक्ट ईस्ट नीति का महत्व

भारत इंडोनेशिया दोनों ही देशों की भू-रणनीतिक और भू-राजनीतिक स्थिति वैश्विक आर्थिक मार्ग और हिंद महासागर में एक अंतरराष्ट्रीय समुद्री सुरक्षा मार्ग बनाने के अवसर प्रदान करती है तथा हिंद महासागर में चीन की बढ़ती पहुंच इसमें बाधा उत्पन्न कर रही है। इसको रोकने के लिए भारत और इंडोनेशिया के बीच कई युद्ध अभ्यास किये जा रहे हैं। भारत और इंडोनेशिया द्वारा द्विपक्षीय अभ्यास दोनों सेनाओं के बीच विश्वास और सहयोग को बढ़ाने के लिए 'गरुड़ शक्ति अभ्यास' आरंभ किया गया। यह भारत और इंडोनेशिया के बीच एक संयुक्त अभ्यास है। गरुड़ शक्ति अभ्यास आतंकवादियों के विरूद्ध नियमित गोपनीय ऑपरेशन करने और समुद्र तट के साथ सुरक्षा क्षेत्रों में दोनों सेनाओं की क्षमताओं को बढ़ाता है। यह इंडोनेशिया और भारत को इस क्षेत्र में श्रेष्ठता और उच्च निर्भरता के रूप में स्थापित करता है। इंडोनेशिया के लिए, समुद्री रक्षा और समुद्री अर्थव्यवस्था राष्ट्रीय आर्थिक विकास योजना में सर्वोच्च प्राथमिकता बन गई है। इंडोनेशिया के राष्ट्रपति जोको विडोडो ने 13 नवंबर, 2014 को म्यांमार के नेपी तॉ में पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन में 'विश्व समुद्री धुरी' के विचार को दिया। इसमें निम्नलिखित आधार हैं समुद्री संस्कृति विकास, समुद्री अर्थव्यवस्था, समुद्री बुनियादी ढांचे और कनेक्टिविटी, समुद्री शिक्षा और समुद्री रक्षा के रूप में सिद्धांत को लागू किया गया है, जो इस बात की पुष्टि के रूप में है कि इंडोनेशिया ने लोगों की समृद्धि के लिए क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग विकसित करने के अवसर खोले हैं। प्रशांत महासागर और हिंद महासागर क्षेत्रों के अवधि मोर्चे को निर्धारित करने में एक भूमिका निभाई है।[11]

दोनों देशों, इंडोनेशिया और भारत की भूमिका, भारतीय महासागर रिम एसोसिएशन (आई ओ आर ए) देशों के साथ सहयोग में अग्रणी बनकर जारी रही। (आई ओ आर ए) इंडोनेशिया के लिए महत्वपूर्ण है, जो इंडोनेशियाई समुद्री जल को विश्व व्यापार यातायात के लिए एक समुद्री मार्ग के रूप में रखता है जो हिंद महासागर और प्रशांत महासागर को जोड़ता है और विश्व समुद्री धुरी के दृष्टिकोण के अनुरूप है इसी तरह, भारत हिंद महासागर क्षेत्र में लुक ईस्ट नीति से एक्ट ईस्ट नीति तक समुद्री नीति में वृद्धि को लागू कर रहा है। (आई ओ आर ए) इंडोनेशिया और भारत के लिए इस क्षेत्र में प्रमुख शक्ति को संतुलित करने के लिए अपनी केंद्रीय भूमिका दिखाने का एक अवसर है। विश्व समुद्री धुरी नीति, जो दोनों 2014 में प्रारंभ की गई थी, हिंद महासागर को सर्वोच्च प्राथमिकता के रूप में रखती है।[12] इसके अतिरिक्त भारत सरकार के सागर (क्षेत्र में सभी के लिए सुरक्षा और विकास) के दृष्टिकोण के हिस्से के रूप में, भारतीय नौसेना ईईजेड निगरानी, खोज और बचाव, और अन्य क्षमता निर्माण और क्षमता-वृद्धि गतिविधियों के साथ हिंद महासागर क्षेत्र के देशों की सहायता करने में भी सम्मिलित की गई। 42वां इंड-इंडो कॉर्पोरेट, जो भारत-इंडोनेशिया राजनयिक संबंधों के अंतर-संचालन को सुदृढ़ करने और समुद्र के पार मित्रता को सशक्त बंधन के लिए भारतीय नौसेना के

प्रयासों में योगदान देगा।

भारत-इंडोनेशिया द्विपक्षीय/ संयुक्त सैन्य अभ्यास

अभ्यास नाम	भारत के साथ भाग लेने वाले देश	आयोजित	नवीनतम/दिनांक वर्ष /संस्करण
गरुड़ शक्ति	भारत-इंडोनेशिया	करवांग, इंडोनेशिया	21 नवंबर 2022/8वां
इंड-इंडो कॉर्पेट	भारत-इंडोनेशिया	सबांग, इंडोनेशिया	22-24 मई 2024/42वां
मिलन	भारत-इंडोनेशिया तथा अन्य 48 देश	विशाखापत्तनम, भारत	19-27 फरवरी2024/12वां
समुद्र शक्ति	भारत-इंडोनेशिया	बातम द्वीप, इंडोनेशिया	14-19 मई 2023 / 4वां
रिम ऑफ द पेसिफिक (RIMPAC)	इंडोनेशिया, अन्य 27 देश	हवाई, यूएसए	27 जून-7 जुलाई 2024

इन सैन्य अभ्यासों के माध्यम से दोनों देशों की सेनाओं के बीच एक-दूसरे को बेहतर तरीके से जानना और क्षेत्रीय सुरक्षा सुनिश्चित करना है। इनका उदेश्य, आतंकवाद, कट्टरपंथ, मानव तस्करी, मनी लॉन्ड्रिंग, ड्रग तस्करी, छोटे हथियारों का व्यापार, या अन्य अंतरराष्ट्रीय आम अपराध जैसे खतरों को रोकना हैं जो (आई ओ आर ए) सहयोग कार्यक्रम को सुरक्षित करने के लिए उत्तरदायी और प्रत्याशित क़दम उठाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

भारत इंडोनेशिया के संबंधों की अवधारणा का मूल्यांकन

भारत व इंडोनेशिया दो लोकतांत्रिक देश हैं जो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दोनों देशों की जनसंख्या भी संस्कृति, भाषा, धर्म और जातीयता के मामले में बहुत विविध है। दोनों देशों के मध्य संबंध भारत इंडोनेशिया की स्वतंत्रता से पहले से ही अस्तित्त्व में हैं, यहां तक कि 7वीं शताब्दी में श्रीविजय युग से ही। दोनों देशों के बीच संबंध इतिहास, संस्कृति, रीति-रिवाजों, विश्वासों और अर्थशास्त्र में समानताओं के कारण सुदृढ़ हुए, जिसने इंडोनेशिया और भारत के बीच लंबे समय तक संबंधों को प्रोत्सहित किया। क्षेत्रवाद के सिद्धांत के आधार पर, दोनों देशों को राजनीति, रक्षा और सुरक्षा में बेहतर द्विपक्षीय संबंधों को सुदृढ़ करने के लिए एक संयुक्त रणनीति विकसित करने की आवश्यकता है ताकि निवेश और व्यापार को सुदृढ़ किया जा सके, समुद्री संसाधनों की स्थिरता को बनाए रखा जा सके और क्षेत्र में समुद्री सुरक्षा में सुधार किया जा सके, समुद्री सहयोग, कनेक्टिविटी और सतत विकास को बढ़ावा दिया जा सके और प्रतिस्पर्धा को प्राथमिकता न दी जाये जिससे दोनों देश विश्व शांति, स्थिरता और समृद्धि में योगदान देना जारी रख सकें।[13]

वर्तमान में इंडोनेशिया और भारत के पास रक्षा और सुरक्षा पर तीन द्विपक्षीय सहयोग मंच हैं, अर्थात् रक्षा मंत्री स्तर पर द्विवार्षिक बैठक, इंडोनेशिया-भारत सुरक्षा वार्ता (आईआईएसडी), और रक्षा मंत्रालय के महासचिव के स्तर पर संयुक्त रक्षा सहयोग समिति (जेडीसीसी)। इसलिए, द्विपक्षीय रक्षा मंच (इंडोनेशिया भारत द्विपक्षीय रक्षा मंच) की स्थापना करके परिचालन स्तर पर रक्षा के क्षेत्र में सहयोग बढ़ाया जा सकता है। सहयोग के बिंदुओं में शिक्षा, प्रशिक्षण और सैन्य अनुसंधान के साथ-साथ परिचालन आतंकवाद, मानवीय सहायता और प्राकृतिक आपदा सम्मिलित हैं।

हिंद महासागर क्षेत्र और बंगाल की खाड़ी में, भारत और इंडोनेशिया पोर्ट ब्लेयर-सबंग मार्ग का निर्माण कर सकते हैं। यह समन्वित और संयुक्त गश्त की तीव्रता को बढ़ाएगा और दोनों देशों के बीच संबंधों को सुदृढ़ करेगा। इसके बाद नौसेना बेस पोर्ट ब्लेयर और नौसेना बेस सबंग के बीच संपर्क अधिकारियों का आदान-प्रदान हुआ। पोर्ट ब्लेयर-सबंग मार्ग दोनों देशों की नौसेनाओं को बेस सुविधाओं (समुद्र और वायु) का उपयोग करने की अनुमति देता है।[14] दोनों देशों के पास महान नौसैनिक शक्ति है और क्षेत्र में समुद्र में विभिन्न आपराधिक गतिविधियों से निपटने की क्षमता है। इंडोनेशिया और भारत के बीच रक्षा सहयोग की अवधारणा को बेहतर दिशा में सुदृढ़ किया जा सकता है, क्योंकि दोनों देशों के बीच सूचना का आदान-प्रदान, समुद्री राष्ट्रों के रूप में नौसैनिक सहयोग को बढ़ाया जा सकता है। व्हाइट शिपिंग समझौते के रक्षा क्षेत्र में सहयोग करने के लिए भारत और इंडोनेशिया प्रारूप के साथ, भारतीय नौसेना के सूचना संलयन केंद्र (आई एफ सी) और इंडोनेशिया नौसेना के कमांड और कंट्रोल सेंटर के बीच सुरक्षा और

सुरक्षा के क्षेत्र में दोनों नौसेनाओं (भारतीय नौसेना और इंडोनेशिया नौसेना) के परिचालन स्तर पर सूचनाओं का आदान-प्रदान, जिसमें पोर्ट ब्लेयर और सबंग नौसेना के ठिकानों के बीच सूचनाओं का आदान-प्रदान सम्मिलित है। सूचना नेटवर्क प्रोटोकाल के रूप में व्हाइट शिपिंग प्रारूप का उपयोग दोनों देशों की नौसेनाओं को सूचनाओं का आदान-प्रदान करने की अनुमति देता है। समुद्री और बुनियादी ढांचे के विकास के क्षेत्र में भी सहयोग विकसित किया गया है, विशेष रूप से अंडमान-निकोबार द्वीप, भारत और सबंग द्वीप, उत्तरी सुमात्रा पर, जैसे कि संयुक्त गश्त के समन्वय और नियंत्रण की सुविधा के लिए एक समुद्री कमांड सेंटर की स्थापना।

अन्य रक्षा सहयोग, रक्षा उद्योग सहयोग है। दोनों देशों के पास रक्षा उद्योग हैं, जिनमें तकनीकी लाभ सम्मिलित हैं। इंडोनेशिया के सात प्रमुख रक्षा उद्योग कार्यक्रम हैं (ए) केएफ एक्स आईएफ एक्स लड़ाकू जेट विकास कार्यक्रम (बी) पनडुब्बी निर्माण (सी) राष्ट्रीय रडार विकास (डी) प्रणोदक उद्योग का विकास (ई) मध्यम टैंक और भारी टैंक (युद्धक टैंक) विकसित करना (एफ) मिसाइल विकास और (जी) रक्षा राकेट का विकास। जबकि भारत के पास लंबी दूरी की मिसाइल तकनीक, एयरोस्पेस उद्योग, अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी, जहाज निर्माण और हथियार बनाने में विशिष्टता उपलब्ध है।[15]

निष्कर्ष : दक्षिणपूर्व एशिया के देश इंडोनेशिया-भारत के रक्षा सबंधों में भारत की एक्ट ईस्ट नीति पूर्वी देशों के साथ इस क्षेत्र में सहयोग को प्रोत्साहित करने में सक्षम रही है और इंडोनेशिया ने रक्षा क्षेत्र में सहयोग के लिए नियमित रूप से विभिन्न अवसरों में भाग लिया है, जैसे द्विवार्षिक रक्षा मंत्रियों की वार्ता, सैन्य अभ्यास और वार्षिक रक्षा सहयोग बैठकें। वर्ष 2018 में, भारतीय प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी ने इंडोनेशिया का दौरा किया, इस दौरान भारत व इंडोनेशिया के बीच संबंधों को आगे बढ़ाने के लिए एक नई व्यापक रणनीतिक साझेदारी पर हस्ताक्षर किए। इसके माध्यम से दोनों देशों के बीच 15 समझौते एमओयू संपन्न हुए। पूर्व भारतीय रक्षा मंत्री निर्मला सीतारमण ने रक्षा संबधों पर द्विपक्षीय चर्चा में भाग लेने के लिए अक्टूबर 2018 में इंडोनेशिया का दौरा किया था। इस समय चर्चा का विषय व्यापक रणनीतिक साझेदारी रही थी। भारत और इंडोनेशिया ने अपने रक्षा सहयोग में सूचना साझाकरण बढ़ाने तथा विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम लागू करने की योजना बनाई। इसके पश्चात् इंडोनेशिया के रक्षा मंत्री जनरल रयामिजार्ड रयाकुडू इंडो-भारत द्विवार्षिक रक्षा मंत्रियों की वार्ता में भाग लेने के लिए भारत आए थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत और इंडोनेशिया के मध्य एक्ट ईस्ट नीति के माध्यम से कई समझौते हुए हैं, इससे दोनों देशों के मध्य रक्षा सहयोग में वृद्धि को देखा जा सकता है।

सन्दर्भ

1. गांगुली, सु. 'भारत की विदेश नीतिः पुनरावलोकन एवं संभावनाएँ', आफक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस भारत, 2018, पृ. 127-129.
2. वही, पृ. 135-137.
3. रक्षा मंत्रालय, भारत सरकार 2003. MoD-Eng_PDF.p65
4. Kazi, R. *'India's Naval Aspirations'*. Institute of Peace and Conflict Studies, 2004, p. 23.
5. भारत सरकार, विदेश मंत्रालय. 2023 38005_Final-MEA-AR-2023-English.pdf
6. भारत सरकार, विदेश मंत्रालय. 2006. mea.gov.in/Uploads/PublicationDocs/181_foreign-relations-2006.pdf
7. भारत सरकार, विदेश मंत्रालय. 2011. IFR Cover Page 2009 for CD (mea.gov.in)
8. Singh, Bilveer, *'Southeast Asia-India Defence Relations in the Changing Regional Security Landscape'*, New Delhi, IDSA, 2011, pp. 23-26.
9. Silalahi, A. E., 'ADMM/ADMM Plus As Cbm Through Non-Traditional Issues (ASEAN)'. International Journal of Humanities Education and Social Sciences, 2023, 2(6), pp. 1825-1829
10. रक्षा मंत्रालय, भारत सरकार 2010. https://pib.gov.in/newsite/erelcontent.aspx?relid=66282
11. Gindarsah, I., & Priamarizki, A., 'Indonesia's maritime doctrine and security concerns'. S. Rajaratnam School of International Studies, 2022 pp. 9-12
12. Hmadi, Herdiawan D., 'The Application of CBA and SUG Model for Improving the Quality of Indonesian navy human resources'. International Journal of Recent Technology and Engineering. 2019; 8(3): 393, 399.
13. Singh, Uday Bhanu. 'Emerging India-Indonesia Comprehensive Strategic Partnership'. New Delhi: IDSA. 2018, p. 4-6
14. Susilo AK, Putra IN, Ahmadi, Suharyo OS, 'Analysis of national maritime security strategy as an effect of regional development using SWOT, fuzzy multi-criteria decision making (FMCDM), and borda'. International Journal of Operations and Quantitative Management. 25(3), 2020, 153, 174.
15. Bandono, A., Bastari, A., & Suharyo, O. S., 'The relations concept of Indonesia-India; political, education, and defense perspective'. Global Journal of Engineering and Technology Advances, 2021, 7(3), pp. 71-82.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

संस्कृति एवं राजनीति : ब्रिटिश भारतीय अप्रत्यक्ष शासन का अध्ययन साध्य-साधन के विशेष संदर्भ में

❑ अतुल
❖ डॉ. ज्योति

सूचक शब्द : धर्म, भाषा, साध्य -साधन, औपनिवेशिक काल, नव प्रबुद्ध वर्ग।

संस्कृति एवं राजनीति के बीच एक द्वंद्वात्मक संबंध स्थापित रहता है। जहाँ संस्कृति राजनीति को नैरन्तर्य प्रभावित करती है वहीं राजनीति भी संस्कृति को नैरन्तर्य प्रभावित करती है। इनके बीच स्थापित इन्हीं संबंधों के कारण सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्य (सहिष्णुता, स्वतंत्रता, समानता) भी निरंतर प्रभावित होते रहते हैं। संस्कृति एवं राजनीति के बीच का द्वंद्वात्मक संबंध किस तरह का होगा और उनके बीच का संबंध सामाजिक व राजनीतिक मूल्यों को किस तरह से प्रभावित करेगा; इस बात का निर्धारण सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था द्वारा साध्य तय करता है। क्योंकि जैसा साध्य होगा वैसा ही उस साध्य की पूर्ति हेतु साधन को निर्मित किया जाएगा और फ़िर वह साधन उस साध्य की पूर्ति करेगा। औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश सत्ता द्वारा अप्रत्यक्ष शासन के दौरान अपने साध्य हेतु साधन के रूप में ऐसे आदेशों को निर्मित किया गया जो उसके साध्य की पूर्ति कर सकें। किंतु ब्रिटिश सत्ता ने इन आदेशों को निर्मित करने हेतु भारतीय समाज से संस्कृति के उन आदेशों को समाप्त किया जो साध्य के रूप में राजनीति से क्रिया करते थे और राजनीति साधन के रूप में संरक्षण देकर प्रतिक्रिया करती थी। क्योंकि जब-तक इन पुराने आदेशों को समाप्त नहीं किया जाता तब-तक ब्रिटिश सत्ता उन आदशों को निर्मित नहीं कर सकती थी जो उसके साध्य की पूर्ति हेतु साधन बनते। इसीलिए ब्रिटिश सत्ता ने अपने अप्रत्यक्ष शासन के दौरान दो महत्वपूर्ण क़दम उठाए- पहला प्राचीन काल से चले आ रहे उन सांस्कृतिक आदेशों को समाप्त किया जो साध्य के रूप में राजनीति से क्रिया करते थे। दूसरा उन सांस्कृतिक आदेशों को निर्मित किया गया जो साधन के रूप में प्रतिक्रिया स्वरूप उसके साध्य की पूर्ति करें। इन दो मुद्दों को इस लेख में अनावृत्त किया गया है।

संस्कृति एवं राजनीति के बीच एक द्वंद्वात्मक संबंध रहता है। जहाँ एक ओर संस्कृति राजनीति को प्रभावित करती है तो दूसरी ओर राजनीति संस्कृति को प्रभावित करती है। यह क्रिया-प्रतिक्रिया 'साध्य- साधन' के रूप में नैरन्तर्य चलती रहती है। जहाँ कई बार संस्कृति साध्य बनकर राजनीति में प्रवेश करती है तो राजनीति साधन बनकर उस साध्य की पूर्ति करती है; उसे संरक्षण प्रदान करती है, अर्थात संस्कृति ने साध्य के रूप में जिस आदेश को समाज में निर्मित किया है उसे बनाये रखती है। इस तरह संस्कृति एवं राजनीति के बीच साध्य-साधन के रूप में ये क्रिया-प्रतिक्रिया इन दो रूपों में प्रदर्शित होती है। प्राचीन काल से मध्यकाल तक संस्कृति एवं राजनीति के बीच साध्य-साधन के रूप में जो क्रिया-प्रतिक्रिया होती थी उसमें संस्कृति साध्य बनाकर राजनीतिक ढांचे में प्रवेश करती थी और राजनीति साधन बनाकर उस साध्य की पूर्ति करती थी। किंतु औपनिवेशिक काल में यह प्रक्रिया उलट गयी अर्थात राजनीति साध्य तो संस्कृति साधन बन गयी। वास्तव में प्राचीन काल से मध्यकाल तक समाज के पास विधायी प्राधिकार होता था तो शासन व्यवस्था के पास कार्यपालिका प्राधिकार। ऐसे में समाज द्वारा संस्कृति से संबंधित आदेशों को निर्मित किया जाता था और फ़िर वही आदेश साध्य के रूप में राजनीति में प्रवेश कर क्रिया करते थे और राजनीति प्रतिक्रिया स्वरूप साधन बनकर उन आदेशों को समाज में बनाये रखकर साध्य की पूर्ति करती थी। उदाहरण के लिए प्राचीन काल में धर्म का अर्थ सुशासन, सुनीति, सुव्यवस्था को समाज में स्थापित करना था जिसमें रहकर लोग अपना सुखमय जीवन व्यतीत कर सकें।[1] **जिमर** ने कहा कि, भारतीय संदर्भ में धर्म 'ऋत' से परिभाषित होता है ऋत का अर्थ है आंतरिक व्यवस्था अर्थात सुशासन।[2] इस तरह समाज द्वारा धर्म के इस अर्थ को आदेश के रूप में निर्मित किया जाता था और फ़िर यही आदेश साध्य बनकर राजनीति में प्रवेश करता था और राजनीति साधन के रूप में अपनी कार्यकारी शक्ति का प्रयोग कर इस आदेश को

❑ शोध अध्येता राजनीति विज्ञान विभाग, सप्त सिन्धु परिसर, देहरा, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, कांगड़ा (हि.प्र.)
❖ सहायक आचार्य राजनीति विज्ञान विभाग, सप्त सिन्धु परिसर, देहरा, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, कांगड़ा (हि.प्र.)

समाज में बनाए रखती थी। इस तरह समाज द्वारा अपनी विधायी शक्ति का प्रयोग कर सांस्कृतिक तत्वों के आदेशों को निर्मित किया जाता था और फ़िर यही आदेश साध्य बनाकर शासन व्यवस्था में प्रवेश करते थे और राजनीति प्रतिक्रिया स्वरूप साधन बनकर इन आदेशों को संरक्षण प्रदान कर समाज में बनाये रखती थी। **कविराज** कहते हैं कि, राजनीतिक शासकों की सत्ता 'कार्यपालिका' के कार्य तक सीमित थी। अर्थात उनका यह काम था कि वह इस सामाजिक संविधान की रक्षा करें, इसका अतिक्रमण करने वाले लोगों को सजा दें और फ़िर इस व्यवस्था की सामान्य स्थिति को बनाये रखें इस अर्थ में राजनीतिक शासकों के पास इस व्यवस्था को नये सिरे से बनाने का विधायी प्राधिकार नहीं था- अधिक से अधिक वह इसमें कुछ हलके-फुलके परिवर्तन कर सकते थे।[3] यह व्यवस्था प्राचीन काल से मध्यकाल तक सांस्कृतिक तत्वों के आदेशों में परिवर्तन के साथ समान रूप से यूंही बनी रही-संस्कृति साध्य तो राजनीति साधन।

किंतु औपनिवेशिक काल में यह व्यवस्था पूरी तरह परिवर्तित हो गयी। अर्थात राजनीति साध्य तो संस्कृति साधन। इस परिवर्तन का मूल कारण था समाज की विधायी शक्ति का राजनीति के पास चला जाना। अब राजनीतिक व्यवस्था के पास कार्यकारी शक्ति के साथ विधायी शक्ति भी आ गयी। जब यह परिवर्तन हुआ तो ब्रिटिश सत्ता ने अपने अप्रत्यक्ष शासन के मध्य ही अपने साध्य की पूर्ति हेतु संस्कृति के पहचान के चिन्हों- भाषा एवं धर्म को साधन बनाया। कहने का निहितार्थ यह कि ब्रिटिश सत्ता ने अपने अप्रत्यक्ष शासन के मध्य दो कार्यों- पहला पुराने भाषायी व धार्मिक आदेशों को समाप्त किया। दूसरा अपने साध्य पूर्ति हेतु अपने अनुकूल नये भाषायी व धार्मिक आदेशों को निर्मित किया। ब्रिटिश सत्ता द्वारा किया गया यह कार्य स्वाभाविक भी था क्योंकि उस समय फ़िर से एक नयी शासन व्यवस्था नये मूल्यों, विचारों के साथ भारत में स्थापित हो रही थी। ऐसे में अपने आपको सशक्त करने व बनाए रखने हेतु पुराने आदेशों को हटाकर अपने अनुकूल नये आदेशों कों निर्मित किया गया ताकि यह आदेश साधन बनकर उनके राजनीतिक, आर्थिक साध्य की पूर्ति कर सके। अब प्रश्न यहाँ यह है कि, किस तरह ब्रिटिश सत्ता ने अपने अप्रत्यक्ष शासन के समय अपने आर्थिक व राजनीतिक साध्यों की पूर्ति हेतु पुराने सांस्कृतिक आदेशों को समाप्त कर नये सांस्कृतिक आदेशों को निर्मित किया था ? यह लेख इस प्रश्न पर आधारित है जिसके लिए यहाँ संस्कृति के दो तत्वों भाषा एवं धर्म को आधार बनाते हुए ढाँचागत व व्यवहारिक उपागम को अपनाया गया है। यहाँ एक बात का उल्लेख करना अपरिहार्य होगा कि, ब्रिटिश भारत में जब ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन (1773-1857) था जिसे ब्रिटिश अप्रत्यक्ष शासन कहते हैं। इस अप्रत्यक्ष शासन के समय ऐसा नहीं था कि भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी मुख्य शासक के रूप में थी। अपितु उस समय भी ब्रिटिश सरकार का ही शासन था; कंपनी तो मात्र उसके शासन का साधन थी। ब्रिटिश सरकार उस समय कई 'औपनिवेशिक विधान' भारत पर लागू कर राज किया करती थी। इस लेख में इस समय को इसीलिए लिया गया है क्योंकि यही वो समय था जब ब्रिटिश सत्ता द्वारा पुराने सांस्कृतिक आदेशों को समाप्त कर अपने अनुकूल नये सांस्कृतिक आदेशों को निर्मित किया गया था।

शोधपत्र का उद्देश्य

ब्रिटिश अप्रत्यक्ष शासन के समय संस्कृति एवं राजनीति के बीच के द्वंद्वात्मक संबंधों का विश्लेषण करना।

शोध प्रविधि : प्रस्तुत लेख के व्यवस्थित अध्ययन हेतु ऐतिहासिक, वर्णनात्मक व विश्लेषणात्मक पद्धतियों का प्रयोग किया गया है, जिसमें द्वितीय आंकड़े प्रमुख रहे हैं जिन्हें एकत्रित करने हेतु आधिकारिक पुस्तकें एवं लेख सहायक रहे हैं।

औपनिवेशिक काल में संस्कृति एवं राजनीति के बीच सम्बन्ध

मध्यकाल सोहलवीं शताब्दी के तीसरे दशक में, भारत में मुग़ल शासन स्थापित हुआ तो उसके सात दशक बाद ही भारत में एक बहुत बड़ी घटना घटित हुई- ईस्ट इंडिया कम्पनी को सन 1608 में मुग़ल शासक जहाँगीर के द्वारा सूरत में तम्बाकू की कोठी खोलने की अनुमति प्रदान करना![4] ईस्ट इंडिया कम्पनी को भारत में व्यापार करने की अनुमति जैसे ही प्राप्त हुई तो कम्पनी ने धीरे-धीरे अपने व्यापार को बढ़ाना प्रारंभ कर दिया। जिसके लिये कम्पनी ने बम्बई, मद्रास और कलकत्ता में भूमि को प्राप्त कर वहाँ पर 'कमर्शियल एन्क्लेव' को स्थापित किया। इस तरह एक ओर कम्पनी व्यापार के माध्यम से अपनी स्थिति को सुदृढ़ कर रही थी तो दूसरी ओर एक और घटना घटित हो रही थी-भारत में मुग़ल

शासन का कमज़ोर पड़ना जिसका प्रमाण दो घटनाओं में मिलता हैं। पहला, ईस्ट इंडिया कम्पनी ने मुग़लों की असमर्थता के कारण ही 1687 में मद्रास में अपने प्रतिनिधि को नागरिक और सैन्य शक्ति को स्थापित करने और इन दोनों को बनाए रखने के लिए राजस्व की व्यवस्था करने का निर्देश दिया ...।[5] दूसरा 1756 में जब रोबर्ट क्लाइव ने मुग़ल सम्राट शाह आलम से बंगाल, बिहार और उड़ीसा में ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए दीवान अर्थात मुख्यमंत्री विशेष रूप से राजस्व मंत्री की नियुक्ति प्राप्त की।[6] इस प्रकार एक ओर अठाहरवीं शताब्दी में मुग़ल साम्राज्य का पतन हुआ और भारत में एक केन्द्रीय सत्ता का अभाव पैदा हो गया। तो दूसरी ओर भारत में 500 से अधिक छोटी-छोटी रियासतें भी थीं जोकि स्वायत्त थीं और अपने क्षेत्र व संसाधनों के लिये आपस में लड़ रही थीं। भारत में घटित हो रही इन दो घटनाओं को ईस्ट इंडिया कम्पनी के अफ़सरों और इंग्लैंड में बैठे राजनेताओं के द्वारा बहुत ध्यान पूर्वक देखा जा रहा था। इन परिस्थितियों का लाभ उठाते हुये एक ओर कम्पनी के द्वारा मुग़ल साम्राज्य के पतन के बाद जो 'राजनीतिक शून्यता' उत्पन्न हो गयी थी उसे भरा जाने लगा। दूसरी ओर जो छोटी-छोटी रियासतें थीं उन्हें आपस में लड़वाकर हारी हुई रियायतों पर कब्जा करना प्रारंभ कर दिया था। अंततः उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तक ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत की 3/5 भूमि पर अपना प्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित कर लिया था तो लगभग 2/5 भूमि पर, जिस पर 500 से अधिक रियसतों का नियंत्रण था, उन पर भी कम्पनी का अप्रत्यक्ष शासन स्थापित हो गया था, अर्थात कम्पनी इन रियासतों के प्रशासन को नियंत्रित किया करती थी। इस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी धीरे-धीरे भारत में मुग़ल साम्राज्य के उत्तराधिकारी के रूप में सामने आयी।[7]

जब एक ओर मुग़ल साम्राज्य कमज़ोर पड़ने लगा तो दूसरी ओर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा अपने व्यापार के साथ-साथ भारतीय राजनीति में भी नियंत्रण स्थापित किया जाने लगा। कम्पनी उस समय अपने सभी आर्थिक, राजनीतिक व प्रशासनिक क्रियाओं को दो संस्थाओं के माध्यम से जिसमें पहली 'द कोर्ट ऑफ़ प्रोप्रिएटोर्स' और दूसरी 'द कोर्ट ऑफ़ डायरेक्टर्स' के माधम से पूरा करती थी। किन्तु कुछ समय बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत पर गलत ढंग से शासन करने लगी तो उसकी शिकायतें, ब्रिटिश सरकार के पास जाने लगीं। इन्हीं शिकायतों की सत्यता को जानने के लिए हाउस ऑफ कॉमन्स के द्वारा एक कमेटी को स्थापित किया गया जिसका नाम 'कमेटी ऑफ़ सीक्रेसी' था। इस कमेटी के द्वारा भारत में कम्पनी के द्वारा जो कार्य किये जा रहे थे उसके संबंध में एक रिपोर्ट को तैयार की गयी। इस रिपोर्ट में कमेटी के द्वारा बताया गया कि, कम्पनी के विरूद्ध जो भी शिकायतें आ रहीं थी वो सच हैं; भारत में कम्पनी के द्वारा जो कार्य किये जा रहे थे वो ग़लत ढंग से किये जा रहे थे। इसीलिए कमेटी ने कहा कि कम्पनी के इन कार्यों को नियमित करने की आवश्यकता है। इस रिपोर्ट और कमेटी की सलाह पर ब्रिटिश सरकार के द्वारा रेगुलेटिंग एक्ट ऑफ़ 1773 को पास कर भारत में लागू किया गया। यही वो पहला एक्ट था जिसके माध्यम से ब्रिटिश संसद कम्पनी के कार्यों में हस्तक्षेप कर उसे नियमित करती थी। ये औपनिवेशिक विधान ब्रिटिश सरकार के लिए एक मील का पत्थर प्रमाणित हुआ। वास्तव में जब इस औपनिवेशिक विधान को भारत में लागू किया गया तो उसी समय से भारत वैधानिक रूप से ब्रिटेन का गुलाम बन गया था।

इस तरह ब्रिटिश सत्ता ने ईस्ट इंडिया कंपनी के माध्यम से 1773 तक भारत को अपना गुलाम बना लिया था। एक ओर कंपनी का उद्देश्य अपने राजनीतिक शासन को बनाए रखते हुए भारत के आर्थिक शोषण को जारी रखना था। तो दूसरी ओर भारतीय समाज जिसे कविराज 'धुंधला समाज' कहते हैं उसकी संस्कृति को, उस संस्कृति के जो तत्व हैं जैसे भाषा, धर्म, रीति रिवाज़ जिन पर वो आधारित थी उन आदेशों को लोगों के चित्त और मानस से समाप्त कर देना था क्योंकि इसी कार्य के माध्यम से ब्रिटिश सत्ता अपने साध्य को साध सकती थी। इस कार्य हेतु ईस्ट इंडिया कंपनी व कई अंग्रेज़ विद्वानों द्वारा आने वाले कई दशकों तक कई साधनों का प्रयोग किया गया। किंतु इस विषय पर विचार करने से पूर्व यहाँ एक बात का उल्लेख करना अपरिहार्य है कि, ऐसा नहीं था की ईस्ट इंडिया कंपनी जैसे ही भारत में आयी तो इसने अपनी अलग ही व्यवस्था को स्थापित कर लिया या फ़िर अंग्रेज़ लोग भारतीय संस्कृति से प्रभावित नहीं हुये थे। अपितु इस संबंध में सुदीप्त कविराज कहते हैं कि, "भारत में औपनिवेशिक राज्य बिल्कुल शाब्दिक अर्थ में निर्माण की प्रक्रिया से गुज़रा जहाँ अंग्रेज़ी शासन ने

प्रारंभिक काल में प्राधिकार की पारंपरिक भाषा का प्रयोग किया और सामाजिक संस्थाओं के लिए स्थान बनाने और पहले के राजनीतिक रूपों (या राज्य) के समाज से संबंध को सुनिश्चित किया।"[8] **आशिस नंदी** कहते हैं कि, "प्रारंभिक काल में भारत में रहने वाले अधिकांश अंग्रेज़ घरों और कार्यालयों में भारतीय की ही तरह रहते थे, भारतीय पोशाक पहनते थे और भारतीय रीति रिवाज़ व धार्मिक आचरण भी किया करते थे। उनमें से बहुतों ने भारतीय स्त्रियों से शादियाँ की थीं।"[9] इसका कारण बताते हुए **आशिस नंदी** कहते हैं कि, "उस समय सामंती पृष्ठभूमि के लोग शासन की संस्कृति पर हावी थे। किंतु इसका यह अर्थ कदापि भी नहीं था कि अंग्रेज़ भारतीय समाज व संस्कृति से प्रभावित हुए तो ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने अप्रत्यक्ष शासन की स्थापना से पूर्व भारत के आर्थिक शोषण में कोई स्नेह दिखाया हो अपितु ईस्ट इंडिया कंपनी के सरबाहों का उद्देश्य भारत पर शासन करना नहीं बल्कि माल था। इसीलिए चांदी काटने में उन्होंने किसी भी प्रकार का स्नेह नहीं दिखाया"[10] सन 1773 में ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में अप्रत्यक्ष शासन स्थापित हुआ तो उसके लगभग चार दशकों के समय सामंती पृष्ठभूमि की जगह ब्रिटिश मध्य वर्ग के लोग शासन की संस्कृति पर हावी होने लगे और जब यह मध्य वर्ग शासन पर हावी होने लगा तो इनका उद्देश्य भारत का आर्थिक व राजनीतिक शोषण करना ही नहीं था अपितु इस क्षण को आगे भविष्य में कैसे निरंतर बनाए रखा जा सके वह भी था। इस उद्देश्य को पूर्ण करने हेतु इस वर्ग के द्वारा भारतीय सांस्कृतिक तत्वों के आदेशों को समाप्त करना प्रारंभ किया गया। इस कार्य को पूर्ण करने के लिए कई साधनों का प्रयोग किया गया। अब यहाँ प्रश्न उठता है कि औपनिवेशिक सत्ता के द्वारा इस कार्य को किस प्रकार सम्पन्न किया गया वह कौन-कौन से साधन थे जिनका प्रयोग कर औपनिवेशिक सत्ता द्वारा भारतीय संस्कृति को नष्ट किया गया। इस प्रश्न का उत्तर आशिस नंदी, श्री धर्मपाल और सुदीप्त कविराज के द्वारा दिए गए तर्कों के माध्यम से समझ सकते हैं। आशीष नंदी कहते हैं कि- उपनिवेशवाद ने चालाकी से भारतीय चेतना को प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया ताकि एक ऐसी भारतीय आत्म छवि उत्पन्न की जा सके जो पश्चिम का विरोध करते हुए भी अपने सार में एक पश्चिम गढ़न्त ही हो... उपनिवेशवाद ने उसे प्राच्य जो अज्ञेय था, की उस सामान्य रूढ़ छवि को प्रतिस्थापित कर... व्याधिमूलक रुढ़ छवि को रखा गया वह एक विचित्र और आदिम लेकिन धूर्त था,और यह अव्यवस्थित रूप से हिंसक लेकिन स्त्रैण ढंग से कायर था।[11]

इस तरह भारतीय समाज में इस प्रकार का एक विमर्श निर्मित किया जाता है जिसके लिए नंदी कहते हैं कि, औपनिवेशिक सत्ता के द्वारा मुख्य रूप से दो साधनों का प्रयोग किया जाता है- लिंग, (धर्म एवं राजनीति के सम्बन्ध में वर्णित किया गया है) और आयु। दूसरी ओर **धर्मपाल** कहते हैं कि, "ब्रिटिश शासकों ने भारतीय संस्कृति को भारतीय प्रभावशाली वर्ग को साधन बनाकर भी नष्ट किया था" अर्थात इस वर्ग का एक महत्वपूर्ण अंश उत्साह पूर्वक ब्रिटिश जीवन पद्धति, ब्रिटिश विचार पद्धति एवं अभिव्यक्ति पद्धति को ऐसे अपना रहा था मानो वह बौद्धिक दरिद्रता से ग्रस्त हो, उसके पास न अपनी प्रभा हो न प्रतिभा, न प्रतिमान।[12] इनके अतिरिक्त सुदीप्त कविराज ने कहा कि, औपनिवेशिक सत्ता ने अपने प्रारंभिक शासन में दो भाषाओं को अपनाकर भारतीय संस्कृति को नष्ट कर भारत पर अपना शासन स्थापित किया था जिसमें देशज व्यवहारों को सहन करने की उनकी इच्छा शक्ति में बुद्धिमता की किवदंती सामने आयी तो दूसरी और तार्किक अभिव्यक्ति और अपराज्य पश्चिमी शिक्षा के आधार का किवदंती प्रस्तुत कर भारतीय संस्कृति को संभव अंधविश्वासों पर आधारित बनाकर उसमें सुधार करने की बात कही और कहा कि उनके संपर्क में आने वाले हर किसी के लिए चाहे वह शासक हो या प्रजा लाभदायक है। इसलिए सील ने इस 'बुद्धि मता और तार्किकता' के बीच में इह अबूझ असंगत कहा।[13]

इस तरह नंदी, धर्मपाल और कविराज इन तीनों विचारकों ने बताया की उपनिवेशवाद/ब्रिटिश शासन/औपनिवेशिक सत्ता ने अलग-अलग शस्त्रों का प्रयोग कर भारतीय संस्कृति को अंधविश्वास, असभ्य, पापी, स्त्रेण, कायरता, अचानक हिंसक इत्यादि के रूप में प्रस्तुत कर भारत के अंदर ही एक नये वर्ग का निर्माण किया जिसे नया भारतीय मध्यम वर्ग, पश्चिमी शिक्षा प्राप्त वर्ग जिसे मैं भारतीय मस्तिष्क कहूंगा। इस वर्ग ने ब्रिटिश शासन द्वारा भारतीय संस्कृति का जो स्वरूप पेश किया उसे स्वीकार कर अंग्रेजों की ही भाँति अपनी संस्कृति को

देखने व उनके (अंग्रेजों) के अनुसार जो एक सभ्य संकृति में होना चाहिए उसे ढूंढने लगे और जो नहीं होना चाहिए उसे अनदेखा करने लगे विशेष तौर पर धर्म और भाषा के क्षेत्र में। इस तरह ब्रिटिश राज को मानव मस्तिष्क पर नियंत्रण के लिए होने वाली लड़ाई बड़ी सीमा तक जीतने का अवसर मिल गया। इसलिए धर्मपाल ने कहा कि, सन 1803 ईवी तक हमारा प्रभावशाली वर्ग मानसिक पराजय स्वीकार कर चुका था।[14] 1840 से 1850 के दशक तक ब्रिटिश शासन भारतीय संस्कृति के तत्व विशेष तौर पर धर्म, भाषा के आदेश को जो प्राचीन काल से चला आ रहा था उन्हें भारतीयों के चित्त और मानस से समाप्त करने में सफल हो गया; जिसे धर्म एवं राजनीति व भाषा एव राजनीति के संबंधों में स्पष्टतः अनावृत किया गया है।

भाषा एवं राजनीति के बीच संबंधः- प्राचीन काल से मध्यकाल तक भाषा एवं राजनीति के बीच का जो संबंध था उसमें एक सामान्य बात थी कि जो भाषाई आदेश था; जो कि समाज द्वारा स्थापित था, वो शासन व्यवस्था से साध्य के रूप में क्रिया करता था तो शासन व्यवस्था साधन के रूप में प्रतिक्रिया स्वरूप उस आदेश को संरक्षण प्रदान करती थी। किंतु औपनिवेशिक काल में यह संबंध पूर्णताः बदल गए अर्थात प्राचीन काल से जो भाषाई आदेश चला आ रहा था उसका ब्रिटिश शासन व्यवस्था से किसी भी प्रकार की कोई क्रिया प्रतिक्रिया नहीं हुई अपितु ब्रिटिश शासन व्यवस्था ने तो उस भाषाई आदेश को ही समाप्त करने का प्रयास शुरू कर दिया। क्योंकि उस भाषाई आदेश के माध्यम से ब्रिटिश सत्ता अपना मुख्य साध्य-भारत का आर्थिक शोषण, भारत में अपने शासन व्यवस्था को बनाए रखना उसे पूर्ण नहीं कर पाती। इसीलिए ब्रिटिश शासन व्यवस्था ने वर्तमान भाषाई आदेश का अवमूल्यन कर इसके विपरीत नये भाषाई आदेश जो कि अंग्रेज़ी भाषा पर आधारित था उसे ढांचागत रूप से निर्मित कर व्यवहारिक रूप दिया। दूसरी ओर स्थानीय भाषाओं के आंतरिक जिसे सुदीप्त कविराज भाषा का आंतरिक अर्थशास्त्र कहते हैं।[15] उसमें भेदभाव को उत्पन्न कर अपने शासन और को सुदृढ़ किया।

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी जब मुग़ल साम्राज्य के उत्तराधिकारी के रूप में सामने आयी तो कंपनी अपने उद्देश्यों को साधना चाहती थी। इसके लिए आवश्यक था कि पुराने भाषाई आदेश का अवमूल्यन कर या फ़िर उसे पूर्णतः ध्वस्त कर एक नए अंग्रेज़ी आधारित भाषाई आदेश को निर्मित करना। क्योंकि कंपनी इस बात से पूर्णतः अवगत हो गयी थी कि अगर उसे अपने साध्य को निरंतर साधना है तो इस कार्य हेतु उसे भारतीय भाषाई आदेश को समाप्त करना ही होगा। इसीलिए इस कार्य हेतु प्राचीन काल से चली आ रही पंथनिरपेक्ष, समृद्ध शिक्षा व्यवस्था को नष्ट कर पश्चिमी मूल्य पर आधारित शिक्षा व्यवस्था को साधन बनाया गया ताकि भारत में एक ऐसा वर्ग उभर सके जो भाषा, सोच से अंग्रेजों की भाँति व अंग्रेज़ी शासन व्यवस्था का समर्थन करें। इसलिए लॉर्ड मैकाले ने अपने 'कुख्यात मिनट ऑन एजुकेशन' में अंग्रेज़ी शिक्षा के संबंध में कहा कि, "हमें एक ऐसे वर्ग को तैयार करने के लिए श्रेष्ठ प्रयास करने चाहिए जो हमारे एवं हमारे द्वारा शासित लाखों लोगों के बीच भाषिया का काम कर सके ऐसे लोगों का वर्ग जो खून एवं रंग सें तो भारतीय हो परंतु रुचियों, विचारों, नैतिकताओं एवं ज्ञान की दृष्टि से अंग्रेज़ हो।"[16] कंपनी द्वारा इस कुख्यात कार्य हेतु दो तरीकों को अपनाया गया जिसमें पहला तरीका पश्चिमी विद्वानों द्वारा भारतीय साहित्य की आलोचना जैसे-कि जॉन स्टुअर्ट मिल ने मुग़ल पूर्व पुस्तकों को 'पौराणिक इतिहास' कहकर रद्द कर दिया।[17] लॉर्ड मैकाले ने तो यहाँ तक कहा कि "एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की एक सेल भारत और अरब के संपूर्ण स्थानीय साहित्य के समान थी।"[18] दूसरा ढंग भारत में अंग्रेज़ी मूल्य पर आधारित शिक्षण संस्थानों की स्थापना जैसे-कि 1825 में दिल्ली कॉलेज की स्थापना, जहाँ अंग्रेज़ी साहित्य को बहुत बड़ा चढ़कर अंग्रेज़ी भाषा में पढ़ाया जाता था; इतिहास का अध्ययन न केवल अंग्रेज़ी केंद्रित था अपितु इसे सोच समझकर इस लक्ष्य से तैयार किया गया कि विद्यार्थियों को बताया जाए कि, सभी ब्रिटिश वस्तुएं श्रेष्ठ हैं एवं उन्हें इस विशाल साम्राज्य की प्रजा होने का सौभाग्य प्राप्त है।[19] इस तरह इन तरीकों के माध्यम से भारतीय शिक्षा व्यवस्था को नष्ट कर अंग्रेज़ी शिक्षा व्यवस्था को खड़ा कर दिया जिसके माध्यम से ढाँचागत रूप से एक नई अंग्रेज़ी आधारित भाषाई आदेश का निर्माण हुआ जो न केवल शिक्षा के स्तर पर अपितु राजनीतिक व प्रशासनिक स्तर पर भी लागू किया गया अर्थात अब सभी कार्य अंग्रेज़ी भाषा में किये जाने लगे। इसका व्यावहारिक रूप इस संदर्भ में

प्रदर्शित हुआ कि, भारतीय लोग अपने भाषाई आदेश से या कहें की अपनी ही स्थानीय भाषाओं से अलग हो गये। जिसका प्रमाण भारत में एक ऐसे वर्ग का उदय होना जो रंग और खून से तो भारतीय था परंतु सोच, विचार व जीवन पद्धति से ब्रिटिश जिसे 'नया मध्यम वर्ग' कहा गया। इस मध्य वर्ग के संबंध में एक वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी ने 1913 में टिप्पणी कर इसे 'दोगला' बताया था।[20] राजा राममोहन राय जैसे विद्वान का मत था कि यह भाषाएँ संस्कृत व अन्य भारतीय भाषाएँ मात्र स्मृति की, अतीत के ज्ञान की वाहक हो सकती है परंतु पश्चिमी ज्ञान तो पश्चिम की भाषा से ही प्राप्त हो सकता है।[21] इस तरह ब्रिटिश सत्ता अपने अप्रत्यक्ष शासन के प्राथमिक चरण में जब सफल हुई तो मैकाले ने अंततः अपनी रिपोर्ट में तर्क दिया कि "अब वर्तमान अंग्रेज़ी में साहित्य का मूल्य 300 वर्ष पूर्व समाप्त विश्व की सभी भाषाओं में उपलब्ध साहित्य से अधिक है। इंग्लैंड का साहित्य अब शास्त्रीय प्राचीनता वाले साहित्य से अधिक महत्वपूर्ण हैं।"[22] इस प्रकार ब्रिटिश सत्ता द्वारा अपने साध्य की पूर्ति हेतु भाषाई आदेश का अवमूल्य कर सामाजिक पटल पर नए अंग्रेज़ी भाषा आधारित भाषाई आदेश को ढाँचागत व व्यावहारिक साधन के रूप में स्थापित किया और फ़िर साध्य के रूप में भाषाई आदेश में प्रवेश कर क्रिया करता रहा तो प्रतिक्रिया स्वरूप साधन के रूप में भाषाई आदेश इसे संरक्षण प्रदान कर उसे पोषित करता रहा। साध्य व साधन के इस क्रिया-प्रतिक्रिया में भारतीय समाज में मानसिक व चित्त के पटल पर ह्रास होता गया और ब्रिटिश साम्राज्य पोषित होता रहा। यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि औपनिवेशिक काल में भाषा एवं राजनीति के बीच का संबंध यहीं तक सीमित नहीं था, अभी तो इस संबंध को अपने पक्ष में और सुदृढ़ करने हेतु स्थानीय भाषाओं के आंतरिक अर्थशास्त्र ढांचे में ही मानकीकरण कर असमानता को निर्मित कर दिया उदाहरण के लिए बांग्ला भाषा में 1800 में ईसाई धर्म को लोकप्रिय बनाने के लिए श्री रामपुर कॉलेज के यूरोपियन मिशनरियों ने बंगाल के लिए प्रिंट की हुई वर्णमाला निर्मित की।[23] इस प्रकार स्थानीय भाषाओं में प्रिंटिंग के लिए वर्णमाला का चुनाव हो जाता था तो एक भाषा के भीतर ही मानकीकरण तैयार हो जाता था जिसके कारण एक भाषा को बोलने वाले लोगों में ही भेदभाव उत्पन्न होने लगा। जैसे-कि मेदिनीपुर के कुलीन वर्ग पहले संभवतः एक ऐसी भाषा बोलते थे जो उन्हें वहां के निचले वर्ग के भाइयों से गहरे रूप से जोड़कर रखती थी अब कोलकाता की मानक भाषा के रूप में छपी पत्रिकाओं की भाषा बोली और पढ़ी जाने लगी जिसके कारण कुलीन वर्ग और निचले वर्ग के भाइयों में अलगाव पैदा हो गया इसलिए **सुजीत कविराज** कहते हैं कि "बंगाल की अविवादित लोकतांत्रिक प्रवृत्ति के अंतर्गत भी एक नए प्रकार की असमानता प्रविष्ट की गयी।"[24]

धर्म एवं राजनीति के बीच संबंधः- औपनिवेशिक काल में धर्म एवं राजनीति के बीच का द्वंद्वात्मक संबंध भाषा एवं राजनीति के ही भाँति उल्लेखनीय नकारात्मक था। इस अवधि के दौरान ब्रिटिश सत्ता ने भारत में विद्यमान धार्मिक आदेश को समाप्त कर नये मध्यम वर्ग के रूप में एक ऐसे सजीव धार्मिक आदेश को निर्मित किया जो अपने ही धार्मिक साहित्यों, ग्रंथों में उन मूल्यों व गुणों को ढूंढने लगता है जो ब्रिटिश संस्कृति के लिए सर्वोच्च होते थे जैसे पुरुषत्व, ब्रिटिश जीवन व वैचारिक पद्धति इत्यादि। **आशीष नंदी** अपनी किताब 'द इंटिमेट एनिमीः द लॉस एण्ड रिकवरी ऑफ़ सेल्फ़ अंडर कॉलोनियलिज्म' में बताते हैं कि, ब्रिटिश सत्ता ने अपने औपनिवेशिक विचारधारा के शिराज़ को खड़ा करने के लिए जिन साधनों के माध्यम से (जैसे लिंग-पुरुषत्व, आयु) जिस नए मध्यम वर्ग का निर्माण किया था उसमें से कई बुद्धि जीवी भारतीय भी थे, जिन्होंने अपने ही धार्मिक साहित्यों, ग्रंथों में पुरुषत्व के गुणों व मूल्यों को ढूंढना शुरू कर दिया जिससे यह बात सिद्ध हो सके कि भारतीय धार्मिक साहित्यों व ग्रंथो में भी ब्रिटिश संस्कृति की भाँति ही पुरुषत्व मौजूद है। जैसे मधुसूदन दत्त बांग्ला महाकाव्य 'मेघनादवध' काव्य में रामायण की कहानी का पुनर्विन्यास करते हुए राम और लक्ष्मण के पारंपरिक रूप से श्रद्धेय चरित्रों को ऐसे खलनायकों की तरह पेश किया जो निश्चित आक्रामकता के कारण दुर्बल और स्त्रियोचित थे। दूसरी ओर इस कृति में रावण, मेघनाथ की सराहना उसकी पौरुषपूर्ण शक्ति, योद्धा के रूप में उसकी निपुणता, खांटी राजनीतिक पकड़ और इतिहास बोध के लिए की थी।[25] बंकिम चर्टिर्जी जो अपने उपन्यास और निबंध में आलोचनात्मक हिंदू धर्म के पूर्व भारती मॉडल को उपेक्षित करते हैं जैसे कि उन्होंने एक ललित निबंध में कृष्ण के बारे में लिखकर हिंदू धर्म के नए मॉडल को प्रस्तुत

किया। जिसमें उन्होंने कृष्ण के उस रूप पर असहमति प्रकट की जहाँ कृष्ण को मधुर, बाल सुलभ, नटखट नंदलाल के रूप में देखा जाता था बल्कि उनके अनुसार कृष्णा तो आदरणीय आत्मभिमानी, प्रबोधक और दृढ़ किस्म के देवता थे... वो कृष्ण को ईसाई और इस्लामी देवताओं की तरह संपूर्ण श्रेष्ठ का प्रतीक बनाना चाहते थे।[26] धर्मपाल जी ने बताया कि, इस नव प्रबुद्ध वर्ग ने ब्रिटिश जीवन व वैचारिक पद्धति को यहाँ तक अपना लिया था कि, इसने भारतीय इतिहास, भारतीय शास्त्र, धर्म, ग्रंथ एवं वेदों तक में वह बातें ढूंढ बताई जाने लगीं जो हमें अंग्रेजों के अनुगत बनाने के योग्य सिद्ध करें जैसे राजेंद्र लाल मित्र अपनी नृत्यशास्त्रीय एवं राजनीतिक मान्यताओं के कारण अंग्रेज़ मानते थे कि उनसे भिन्न अन्य समाज सभ्यता विकास की पूर्व अवस्था में है और अपने इतिहास के कारण वह मानते थे कि आदि दशा में मनुष्य नरमांस खाते थे तो यहाँ राजेंद्र लाल मित्र भी जुट गए कि हमारे यहाँ नरबलि प्रथा थी एवं नरमांस खाया जाता था। ऐसी बातों के प्रचार से ऐसा वातावरण बना कि अपने समय में विवेकानंद भी कह गए की एक समय था जब भारत में पांच ब्राह्मण मिलकर एक गाय को चट कर जाते थे। विनोबा भावे गीता प्रवचन में कह गए की वैदिक ऋषि मांस खाते थे।[27]

निष्कर्ष : उपर्युक्त विश्लेष्ण से यह बात स्पष्ट रूप से प्रमाणित होती है कि, ब्रिटिश सत्ता द्वारा कई साधनों का प्रयोग कर भारतीय सांस्कृतिक आदेशों को नष्ट किया गया। इस नाश में सिर्फ़ अंग्रेज़ ही नहीं अपितु भारत का एक ऐसा वर्ग भी सम्मिलित था जिसे नव प्रबुद्ध वर्ग कहा गया। इस वर्ग का चित्त और मानस इस तरह गुलाम बन गया था कि इन्होने अपने ही भाषाई धार्मिक साहित्य एवं ग्रंथों के अंतर्गत जो मूल्य व गुण थे/हैं उन्हें अनदेखा कर उसे गलत रूप से प्रस्तुत करना प्रारंभ कर दिया। नव प्रभु वर्ग का यह कार्य एक ओर विद्यमान धार्मिक, भाषाई आदेश को नष्ट कर रहा था तो दूसरी ओर ब्रिटिश सत्ता को बल और वैधता प्रदान कर रहा था। इस तरह ब्रिटिश अप्रत्यक्ष शासन के दौरान संस्कृति एवं राजनीति के बीच का द्वंद्वात्मक सम्बन्ध एक ओर भारत के लिए नकारात्मक था तो दूसरी ओर ब्रिटिश सत्ता के लिए पोषकयुक्त।

सन्दर्भ

1. अलतेकर, अनंत. सदाशिव, 'प्राचीन भारतीय शासन पद्धति', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2013, पृ. 34.
2. मिश्र, कौशल किशोर, 'प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन का इतिहास', राहुल प्रकाशन, 2019 पृ. 1.
3. कविराज, सुदीप्त, (2023) 'अंतर्विरोधों का संसारः भारत में उत्तर औपनिवेशिक राज्य' (ए स्टेट ऑफ़ कंट्राडिक्शनः द पोस्ट -कोलोनियल इन इंडिया) (कमल, नयन.चौबे, ट्रान्स), इन अहमद हिलाल (ईडी). सुदीप्त कविराजः सेतु विचार (पृ.410), सेतु प्रकाशन, (ओरिजनल वर्क पब्लिशड 2010)
4. दिनकर, रामधारी. सिंह, 'संस्कृति के चार अध्याय', लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2013, पृ. 357.
5. Hardgrave, L. Robert & Kochanek, A. Stanley, *'Indian Government and politics in a Developing Nation'*, Micheal Rosenberg, Bostan, 2008, p-32.
6. Abbas, Hoveyda, Kumar. Ranjay &Alam, Aftab. Mohammed, *'India Government and Politics'*, Pearson, New Delhi, 2010, p-50.
7. Hardgrave, L. Robert & Kochanek, A. Stanley, op.cit., p-32-
8. अहमद, हिलाल, पूर्वोक्त, पृ. 187, 205
9. नंदी, अशिस (2019), 'जिगरी दुश्मनः उपनिवेशवाद के साये में आत्म-क्षय और आत्मोद्धार' (अभय, कुमार दुबे,ई डी.; ट्रान्स) वाणी प्रकाशन. (ओरिजिनल वर्क पब्लिशड 1983)
10. वही, पृ. 23
11. वही, पृ. 106
12. धर्मपाल, श्री, 'भारत का स्वधर्म', भारत पीठम, चांडक निवास शास्त्री चौक बेचलर रोड वर्धा, 1994, पृ. 13
13. अहमद, हिलाल, पूर्वोक्त, पृ. 193, 205
14. धर्मपाल, श्री, पूर्वोक्त, पृ. 13
15. अहमद, हिलाल, पूर्वोक्त, पृ. 244
16. थरूर, शशि, 'अंधकार काल भारत में ब्रिटिश साम्राज्य' (नीरू, ईडी.; युगांक धीर, ट्रान्स), वाणी प्रकाशन, (ओरिजनल वर्क पब्लिशड 2106), 2020, पृ. 279
17. वही, पृ. 288
18. वही, पृ. 281
19. वही, पृ. 290
20. वही, पृ. 284
21. धर्मपाल, श्री, पूर्वोक्त, पृ. 28
22. थरूर, शशि, पूर्वोक्त, पृ. 289
23. अहमद, हिलाल, पूर्वोक्त, पृ. 265
24. वही, पृष्ठ. 266-268.
25. Nandy, Ashis, *'The Intimate Enemy: The Lose and Recovery of Self Under Colonialism'*, Oxford University Press, ansari road New Delhi, 1983, p-18-19-
26. Ibid. pp. 23-24
27. धर्मपाल, श्री, पूर्वोक्त, पृ. 20-21

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

हरियाणा में वृद्धावस्था पेंशन योजना : आर्थिक स्वतंत्रता और सामाजिक सशक्तिकरण पर प्रभाव

❑ डॉ. मंजू पंवार
❖ सुश्री कविता

प्रस्तुत शोध हरियाणा राज्य में वृद्धावस्था पेंशन योजना के प्रभावों का विश्लेषण करता है, विशेषकर उन वृद्ध व्यक्तियों की आर्थिक स्वतंत्रता और सामाजिक सशक्तिकरण पर इसके प्रभाव का मूल्यांकन करता है। भारत में वृद्धावस्था पेंशन योजना सरकार द्वारा उन वरिष्ठ नागरिकों के लिए संचालित की जाती है, जो आय के स्रोतों से वंचित हैं। इस योजना का प्रमुख उद्देश्य वृद्ध लोगों को आर्थिक रूप से सक्षम बनाना और उनकी जीवनशैली में सुधार करना है, ताकि वे सम्मानपूर्वक जीवन यापन कर सकें। इस अध्ययन में हिसार जिले के 100 प्रतिभागियों को सम्मिलित किया गया, जो इस योजना का लाभ उठा रहे हैं। डेटा संग्रह के लिए साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग किया गया, जिसमें उनकी आर्थिक स्थिति, सामाजिक प्रतिष्ठा और आत्मनिर्भरता के विभिन्न पहलुओं पर जानकारी ली गई। परिणामों से यह पता चला कि पेंशन योजना ने वृद्ध व्यक्तियों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान की है, जिससे उनकी दैनिक आवश्यकताएं पूरी करने में सहायता मिली है। साथ ही, इस योजना ने उन्हें समाज में अधिक सम्मान और आत्मनिर्भरता का अनुभव कराया है। अधिकतर प्रतिभागियों ने यह माना कि पेंशन ने उन्हें जीवन की चुनौतियों का सामना करने में अधिक सक्षम बनाया है और उनके पारिवारिक व सामाजिक संबंधों में सुधार हुआ है। कुल मिलाकर, यह कहा जा सकता है कि वृद्धावस्था पेंशन योजना वृद्ध व्यक्तियों के जीवनस्तर को बेहतर बनाने और उनके सामाजिक सशक्तिकरण में अहम भूमिका निभा रही है, जिससे उनकी आत्मसम्मान और आर्थिक स्वतंत्रता में वृद्धि हो रही है।

सूचक शब्द : वृद्धावस्था, सामाजिक सशक्तिकरण, आत्मसम्मान, पेंशन, आर्थिक स्वतंत्रता।

2011 की जनगणना के अनुसार, भारत में कुल जनसंख्या का 8 प्रतिशत हिस्सा 60 वर्ष से अधिक आयु के लोगों का था, और संयुक्त राष्ट्र द्वारा तैयार किए गए अनुमानों के अनुसार, यह 2050 तक बढ़कर 19 प्रतिशत होने की संभावना है। भारत जैसे देश में, वृद्धों में आर्थिक असुरक्षा के कई कारण हो सकते हैं। गरीबी कई परिवारों में आर्थिक कठिनाइयों का एक प्रमुख कारण है, और वृद्धों के लिए यह चुनौती और भी गंभीर हो जाती है। गरीब परिवारों के वृद्ध सदस्य आर्थिक कठिनाइयों का सामना करते हैं, विशेष रूप से तब जब वे अपने परिवार का सहारा खो देते हैं।[1] भारत में वृद्धावस्था पेंशन योजनाओं का निर्माण विभिन्न सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के उद्देश्य से किया गया है। इन योजनाओं का मुख्य उद्देश्य बुजुर्गों के जीवनस्तर में सुधार लाना और उन्हें आत्मनिर्भर बनाना है, विशेषकर उन वरिष्ठ नागरिकों के लिए, जो वित्तीय असुरक्षा का सामना कर रहे हैं।[2] हरियाणा में यह योजना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि राज्य में वृद्ध जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है।[3] वृद्धावस्था पेंशन योजना ने वृद्धों की आर्थिक स्थिति, सामाजिक प्रतिष्ठा और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया है, जिससे समाज में उनके योगदान को सराहा गया है। भारत में वृद्धावस्था पेंशन योजनाएं सरकार की एक अहम पहल हैं, जो वर्तमान और भविष्य की वृद्ध जनसंख्या के जीवनस्तर में सुधार करने का प्रयास करती हैं। इन योजनाओं का मुख्य उद्देश्य वृद्धों की आर्थिक स्वतंत्रता को बढ़ावा देना और उनके सामाजिक सशक्तिकरण को सुदृढ़ करना है।[4]

हरियाणा में वृद्ध जनसंख्या का बढ़ता हुआ आंकड़ा एक गंभीर सामाजिक और आर्थिक चुनौती बन चुका है। राज्य में वृद्धजनों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है, जिसके कारण उनके कल्याण के लिए विभिन्न सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की आवश्यकता अनुभव होती है। हरियाणा की वृद्ध जनसंख्या विभिन्न सामाजिक और मानसिक समस्याओं का सामना करती है, जिनमें से सबसे प्रमुख समस्याएं गरीबी, स्वास्थ्य की स्थिति, सामाजिक अलगाव और परिवारिक समर्थन की कमी हैं। अधिकांश वृद्धजन कार्य

❑ अध्यक्ष समाज कार्य विभाग, भगत फूल सिंह महिला विश्वविद्यालय, खानपुर कला, सोनीपत (हरियाणा)
❖ शोध अध्येत्री, समाज कार्य विभाग, भगत फूल सिंह महिला विश्वविद्यालय, खानपुर कला, सोनीपत (हरियाणा)

करने की स्थिति में नहीं होते और उनके पास नियमित आय का कोई स्रोत नहीं होता। ग्रामीण क्षेत्रों में इस स्थिति को और भी चुनौतीपूर्ण बना दिया है, जहां सामाजिक और आर्थिक सहायता सीमित होती है।[5] वृद्धावस्था में कई शारीरिक और मानसिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जैसे गठिया, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, और मानसिक स्वास्थ्य समस्याएं, जिनका उपचार करना अक्सर महंगा और कठिन होता है।[6] वृद्धजन अक्सर सामाजिक अलगाव का सामना करते हैं, विशेषकर वे जो परिवार से दूर रहते हैं या जिनका परिवार उनके साथ नहीं रहता। यह अकेलापन उनकी मानसिक स्थिति पर नकारात्मक प्रभाव डालता है।[7] सरकार ने वृद्धावस्था पेंशन और अन्य सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के द्वारा वृद्धजनों को वित्तीय सहायता प्रदान करने की दिशा में कई कदम उठाए हैं। इन योजनाओं ने वृद्धजनों को आर्थिक सहायता प्रदान की है और उनकी जीवन गुणवत्ता में सुधार किया है।[8]

हरियाणा में समय के साथ जनसंख्या की आयु संरचना में बदलाव के परिणामस्वरूप, 1966 में राज्य के गठन के बाद से वृद्ध लोगों की संख्या और अनुपात में निरंतर वृद्धि हुई है। 2011 में वृद्धों की संख्या 22 लाख तक पहुंच गई, जो 1971 की तुलना में 16.1 लाख की वृद्धि को दर्शाता है। सापेक्ष रूप से, कुल जनसंख्या में वृद्धों का हिस्सा 1971 में 5.8 प्रतिशत से बढ़कर 2011 में 8.7 प्रतिशत हो गया। वृद्ध व्यक्तियों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से, जो अपनी व्यक्तिगत संसाधनों से भरण-पोषण में असमर्थ हैं और जिन्हें वित्तीय सहायता की आवश्यकता है, संयुक्त पंजाब के दौरान 1 अप्रैल 1964 को वृद्धावस्था पेंशन योजना का प्रारंभ किया गया। योजना के प्रारंभ में पेंशन की राशि 15 रुपये प्रति माह थी, जिसे समय-समय पर संशोधित और बढ़ाया गया। हरियाणा सरकार ने 1 नवंबर 1966 से इस योजना को लागू किया और पहले वर्ष में 2382 लाभार्थियों को कुल 24,680 रुपये की पेंशन प्रदान की।

1987 में 17 जून से, वृद्धावस्था पेंशन योजना को 65 वर्ष या उससे अधिक आयु के लोगों के लिए 100 रुपये प्रति माह की दर से लागू किया गया। इसके बाद, राज्य सरकार ने 1 जुलाई 1991 को वृद्धावस्था पेंशन योजना-1991 शुरू की, जिसे अब वृद्धावस्था सम्मान भत्ता योजना कहा जाता है। इस योजना में पात्रता की आयु 65 वर्ष से घटाकर 60 वर्ष कर दी गई। इसका उद्देश्य गरीब वर्गों जैसे खेतिहर मजदूर, ग्रामीण कारीगर, एससी/बीसी, छोटे/सीमांत किसान आदि को वृद्धावस्था भत्ते का लाभ प्रदान करना है। 1991 से अक्टूबर 1999 तक, पेंशन की राशि 100 रुपये प्रति माह थी, जिसे नवंबर 1999 से बढ़ाकर 200 रुपये कर दिया गया। नवंबर 2004 से इसे 300 रुपये प्रति माह किया गया। 1 मार्च 2009 से पेंशन राशि 500-700 रुपये प्रति माह रही, जो बाद में 1 जनवरी 2014 से 1000 रुपये प्रति माह कर दी गई। इसके बाद वृद्धावस्था सम्मान भत्ते की दरें निम्नलिखित रहीं।[9]

पेंशन राशि में बदलाव का विवरण

तिथि	पेंशन राशि (रुपये/माह)
01.04.1964	15
01.11.1966	.
17.06.1987	100
01.07.1991	100
01.11.1999	200
01.11.2004	300
01.03.2009	500.700
01.01.2014	1000
01.01.2015	1400
01.11.2016	1600
01.11.2017	1800
01.11.2018	2000
01.01.2020	2250
01.04.2021	2500
01.04.2023	2750
01.01.2024	3000

स्रोतः वृद्धावस्था सम्मान भत्ता योजना। सामाजिक न्याय और सशक्तिकरण निदेशक।

पात्रता के लिए व्यक्ति की आयु 60 वर्ष या उससे अधिक होनी चाहिए, वह हरियाणा का निवासी होना चाहिए, और उसकी/उसकी पति/पत्नी की कुल वार्षिक आय 3,00,000 रुपये से अधिक नहीं होनी चाहिए। सामाजिक सुरक्षा का उद्देश्य राज्य, उद्योग, संस्थान और परिवार में लोगों की समग्र सुरक्षा सुनिश्चित करना है। इसका डिजाइन इस प्रकार किया गया है कि सभी नागरिकों को आवश्यक चीजें जैसे भोजन, आवास, वस्त्र, शिक्षा, स्वच्छ पानी और स्वास्थ्य सेवाएं प्राप्त हों, साथ ही बीमारी, विकलांगता, बेरोजगारी, चिकित्सा देखभाल, बच्चे की देखभाल, विधवापन और वृद्धावस्था जैसी असामान्य परिस्थितियों से सुरक्षा मिले। यह सुनिश्चित करने के लिए है कि समाज

के सदस्य एक सम्मानजनक जीवन स्तर बनाए रख सकें।[10]

साहित्य समीक्षा

रक्षित एवं देबनाथ[11] ने त्रिपुरा में राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना का अध्ययन किया, जो इस योजना के कार्यान्वयन के प्रभाव और कमियों पर केंद्रित था। उन्होंने उत्तरी त्रिपुरा के कलचेर्रा ब्लॉक के गोबिंदपुर गांव के 50 लाभार्थियों का साक्षात्कार एक सुव्यवस्थित प्रश्नावली के माध्यम से किया। अधिकांश लाभार्थी उच्च रक्तचाप से पीड़ित थे और सभी ने बताया कि वे अपनी पेंशन का उपयोग दवाएं खरीदने के लिए कर रहे थे। अध्ययन ने निष्कर्ष निकाला कि पेंशन गरीब वृद्धों के कुछ खर्चों को पूरा करने में महत्वपूर्ण सहायता प्रदान करती है।

मुरुगन एवं धनसेकरन[12] ने ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न कल्याण योजनाओं के बारे में बुजुर्गों की जागरूकता और उपयोग का विश्लेषण किया, जिसमें लिंग आधारित अंतरों पर ध्यान दिया गया। अध्ययन में पाया गया कि जागरूकता का स्तर इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना जैसी योजनाओं के उपयोग को प्रभावित करता है और पंचायत स्तर पर इन योजनाओं के प्रचार की संस्तुति की गई ताकि सभी वृद्धों को शीघ्र सम्मिलित किया जा सके।

जोथी एवं सह-लेखकों[13] के अध्ययन में बताया गया कि आर्थिक सहायता से वृद्धों की स्थिति, सम्मान, स्वतंत्रता और जीवन की गुणवत्ता में सुधार होता है। उनके परिणामों से पता चला कि 4 प्रतिशत वृद्ध काम कर रहे थे, 64 प्रतिशत अपने बच्चों के साथ, 22 प्रतिशत अपने जीवनसाथी के साथ, और 14 प्रतिशत अकेले रह रहे थे। इसके अतिरिक्त, 25 प्रतिशत उत्तरदाताओं में तंबाकू या शराब की लत थी।

कोहली एवं सह-लेखकों[14] ने दिल्ली के एक ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक देखभाल अस्पताल में वृद्धों द्वारा सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के उपयोग में आने वाली जागरूकता, उपयोग और बाधाओं का मूल्यांकन किया। अध्ययन में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन, अन्नपूर्णा और वरिष्ठ नागरिक अधिनियम, 2007 पर ध्यान केंद्रित किया गया। प्रमुख बाधाओं में जटिल प्रशासनिक प्रक्रियाएं, भ्रष्टाचार, और योजनाओं से संबंधित जानकारी का अभाव सम्मिलित था। उन्होंने सुझाव दिया कि स्थानीय नेताओं को वरिष्ठ नागरिकों को इन योजनाओं के बारे में जागरूक करने की पहल करनी चाहिए।

गोस्वामी एवं सह-लेखकों[15] के अध्ययन ने पाया कि 42.2 प्रतिशत वृद्ध कम से कम एक सामाजिक कल्याण योजना का लाभ उठा रहे थे, जिससे उन्हें घरेलू और स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायता मिली। उन्होंने पाया कि वृद्धों के बीच सामाजिक कल्याण योजनाओं के प्रति जागरूकता अच्छी थी, लेकिन उनके प्रभावी उपयोग के मामले में काफी सुधार की आवश्यकता है। अध्ययन केवल शहरी क्षेत्रों तक सीमित था।

खान एवं दहिया[16] के अध्ययन ने वृद्धों के बीच विभिन्न सरकारी सामाजिक कल्याण योजनाओं के प्रति जागरूकता और उनके उपयोग को उजागर किया। अध्ययन से निष्कर्ष निकला कि सभी प्रतिभागी इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना के बारे में जानते थे और इसका लाभ उठा रहे थे। यह अध्ययन हरियाणा के हिसार और नूंह जिलों में किया गया था। हिसार में, प्रतिभागी समानता के अधिकार और धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार को छोड़कर अन्य सभी अधिकारों के प्रति तुलनात्मक रूप से अधिक जागरूक थे। हरियाणा पर केंद्रित अध्ययनों की समीक्षा से पता चलता है कि वृद्धावस्था पेंशन योजना ने वृद्धों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। यह अध्ययन हरियाणा में योजना के सफल कार्यान्वयन को दर्शाता है, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में वृद्ध महिलाओं के लिए।

शोध के उद्देश्य

1. वृद्धावस्था पेंशन योजना की महत्ता और प्रभाव को समझना।
2. इस योजना का वृद्ध व्यक्तियों की आर्थिक स्वतंत्रता पर प्रभाव का विश्लेषण।
3. योजना के माध्यम से वृद्धों के सामाजिक सशक्तिकरण का मूल्यांकन करना।

शोध पद्धति :

प्रस्तुत शोध अध्ययन में हरियाणा के हिसार जिले के वृद्ध पेंशन लाभार्थियों का अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत शोध कार्य वर्णनात्मक शोध डिजाइन का अनुसरण करता है। शोध कार्य प्राथमिक एवं द्वितीयक समंकों पर आधारित है। प्राथमिक समंकों के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में लिए गए नमूने का औचित्य सामाजिक और शोधगत दोनों दृष्टिकोणों से स्पष्ट किया जा सकता है। सामाजिक न्याय और अधिकारिता विभाग, हरियाणा के अनुसार, हिसार में कुल

लाभार्थियों की संख्या 5350 है। समय की सीमा के कारण, शोधकर्ता सभी लाभार्थियों से डेटा एकत्र नहीं कर सके, इसलिए शोध में केवल 100 प्रतिभागियों को सम्मिलित किया गया। नमूने में 55 महिलाएं और 45 पुरुषों को सम्मिलित किया गया है, जो यह सुनिश्चित करता है कि अध्ययन में लिंग आधारित दृष्टिकोण को पर्याप्त महत्व दिया गया है। यह संतुलन पेंशन योजना के प्रभाव और इसके उपयोग में संभावित लिंगभेद को समझने में सहायक होगा।

उद्देश्यपूर्ण नमूना पद्धति को अपनाने का कारण यह है कि यह उन प्रतिभागियों का चयन सुनिश्चित करता है जो वृद्धावस्था पेंशन योजना के लाभार्थी हैं और अध्ययन के विषय से सीधे जुड़े हैं। इस पद्धति से प्राप्त डेटा योजना की वास्तविकता को बेहतर ढंग से उजागर करने में सहायक होगा। ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक और सामाजिक संदर्भ शहरी क्षेत्रों की तुलना में भिन्न होता है। ग्रामीण महिलाओं की अधिक निर्भरता और पुरुषों की सीमित भागीदारी इस तथ्य को रेखांकित करती है कि इन क्षेत्रों में वृद्धावस्था पेंशन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अतः इस क्षेत्र को अध्ययन में सम्मिलित करना योजनाओं के प्रभाव और उनकी आवश्यकता को समझने के लिए अत्यावश्यक था।

परिणाम

तालिका 1 में प्रतिभागियों की जनसांख्यिकीय विशेषताओं की जानकारी दी गई है। प्रतिभागियों की आयु की बात करें तो सबसे अधिक संख्या 60-69 वर्ष की आयु समूह में है, जिसमें 48 प्रतिशत प्रतिभागी सम्मिलित हैं। इसके बाद 70-79 वर्ष की आयु वाले 42 प्रतिशत हैं, और 80 वर्ष और उससे अधिक आयु वाले केवल 10 प्रतिशत प्रतिभागी हैं। लिंग के संदर्भ में, महिलाओं की संख्या पुरुषों से अधिक है, कुल 55 प्रतिशत महिलाएँ और 38 प्रतिशत पुरुष हैं।

आवास व्यवस्था के संदर्भ में, सबसे बड़ी संख्या (89 प्रतिशत) उन प्रतिभागियों की है जो बच्चों या जीवनसाथी के साथ रहती हैं, जबकि अकेले रहने वाले प्रतिभागियों की संख्या 11 प्रतिशत है। शैक्षिक स्तर की दृष्टि से, सबसे अधिक संख्या (33 प्रतिशत) उन प्रतिभागियों की है जिनके पास कोई औपचारिक शिक्षा नहीं है। इसके बाद प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने वाले प्रतिभागी 27 प्रतिशत हैं, माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले 21 प्रतिशत और उच्च शिक्षा और उससे अधिक प्राप्त करने वाले 19 प्रतिशत हैं। इस तालिका से यह स्पष्ट होता है कि प्रतिभागियों में सबसे अधिक संख्या मध्यवर्गीय आयु समूह, महिलाएँ, और बच्चों या जीवनसाथी के साथ रहने वाले लोग हैं, साथ ही अधिकांश प्रतिभागी कम शैक्षिक स्तर वाले हैं।

तालिका 1

प्रतिभागियों की जनसांख्यिकीय विशेषताएँ

विशेषता	प्रतिशत
आयु	
60-69 वर्ष	48
70-79 वर्ष	42
80 वर्ष और उससे अधिक	10
लिंग	
पुरुष	45
महिला	55
आवास व्यवस्था	
बच्चों/जीवनसाथी के साथ	89
अकेला	11
शैक्षिक स्तर	
कोई औपचारिक शिक्षा नहीं	33
प्रारंभिक शिक्षा	27
माध्यमिक शिक्षा	21
उच्च शिक्षा और उससे अधिक	19

वृद्धावस्था पेंशन योजना के प्रति जागरूकता और प्रक्रिया की जानकारी का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

तालिका 2

योजना के बारे में ज्ञान

जागरूक	प्रतिशत
योजना के प्रति जागरूक	100
प्रक्रिया से अवगत	9

तालिका 2 में दिखाया गया है कि सभी उत्तरदाता (शत-प्रतिशत) योजना के प्रति जागरूक हैं, जबकि केवल नौ प्रतिशत उत्तरदाता योजना की प्रक्रिया से अवगत हैं। यह दर्शाता है कि, जबकि योजना के बारे में जानकारी उपलब्ध है, प्रक्रिया को समझने में कमी है।

तालिका 3

वृद्धावस्था पेंशन में भ्रष्टाचार

विवरण	प्रतिशत
रिश्वत देने वाले उत्तरदाताओं की संख्या	11
पेंशन के लिए नामांकन करते समय रिश्वत देनी पड़ी	9
कुल	20

तालिका 3, वृद्धावस्था पेंशन में भ्रष्टाचार, में तीन महत्वपूर्ण आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं। इस तालिका के अनुसार, 11 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि उन्होंने पेंशन प्राप्त करने की प्रक्रिया में रिश्वत दी। इसके अलावा, 9 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि उन्हें पेंशन के लिए नामांकन करते समय रिश्वत देनी पड़ी। कुल मिलाकर, 20 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो या तो रिश्वत देने वाले थे या नामांकन के समय रिश्वत देने की आवश्यकता का सामना कर चुके थे। यह तालिका इस बात को स्पष्ट करती है कि वृद्धावस्था पेंशन की प्रक्रिया में भ्रष्टाचार एक महत्वपूर्ण समस्या है, जो लाभार्थियों को प्रभावित कर रही है और इस योजना की प्रभावशीलता को कम कर रही है।

तालिका 4

पेंशन के वितरण की जानकारी के स्रोत

पेंशन के वितरण की जानकारी प्राप्त करने के तरीके	संख्या
पंचायत के माध्यम से	22
अन्य लाभार्थियों के माध्यम से	41
डाकघर के माध्यम से	39
कोई जानकारी का स्रोत नहीं	5
कुल	100

तालिका 4, पेंशन के वितरण की जानकारी प्राप्त करने के स्रोतों के संबंध में 41 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि उन्होंने अन्य लाभार्थियों के माध्यम से पेंशन की जानकारी प्राप्त की है। इसके बाद, 39 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने डाकघर के माध्यम से, जबकि 22 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने पंचायत को अपने सूचना स्रोत के रूप में चुना। अंत में, 5 उत्तरदाता ऐसे हैं जिन्होंने बताया कि उनके पास कोई जानकारी का स्रोत नहीं है। तालिका संकेत देती है कि अधिकांश लाभार्थियों के लिए अन्य लाभार्थी जानकारी के सबसे प्रभावी तरीका हैं, जबकि पंचायत और डाकघर भी महत्वपूर्ण सूचना स्रोत हैं।

तालिका 5

पेंशन और इसका उपयोग

विशेषताएँ	प्रतिशत
खाद्य खर्चों को पूरा करना	22
स्वास्थ्य खर्चों को पूरा करना	49
आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करना	16
परिवार के सदस्यों पर निर्भरता से बचना	9
सामाजिक खर्चों में योगदान देना	4
कुल (100 में से)	100

उपर्युक्त तालिका 5 में पेंशन के पेंशन और इसका उपयोग का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जिसमें 49 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि पेंशन ने उनके स्वास्थ्य खर्चों को पूरा करने में सहायता की, जो कि सबसे बड़ा अनुपात है। इसके बाद, 22 प्रतिशत ने खाद्य खर्चों को पूरा करने में 16 प्रतिशत ने अन्य आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में, जबकि 9 प्रतिशत ने परिवार के सदस्यों पर निर्भरता से बचने में पेंशन का उपयोग किया। अंत में, केवल 4 प्रतिशत उत्तरदाता ही सामाजिक खर्चों में योगदान देने में सक्षम थे। आंकड़े यह दर्शाते हैं कि पेंशन का प्रमुख प्रभाव स्वास्थ्य और खाद्य सुरक्षा पर है, जबकि सामाजिक और पारिवारिक निर्भरता को कम करने में इसकी भूमिका अपेक्षाकृत कम है।

तालिका 6

पेंशन के लिए आवेदन करते समय उन्हें जिन समस्याओं का सामना करना पड़ा

समस्याएं	विवरण
जटिल प्रशासनिक प्रक्रिया	सभी लाभार्थियों को सामना करना पड़ा
पहचान में समय	सभी को एक महीने से अधिक समय लगा
लंबा समय लेने वाले लाभार्थियों की संख्या	23 लाभार्थियों को 6 महीने से 1 साल तक का समय लगा

तालिका 6, सभी को पेंशन के लिए आवेदन करते समय जटिल प्रशासनिक प्रक्रिया का सामना करना पड़ा। सभी ने कहा कि उन्हें लाभार्थियों के रूप में पहचानने में एक महीने से अधिक समय लग गया। उनमें से 23 ने कहा कि उन्हें लाभार्थियों के रूप में पहचानने में 6 महीने से 1 साल तक का समय लग गया।

तालिका 7

पेंशन प्राप्त करते समय उन्हें जिन समस्याओं का सामना करना पड़ा

विशेषताएँ	प्रतिशत
बैंक की दूरी, 4 किलोमीटर,सार्वजनिक परिवहन का उपयोग	27
स्वास्थ्य समस्याएँ	9
परिवार के सदस्यों द्वारा सहायता	36
कुल	36

तालिका 7 से स्पष्ट है कि 27 प्रतिशत सूचनादाताओं ने कहा कि जिन बैंकों से उन्होंने अपनी पेंशन प्राप्त की, वे उनके घरों से 4 किलोमीटर से अधिक दूर थे। विभिन्न स्वास्थ्य समस्याओं के बावजूद उन्हें अपनी पेंशन स्वयं एकत्र करने के लिए सार्वजनिक परिवहन से यात्रा करनी पड़ी। 9 उत्तरदाताओं को, जिनमें गंभीर बीमारियाँ जैसे कि चलने में समस्या और मानसिक अस्थिरता थी, अपनी पेंशन प्राप्त करने के लिए उनके परिवार के सदस्यों द्वारा ले जाया गया।

तालिका 8
पेंशन राशि के प्रति लाभार्थियों की संतुष्टि

संतोष का स्तर	प्रतिशत
संतुष्ट	63
असंतुष्ट	37
कुल (100 में से)	100

तालिका 8 से स्पष्ट है कि 63 प्रतिशत लाभार्थियों ने उन्हें मिलने वाली मासिक पेंशन राशि पर संतोष व्यक्त किया है, जबकि 37 लाभार्थियों ने पेंशन राशि के प्रति संतोष नहीं जताया है।

वृद्धावस्था पेंशन योजना की महत्ता : यह योजना न केवल आर्थिक स्थिरता सुनिश्चित करती है बल्कि वृद्ध व्यक्तियों के आत्मसम्मान और सामाजिक स्थिति को भी सुदृढ़ करती है। इससे उन्हें परिवार पर निर्भर रहने से राहत मिलती है और वे समाज में अधिक सम्मान और आत्मनिर्भरता का अनुभव करते हैं। इसके अतिरिक्त, यह योजना वृद्ध व्यक्तियों के मानसिक और भावनात्मक कल्याण को भी बढ़ावा देती है।

वृद्धावस्था पेंशन योजना का प्रभाव : वृद्धावस्था पेंशन योजना का प्रभाव आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर व्यापक रूप से देखा जा सकता है।

आर्थिक प्रभाव : वृद्धावस्था पेंशन योजना समाज के वृद्ध वर्ग के लिए वित्तीय सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण साधन है। यह योजना उनके मासिक खर्चों को पूरा करने में सहायता करती है, जिससे गरीबी दर को कम करने में योगदान मिलता है। यह न केवल व्यक्तिगत वित्तीय स्थिरता प्रदान करती है, बल्कि ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में आर्थिक प्रवाह को बढ़ावा देती है।

सामाजिक प्रभाव : सामाजिक दृष्टिकोण से, पेंशन योजना वृद्धों को गरिमा और आत्मसम्मान प्रदान करती है। यह उन्हें परिवार और समाज में अपनी उपस्थिति को सशक्त करने का अवसर देती है। आर्थिक आत्मनिर्भरता के कारण वे परिवार पर बोझ अनुभव नहीं करते, जिससे उनके संबंधों में सुधार होता है।

मनोवैज्ञानिक प्रभाव : मनोवैज्ञानिक रूप से, वृद्धावस्था पेंशन योजना का सकारात्मक प्रभाव उनके मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। यह आर्थिक चिंता को कम करके मानसिक शांति प्रदान करती है। यह योजना अकेलापन और सामाजिक अलगाव को कम करने में भी सहायता करती है, क्योंकि वृद्ध अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए दूसरों पर निर्भर नहीं रहते।

इन सभी पहलुओं को मिलाकर देखा जाए तो वृद्धावस्था पेंशन योजना न केवल वृद्धों के जीवन को बेहतर बनाती है, बल्कि समाज और अर्थव्यवस्था में भी स्थिरता और विकास को प्रोत्साहित करती है।

सुझाव : पेंशन भुगतान में विलंब के कारण होने वाली असुविधाओं से बचने के लिए, पेंशन वितरण की एक निश्चित तिथि पहले से सुनिश्चित की जानी चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने पहले ही आदेश दिया है कि पेंशन लाभार्थियों को हर महीने की 7 तारीख से पहले पेंशन का भुगतान किया जाए। लेकिन ओडिशा को छोड़कर, जहां हर महीने की 15 तारीख को मासिक पेंशन का भुगतान किया जाता है, अन्य किसी राज्य ने इस आदेश का पालन नहीं किया है। अगर अग्रिम तिथि तय करना संभव नहीं है, तो पेंशन वितरण की तिथि के बारे में लाभार्थियों को एसएमएस के माध्यम से अग्रिम सूचना दी जा सकती है। **अधिकांश** को पेंशन उनके दरवाजे तक पहुंचाई जानी चाहिए (अधिक आयु वाले, विकलांग, और अंतिम अवस्था में बीमार पेंशनधारकों)। ऐसे लाभार्थियों की असुविधा को कम करने के लिए बैंक एक अधिकृत एजेंट द्वारा पेंशन का घर-घर वितरण किया जा सकता है।

कई मामलों में, वृद्धों की स्थिति और समस्याओं को स्थानीय स्तर पर उचित रूप से अंकित नहीं किया जाता है। परिणामस्वरूप, कुछ योग्य वृद्ध वृद्धावस्था पेंशन योजना से बाहर रह जाते हैं और कुछ अयोग्य व्यक्तियों को योजना में सम्मिलित कर लिया जाता है। एक नियमित सर्वेक्षण, जो शहरी क्षेत्र या गांव में किया जाए, इस मामले में सहायता कर सकता है।

वृद्धों को वृद्धावस्था पेंशन के हस्तांतरण के लिए एक परेशानी-मुक्त अनुभव प्रदान करने के लिए, सरकार द्वारा एक विशेष विंडो साथ ही एक समर्पित टोल-फ्री नंबर

खोला जा सकता है। इससे वृद्धों को अपनी पेंशन संबंधित समस्याओं को अंकित कराने और उचित समाधान प्राप्त करने में सुविधा होगी।

निष्कर्ष : वृद्धावस्था पेंशन योजना वृद्ध लोगों की आर्थिक स्वतंत्रता और सामाजिक सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण साधन है। अध्ययन में देखा गया है कि हरियाणा सरकार ने 1964 में योजना प्रारंभ करते समय की पेंशन राशि 25 रूपये प्रतिमाह समय-समय पर वृद्धि करके 2024 में 3000 रूपये प्रतिमाह कर दिया है। योजना के प्रति जागरूकता के संबंध में देखा गया कि शत प्रतिशत सूचनादाता इसके प्रति जागरूक थे, पेंशन प्रक्रिया में भ्रष्टाचार के संबंध में 20 प्रतिशत सूचनादाताओं को रिश्वत देनी पड़ी। अधिसंख्यक सूचनादाताओं को पेंशन वितरण के संबंध में अन्य सूचनादाताओं से जानकारी प्राप्त हुई, पेंशन प्राप्त करने वाले सूचनादाताओं में अधिसंख्यक स्वास्थ्य संबंधी तथा खाद्य संबंधी खर्चों को पूरा करने में व्यय करते हैं। पेंशन से प्राप्त होने वाली राशि के संबंध में अधिकांश सूचनदाताओं ने संतुष्टि प्रदर्शित की। पेंशन के संबंध में सूचनादताओं से प्राप्त सुझावों में बताया गया कि पेंशन भुगतान एक निश्चित तिथि पर होना चाहिए, अधिक आयु वाले विकलांग अथवा बीमार वृद्धों को उनके घर पर ही पेंशन प्रदान करने की व्यवस्था की जानी चाहिए तथा वृद्धों को पेंशन संबंधी समस्याएं सरकार को अवगत कराने के लिए एक टोल फ्री नम्बर खोलने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

सन्दर्भ

1. Beneficiaries under the Old Age Widow and National Security Pension Scheme in Himachal Pradesh. Evaluation Division, Planning Department, Government of Himachal Pradesh. [Cited January 9, 2016]; retrieved from: http://hpplanning.nic.in/beneficiaries%20under%20old%20age%20widow%20and%20national%20security%20pension%20scheme%20-%20himachal%20pradesh.pdf
2. Kulkarni, S., S. Raju, and S. Bamidi (2016). "Social security for the elderly in India," Building knowledge base on ageing in India: Increasing awareness, access and quality of elderly services, Thematic Paper 1, United Nations Population Fund, New Delhi, viewed on 25 November 2018, https://india.unfpa.org/sites/default/files/pub-pdf/ThematicPaper1_2.pdf.
3. Day S., Nambiar D., Lakshmi J.K., Sheikh K., & Reddy K.S. (2015). Aging in Asia: Insights from new and emerging data initiatives. Available from: http://www.ncbi.nlm.nih.gov/books/NBK109208/
4. Beveridge, W. *'Pillars of Security and other wartime essays and speeches'*, London: Allen & Unwin, 1943, 125-140.
5. Rural Development Department *'Social and Economic Status of the Elderly in Haryana*', Haryana Government, 2023, pp. 45-47).
6. Health Department, *'A Study on Health Issues in Old Age'*, Haryana State Health Department, 2022 pp. 30-32.
7. Social Work Department, *'Elderly and Social Isolation in Haryana: An Analysis'*, Haryana State Social Work Department, 2021, pp. 15-18).
8. Haryana Government, *'Old Age Pension Scheme and its Benefits'*, Published by the Social Welfare Department of Haryana Government., 2023, pp. 22-25.
9. Singh, A., 'Old age pension schemes in India: An analysis of implementation and its impact on the elderly population. Journal of Social and Economic Development, 2013, 15(2), pp. 145-160.
10. Government of Haryana. (2024). Old Age Samman Allowance Scheme. Directorate of Social Justice and Empowerment. Retrieved from http://socialjusticehry.govt.in.old-age-samman-allowance-scheme
11. Raxit, & Debnath, 'A study on the National Old Age Pension Scheme in Tripura', International Journal of Humanities and Interdisciplinary Studies, 2021, 2(9), pp. 149–158. DOI. 03.2021-11278686.
12. Murugan, P.B., & Dhanasekaran, G, 'Awareness and utilization of government welfare schemes by the elderly in selected rural areas of Tamil Nadu', Indian Journal of Research, 2015, 4(9), pp. 211-212.
13. Jothi, S., Lakshminarayanan, S., Kar, S.S., Jayalakshmi, R., & Salvaraj, R., 'Utilization pattern of monetary benefits and satisfaction among elderly pension scheme beneficiaries in Puducherry, India: A mixed-method study', Journal of Clinical and Diagnostic Research, 2016, 10(9), pp. LC01-LC05.
14. Kohli, C., & Banerjee, B. 'Social security measures for the elderly population in Delhi, India: Awareness, utilization, and barriers', Journal of Clinical and Diagnostic Research, 2017, 11(5). pp. DOI: 10.7860/JCDR/2017/21271.9814.
15. Goswami, R., 'Pension schemes in rural India and poverty alleviation: An empirical analysis', Indian Journal of Social Development, 2002, 2(1), pp. 67-85.
16. Khan, A., & Dahiya, M., 'Cognizance and utilization of old age pension', Pharma Innovation Journal, Volume 11 (2), 2022, pp. 1593-1601.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

छत्तीसगढ़ के धार्मिक पर्यटन स्थल खल्लारी का ऐतिहासिक अध्ययन

❑ सुश्री जागृति जगत
❖ डॉ. बन्सो नुरूटी

सूचक शब्द : खल्लारी माता मंदिर, राज्य संरक्षित स्मारक, धार्मिक पर्यटन, प्रस्तर अभिलेख, नागर शैली।

छत्तीसगढ़ के विभिन्न धार्मिक स्थलों में रायपुर संभाग के महासमुन्द जिला के अंतर्गत 36 गढ़ों में ख्यातिलब्ध गढ़ खल्लारी का विशेष स्थान है। प्राचीन खल्लवाटिका की इष्ट आराध्या माता-खल्लारी सुरम्य प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त पहाड़ी के ऊपर विराजमान हैं, जहाँ से समूचे क्षेत्र का प्राकृतिक सौन्दर्यपान विहंगम दृष्टि से किया जा सकता है। पर्वत के ऊपर खल्लारी माता के प्राचीन मंदिर का निर्माण लगभग 15 वीं सदी ई. में हुआ था। इसके अतिरिक्त यहाँ राज्य संरक्षित स्मारक नारायण मंदिर (वर्तमान जगन्नाथ मंदिर) स्थित है। खल्लारी से प्राप्त प्रस्तर अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि इस मंदिर का निर्माण 13 वी शताब्दी में देवपाल नामक मोची के द्वारा करवाया गाया था। इस अभिलेख में इस स्थान का नाम "खल्लारिका" के रूप में उल्लिखित है। नागर शैली में निर्मित यह मंदिर वास्तुकला का सुन्दर उदाहरण है। इसके अलावा यहाँ राउर खल्लारी, भीम पाँव, भीम चूल्हा, ऐतिहासिक कुंड, डोंगा पथरा, बघवा खोल, हाथी-हथिनी पत्थर आदि दर्शनीय स्थल हैं। खल्लारी माता को शक्ति देवी के रूप में पूजा जाता है। अपनी मनोकामना पूर्ति हेतु दूर-दूर से श्रद्धालु बड़ी संख्या में आते हैं। इस स्थान पर प्रति वर्ष चैत्र पूर्णिमा को खल्लारी मेला महोत्सव का आयोजन किया जाता है। प्रस्तुत लेख धार्मिक पर्यटन स्थल खल्लारी के ऐतिहासिक अध्ययन का एक प्रयास रहा है।

किसी भी राष्ट्र की भौतिक विशिष्टताएँ जैसे पर्वत, नदी जल प्रपात,प्राकृतिक एवं धार्मिक स्थल सदैव मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करती रही हैं। साथ ही वहाँ की संस्कृति भी उस जगह को परिभाषित करती है। संसार में किसी भी वस्तु का वितरण एक समान नही होता। मानव अति महत्वाकांक्षी होने के कारण अपनी आकाक्षांओं और आवश्यकताओं को प्राप्त करने के लिए अन्यत्र स्थान की ओर सदैव गमन करता है। इसे ही पर्यटन का नाम दिया गया है।

प्राचीन काल से ही भारत की भूमि सभी धर्मों के साथ सामंजस्य स्थापित करती आ रही है, अर्थात यहां विभिन्न धर्म को मानने वाले लोग निवास करते हैं।[1] पर्यटन और धार्मिक स्थल का बहुत ही घनिष्ठ संबंध रहा है। भारतीय पर्यटन स्थलों में कुछ स्थल ऐसे भी हैं जिनका महत्व धर्म या आध्यात्म के कारण है। लोग अपनी आस्था एवं भक्ति के कारण धार्मिक स्थलों की यात्रा करतें हैं। उनका प्राथमिक उद्देश्य उस स्थल पर जाकर अपनी मनोकामना पूर्ति हेतु प्रार्थना करना है। धार्मिक स्थल सहज रूप से मानव जाति को अशांति से शांति की ओर ले जाते है।[2]

प्राचीन काल में अनेक ऐसे स्मारक बनवाए गए, जिससे समाज, संस्कृति तथा इतिहास को संपन्नता प्रदान की जा सके। भारतीय धार्मिक संप्रदायों के अंतर्गत कई भव्य स्मारकों का निर्माण किया गया, जिनसे तत्कालीन समाज की जानकारी प्राप्त होती है। ये स्मारक न केवल धार्मिक दृष्टिकोंण से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि ये भारतीय संस्कृति की लोकप्रियता एवं गौरवपूर्ण अतीत का वर्णन भी करते हैं। ऐसे कई स्मारक या मंदिर भारत के विभिन्न स्थानों पर तत्कालीन शासकों द्वारा निर्मित कराये गये हैं, जो देश की विविध धार्मिक एवं सामाजिक संस्कृतियों को संजोकर रखे हुए हैं।[3]

पर्यटन के अनेक स्वरूपों के अंर्तगत धार्मिक पर्यटन भी सम्मिलित है। धार्मिक पर्यटन में विभिन्न धर्म जैसे हिन्दू, बौद्ध, जैन, मुस्लिम, ईसाई आदि के धार्मिक स्थल आते हैं। भारत में पर्यटन के अन्य प्रकारों की तुलना में धार्मिक पर्यटन का एक अलग महत्व है। यहां धर्म पर आधरित स्थल एवं पर्व पर्यटकों को सहसा अपनी ओर आकर्षित करतें हैं। यहाँ मनाए जानें वाले प्रत्येक त्यौहार में हमारी संस्कृति की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। वर्तमान

❑ शोध अध्येत्री, इतिहास अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)
❖ सहायक प्राध्यापक, इतिहास अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व की अपनी विलुप्त होती संस्कृति का संरक्षण करनें की महती आवश्यकता है।[4]

भारत के मध्यभाग में स्थित छत्तीसगढ़ अपनी सांस्कृतिक संपन्नता और आस्थाओं के समन्वयपूर्ण संगम के लिए जाना जाता है। इस स्थल को ऋषियों की तप-स्थली, कृषि की धरती एवं अरण्य संस्कृति की अद्‌भुत रंगस्थली माना जाता है। यह राज्य एक पर्यटन राज्य है। छत्तीसगढ़ के उत्तर में सतपुड़ा की पहाड़ियां, दक्षिण में बस्तर का पठार तथा मध्य में पुण्य सलिला चित्रोत्पला (वर्तमान महानदी) का मैदान है। यह राज्य प्राचीन स्मारक बौद्ध एवं जैन धर्म स्थलों, शैल चित्रों, ऐतिहासिक, पुरातात्विक, प्राकृतिक, धार्मिक आदि पर्यटन स्थलों से परिपूर्ण है जो दक्षिण कोशल के प्राचीन संस्कृति का अद्वितीय उदाहरण है।[5]

छत्तीसगढ़ राज्य के रायपुर संभाग में स्थित महासमुन्द जिला धार्मिक पर्यटन से परिपूर्ण है। रायपुर से 60 किलोमीटर की दूरी पर महासमुन्द जिले के बागबाहरा विकासखंड के अंर्तगत खल्लारी ग्राम स्थित है। ऊँचे पर्वतों से घिरा खल्लारी अपने प्राकृतिक सौंदर्य के कारण पर्यटकों का मन मोह लेता है। यहां की आराध्य देवी माता खल्लारी ऊँचे पहाड़ के ऊपर विराजित हैं, जहां पहुंचने के लिए 948 सीढ़ियाँ पार करनी होती हैं। यहां खल्लारी मंदिर के अतिरिक्त राउर खल्लारी, नारायण मंदिर, जगन्नाथ मंदिर, भीम पांव, भीम चूल्हा, ऐतिहासिक कुण्ड, डोंगा पथरा, बघवा खोल, हाँथी-हांथिनी पत्थर आदि दर्शनीय स्थल हैं।[6]

शोध का उद्‌देश्य :- छत्तीसगढ़ की धार्मिक नगरी खल्लारी का ऐतिहासिक अध्ययन कर अप्रकाशित स्थलों को प्रकाश में लाना शोध अध्येत्री का मुख्य उद्‌देश्य है।

शोध प्रविधि :- प्रस्तुत अध्ययन प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोंतो पर आधारित है। प्राथमिक स्रोत के अंतर्गत अध्ययन क्षेत्र खल्लारी का निरीक्षण एवं वहाँ के लोगों से साक्षात्कार करके तथ्यों का संकलन किया गया है तथा द्वितीयक स्रोत के अंतर्गत संबंधित साहित्य का अध्ययन किया गया है।

साहित्य का पुनरावलोकन :-

गुप्त मदनलाल[7] की पुस्तक में खल्लारी का वर्णन क्षेत्रीय इतिहास के संदर्भ में किया गया है। इसमें जानकारी दी गई की वर्तमान खल्लारी का नाम खल्लवाटिका था तथा यहां कल्चुरी वंशीय राजा ब्रम्हदेव शासन करते थे। इन्होने यहां अपनी राजधानी स्थापित की थी। खल्लारी के परिसर में स्थित नारायण मंदिर का उल्लेख किया गया है जिसका निर्माण देवपाल मोची द्वारा कराया गया था।

मिश्र रमेन्द्रनाथ[8] ने अपनी पुस्तक में छत्तीसगढ़ के प्राचीन इतिहास से आधुनिक इतिहास तक का वर्णन किया है। राज्य के प्रमुख ऐतिहासिक पर्यटन स्थलों का जिलेवार वर्णन किया गया है, जिसके अंतर्गत खल्लारी का उल्लेख धार्मिक पर्यटन के रूप में किया गया है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आस्था एवं विश्वास का स्थल खल्लारी धार्मिक पर्यटन के क्षेत्र में विशेष महत्व रखता है।

शर्मा टी.डी.[9] की पुस्तक में छत्तीसगढ़ के पुरातात्विक, ऐतिहासिक, धार्मिक एवं प्राकृतिक स्थलों का अवलोकन पर्यटन विकास के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। इसमें बताया गया है कि पर्यटन स्थल की प्रसिद्धि का अनुमान वहाँ आने वाले पर्यटकों की संख्या से किया जा सकता है। खल्लारी का उल्लेख एक दर्शनीय शक्तिपीठ के रूप में किया गया है जिसमें खल्लारी मंदिर, भीम की नांव, चूल्हा आदि स्थलों का विस्तार पूर्वक वर्णन मिलता है।

परिहार, प्रकाश[10] द्वारा लिखित पुस्तक में पर्यटन का महत्व उससे संबंधित योजना एवं विकास किस तरह से किया जाए के बारे में चर्चा की गई है। इसमें स्थानीय से लेकर अंतर्राष्टीय स्तर तक पर्यटन स्थलों के विकास के बारे में बताया गया है। इसके साथ ही पर्यटन में पर्यावरण जागरूकता एवं प्राकृतिक स्थलों के संरक्षण की बात कही गई है। देश के प्रत्येक कोने में स्थित पर्यटन स्थलों यथा प्राकृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक व सांस्कृतिक सभी के लिए एक क्रमबद्ध योजना बनाए जाने की बात कही गई है।

नेगी, जगमोहन[11] ने अपनी प्रस्तुत पुस्तक में भारत के पर्यटन स्थलों की ओर विदेशी पर्यटकों के आकर्षण के बारे में बताया गया है। पर्यटन के साथ साथ पर्यटकों के आवास तथा शासन द्वारा उनको दी जा रही सुविधाओं का उल्लेख है। पर्यटकों की यात्रा व्यवस्था सुविधा तथा सेवाओं का निरंतर ध्यान रखने की बात कही गई है। सुविधाओं के अभाव में पर्यटकों का रिझाव कम होने लगता है।

खल्लारी : छत्तीसगढ़ के रायपुर संभाग के महासमुन्द जिला अंर्तगत बागबाहरा विकासखण्ड में खल्लारी ग्राम

स्थित है। यह जिला मुख्यालय से लगभग 35 कि.मी दूरी पर है। इसे प्राचीन काल में "खल्लवाटिका" नाम से जाना जाता था। यह अल्प समय के लिए कल्चुरियों की रायपुर शाखा की राजधानी थी जिसकी जानकारी प्रस्तर अभिलेख से प्राप्त होती है। यहां अनेक मंदिर हैं जिसमें से खल्लारी माता का मंदिर प्रमुख है। प्राचीन छत्तीसगढ़ में कुल 36 गढ़ बनाए गए थे, शिवनाथ नदी के उत्तर व दक्षिण में स्थित 18 गढ़ों में एक गढ़ खल्लारी भी था। वर्तमान में यह महासमुन्द जिला के अंर्तगत एक विधानसभा सीट है।[12]

खल्लारी माता मंदिर : प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण खल्लारी मंदिर अपनी दैवीय शक्ति एवं आस्था के प्रतीक रूप मे विख्यात है। यह मंदिर वनों से आच्छादित ऊँची पहाड़ी के उपर स्थित है। खल्लारी मंदिर के स्थापना के पीछे अनेकों दंतकथाएं एवं जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। प्रचलित जनश्रुति के अनुसार कहा जाता है कि पहाड़ी में विराजमान खल्लारी माता का आगमन महासमुन्द जिला के एक ग्राम बेमचा से माना जाता है।

इस मंदिर के पुजारी भवानीदास वैष्णव जी बताते हैं कि ग्राम बेमचा से सुंदर नवयुवती का रूप धारण करके खल्लारी माता खल्लारी गांव में लगने वाले बाजार में घूमनें आया करती थीं। प्रतिदिन की भांति एक दिन जब वह बाजार भ्रमण कर रही थीं तभी एक बंजारा युवक (नायक जाति) माता का पीछा करने लगा, वह पीछा करते - करते पहाड़ियों में चढ़ने लगा, माता के विरोध करने पर भी वह नही रूका जिससे क्रोधित होकर माता ने उसे श्राप दे दिया और वह वहीं शिला के रूप में परिवर्तित हो गया तथा माता पहाड़ी में विराजमान हो गई। कहा जाता है कि ग्रामीणों के बहुत मिन्नतें करने के बाद भी माता नीचे नही आई और आशीर्वाद स्वरूप उन्होने अपना शस्त्र खड़ग नीचे फेंका, जो सेमल वृक्ष के पास जाकर गिरा जहां पर राउर माता का मंदिर ग्राम वासियों द्वारा बनवाया गया है।[13]

वर्तमान में यह खल्लारी मंदिर एक ट्रस्ट के द्वारा संचालित है, जिसका नाम श्री जगन्नाथ स्वामी खल्लारी मातेश्वरी मंदिर ट्रस्ट समिति है। पहाड़ियों में चढ़ने के लिए लगभग एक हजार सीढ़ी तय करनी पड़ती है। जिसमें 400 सीढ़ी का निर्माण तत्कालीन तहसीलदार के द्वारा कराया गया था। पहाड़ी के उपर विराजित खल्लारी माता का मंदिर है जिसे देखने प्रतिवर्ष दूर-दूर से लोग आते हैं। चैत्र पूर्णिमा के अवसर पर लगने वाले मेले में प्रत्येक श्रद्धालु पहाड़ पर स्थित माता का दर्शन मनोकामना पूर्ति हेतु करता है। वर्ष के दोनों नवरात्र में यहां मनोकामना ज्योति प्रज्वलित की जाती है। आरंभ में ज्योतों की संख्या 1, फिर 11, 21 उसके बाद वर्तमान में आज हजारों की संख्या में ज्योत जलाए जाते हैं। इस मंदिर में नवविवाहित जोंड़ों का शादी के एक साल होने तक प्रवेश वर्जित है।[14,21]

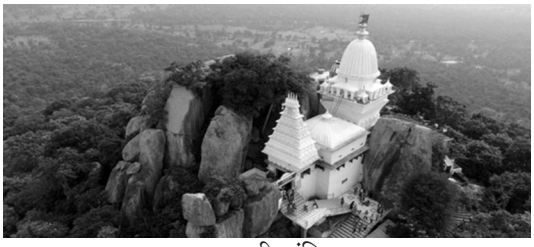

खल्लारी मंदिर

लाक्षा गृहः-

यह एक महाभारत कालीन प्राचीन और पौराणिक स्थल है जो महाभारत की कहानी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दन्तकथा के अनुसार लाक्षागृह का निर्माण दुर्योधन ने पाण्डवों के विरूद्ध एक षडयंत्र के अंतर्गत बनाया गया था। लाक्षागृह का अर्थ है लाख का घर जो बहुत ही ज्वलनशील होता है। पाण्डों के शुभचिंतक महात्मा विदुर ने उन्हें षडयंत्र के संबंध में सचेत कर दिया था और एक कुशल खनिक को भेजकर सुरंग तैयार करा दी जो हिंडन नहीं के पास खुलती थी। लाक्षागृह में आग लगाने के बाद पाण्डवों ने इसी सुरंग द्वारा सगपट के पक्का घाट पर निकलकर अपनी जान बचाई थी। यह घटना महाभारत में वर्णित है। लाक्षागृह को 'हाउस ऑफ लैकर' के नाम से भी जाना जाता है।[15]

राउर माता मंदिर (छोटे खल्लारी) :-

पहाड़ी वाली खल्लारी माता मंदिर के सामने ही राउर माता मंदिर स्थित है। ऐसी मान्यता है कि जब माता पहाड़ी के उपर विराजमान हो गईं तो लोगों के द्वारा

माता जी को नीचे आने का आग्रह किया गया, लेकिन माता ने मना कर दिया व आशीर्वाद स्वरूप अपना एक शस्त्र नीचे की ओर फेंका जो सेमल वृक्ष के पास जाकर गिरा। वहीं पर राउर माता की स्थापना की गई है। वर्तमान में इस मंदिर के जीर्णोद्धार का कार्य 2017 से संचालित है जिसमें ओडिसा के कारीगरों द्वारा नक्काशी का कार्य किया जा रहा है। जो भक्त देवी दर्शन हेतु खल्लारी पहाड़ी पर नही चढ़ सकते वे राउर में स्थित खल्लारी माता का दर्शन कर आशीर्वाद प्राप्त करते हैं।[16]

जगन्नाथ मंदिर :-

राउर माता के दाहिने रास्ते पर जगन्नाथ मंदिर स्थित है। खल्लारी से प्राप्त प्रस्तर अभिलेख से यह तथ्य ज्ञात होता है कि इस जगन्नाथ मंदिर (प्राचीन नारायण मंदिर) को देवपाल नामक मोची ने तेरहवीं सदी में बनाया था। इस अभिलेख में इस गांव का नाम खल्लारिका के रूप मे उल्लेख है। यह मंदिर पूर्वाभिमुख है जो गर्भगृह, अंतराल,खण्ड एवं मंडप में विभक्त है। मंडप पर 16 स्तंभ निर्मित किए गए हैं। नागर शैली में निर्मित यह मंदिर पंचस्थ भूविन्यास प्रकार का है। इस मंदिर के गर्भगृह में भगवान जगन्नाथ की प्रतिमा स्थापित है। मंदिर के प्रांगण में एक कुण्ड है यह रायपुर कल्चुरी कालीन मंदिर वास्तु का यह प्रतिनिधित्व करता है। इस मंदिर को छत्तीसगढ़ शासन द्वारा राज्य संरक्षित स्मारक घोषित किया गया है।[17]

गर्भ गृह में विराजित राउर माता

राउर माता मन्दिर

जगन्नाथ मंदिर

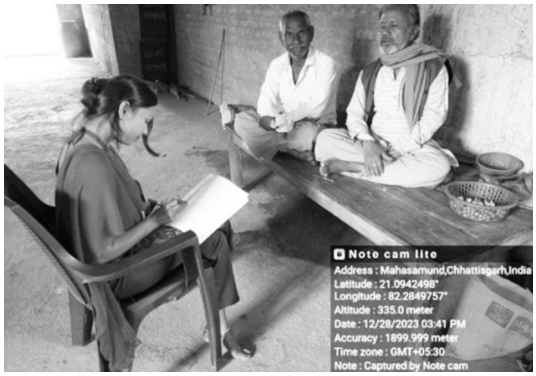

शोध अध्येत्री साक्षात्कार लेते हुए

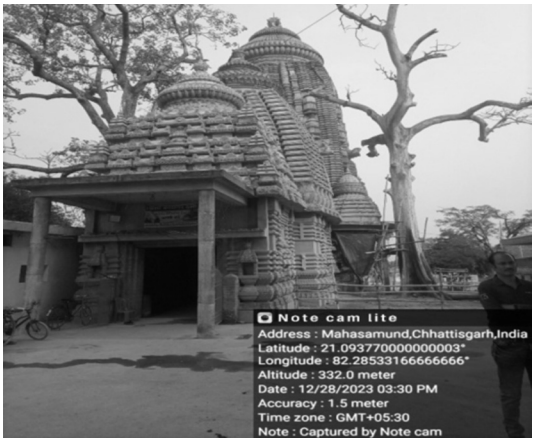

सेमल का वृक्ष

बघवा खोल :- यह एक पत्थर से बने गुफा के समान है। कहा जाता है कि इस गुफा में नागा साधु एवं शेर साथ साथ रहते थे। यह स्थल मित्रता की अनूठी मिसाल प्रस्तुत करता है।[18]

सेमल वृक्ष :- राउर खल्लारी मंदिर के पास सेमल वृक्ष है। सन् 2009 में चैत्र नवरात्र सप्तमी के दिन जलधारा निकली। यह एक चमत्कारिक जल था जो निरंतर 8-9 दिनों से बह रहा था। बताया जाता है कि इस पानी को पी लेने भर से सभी रोग ठीक होने लगे थे। उसके पश्चात यह पेंड़ पूर्ण रूप से सूख गया है।[19]

डोंगा पत्थरा : खल्लारी पहाड़ी के ऊपर एक बड़ा सा डोंगानुमा पत्थर है जिसे डोंगा पथरा के नाम से जाना जाता है। जनश्रुति है कि यहां की अधिकांश वस्तुएं भीम से जुड़ी हुई हैं। उसी प्रकार डोंगा पथरा का भी सम्बध भीम से जुड़ा हुआ है।[20]

पर्यटकों की संख्या : छत्तीसगढ़ एक सांस्कृतिक विविधता वाला राज्य है। यहां विभिन्न धर्मो को मानने वाले लोग निवास करतें है। यदि हम शासन के आंकड़ों कों आधार मानें तो सबसे अधिक पर्यटकों का रूझान धार्मिक पर्यटन की ओर होता है। इसका कारण यह है कि लोग अपने धार्मिक विश्वास, आस्था व मनोकामना पूर्ति हेतु धार्मिक स्थलों की यात्रा करतें है। छत्तीसगढ़ राज्य में आने वाले पर्यटकों की संख्या कुछ इस प्रकार है।

छत्तीसगढ़ राज्य में भारतीय एंव विदेशी पर्यटन की संख्या

जिला	भारतीय	विदेशीय	कुल
बिलासपुर	686966	0	686966
मुगेली	169989	0	169989
कोरबा	60716	0	60716
रायगढ़	110798	0	110798
जांजगीर	146861	0	146861
रायपुर	5152807	14	5152821
बलौदाबाजार	2019935	0	2019935
गरियाबंद	683984	0	683984
महासमुंद	341207	0	341207
धमतरी	396	0	396
दुर्ग	283707	4	283711
बालोद	57	0	57
बेमेतरा	0	0	0
कवर्धा	18272	0	18272
राजनांदगांव	1428676	0	1428676
सुरजपुर	91650	0	91650
जशपुर	47712	0	47712
अंबिकापुर	107025	2	107027
बलरामपुर	43600	0	43600
कोरिया	35100	0	35100
कांकेर	337	0	337
बस्तर	101912	3	101915
दंतेवाड़ा	0	0	0
नारायणपुर	0	0	0
बीजापुर	0	0	0
कोंडागांव	876	0	876
सुकमा	0	0	0
कुल	11532583	23	11532606

स्त्रोत छत्तीसगढ़ पर्यटन विभाग प्रशासकीय प्रतिवेदन 2021-2022

प्रस्तुत तालिका में छत्तीसगढ़ राज्य में भारतीय एवं विदेशीय पर्यटन की संख्या सार्वधिक रायपुर जिले में (5152807) है। दक्षिणतम संभाग बस्तर के अधिकाशं जिलों में पर्यटकों की संख्या नगण्य है। छत्तीसगढ़ राज्य में विदेशी पर्यटकों की संख्या कुछ जिलों को छोड़कर नगण्य है।

निष्कर्ष : उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्टतः कहा जा सकता है कि खल्लारी देवी के प्रति आस्था अभी भी विद्यमान है जिसके परिणाम स्वरूप प्रतिवर्ष मेले का आयोजन किया जाता है। यहां लोग दूर-दूर से मनोकामना पूर्ति हेतु आते हैं। जिस प्रकार उज्जैन में श्री महाकाल का राज है वही स्थान खल्लारी का है अर्थात यहां माता के अलावा कोई और राजा राज नही कर सकता। खल्लारी माता के दर्शन के लिए उंचे पहाड़ पर चढ़ना पड़ता है जिसके लिए सीढ़ियों का निर्माण किया गया है। साथ ही रोप-वे की सुविधा भी नवरात्र 2023 से प्रारंभ की गयी है, जिससे वृद्धजनों को मंदिर पहुंचने में सुविधा मिली। इसलिए यह स्थल धार्मिक पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ

1. सिंह सुरजीत, 'पर्यटन के सिद्धान्त', रावत प्रकाशन नई दिल्ली, 2012 पृ. 173।
2. शर्मा देवेश, 'धार्मिक पर्यटन', मोहित बुक्स इंन्टरनेशनल नई दिल्ली, 2010 पृ. 26
3. गोयल आशीष, 'ऐतिहासिक पर्यटन', मोहित बुक्स इंन्टरनेशनल नई दिल्ली, 2010 पृ. 4
4. हरिमोहन, 'संस्कृति पर्यावरण और पर्यटन', तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. 15
5. संकलित, समग्र छत्तीसगढ़, छत्तीसगढ़ में पर्यटन, छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2018 पृ. 472
6. शर्मा सुधीर, 'छत्तीसगढ़ का सांस्कृतिक पुरावैभव', शोध एवं अनुसन्धान विकास केन्द्र, रायपुर, 1995, पृ. 04
7. गुप्त मदन लाल, 'छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन', भारतेन्दु हिन्दी साहित्य समिति बिलासपुर, 1998 पृ. 262
8. मिश्र रमेन्द्रनाथ, 'छत्तीसगढ़ का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास', सेन्ट्रल बुक हाऊस रायपुर 1998 पृ. 213
9. शर्मा टी.डी., 'छत्तीसगढ़ के पर्यटन स्थल', अरपा पॉकेट बुक्स, 2004 पृ..181
10. परिहार प्रकाश, 'पर्यटन नियोजन : दिशा निर्देशिका', प्रतिभा प्रकाशन नई दिल्ली, 2009 पृ. 38
11. नेगी जगमोहन, 'पर्यटन विकास की नई दिशाऐं', तक्षशिला प्रकाशन 2010, पृ. 07
12. शर्मा सुधीर, पूर्वोक्त, पृ.04
13. साक्षात्कार वैष्णव भवानीदास (पुजारी) आयु-60 वर्ष, निवासी-खल्लारी दिनांक-28/12/2023 समय-3.40 अपरान्ह
14. साक्षात्कार पोर्ते पतराम (ग्राम-बैगा) आयु 65 वर्ष, निवासी-खल्लारी दिनांक-28/12/2023 समय-3.20 अपरान्ह
15. वही
16. साक्षात्कार वैष्णव भवानीदास पूर्वोक्त,
17. साक्षात्कार साहू तारेश कुमार (ग्रामीण) आयु-45 वर्ष, निवासी-भीमखोज दिनांक-28/12/2023 समय-5.00 अप.
18. साक्षात्कार मोंगरे उर्मिला देवी (ग्रामीण) आयु-72 वर्ष, निवासी-ओंकारबन्द दिनांक-30/12/2023 समय-12.00 दोपहर
19. साक्षात्कार पोर्ते पतराम पूर्वोक्त,
20. साक्षात्कार साहू कमलनारायण आयु 52 वर्ष (सरपंच ग्राम पंचायत म.क.बाहरा) 31/12/2023 समय प्रातः11 बजे
21. www.cgdekho.com

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

समावेशी राज्य बिहार में पिछड़े वर्ग की राजनीतिक लामबंदी का विश्लेषणात्मक अध्ययन

❑ उज्ज्वल गुप्ता

सूचक शब्द : समावेशीकरण, पिछड़ा वर्ग, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, पहचान की राजनीति, राजनीतिक दल।

प्रस्तुत शोध पत्र में यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि कैसे समावेशीकरण दृष्टिकोण से बिहार में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात पिछड़े वर्ग की राजनीति में निरंतर सक्रियता बढ़ती रही जिसका परिणाम यह हुआ कि 1990 का दशक आते-आते बिहार की राजनीति से न सिर्फ कॉंग्रेस का पतन हुआ अपितु सवर्ण आधारित राजनीति का भी पतन हो गया तथा राजनीति के केंद्र में पिछड़ा वर्ग स्थापित हो गया। 1947 से 1990 तक राजनीति में पिछड़ी जातियों की भागीदारी का बढ़ता ग्राफ कई मायनों में भिन्न था। 1990 से वर्तमान तक यदि लगभग 30 सालों की बिहार की राजनीति पर ध्यान दें तो यह स्पष्टतः परिलक्षित होता है कि बिहार की राजनीति पिछड़े वर्ग के दो गुटो में विभाजित है, जिसमें पहले गुट में 1990 से 2005 के 15 सालों की राजनीति में लालू प्रसाद यादव जिनके शासन काल को भिन्न-भिन्न विचारकों ने सामाजिक न्याय एवम् जंगल राज के दृष्टिकोण से परिभाषित किया है तो वहीं दूसरा गुट 2005 से 2020 तक के शासन काल में नीतीश कुमार का योगदान प्रमुख रहा है जिसको कि विचारकों ने सुशासन बाबू तथा विकास पुरुष के रूप में उल्लेखित किया है, हालांकि कुछ विचारकों के मध्य इसको लेकर मतभेद हैं। पिछड़े वर्ग का राजनीति में यह समावेशन लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण से कितना महत्वपूर्ण है तथा इसने पिछड़े वर्ग के अंतर्गत आने वाली अनेक जातियों को दलीय राजनीति में किस तक समाहित किया हैं यह प्रश्न विचारणीय है।

किसी भी समाज के बहिष्करण या अपवंजन को तभी दूर किया जा सकता है जब समाज के सभी व्यक्तियों, समूहों, वर्गों को उचित व समान अवसर प्राप्त हों और लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में यह राजनीतिक प्रक्रिया के माध्यम से स्थापित किया जाता है और किया जा सकता है।[1] साथ ही राजनीतिक समावेशन लोकतंत्र को बनाए रखने और सुदृढ़ करने के लिए भी आवश्यक होती है।[2] सामाजिक समावेश एक ऐसी प्रक्रिया है जो यह सुनिश्चित करती है कि गरीबी और सामाजिक रूप से बहिष्कृत लोग आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन में पूरी तरह से भाग लेने और समाज में सामान्य माने जाने वाले जीवन स्तर का आनंद लेने के लिए आवश्यक अवसर और संसाधन प्राप्त करें जिसमें वे रहते हैं। सामाजिक समावेशीकरण की प्रक्रिया यह सुनिश्चित करती है कि निर्णय-निर्माण में उनकी अधिकाधिक भागीदारी हो जो उनके जीवन और उनके मौलिक अधिकारों को सशक्त और समृद्ध करे।[3] भारतीय संविधान में समावेशन का स्वरूप 1950 में भारत के गणराज्य बनते ही देखा जा सकता है, जिसमें संविधान की प्रस्तावना और निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के आधार पर एक सामाजिक व्यवस्था बनाने का लक्ष्य रखा गया है। इस समतावादी और धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था के लिए सामाजिक परिवर्तन में राज्य की भूमिका संविधान की आत्मा है। अनुच्छेद 38 में स्पष्ट किया गया है कि 'राज्य लोगों के कल्याण को बढ़ावा देने के लिए एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को प्रभावी ढंग से सुनिश्चित और सुरक्षित करने का प्रयास करेगा, जिसमें न्याय, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समावेशित होगी। वयस्क मताधिकार इस दिशा में पहला कदम है, क्योंकि भारतीय नागरिकों को पहली बार मत देने और विभिन्न स्तरों के निर्वाचित प्रतिनिधियों को चुनने और स्वयं चुनाव लड़ने का भी अधिकार है। इससे कई सामाजिक समूहों ने अनुभव किया कि वे पारंपरिक शक्तियों के साथ मुकाबला कर सकते हैं और अपनी समस्याओं का समाधान कर सकते हैं, जिससे वे अपने भविष्य का निर्धारण करने में सक्षम हुए हैं। इसके परिणामस्वरूप, राजनीतिक परिदृश्य अधिक

❑ शोध अध्येता राजनीति विज्ञान विभाग, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी (बिहार)

प्रतिस्पर्धी और खुला हो गया है। भारतीय संविधान जाति को एक आदर्श मानकर नहीं अपनाता और विभिन्न प्रावधानों के माध्यम से जातिविहीन समाज की स्थापना का प्रयास करता है। यह धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर सार्वजनिक क्षेत्र में भेदभाव को रोकता है। संविधान यह सुनिश्चित करता है कि आर्थिक स्थिरता से संबंधित मामलों या राज्य की किसी भी पद के लिए नियुक्ति में सभी नागरिकों को समान अवसर मिले। यह पारंपरिक रूप से वंचित सामाजिक समूहों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए सकारात्मक कार्यवाही का प्रावधान करता है, ताकि उन्हें जाति आधारित भेदभाव का सामना न करना पड़े। इसके अतिरिक्त, संविधान समाज के कमजोर वर्गों के लिए विशेष प्रावधान करता है, जैसे अनुच्छेद 330 और 332, 15 (2) (4) और 29, 29 (2), 16 (4), 35, 244, 320, (4), 333 और 335। संविधान में अनुसूचित जातियों (एससी) के लिए आरक्षण प्रदान करने की नीतियों को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया गया है, लेकिन पिछड़ी जातियों के लिए ऐसा स्पष्ट रूप से नहीं किया गया है, भले ही संविधान सभा की चर्चाओं के मध्य अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) शब्द उभरा हो। ओबीसी के लिए सामाजिक पिछड़ेपन को परिभाषित करने के बारे में अस्पष्टता थी, क्योंकि 'पिछड़े वर्ग' शब्द की व्याख्या विभिन्न तरीकों से की गई थी।[4] कुछ लोगों ने इस श्रेणी को एससी और अनुसूचित जनजातियों (एसटी) के समान निम्न स्थिति वाले समुदायों तक सीमित कर दिया, जबकि अन्य ने समाज के व्यापक मध्यम वर्ग को सम्मिलित किया। इस बात पर भी अलग-अलग विचार थे कि क्या यह शब्द विशेष रूप से आर्थिक रूप से वंचित समूहों को संदर्भित करता है या केवल उन समुदायों को संदर्भित करता है जो ऐतिहासिक भेदभाव या हाशिए पर हैं।[5] पिछड़ी जातियों को आरक्षण देने के बारे में वाद विवाद जो औपनिवेशिक काल से चली आ रही है, अस्पृश्यता के कलंक का सामना नहीं करती हैं। संविधान सभा और कांग्रेस के कई सदस्यों का मानना था कि ओबीसी जाति व्यवस्था के ऐतिहासिक अन्याय के अधीन नहीं थे, और इस प्रकार, उन्हें एससी के समान उपचार देने का औचित्य स्वीकार नहीं किया गया था। चर्चा इस बात पर केंद्रित थी कि इन समूहों की पहचान सामाजिक और आर्थिक पिछड़ेपन के मानदंडों पर आधारित होनी चाहिए या अनुष्ठान और सामाजिक बहिष्कार के विशिष्ट पहलुओं पर, या केवल जाति व्यवस्था में उनकी निम्न स्थिति पर। इन निरंतर असहमतियों के उपरांत, ओबीसी औपनिवेशिक काल से ही आरक्षण के लाभार्थी रहे हैं, हालांकि इन आरक्षणों के लक्ष्य दोनों समूहों के बीच भिन्न हैं। एससी और एसटी के लिए आरक्षण का उद्देश्य अवसर की समानता को बढ़ाना था, जबकि ओबीसी के लिए आरक्षण का उद्देश्य प्रतिनिधित्व और सत्ता में भागीदारी बढ़ाना था।[6] अनिवार्य रूप से, पूर्व में अधिक समानता की मांग की गई थी, जबकि बाद वाले का उद्देश्य सत्ता की गतिशीलता को फिर से संतुलित करना था। यह उल्लेखनीय है कि एससी और एसटी के लिए आरक्षण को बहुत कम गंभीर विरोध का सामना करना पड़ा है, क्योंकि उनकी पहचान आरक्षण ढांचे के बाहर स्पष्ट रूप से परिभाषित की गई है। इस बात पर व्यापक सहमति थी कि एससी और एसटी ने इतनी गहरी अधीनता का अनुभव किया है कि आरक्षण के लिए उनका अधिकार निर्विवाद था।

साहित्य समीक्षा

संजय कुमार[7] ने अपनी पुस्तक के माध्यम से बिहार के समग्र रूप को प्रदर्शित किया है जिसके केंद्र में बिहार की चुनावी राजनीति है जिसमें कि लालू प्रसाद यादव की सामाजिक न्याय की झलक, उसके पतन के प्रमुख कारण, अभिजात्य राजनीति का पतन, एवम् नीतीश कुमार की राजनीतिक यात्रा का चित्रण भी देखने को मिलता है। 1990 में बिहार में गठबंधन की राजनीति का उद्भव देखने को मिलता है, तो वहीं बिहार में बीजेपी नीतीश कुमार के साथ सत्ता में निरंतर साझेदारी निभाते हुए अपनी राजनीति को सुदृढ़ आधार देने में कैसे कारगर रही है यह स्वरूप स्पष्ट दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त पुस्तक में चुनावी आंकड़ों, सीएसडीएस का डाटा संग्रह एवम् पत्र-पत्रिकाओं का भी विस्तृत वर्णन है जो कि इस शोध आलेख को समझने में अपनी भूमिका प्रदान करता है।

इकबाल नारायण[8] का मानना है कि भारतीय राजनीति को समझने के लिए राज्य की राजनीति का अध्ययन आवश्यक है। लेखक यह बताते हैं कि किसी राज्य का इतिहास महत्वपूर्ण है, और राज्य की राजनीतिक स्थिति उसके प्रशासनिक जागरूकता और विकास की संकेतक होती है। इसके अतिरिक्त जब किसी विशेष राज्य का

विश्लेषण किया जाता है, तो भूगोल, अर्थव्यवस्था, सामाजिक विविधता, जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र, शिक्षा का स्तर और शहरीकरण जैसे कारकों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए, क्योंकि ये सभी राज्य की राजनीति को प्रभावित करते हैं ।

संकर्षण ठाकुर[9] ने अपनी रचना से बिहार में लालू प्रसाद यादव और नीतीश कुमार, जो कि दोनों ही छात्र चुनाव और जेपी आंदोलनों से निकले प्रखर नेता हैं। ठाकुर ने न सिर्फ इन दोनों महारथियों की राजनीतिक गतिविधियों को लिपिबद्ध किया है बल्कि सत्ता प्राप्ति के लिए नीतीश की राजनीतिक रणनीतियों को भी कुशलता से प्रदर्शित किया है। लालू यादव की सामाजिक न्याय की अवधारणा और उनकी व्यक्तिगत प्रभावशीलता का ही परिणाम है कि आज भी बिहार में यादव और मुस्लिम वोट एकजुट हैं। यहां तक कि 2014 के लोकसभा चुनाव, जिसे मोदी लहर की संज्ञा दी जा रही थी, उस समय भी उन्हें 19 प्रतिशत वोट मिले। ठाकुर ने राजद के उतराधिकारी को लेकर लालू की चिंताओं को उजागर किया है। यह पुस्तक शोध विषय से साक्षात रूप से संबंधित है क्योंकि आज बिहार की राजनीति और सत्ता के केंद्र में इन नेताओं का बोलबाला है।

कुमार दिनेश[10] ने अपनी पुस्तक के माध्यम से राजद व राजग सरकारों का वर्णन विस्तृत रूप से प्रदर्शित किया है जिसके अंतर्गत राजद के 15 सालों के शासन को जातीय राजनीति से ग्रसित, पिछड़ेपन एवम् अंधकार युग के तौर पर परिभाषित किया गया है, तो वहीं राजग गठबंधन की शासन प्रणाली को न सिर्फ विकासात्मक राजनीति की संज्ञा दी बल्कि इसके साथ ही नीतीश कुमार (जेडीयू) को राजग के साथ ही भविष्य को दर्शाने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही यह पुस्तक दैनिक घटनाओं को भी क्रमबद्ध तरीके से प्रकट करती है जो बिहार की राजनीति के नए-नए समीकरण को उजागर करती है। यह पुस्तक शोध आलेख में बिहार के महत्वपूर्ण दलों के अंतर्गत पिछड़े वर्ग के समावेशीकरण को जोड़ कर देखने में सहायता करती है।

क्रिस्टाफर जैफरलाट[11] ने स्पष्ट रूप से यह दर्शाया है कि जो पिछड़ा वर्ग की राजनीति उत्तर भारत व दक्षिण भारत में रही है, वह दोनों एक दूसरे से भिन्न रही है। साथ ही दक्षिण भारत में पिछड़े वर्ग की राजनीति उत्तर की तुलना में न सिर्फ पहले से प्रचलित थी अपितु यह अत्यधिक प्रभावशाली भी रही है । वर्तमान परिदृश्य में देखा जाए तो मंडलीकरण के पश्चात् उत्तर भारत में पिछड़े वर्ग की भूमिका राजनीति में न सिर्फ बढ़ी है अपितु स्थिति यह है कि आज इन वर्गों के बिना सत्ता की कल्पना करना असम्भव सा प्रतीत होता है। यह पुस्तक अपने विशाल आकार और क्षेत्र के आधार पर स्वतंत्रता के बाद के भारत में जाति और राजनीति पर सामान्य पुस्तकों से स्वयं को अलग करती है। यह उत्तर और दक्षिण भारत के संबंध में निचली जातियों के राजनीतिक दावे में अस्थायी अंतर की व्याख्या करना चाहती है। विशेष रूप से, यह इस प्रश्न को संबोधित करती है कि राजनीतिक व्यवस्था में नए सामाजिक समूहों को सम्मिलित करने के मामले में उत्तर भारत पिछड़ क्यों गया। दूसरे शब्दों में, यह एक स्पष्टीकरण का प्रयास करती है कि कांग्रेस ने उत्तर भारत में निचली जातियों का प्रतिनिधित्व करने के बारे में बहुत कम चिंता क्यों की, कुछ ऐसा जो वह पहले ही दक्षिण में कर चुकी थी। इसके अलावा यह पुस्तक अनेक प्रकार के अनुभवजन्य आंकड़ों की दृष्टि से शोध आलेख के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण संग्रह है।

शोध पद्धति प्रस्तुत पत्र बिहार में पिछड़े वर्ग की राजनीति में भागीदारी पर आधारित है। इसमें ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन पद्धति को अपनाया गया है। अध्ययन से संबंधित महत्वपूर्ण सामग्री तथा डाटा विश्लेषण करने हेतु विभिन्न शोध पत्रों, प्रिन्ट समाचार पत्रों, डिजिटल न्यूज पोर्टल पुस्तकों, सरकारी रिपोर्ट, तथा चुनाव आयोग के आकड़ों के साथ-साथ सी एस डी एस के आंकड़ों का भी विश्लेषण किया गया है।

शोध उद्देश्य

1. स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत बिहार में पिछड़े वर्ग की बढ़ती भागीदारी का आकलन।
2. बिहार में ऐतिहासिक रूप से पिछड़ी जाति की राजनीति का बदलता स्वरूप एवम् भविष्य।
3. 1990 के दशक में हुए राजनीतिक परिवर्तन के बाद राजनीति में हुए बदलाव की समीक्षा करना।

पिछड़ा वर्ग – अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) से संबंधित विषय बहुआयामी है तथा इसके विभिन्न पहलुओं को समझने के लिए इतिहास, समाजशास्त्र, राजनीतिक विज्ञान, धर्म तथा कानून की व्यापक समझ होना अनिवार्य है। भारतीय संदर्भ में वर्ग भी एक जाति है, धर्म शास्त्रों

के लेखकों के अनुसार चार हिन्दू जातियों को वर्ण भी कहा जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्र जो कि सामाजिक स्थिति के अवरोही पैमाने में व्यवस्थित हैं।[12] मार्क गैलेन्टर द्वारा पिछड़ा वर्ग के उपयोग के दो मुख्य प्रकारों की पहचान की गई है जो 1935 में अनुसूचित जाति (एससी) की सूची के बाद सामने आए पहला एससी और एसटी सहित उन सभी को नामित करने के लिय एक समावेशी उपयोग जिन्हे विशेष उपचार की आवश्यकता है[13], वे अछूत नहीं हैं, लेकिन अपनी निम्नीकृत स्थिति तथा शिक्षा एवम् सार्वजनिक संस्थानों तक पहुँच के अभाव के कारण उन्हें पिछड़ा माना जाता है। सामान्य रूप से कहा जाए तो ये वे जातियाँ हैं जो अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति से ऊपर तथा अगड़ी जाति अर्थात सामान्य वर्ग से नीचे मानी जाती हैं। स्वतंत्रता के उपरांत, आरक्षण का क्षेत्र अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) को सम्मिलित करने के लिए विस्तारित हुआ। ''पिछड़ा वर्ग'' शब्द का पहली बार 1870 में मद्रास प्रेसीडेंसी में प्रयोग किया गया था। इसकी परिभाषा अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग थी, प्रत्येक राज्य को यह निर्धारित करने का अधिकार दिया गया था कि "पिछड़ा" क्या है और "पिछड़े समुदायों" की पहचान करें। इस स्पष्टता की कमी के उपरान्त भी, यह स्पष्ट था कि संदर्भ बिंदु व्यापक सामाजिक वर्ग संदर्भ के स्थान पर हिंदू सामाजिक पदानुक्रम था। इसके अतिरिक्त, बॉम्बे, मद्रास और मैसूर के प्रांतों ने पहले ही इन समूहों के लिए नौकरी और शैक्षिक सीटों में आरक्षण लागू कर दिया था । भारत की स्वतंत्रता के बाद, नेहरू ने अछूत या जनजातियों के रूप में वर्गीकृत नहीं किए गए लोगों को इंगित करने के लिए ''अन्य पिछड़ा वर्ग'' शब्द का प्रारंभ किया। संविधान में अनुच्छेद 15 (4) और 16 (4) में ''पिछड़े वर्गों'' का उल्लेख है, जो राज्य को किसी भी सामाजिक और शैक्षिक रूप से वंचित समूहों के लिए विशेष प्रावधान स्थापित करने की अनुमति देता है। हालाँकि, इस शब्द में व्यापक रूप से वंचित और हाशिए पर रहने वाली जातियाँ सम्मिलित थीं, जिन्हें वर्ग श्रेणी के स्थान पर विशिष्ट जातियों के संदर्भ में अधिक समझा जाता था।

भारतीय लोकतंत्र में जाति वर्ग तथा समुदाय की भूमिका- भारतीय लोकतंत्र में जाति, वर्ग और समुदाय राजनीतिक दलों के भाग्य को निर्धारित करने और राजनीति के स्वरूप को आकार देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जाति की पहचान वंशानुगत होती है, जिससे सामाजिक गतिशीलता की संभावना नहीं होती। जाति व्यवस्था में एक ही जाति समूह के सदस्यों से कुछ विशेष रीति-रिवाजों का पालन करने की अपेक्षा की जाती है, जिससे यह एक बंद व्यवस्था बन जाती है। बिहार की राजनीति में जाति का प्रभाव महत्वपूर्ण रहा है। भारत की स्वतंत्रता के बाद से 1967 तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने बिना किसी चुनौती के पूरे देश पर शासन किया। हालांकि, 1967 में हुए चुनाव परिणामों ने कांग्रेस के एकदलीय प्रभुत्व को समाप्त कर दिया और देश के विभिन्न राज्यों में अलग अलग क्षेत्रीय पार्टियों के उभार के साथ ही कई नई सरकारों का दौर देखने को मिलता है जिसके परिणामस्वरूप ये क्षेत्रीय दल क्षेत्रीय भावनाओं और जाति-पंथ की आकांक्षाओं के आधार पर उभरे, जो उच्च जाति के ब्राह्मणवादी प्रभुत्व के विरूद्ध प्रतिक्रियास्वरूप थे। लोगों की पिछड़ी और अविकसित स्थिति ने जाति, वर्ग और समुदाय के आधार पर क्षेत्रीय दलों के उदय को प्रेरित किया, विशेषकर 1980 के दशक के बाद। भारत ने जाति और समुदाय के आधार पर विभिन्न राजनीतिक दलों का उदय देखा, जैसे उत्तर प्रदेश की बहुजन समाज पार्टी (बीएसपी) की स्थापना 1984 में कांशीराम ने की, और द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (डीएमके) की स्थापना 1949 में सी.एन. अन्नादुरई ने की। इस पार्टी की स्थापना सामाजिक समानता और न्याय के सिद्धांत पर की गई थी, और इसने कांग्रेस पार्टी के ब्राह्मणवादी नेतृत्व का विरोध किया। तमिलनाडु की ऑल इंडिया अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (एआईडीएमके) का गठन 1972 में एमजी रामचंद्रन ने डीएमके से अलग होकर किया था, महाराष्ट्र की शिवसेना (1966) और पश्चिम बंगाल की तृणमूल कांग्रेस (टीएमसी) (1988) भी क्षेत्रीय दलों के अन्य उदाहरण हैं। 1990 के दशक में ऐसे मामलों की संख्या बढ़ी, जहां राजनीतिक पार्टियों ने मुख्य रूप से पिछड़े वर्गों के समर्थन पर निर्भर होकर भारतीय राज्यों की राजनीति में अपनी जगह बनाई, साथ ही उन्होंने दलितों और मुसलमानों के साथ गठबंधन कर अपनी स्थिति को सबलता दी। उत्तर प्रदेश में मुलायम सिंह यादव के नेतृत्व वाली समाजवादी पार्टी (एसपी) और दलित समर्थित बहुजन समाज पार्टी (बसपा) का सहयोग, पिछड़े वर्गों और मुस्लिम समर्थन पर अत्यधिक

निर्भर है तो वहीं बिहार में लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनता दल, समता पार्टी, एवम् नीतीश कुमार समर्थित जनता दल यूनाइटेड का गठन प्रमुख है जो जाति आधारित राजनीति का एक स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है, जहां जाति सामाजिक पहचान का सबसे स्थायी माध्यम मानी जाती है।[14]

बिहार

बिहार का उल्लेख करती हुई रोमिल थापर भारत के इतिहास को प्राचीन बिहार के रूप में देखती हैं। कई क्षेत्रों जैसे शिक्षा प्रशासन समाज और धर्म में जो उपलब्धियां भारत और भारतीय उपमहादीप के बाहर व्यापार और आर्थिक गतिविधियों में बिहार की महत्वपूर्ण भूमिका एक ऐसे अतीत से आई हैं जिसकी आधुनिक बिहार में कोई स्पष्ट पहचान नहीं मिलती एक अतीत जो इतना भिन्न है कि या तो इसे पूरी तरह से भुला दिया गया है या इसे अविश्वसनीय समझा जाता हैं।[15]

दशकों तक बिहार का विशाल राज्य, समतल और तवे की तरह तपता हुआ, एक चुटकुला और एक चेतावनी भरी कहानी के बीच कुछ था, अपराधी सुरक्षा के लिए पुलिस पर भरोसा कर सकते थे, अभियोजन के लिए नहीं। लुटेरे टूटी सड़कों पर राज करते थे और अपहरण राज्य के सबसे लाभदायक व्यवसायों में से एक था। इसकी सरकार, जिसका नेतृत्व ऐसे राजनेताओं ने किया, जिन्होंने अपने शासन को सुदृढ़ करने के लिए विभाजनकारी पहचान की राजनीति का प्रयोग किया, जो इतनी भ्रष्ट थी कि इसके लिए एक नए गढ़े गए वाक्यांश की आवश्यकता थी : जंगल राज।[16]

बिहार के संदर्भ में यह एक ऐसा विचार है जिसका सामना अधिकांश समकालीन पाठकों तथा शोधकर्ताओं ने बार-बार किया है, विशेषकर 1980 के दशक के बाद। हालाँकि इसका उद्देश्य यह समझना है कि बिहार राज्य में यह उलटफेर कैसे हुआ और इस बदलाव को संभव बनाने में सार्वजनिक नीति की क्या भूमिका रही। इस प्रयास में, बिहार के अनुभव को कई तरीकों से समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए, बिहार में आर्थिक और संगठनात्मक बदलाव की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले व्यक्तियों का विवरण दिया जा सकता है, या वैकल्पिक रूप से, संरचनात्मक बदलावों के बारे में सांख्यिकी की एक श्रृंखला के माध्यम से बिहार के अनुभव को समझा जा सकता है। तीसरी संभावना राजनीतिक और सामाजिक आंदोलनों पर ध्यान केंद्रित करना है जिसके अंतर्गत बिहार में हाल ही में कई परिवर्तन हुए हैं जबकि इनमें से प्रत्येक दृष्टिकोण की अपनी विशेषताएं हैं। हम बिहार की राजनीति में पिछड़े वर्ग की राजनीति में भागीदारी के परिवर्तन की गति और यह परिवर्तन कितना सबल रहा है और कितना जारी है, इसका मात्रात्मक तथा गुणात्मक आकलन करने के लिए चुनावी प्रक्रिया तथा उनके प्रतिनिधित्व का सहारा लेते हैं। राजनीति में पिछड़े वर्ग की भागीदारी से सामाजिक तथा आर्थिक बदलावों पर ध्यान केंद्रित करके 21 वीं शताब्दी में हम बिहार के अनुभव पर सबसे अच्छी तरह से चर्चा कर सकते हैं क्योंकि यह शासन की जटिल प्रक्रिया से संबंधित है और संभवतः समावेशन की दृष्टि से बिहार के अनुभव का अध्ययन करने का सबसे सार्थक तरीका है।

तालिका संख्या 1

प्रतिशत आधारित जातिवार जनसंख्या[17]

01	उच्च जाति	15
	ब्राहमण	4
	भूमिहार	6
	राजपूत	4
	कायस्थ	1
02	पिछड़ा वर्ग अत्यंत पिछड़ा वर्ग	51
	यादव	14
	कोईरी	14
	कुर्मी	3.8
	महादलित/दलित	16
03	मुस्लिम	16.3
04	आदिवासी	1.3
05	अन्य	0.4

2011 भारत सरकार जनगणना के अनुसार बिहार की जनसंख्या लगभग 11 करोड़ थी, जिसमें की सामान्य वर्ग की जनसंख्या 15 प्रतिशत पिछड़ा वर्ग - अत्यंत पिछड़ा वर्ग दोनों को मिलाकर 51 प्रतिशत तो वहीं अनुसूचित जाति 16 प्रतिशत, अनुसूचित जनजाति 1.3 प्रतिशत, मुस्लिम की आबादी 16.3 प्रतिशत तथा अन्य 0.4 प्रतिशत थी। वही अद्यतन बिहार जातीय जनगणना सर्वे 2022-2023 के अनुसार बिहार की वर्तमान जनसंख्या 13 करोड़ से अधिक अंकित की गई है जहां पिछड़ा वर्ग की आबादी 27 प्रतिशत, अत्यंत पिछड़ा वर्ग की जनसंख्या 36 प्रतिशत, सामान्य वर्ग की जनसंख्या 15 प्रतिशत,

अनुसूचित जाति 20 प्रतिशत, तथा अनुसूचित जनजाति 1.68 प्रतिशत थी। राजनीतिक प्रतिनिधित्व तथा दलीय राजनीति में चुनाव के दृष्टिकोण से इन आंकड़ों का महत्व अत्यधिक बढ़ जाता है क्योंकि वर्तनमान राजनीतिक परिदृश्य में इन्ही आकड़ों के माध्यम से चुनावों में राजनीतिक पार्टियाँ टिकट वितरण में जाति तथा वर्ग के आधार पर राजनीतिक समीकरण बनाती हैं तथा टिकटों का वितरण करती है। भारतीय राज्य स्वतंत्रता के पश्चात से निरंतर समावेशित नीतियों तथा कार्यक्रमों को बढ़ावा देते रहे हैं। इसमे राज्य सरकारों की प्रमुख भूमिका रही है।

तालिका संख्या 2

बिहार में चुने गए लोकसभा सदस्यों में पिछड़ी और ऊंची जातियों का अनुपात (1952-1989)[18]

वर्ग	1952	1957	1962	1967	1971	1977	1980	1984	1989
पिछड़ी जाति	6	5	11	13	15	16	12	12	18
ऊंची जाति	30	28	24	24	21	21	22	23	18

तलिका 02 में 1952 से 1989 तक बिहार में हुए लोकसभा चुनावों के अंतर्गत ऊंची जातियों तथा पिछड़ी जातियों के सांसदों की आनुपातिक स्थिति को दर्शाया गया है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है की बिहार में प्रारंभिक लोकसभा चुनावों में पिछड़ी जाति के सांसदों की संख्या कम थी जहां 1952 में पिछड़ी जाति से केवल 06 सांसद थे तो वहीं ऊंची जाति से 30 सांसद थे। 1989 में यह आंकड़ा 18 और 18 हो गया तुलनात्मक रूप से देखा जाए तो ऊंची जाति के सांसदों की संख्या में गिरावट देखने को मिलता है। जिसकी चर्चा आगे की गई है।

तालिका संख्या 3

बिहार विधानसभा में पिछड़ी और ऊंची जातियों का अनुपात (1967-1990)[19]

जाति	1967	1969	1972	1977	1980	1985	1990
पिछड़ी जाति	82	93	77	92	96	89	117
ऊंची जाति	133	122	136	124	120	118	105

बिहार विधानसभा में पिछड़ी जातियों और ऊंची जातियों का अनुपात भी ठीक वैसे ही है जैसा की तालिका 02 में बिहार में चुने गए लोकसभा में 1952 से 1989 तक के दौर में सांसदों का था यहाँ भी कमोबेश यही स्थिति दिखाई देती है जैसा की तालिका 03 में दर्शाया गया है प्रारंभिक काल में पिछड़ी जातियों का प्रतिनिधित्व ऊंची जातियों की अपेक्षाकृत कम रहा जहां 1967 में पिछड़ी जाति से 82 विधायक थे तो ऊंची जाति से 133 विधायक थे यही स्थिति 1985 तक लगातार देखने को मिलती है। 1990 में यह स्थिति बदल जाती है और यहाँ पिछड़ी जाति से 117 और ऊंची जाति से 105 विधायक ही विधानसभा में आ पाते हैं।

जाति आधारित राजनीति तथा पिछड़े वर्ग की लामबंदी के तले बिहार में हुए 1952 से 2010 तक के विधानसभा चुनावों के अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से परिदर्शित होता है कि प्रतिनिधित्व के संदर्भ में, 'जाति राजनीति' ने सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में आनुपातिक अपनेपन के अभाव में राजनीतिक प्रभाव का अवसर उत्पन्न किया। ओबीसी वर्ग, विशेषकर यादव, कुर्मियों और कोइरी जैसे उच्च ओबीसी से संबंधित विधायकों और सांसदों की संख्या में नाटकीय वृद्धि हुई, जिसने उच्च जाति के निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या को काफी हद तक पार कर लिया जैसा की तालिका 04 में प्रदर्शित है। जाति एक नए रूप में उभरी, जिसे 'जाति राजनीति' के रूप में देखा जा सकता है, जो तेजी से राजनीतिक दावों का एक माध्यम बन चुका है। राजनीतिक दावों का लाभ अन्य क्षेत्रों में भी देखने को मिला जबकि वर्ग के आधार पर दावों को प्राप्त करना कठिन था, जाति के आधार पर यह अधिक सरल था। जाति राजनीति ने वर्गीकरण के भीतर जाति को और बढ़ावा दिया और इसे संघर्ष के केंद्र में रखकर समस्याओं को जन्म दिया। यह केवल आरोपण से नहीं, बल्कि आकांक्षा, वर्चस्व, आक्रामकता और शासन के संसाधनों के अधिग्रहण पर केंद्रित है।[20]

तालिका संख्या 4

बिहार में जाति और समुदाय आधारित प्रतिशतवार (%) विधायकों की सूची[21,22]

	1952	1957	1962	1967	1969	1972	1977	1980	1985	1990	1995	2000	2005	2010
उच्च जाति	46.9	45.9	46.2	44.8	42.0	42.8	40.8	36.5	38.5	34.5	21.8	23.1	30.0	32.28
ब्राह्मण	12.1	10.0	13.8	11.0	9.4	11.0	7.1	12.3	10.8	8.3	3.1	3.1	4.9	6.58
भूमिहार	10.0	12.5	8.8	11.6	10.3	10.4	10.2	9.8	10.5	11.1	5.8	7.1	9.5	10.6
बंगाली	1.5	0.6	0.9	1.9	2.5	2.5	2.2	1.2	1.2	1.2	1.2	0.3	–	–
राजपूत	14.2	17.2	19.1	17.2	17.6	17.6	18.5	11.4	14.5	12.7	9.5	11.4	14.0	13.9
कायस्थ	8.2	5.6	3.4	3.1	2.2	1.3	2.8	1.8	1.5	1.2	2.2	1.2	1.6	1.2
पिछड़ा वर्ग	19.3	18.8	23.6	26.0	27.9	24.9	27.7	29.0	25.3	34.2	43.6	35.2	34.5	36.3
यादव	7.9	6.6	9.4	11.6	15.0	11.0	15.4	13.8	14.5	19.1	25.8	20.7	22.6	16.4
कुर्मी	3.6	3.8	4.4	4.1	3.8	6.0	3.7	6.2	5.	4.9	5.8	4.6	4.5	7.4
कोईरी	4.5	5.3	6.0	4.7	2.8	4.1	4.6	2.8	2.8	4.0	6.8	5.9	4.9	7.6
बनिया	3.3	3.1	3.8	5.6	6.3	3.8	4.0	6.2	2.8	6.2	5.2	4.0	2.5	4.9
अत्यंत पिछड़ा वर्ग	1.2	0.6	0.9	0.6	0.9	0.9	0.6	1.5	1.8	0.8	3.1	5.2	5.3	7.0
अनुसूचित जाति	13.9	14.7	13.2	13.5	14.1	13.8	13.8	14.5	14.8	14.8	15.1	14.8	16.9	15.67
अनुसूचित जनजाति	10.9	11.2	9.0	9.2	8.8	8.9	8.5	8.6	8.9	9.0	8.2	8.9	–	0.82
संथाल	2.7	2.2	0.6	1.3	0.9	1.3	1.2	1.5	0.9	0.6	0.9	0.9	–	–
मुंडा	1.2	0.9	0.6	1.3	0.6	1.3	0.6	0.3	1.2	0.9	0.9	1.2	–	–
ओराओं	0.6	0.9	0.6	0.3	1.3	0.6	1.2	0.6	0.6	0.9	0.6	0.9	–	–
अन्य	6.4	7.2	7.2	6.3	6.0	5.7	5.5	6.2	6.2	6.5	5.8	–	–	7.8 (मुस्लिम)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात बिहार में पिछड़े वर्ग की लामबंदी तथा उभार

1952 के बिहार विधान सभा की कुल 318 सीटों में से कॉंग्रेस को 235 सीटें प्राप्त हुई, तथा श्री कृष्ण सिन्हा के नेतृत्व में कॉंग्रेस की सरकार बनी और उनके इस नए मंत्रिमंडल में ऊंची जातियों का बहुमत देखने को मिलता है जहां तीन भूमिहार, दो राजपूत, दो कायस्थ, एक ब्राह्मण, एक अनुसूचित जाति और एक पिछड़ी जाति के सदस्य थे।[23,24] 1967 का चुनाव बिहार की राजनीति में एक महत्वपूर्ण बदलाव लाया, क्योंकि कांग्रेस ने विधानसभा सीटों में पहली बार बड़े पैमाने पर हार का सामना किया। 1962 में 58 प्रतिशत के समर्थन से अब इसका हिस्सा घटकर 40 प्रतिशत रह गया। इस चुनाव में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी (एसएसपी) ने ''पिछड़ेपन'' के मुद्दे पर जोर देने के कारण सबसे महत्वपूर्ण जीत प्राप्त की, जिससे इसका सीटों का हिस्सा 2 प्रतिशत से बढ़कर 21 प्रतिशत हो गया। इस चुनाव की एक प्रमुख बात यह थी कि सभी विधानसभा क्षेत्रों में बहुकोणीय प्रतिद्वंद्वित देखने को मिली। 1975 के आपातकाल के बाद जनता पार्टी विपक्षी दलों का एकजुट होकर उभरी और बिहार की राजनीति में उसका प्रभाव बढ़ा। कर्पूरी ठाकुर, जो पिछड़े समुदाय से थे, मुख्यमंत्री बने और उनकी सरकार को पिछड़ी जातियों का महत्वपूर्ण समर्थन मिला। इस समर्थन को देखते हुए उन्होंने सरकारी नौकरियों में सीटों के आरक्षण की नीति लागू करने की पहल की। आरक्षण की सीमा में आने वाले सामाजिक समूहों के लिए दो अनुलग्नक बनाए गए। अनुलग्नक 01 जिसे ''अधिक पिछड़ा'' माना गया जिसमें 78 जातियाँ सम्मिलित थीं, जिनके अंतर्गत हिंदू और मुसलमान दोनों सम्मिलित थे, जैसे धनुक, हज्जाम, और कहार। अनुलग्नक 02 में 30 जातियाँ थीं, जिसमें कोइरी, कुर्मी और यादव जैसे अपेक्षाकृत उन्नत समुदाय भी सम्मिलित थे। अनुलग्नक

02 में पिछड़ों के लिए सरकारी नौकरियों में 12 प्रतिशत आरक्षण और अनुलग्नक 01 में 18 प्रतिशत आरक्षण दिया गया। 1980 बिहार विधान सभा में 334 सीटों में से काँग्रेस को सिर्फ 169 सीटें ही प्राप्त हुईं, जनता पार्टी को 13, माकपा को 06, झामुमो को 11, और भाजपा को 21 सीटें मिलीं। 1990 के बिहार विधानसभा में पिछड़ी जातियों के 117 विधायक चुनकर आए जिसका मुख्य श्रेय जनता दल की जीत को माना जाता है क्योंकि 1990 के इस विधानसभा चुनावों में काँग्रेस तथा जनता पार्टी के विधायकों की जातिगत संरचना यह स्पष्ट कर देती है जिसमें की काँग्रेस पार्टी से 14 ब्राह्मण, 12 भूमिहार, 12 राजपूत, 2 कायस्थ, 8 यादव, 1 कोईरी और 1 बनिया जाति से विधायक थे। कुल मिलाकर देखे तो 70 में से 40 ऊंची जाति के एवम् 10 विधायक पिछड़ी जाति से थे। इसके अलावा 7 अनुसूचित जाति, 5 मुस्लिम और 8 अनुसूचित जनजाति से थे। इसके विपरीत जनता पार्टी में विजित विधायकों में 7 ब्राह्मण, 5 भूमिहार, 1 कायस्थ, 17 राजपूत, ऊंची जातियों से थे तथा 36 यादव, 6 कुर्मी, 3 कोईरी, 5 बनिया, 2 मल्लाह, 1 गंगोत और 1 तेली जाति से थे इस प्रकार जनता दल में पिछड़ी जातियों की विधायकों की संख्या 54-55 रही जो की काँग्रेस की तुलना में अधिक थी। 1990 से 2005 (लालू राज) के इस शासन काल को शिक्षा जगत में दो स्वरूपों में देखा जाता है जहां एक धड़ा से अंधकार युग के रूप में परिभाषित करता है तो वही दूसरा धड़े इसे सामाजिक क्रांति की लहर मानता है, पहले धड़ा के अंतर्गत बिहार के पतन पर जोर दिया गया है जिसमें की बिहार की शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क, बिजली, पानी के स्थान पर फिरौती रंगदारी सुपारी किलिंग एक इंडस्ट्री के रूप में अपने पांव जमा रही थी।[25] संजय, आलम और जोशी ने 1990 के बाद की राजनीति को कुछ नहीं बल्कि जातिगत विभेदों जिसमें समाज की विभिन्न जातियों के बीच व्याप्त अंतर की पुष्टि और उसकी पुनरभिव्यक्ति बताया है जो आगे आने वाले समय में राजनीतिक सत्ता और शक्ति की प्राप्ति के लिए इस प्रकार के तथाकथित जातिगत सुशासन, जीवन स्तर , स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति और उसकी सार्वभौमिक उपलब्धता, बुनियादी सुविधाओं की सर्वत्र उपलब्धता जैसे मुद्दों की अपेक्षा संकीर्ण आधारों जैसे कि जातीय अस्मिता या पहचान के नाम पर मतदान करना पसंद करने लगे थे[26] तो दूसरी ओर इस शासन काल को सामाजिक न्याय के रूप में देखा जाता है जहां अगड़ी जाति की राजनीति से सत्ता का हस्तांतरण पिछड़ी जाति को प्राप्त हो जाता है जिसे कि क्रिस्टोफर जफरलॉट ने मौन क्रांति तथा योगेंद्र यादव ने इस परिवर्तन को लोकतंत्र की तीसरी लहर बताया है। देखा जाए तो 1990 तक पिछड़ी जातियों की पहचान की राजनीति स्पष्ट रूप से शुरू नहीं हुई थी। 1990 के दशक में इस प्रकार की राजनीति का उभार देखने को मिला, जिसमें दो प्रमुख कारक थे मंडलवादी राजनीति और लालू प्रसाद का नेतृत्व। मंडलवादी राजनीति से तात्पर्य 1990 में मंडल आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन के बाद पिछड़ी जातियों में राजनीतिक संज्ञान, सक्रियता और पहचान की भावना की वृद्धि से है, जिसने बिहार की राजनीति को मौलिक रूप से बदल दिया। यह राजनीति ऊँची जातियों और पिछड़ी जातियों के बीच स्पष्ट विभाजन को दर्शाने लगी। लालू प्रसाद यादव ने पिछड़ी जातियों के आत्म-सम्मान को जगाया और अल्पसंख्यकों को एक सुरक्षित सामाजिक वातावरण प्रदान किया, जिसके माध्यम से उन्होंने सुदृढ़ सामाजिक आधार की स्थापना की। इसके बाद के वर्षों में नीतीश कुमार ने लालू प्रसाद यादव को चुनौती दी। वास्तव में, 1990 के दशक में पिछड़ी जातियों में राजनीतिक जागरूकता, प्रतिनिधित्व की आकांक्षा और आत्म-सम्मान की भावना में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।[27] इसी क्रम में योगेन्द्र यादव ने इस परिवर्तन को लोकतंत्र की तीसरी लहर बताया है।[28]

निष्कर्ष - किसी भी राष्ट्र राज्य के लिए समावेशन एक महत्वपूर्ण चुनौती के रूप में अहम मुद्दा बन जाता है और यह तब व्यापक हो जाता है जब उस राष्ट्र राज्य की विशालकाय जनसंख्या विविधतापूर्ण विभिनताओं से भरी हो, भारत की भी यही दशा है जहां जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र, रहन-सहन, खान-पान आदि के आधार पर विभिन्नताएं पाई जाती हैं। इसके उपरान्त भी भारतीय राज्य ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात से ही सामाजिक समावेशन के लिए निरंतर प्रयास किए गए हैं और यह प्रगतिमान है। जहां तक बिहार में पिछड़े वर्ग के राजनीति में समावेशन की बात है इसमें भी व्यापक परिवर्तन देखने को मिलता है जैसा की तालिका 02, 03, और 04 से प्रदर्शित होता है। बिहार में क्षेत्रीय दलों के अभ्युदय का एक प्रमुख कारण पिछड़े वर्ग की व्यापक जनसंख्या भी

रही है साथ ही इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है की बिहार की राजनीति में जाति का बहुत अधिक प्रभाव रहा है जहां 1990 में ये अपने उच्च स्तर पर था, वहीं आज यह 21 वीं शदी के प्रारम्भिक दो दशकों की राजनीति में भी इसकी व्यापक झलक दिखायी देती है। पिछड़े वर्ग की राजनीति ने बिहार के राजनीतिक परिदृश्य को तो बदला है परंतु इसके बदलाव में पिछड़े वर्ग की अन्य कई जातियाँ अभी भी विलुप्त हैं जो कि समावेशी राज्य के लिए आज भी एक चुनौती के रूप में विराजमान हैं।

सन्दर्भ

1. Debate (Inclusion) personal communication with Dr. Sarita Tiwari – Ujjwal Gupta, 07 August 2024
2. Achieving Political Inclusion. (2019). https://www.gmfus.org/sites/default/files/achieving_political_inclusion.pdf
3. युरोपियन समुदाय आयोग (2003) पृ.-09
4. Galanter Mark, *'Competing Equalities: Law and the Backward Classes in India'*, Oxford University Press, New Delhi, 1984, p-166.
5. Ibid., p. 185
6. Gupta Dipankar, *'Caste and Politics: Identity over System'*, Annual Review of Anthropology, 2005, Vol-34, No.21
7. कुमार संजय, 'बिहार की चुनावी रणनीतिः जाति-वर्ग का समीकरण' (1990-2015), फॉरवर्ड प्रेस, नई दिल्ली, 2019.
8. Narain Iqbal, *'Introduction, A framework for the study of state politics in India'*, Meenakshi Prakashan, Meerut, 1976.
9. संकर्षण ठाकुर, 'बंधु बिहारीः कहानी लालू यादव व नीतीश कुमार की', प्रभात पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 2017.
10. कुमार दिनेश, 'गठबंधन राजनीति में बिहार डबल इंजन सरकार', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020.
11. जैफरलॉट, क्रिस्टोफरए 'इंडिया साइलेंट रिवॉल्यूशन द राइज ऑफ लोवर कास्ट इन नॉर्थ इंडियाएपर्मानेंट ब्लैक 2003.
12. Somanaboina Simhadri and Ramagoud akhileshwari, The Routledge Handbook of the Other Backward Classes in india 2022, Routledge india, P-376.
13. Galanter Mark, 'Who are the other backward classes? An introduction to a Consititutional puzzle', 1978, economic and political weekly, Vol.43-44, p-13
14. Kumar Sanjay, 'Caste dynamics and political process in Bihar', Journal of Indian School of Political Economy, Jan–June, New Delhi, 2008. page 2
15. NIPFP. (2015). NIPFP | Home page. Nipfp.org.in. http://www.nipfp.org.in
16. Polgreen, L. Turnaround of India State Could Serve as a Model. The New York Times. https://www.nytimes.com/2010/04/11/world/asia/11bihar.html
17. Amit Bhelari. Bihar caste-based survey report | Poverty highest among Scheduled Castes, lowest among Kayasths. The Hindu. (2023, November 7) https://www.thehindu.com/news/national/bihars-caste-based-survey-report-shows-yadavs-hold-most-govt-jobs-among-obcs/article67509087.ece
18. श्रीकांत, 'बिहार में चुनाव : जाति, हिंसा, और बूथ लूट', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 36
19. वही पृ. 37
20. Jha K. Manish, & Pushpendra, Governing Caste and Managing Conflicts Bihar (1990-2011), 2012, Mahanirban Calcutta Research Group, kolkata, pp. 25-26.
21. Cyril Robin. Bihar: The New Stronghold of OBC Politics in Christopher Jaffrelot and Sanjay
22. Srikant, *'Raj aur Samaj'*, Vani Prakashan, New Delhi, 2011, p12
23. Mishra, G., & Braj Kumar Pandey, *'Sociology and Economics of Casteism in India'*. Delhi Pragati Publications. 1996. p. 302
24. चौबे कमल नयन, जातियों का राजनीतिकरण : बिहार में पिछड़ी जातियों के उभार की दास्तान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 78
25. झा निरंजन गांधी मैदान : ब्लफ ऑफ सोशल जस्टिस. 2020 हिन्दी युग्म. नोएडा (यूपी) पृ. 5-10
26. Kumar Sanjay, Alam Mohammad, Joshi D, 'Caste Dynamic and Political process in Bihar', Journal of Indian school of political economy, 20,(1&2), 2008, p-1
27. चौब कमल नयन, पूर्वोक्त, पृ.1
28. Yadav, Yogendra, 'Electoral Politics in the Time of Change : India's Third Electoral System', 1989-99. (1999) Economic and Political Weekly, 34, pp. 2398–2399.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

विकसित भारत 2047 के निर्माण में भारत की रोजगार नीति का सिंहावलोकनः स्वतंत्रता प्राप्ति से अब तक

❑ डॉ. विजया कुमारी

सूचक शब्द : कार्यबल, उदारीकरण, उद्यमिता, कौशल विकास, आर्थिक प्रतिमान।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात से भारत की यात्रा महत्वपूर्ण आर्थिक परिवर्तनों से चिह्नित रही है, जिसमें रोजगार नीति ने देश के विकास पथ को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र और सबसे अधिक जनसंख्या वाले देश के रूप में, भारत को अपने तेजी से बढ़ते कार्यबल के लिए पर्याप्त आजीविका के अवसर पैदा करने में अनूठी चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। प्रस्तुत शोधपत्र भारत में 1947 से लेकर आज तक के रोजगार नीति के विकास की प्रवृति का अध्ययन करता है, तथा देश की रोजगार आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न सरकारों द्वारा क्रियान्वित की गई विभिन्न रणनीतियों, कार्यक्रमों और पहलों का विश्लेषण करता है। अध्ययन में यह पता लगाया गया है कि राज्य के नेतृत्व वाले औद्योगीकरण पर प्रारंभिक फोकस से लेकर 1990 के दशक के उदारीकरण सुधारों, कौशल विकास और उद्यमिता पर वर्तमान जोर तक, इन नीतियों ने बदलते आर्थिक प्रतिमानों के साथ कैसे अनुकूलन किया है। रोजगार नीतियों के ऐतिहासिक विकास का पता लगाकर, उनके प्रभावों का आकलन करके और लगातार चुनौतियों की पहचान करके, इस शोध का उद्देश्य रोजगार सृजन और श्रम बाजार विकास के लिए अपनी विभिन्न योजनाओं के माध्यम से भारत के दृष्टिकोण का गंभीर विश्लेषण करना है। भारत की रोजगार नीति के विकास को समझना न केवल देश के आर्थिक विकास को समझने के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि तेजी से जटिल और परस्पर जुड़े वैश्विक श्रम बाजार में भविष्य के नीतिगत निर्णयों को सूचित करने के लिए भी महत्वपूर्ण है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत की स्वतंत्रता के पूर्व तत्कालीन राजनीति की आर्थिक नीतियों के कारण एवं परिणामस्वरूप गरीबी और बेरोजगारी दो जुड़वा बहनें प्राप्त हुई। अतः बेरोजगारी की समस्या भारत के लिए ना तो नयी है ना ही अचानक सामने आयी है, परंतु स्वाधीनता के बाद इस समस्या पर काफी जागरूकता आई है। भारत जैसे कल्याणकारी देश में उत्पादक एवं लाभदायक रोजगार उपलब्ध कराना गरीबी निवारण हेतु प्रमुख नीतिगत उद्देश्यों में से एक माना गया है। 1.4 बिलियन से अधिक की जनसंख्या और जनसांख्यिकीय लाभांश के साथ, जो अवसर और चुनौतियां दोनों प्रस्तुत करता है, उत्पादक और टिकाऊ रोजगार पैदा करने की भारत की क्षमता इसकी आर्थिक वृद्धि, गरीबी में कमी और सामाजिक स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण रही है। परंतु स्वाधीनता के दशकों के बाद भी रोजगार के लिए एक दीर्घकालिक पृथक एवं स्पष्ट नीति का अभाव एक प्रमुख चिंता का विषय है।

स्वतंत्रता के बाद से भारत की आर्थिक विकास की यात्रा रोजगार नीति के प्रति इसके विकसित दृष्टिकोण के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र और इसकी सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक के रूप में, रोजगार पैदा करने और श्रम बाजार के परिणामों में सुधार करने की भारत की रणनीतियां इसके विकास की गाथा के केंद्र में रही हैं। यद्यपि विकास रणनीति के अंतर्गत कृषि विकास, राज्य नेतृत्व वाले औद्योगीकीकरण, आर्थिक विकास के टपकन प्रभाव की क्रियाशीलता की धारणा पर विश्वास के साथ-साथ पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा मध्यम अवधि के परिप्रेक्ष्य में समग्र एवं क्षेत्रीय विकास के लिए बेरोजगारों और श्रम बाल में नए प्रवेश के लिए रोजगार सृजन के लक्ष्य के संबंध में काफी स्पष्ट दिशा निर्देश दिए गए हैं, लेकिन उसके बाद भी बेरोजगारी बढ़ती गई है और आज भी यह एक गंभीर समस्या बनी हुई है।

साहित्य समीक्षा :

पपोला[1] का अध्ययन स्वतंत्रता के बाद से भारत में प्रारंभिक योजनाओं में औद्योगिक रोजगार पर जोर देने से बाद के

❑ सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, टी.पी. कालेज, मधेपुरा (बिहार)

वर्षों में अधिक विविध दृष्टिकोण बदलाव पर रोजगार नीतियों के बदलते फोकस का एक व्यापक अवलोकन प्रदान करता है। इसके पूरक के रूप में **भट्टाचार्य**[2] एवं अन्य ने भारत की अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तनों और योजना अवधियों में रोजगार पैटर्न के लिए उनके निहितार्थों का विश्लेषण किया है। **द्रेज और सेन**[3] ने भारत की विकास रणनीति में ग्रामीण रोजगार की केंद्रीयता पर चर्चा की, विशेष रूप से मनरेगा जैसे कार्यक्रमों पर ध्यान केंद्रित करते हुए रोजगार के लिए अधिकार-आधारित दृष्टिकोण पर जोर दिया है।

मेहरोत्रा[4] ने प्रशिक्षण कार्यक्रमों और उद्योग की आवश्यकताओं के बीच लगातार असामंजस्य की ओर संकेत करते हुए भारत की कौशल विकास नीतियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया है। **कन्नन** और **रवींद्रन**[5] भारत में अनौपचारिक रोजगार की दृढ़ता की जांच करते हैं, मुख्य रूप से औपचारिक क्षेत्र पर केंद्रित नीतियों की सीमाओं पर प्रकाश डालते हैं। **चटर्जी एवं अन्य**[6] ने आपूर्ति-पक्ष और मांग-पक्ष दोनों कारकों पर चर्चा करते हुए भारत में घटती महिला श्रम शक्ति भागीदारी का विश्लेषण किया।

गोल्डर[7] संगठित विनिर्माण में रोजगार वृद्धि पर आर्थिक सुधारों के प्रभाव का विश्लेषण करता है। अध्ययन में पाया गया है कि सुधारों के बाद उत्पादन वृद्धि में तेजी आई, रोजगार वृद्धि में गिरावट आई, जिससे विनिर्माण क्षेत्र की रोजगार पैदा करने की क्षमता के बारे में चिंताएं बढ़ गईं। वहीं **उन्नी और रानी**[8] भारत की श्रम बाजार नीतियों के लिए काम की बदलती प्रकृति के निहितार्थ पर चर्चा करते हैं। **अहलूवालिया**[9] ने भारत की योजना प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण मूल्यांकन प्रस्तुत किया है, जिसमें रोजगार सृजन के लिए इसका दृष्टिकोण भी सम्मिलित है। **वर्मा**[10] भारत में विभिन्न रोजगार कार्यक्रमों के कार्यान्वयन की चुनौतियों की जांच करते हैं, शासन और संस्थागत क्षमता के मुद्दों पर प्रकाश डालते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न आर्थिक प्रतिमानों एवं दृष्टिकोण व पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से भारत की रोजगार नीतियों का अध्ययन व्यापक शोध का विषय रहा है, जो उनके विकास, प्रभाव और चुनौतियों पर विविध दृष्टिकोण प्रदान करता है।

शोध पद्धतिः सर्वप्रथम प्रपत्र विश्लेषण मे द्वितीयक स्रोत के रूप में पंचवर्षीय योजना के प्रपत्र, सरकारी रिपोर्ट, आर्थिक सर्वेक्षण इत्यादि सम्मिलित किया गया है, साथ ही अन्य स्रोतों में अकादमिक साहित्य, नीति पत्र, विशेषज्ञ टिप्पणियां ली गयी है। तत्पश्चात मात्रात्मक डेटा विश्लेषण हेतु योजना अवधि में रोजगार के आंकड़ों का संग्रहण और विश्लेषण किया गया है। प्रमुख संकेतकों में रोजगार वृद्धि दर, क्षेत्रीय बदलाव, श्रम बल भागीदारी दर इत्यादि है। तुलनात्मक विश्लेषण हेतु रोजगार रणनीतियों और परिणामों की क्रॉस-प्लान तुलना की गई है और विभिन्न योजना अवधियों में शुरू किए गए विशिष्ट रोजगार कार्यक्रमों की गहन परीक्षा की गई है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-1956) से बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017) एवं नीति आयोग की योजनाओं द्वारा अबतक भारत की रोजगार नीतियों के ऐतिहासिक विकास का पता लगाना।
2. विभिन्न योजना अवधियों में नीति फोकस, रणनीतियों और कार्यान्वयन दृष्टिकोणों में प्रमुख परिवर्तनों की पहचान और विश्लेषण करना।
3. पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से शुरू की गई विभिन्न रोजगार पहलों और कार्यक्रमों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना।
4. यह जांचने के लिए कि रोजगार नीतियों ने बदलते आर्थिक प्रतिमानों पर कैसे प्रतिक्रिया दी है, एक राज्य के नेतृत्व वाली अर्थव्यवस्था से अधिक उदारीकृत बाजार-उन्मुख दृष्टिकोण तक।
5. भारत के श्रम बाजार में लगातार चुनौतियों का आकलन करना और समय के साथ नीतिगत दृष्टिकोणों ने इन्हें संबोधित करने का प्रयास कैसे किया है।

प्रस्तुत शोध पत्र भारत में रोजगार नीति की विकास यात्रा का ऐतिहासिक परिपेक्ष में एक सिंहावलोकन करने का प्रयास है। भारत की रोजगार नीति के विकास को 1947 के बाद से देश के आर्थिक और राजनीतिक विकास के व्यापक संदर्भ में समझा जाना चाहिए। अतः रोजगार नीति का एक विस्तृत विश्लेषण दशकवार इस प्रकार कर सकते हैं:-

1. स्वतंत्रता के बाद आर्थिक विकास के ट्रिकल डाउन इफेक्ट दृष्टिकोण (1947-1960): स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था मॉडल को अपनाया जिसमें केंद्रीय नियोजन प्रणाली द्वारा कृषि एवं ग्रामीण

विकास तथा औद्योगीकरण और सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार पर विशेष जोर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप रोजगार सृजन तो हुआ परंतु सीमित मात्रा में साथ ही अधिकांश शहरी क्षेत्र में हुआ। इसीलिए इस दृष्टिकोण की आलोचना मुख्यतः शहरी और ग्रामीण विभाजन को जन्म देने एवं अपेक्षित कृषि और ग्रामीण रोजगार पर ध्यान नही देने के लिए की जाती है।

औद्योगिक नीति संकल्प : 1948 और 1956 के औद्योगिक नीति संकल्प रोजगार नीतियों को आकार देने में महत्वपूर्ण थे। इन प्रस्तावों पर राज्य के नेतृत्व वाला औद्योगीकरण,भारी उद्योगों का विकास एवं सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के साथ मिश्रित अर्थव्यवस्था मॉडल को अपनाने पर जोर दिया गया।

पंचवर्षीय योजनाएं : भारत ने 1950 में योजना आयोग की स्थापना द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से केंद्रीकृत नियोजन की एक प्रणाली को अपनाया, जिसका रोजगार स्थापना पर महत्वपूर्ण प्रभाव था।

पहली पंचवर्षीय योजना (1951-1956) : 1950 के दशक के प्रारंभ में, बेरोजगार लोगों के बैकलॉग ने संकेत दिया कि बेरोजगारी एक समस्या थी। तेजी से आर्थिक विकास लघु पैमाने पर विनिर्माण जैसे रोजगार-गहन उद्योग क्षेत्रों पर ध्यान देने के साथ बेरोजगारी को संबोधित करने के लिए पर्याप्त माना गया था।[11]

दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956-1962): इस योजना द्वारा बेरोजगारी का बैकलॉग 5 मिलियन होने का अनुमान लगाया गया था, जिसमें सालाना 1.5-2 मिलियन नए श्रमिक श्रम बाजार में सम्मिलित होते थे। दस साल की अवधि में, उन सभी को योजना की अनुमानित 5 प्रतिशत विकास दर पर काम के अवसर खोजने थे।[12]

सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार : इसके अंतर्गत बड़े सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (PSU) का निर्माण किया गया परिणामस्वरूप विशेष रूप से भारी उद्योगों और बुनियादी ढांचे में पीएसयू प्रमुख नियोक्ता बन गए।

कृषि सुधार : इसके अंतर्गत भूमि सुधारों पर विशेष ध्यान दिया गया, जिसका उद्देश्य भूमि का पुनर्वितरण और कृषि उत्पादकता में सुधार करना था। साथ ही ग्रामीण रोजगार सृजन के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952) चलायें गये।

श्रम कानून और विनियम : सर्वप्रथम कारखाना अधिनियम (1948), फिर औद्योगिक विवाद अधिनियम (1947) तत्पश्चात ट्रेड यूनियन अधिनियम (1926, 1947 में संशोधित) द्वारा श्रमिकों को संगठित करने का अधिकार दिया गया।

शिक्षा और कौशल विकास : कुशल कार्यबल बनाने के लिए तकनीकी शिक्षा पर जोर देने के लिए 1950 के बाद औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (आईटीआई) की स्थापना की गई और आईआईटी और आईआईएम सहित उच्च शिक्षण संस्थानों का विस्तार किया गया।

लघु उद्योग : इसके अंतर्गत रोजगार पैदा करने के लिए लघु और कुटीर उद्योगों को बढ़ावा दिया गया।

स्वरोजगार पहल : ग्रामीण स्वरोजगार को बढ़ावा देने के लिए खादी और ग्रामोद्योग आयोग (1956) की स्थापना की गई।

रोजगार कार्यालय : रोजगार प्राप्ति को सुविधाजनक बनाने के लिए रोजगार कार्यालयों की स्थापना की गई।

क्षेत्रीय विकासः औद्योगिक स्थान नीतियों के माध्यम से क्षेत्रीय विकास को संतुलित करने हेतु केंद्र के प्रारंभिक प्रयासों में से एक 1954 में प्रारंभ की गयी ग्रामीण जल आपूर्ति योजना (आरडब्ल्यूएस), सार्वजनिक वितरण प्रणाली की स्थापना 1950 में और वर्ष 1952 में ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं (आरएचएस) की स्थापना की गयी। इन पहलों ने नौकरियों के सृजन में भी पर्याप्त योगदान दिया।

सामाजिक सुरक्षा उपाय : सामाजिक सुरक्षा हेतु कर्मचारी राज्य बीमा योजना, 1948 साथ ही कर्मचारी भविष्य निधि योजना, 1952 भी संगठित क्षेत्र के श्रमिकों को सेवानिवृत्ति लाभ प्रदान करने के लिए लाया गया।

इस अवधि ने भारत की रोजगार नीति के ढांचे के लिए मंच तैयार किया, जिसमें राज्य के नेतृत्व वाले विकास, औद्योगिक विकास और औपचारिक क्षेत्र के रोजगार पर जोर दिया गया। हालांकि, इसे विशाल अनौपचारिक क्षेत्र और ग्रामीण रोजगार के मुद्दों को संबोधित करने में चुनौतियों का भी सामना करना पड़ा। परंतु जनसंख्या वृद्धि की तुलना में औद्योगीकरण की गति धीमी थी जो बाद के दशकों में प्रमुख चिंता बन गयी।

2. राज्य आधारित औद्योगीकरण, हरित क्रांति और लोक निर्माण संबंधी दृष्टिकोण (1960-1970)

इस दशक में कृषि उत्पादकता में वृद्धि और ग्रामीण रोजगार पर विशेष ध्यान दिया गया इसके लिए कृषि विकास हेतु उच्च उपज वाली फसल किस्में एवं सहायक

तत्वों का प्रयोग और ग्रामीण कार्य कार्यक्रम इत्यादि रणनीति बनाई गई। परिणामस्वरूप कुछ क्षेत्रों में कृषि रोजगार में वृद्धि एवं अस्थायी राहत कार्य लक्षित हुए।

इस अवधि की विशेषता थी :

हरित क्रांति : जब देश में ग्रामीण विकास की दिशा में सामुदायिक विकास कार्यक्रम आकर्षक प्रतीत हो रहा था तभी राष्ट्र 1960 के दशक में खाद्य संकट का सामना कर रहा था, अतः सभी प्रयास कृषि की उन्नति पर केंद्रित किये गये, फलतः हरित क्रांति आई। साथ ही क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने के लिए लक्षित दृष्टिकोण अपनाया गया जिसके अंतर्गत गहन कृषि क्षेत्र विकास कार्यक्रम (आईएएडीपी), गहन कृषि विकास कार्यक्रम (आईएडीपी) चलायें गये। अतः इस रणनीति ने रोजगार के अवसरों में क्षेत्रीय असमानताओं को बढ़ाया। अतः रोजगार कार्यक्रम द्वारा अस्थायी तौर पर कृषि में अल्प बेरोजगारी और प्रच्छन्न बेरोजगारी को कम करने पर ध्यान दिया गया ।

बड़े पैमाने पर रोजगार सृजन योजनाओं का प्रारंभ - ग्रामीण रोजगार को बढ़ावा देने हेतु (1960 के दशक) 1960-1961 के अंत में 32 सामुदायिक विकास खंडों में प्रायोगिक कार्यक्रम के रूप में बड़े पैमाने पर ग्रामीण जनशक्ति कार्यक्रम (आरएमपी) चलाया गया था ताकि तीसरी पंचवर्षीय योजना के अंत तक कम से कम 25 मिलियन लोगों को 100 दिनों के लिए रोजगार देने हेतु ग्रामीण जनशक्ति का प्रयोग किया जा सके।

स्वरोजगार की ओर बढ़ावा

पंचवर्षीय योजनाओं की निरंतरता : इस दशक में तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-1966) जिसमें औद्योगीकरण और आत्मनिर्भरता पर निरंतर ध्यान और योजना अवकाश (1966-1969) में अर्थव्यवस्था की स्थिरता पर बल एवं चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-1974) के प्रारंभिक वर्ष में स्थिरता के साथ विकास पर बल दिया गया।

शिक्षा और कौशल विकास पर ध्यान

इस अवधि में ग्रामीण रोजगार और कृषि उत्पादकता को संबोधित करने की दिशा में भारी औद्योगीकरण पर पहले ध्यान केंद्रित करने से एक संक्रमण को चिह्नित किया,वही सार्वजनिक कार्यों के माध्यम से अस्थायी रोजगार सृजनकी नीति अपनायी गयी। इस दृष्टिकोण को संरचनात्मक बेरोजगारी को संबोधित करने में सीमित सफलता मिली।

3. रोजगारोन्मुखी दृष्टिकोण (1970-1980) :

इस दशक में अधिक प्रत्यक्ष रोजगार सृजन कार्यक्रमों के विस्तार द्वारा स्वरोजगार योजना द्वारा स्थायी आय निर्माण एवं मजदूरी रोजगार कार्यक्रम के माध्यम से कमजोर कृषि मौसमों के मध्य मजदूरी रोजगार प्रदान करने पर विशेष जोर दिया गया। इन नीतियों ने रोजगार में अस्थायी वृद्धि, अस्थायी राहत कार्य, दीर्घ कालिक बेरोजगारी को जन्म दिया। परंतु इन कार्यक्रमों के खराब कार्यान्वयन के कारण आलोचना का शिकार होना पड़ा।

इस अवधि की विशेषता थी :

पंचवर्षीय योजनाओं की निरंतरता : पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं की तरह ही चौथी योजना में भी रोजगार सृजन की पहलों पर खास ध्यान नहीं दिया गया। रोजगार और बेरोजगारी पर गहन सर्वेक्षण करने के लिए राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (एनएसएस) का उपयोग करना चौथी पंचवर्षीय योजना के मुख्य लक्ष्यों में से एक था।[13] पहला पंचवर्षीय सर्वेक्षण राष्ट्रीय सर्वेक्षण के 27वें दौर (सितंबर 1972-अक्टूबर 1973) के अनुसार सकल घरेलू उत्पाद लगभग 3.5 प्रतिशत की औसत वार्षिक गति से बढ़ा, जबकि रोजगार 2 प्रतिशत की औसत वार्षिक दर से बढ़ा। लेकिन श्रम बल 2.5 प्रतिशत की तेज दर से बढ़ने के कारण, 1956 में अनुमानित 5 मिलियन बेरोजगार लोग 1973-1974 में बढ़कर 10 मिलियन[14] 1977-78 में 11 मिलियन हो गये, यह स्वीकार करते हुए कि भारत की आधी से अधिक जनसंख्या निर्धनता में रहती है, और यह कि लगातार बढ़ती बेरोजगारी और निर्धनता गंभीर मुद्दे हैं।[15]

इसके अलावा, भगवती समिति की 1973 की रिपोर्ट के बाद पांचवीं योजना (1974-1979) के हिस्से के रूप में विकास रणनीति को रोजगार-उन्मुख विकास की ओर फिर से उन्मुख किया जाना था, जिसमें विशिष्ट रोजगार और गरीबी-विरोधी पहलों के कार्यान्वयन का भी आह्वान किया गया था।[16]

अधिक प्रत्यक्ष रोजगार सृजन कार्यक्रमों की प्रमुख पहलः सर्वप्रथम ग्रामीण रोजगार के लिए क्रैश योजना (1971) प्रारंभ की गयी तत्पश्चात प्रायोगिक गहन ग्रामीण रोजगार परियोजना 1972 चलाया गया। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण, "लघु किसान विकास एजेंसी" है जो 1973-1974 में, सीमांत किसान और कृषि मजदूर 1974-1975 में, 1977 मे काम के लिए भोजन कार्यक्रम और 1978 मे

एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम प्रारंभ किया गया। परिणामस्वरूप, 1977 और 1980 के बीच, 979.32 मिलियन मानव-दिवस रोजगार सृजित किए गए थे। फिर विशेष रूप से कमजोर कृषि मौसमों के मध्य मजदूरी रोजगार प्रदान करने हेतु राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम 1980 चलाया गया।

क्षेत्र विकास योजना - इसके अंतर्गत सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम (डीपीएपी 1973), और पहाड़ी क्षेत्र विकास एजेंसी (एचएडीए 1972) प्रारंभ किया गया।

सामाजिक सेवाओं में सुधार- 5 वीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत पिछले कार्यक्रमों के परीक्षण के परिणाम स्वरूप सुधार हेतु न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (एमएनपी), राष्ट्रीय ग्रामीण आवास योजना की स्थापना 1976-1977 में एक महत्वपूर्ण ग्रामीण विकास दृष्टिकोण के रूप में डिजाइन किया गया।

ट्रिकल-डाउन इकॉनमी की सीमाओं को समझते हुए, सरकार ने अधिक प्रत्यक्ष रोजगार सृजन कार्यक्रमों की ओर रुख किया। परिणामस्वरूप अस्थायी रोजगार में वृद्धि हुई।

4. स्वरोजगार धक्का दृष्टिकोण (1980-1990) :

इस दशक में उद्यमिता एवं लघु उद्योग द्वारा स्वरोजगार पर बल दिया गया, इसके लिए IRDP, TRYSEM, NREP इत्यादि स्वरोजगार योजनाएँ चलायी गयीं। इन योजनाओं के खराब कार्यान्वयन, परिणामस्वरूप स्थायी आजीविका बनाने में सीमित सफलता ही मिली।

इस अवधि की विशेषता थी एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आईआरडीपी) : इस योजना को 1978 में प्रारंभ किया गया लेकिन 1980 के दशक में इसने गति पकड़ी।

1. स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं का प्रशिक्षण (TRYSEM):- 1979 में प्रारंभ किया गया और 1980 के दशक में इसका विस्तार किया गया।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों का विकास (DWCRA) 1982
3. ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (आरएलईजीपी) 1983
4. शिक्षित बेरोजगार युवाओं के लिए स्वरोजगार (SEEUY) 1983
5. प्रधान मंत्री रोजगार योजना (पीएमआरवाई 1993)
6. जवाहर रोजगार योजना (JRY) 1989
7. माइक्रो-क्रेडिट का विस्तार
8. गरीबों के लिए शहरी आधरभूत सेवाएं (UBSP), 1986

पंचवर्षीय योजनाओं की निरंतरता- छठी योजना दस्तावेज में, योजना आयोग को कठोर तथ्य का सामना करना पड़ा कि आर्थिक नियोजन के अनुसार समय के साथ लंबे समय तक काम करने के बाद भी नौकरी की संभावनाएं नहीं बढ़ी थीं। इसलिए, छठी योजना की रोजगार रणनीति (1980-1985) में दीर्घकालिक बेरोजगारी में कटौती करने और श्रम शक्ति के थोक के लिए बेरोजगारी को कम करने के दो प्रमुख उद्देश्य थे।[16]

सातवीं योजना (1985-1990) में पहली बार रोजगार को विकास रणनीति का स्पष्ट केंद्र बिंदु बनाने का प्रयास किया गया। इसके लिए रोजगार की 4 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य एवं कृषि क्षेत्र को रोजगार सृजन में एक प्रमुख भूमिका दी।[16]

इस अवधि ने भारत की रोजगार नीति में एक महत्वपूर्ण बदलाव को चिह्नित किया, जो सार्वजनिक क्षेत्र के रोजगार और बड़े पैमाने पर उद्योगों पर पहले के ध्यान से दूर जा रहा था।[17] अब स्वरोजगार और मजदूरी रोजगार को पृथक किया गया एवं स्वरोजगार को बढ़ावा देने के उद्देश्य से उद्यमिता और लघु उद्यमों को बढ़ावा देकर बढ़ती बेरोजगारी की समस्या का समाधान करने का प्रयास किया गया है।[18] साथ ही स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं के सशक्तिकरण द्वारा भविष्य की माइक्रो फाइनेंस पहलों की नींव रखी गयी।

5. आर्थिक उदारीकरण दृष्टिकोण (1991 से 2000 तक)-

इस अवधि में निजी क्षेत्र की वृद्धि, विदेशी निवेश पर विशेष ध्यान दिया गया। इसके लिए विनियमन, निजीकरण, वैश्वीकरण इत्यादि रणनीतियां अपनायी गयीं। परिणामस्वरूप सेवा क्षेत्र की नौकरियों में वृद्धि, आईटी बूम हुए किंतु बढ़ती प्रतिस्पर्धा और पुनर्गठन के कारण औपचारिक क्षेत्र में नौकरियों में कमी देखी गई।[19]

संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम : सर्वप्रथम अर्थव्यवस्था का विनियमन हेतु 'लाइसेंस राज' को खत्म करना, सार्वजनिक क्षेत्र के प्रभुत्व में कमी, कुछ सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का निजीकरण, निजी क्षेत्र के नेतृत्व वाले विकास पर जोर, अर्थव्यवस्था के क्षेत्रों को विदेशी निवेश के लिए खोलना इत्यादि कार्य किए गए हैं।

राष्ट्रीय नवीकरण निधि (1992)

पंचवर्षीय योजनाओं की निरंतरता : सातवीं पंचवर्षीय योजना के समापन के बाद, राष्ट्र ने दो साल की राजनीतिक अशांति देखी, जिसके कारण आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-1997) का निर्माण हुआ। राष्ट्र ने 1991 में एक महत्वपूर्ण विदेशी मुद्रा संकट का अनुभव किया, जिसके कारण 1992 और 1993 के लिए दो वार्षिक योजनाओं का निर्माण हुआ।

आठवीं पंचवर्षीय योजना के मध्य, निजीकरण और उदारीकरण जैसी नीतियां लागू की गई थीं। इस योजना अवधि के दौरान, भारत विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) में भी सम्मिलित होता है। पहली बार, योजना दस्तावेज के रोजगार अनुभाग को अपने स्वयं के अध्याय (योजना आयोग 1992, अध्याय 6) की आवश्यकता के लिए पर्याप्त वजन मिला। इस योजना का उद्देश्य रोजगार के लिए 2.6 प्रतिशत से 2.8 प्रतिशत का वार्षिक विकास लक्ष्य निर्धारित करके 2002 तक "सभी के लिए रोजगार" प्राप्त करना है।

भारतीय स्वतंत्रता के पचास साल पूरे होने के बाद लागू नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) के अनुसार, जीवन की गुणवत्ता और क्षेत्रीय संतुलन के साथ-साथ रोजगार राज्य नीति के तीन प्रमुख स्तंभों में से एक था (योजना आयोग, 1998 का पृष्ठ 13)। इस तरह नौवीं योजना में विकास आधारित रोजगार रणनीति पर देश वापस आ गया।

रोजगार आश्वासन योजना (1993) : ग्रामीण गरीबों को 100 दिनों का अकुशल शारीरिक कार्य प्रदान करने हेतु 1993 मे इसे लागू किया गया जो बाद में बनाये गये रोजगार गारंटी कार्यक्रमों का अग्रदूत माना जा सकता है।[20]

प्रधान मंत्री रोजगार योजना (1993) : आठवीं योजना के अंतर्गत 7.70 लाख मामलों में ऋण मंजूर किए गए थे, लेकिन वास्तव में केवल 5.76 लाख मामलों में ही ऋण वितरण हुआ।

स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना (1997)

स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (SGSY), 1999

विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZ)- ये क्षेत्र विदेशी निवेश को आकर्षित करने और नौकरियां प्रदान करने के लिए कर छूट एवं नियमों में बदलाव करके विकसित किये गये थे। इन सुधारों ने आर्थिक विकास को बढ़ावा दिया, लेकिन रोजगार पर इनका प्रभाव मिला-जुला रहा। आईटी, दूरसंचार और वित्तीय सेवाओं जैसे क्षेत्रों में नए अवसर उभरे। रोजगार नीति सामाजिक सुरक्षा जाल को बनाए रखते हुए बाजार-उन्मुख सुधारों के माध्यम से रोजगार सृजन के लिए एक सक्षम वातावरण बनाने पर केंद्रित है। हालांकि, भारत के बढ़ते कार्यबल के लिए पर्याप्त औपचारिक क्षेत्र की नौकरियां बनाने की चुनौतियां बनी हुई हैं।[21]

6. अधिकार-आधारित दृष्टिकोण (2000-2010)- उदारीकरण के बाद समायोजन (2000 से 2010 तक) की इस अवधि में ग्रामीण रोजगार गारंटी मनरेगा (2005), गरीबों के लिए स्वरोजगार स्थायी आजीविका के अवसर पैदा करने के उद्देश्य हेतु 1999 से एसजीएसवाई एवं SJSY जारी रखें गये। बाद में 2011 में एनआरएलएम को प्रारंभ किया गया। फलतः ग्रामीण मजदूरी में वृद्धि और संकट प्रवास में कमी एवं उनके लिए बेहतर सौदेबाजी की शक्ति, कमजोर समूहों के लिए बढ़ी हुई सामाजिक सुरक्षा, कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी पर अधिक ध्यान एवं नागरिकों के बीच रोजगार के अधिकारों के बारे में जागरूकता बढ़ाना इत्यादि प्रमुख परिणाम दृष्टिगोचर हुए।

पंचवर्षीय योजनाओं की निरंतरता-

10वीं एवं 11वीं पंचवर्षीय योजना इस समय चलायी गयी थी। योजना आयोग ने 1999 मे रोजगार के अवसरों पर एक कार्यबल तथा 2001 में प्रतिवर्ष 10 मिलियन रोजगार के अवसरों को लक्षित करने पर एक विशेष समूह गठन किया जिसके आकलन एवं मूल्यांकन पर दसवीं पंचवर्षीय योजना तैयार की गई।[22]

दसवीं योजना (2002-07) - दसवीं योजना के प्रारंभ में अनुमानित 35 मिलियन बेरोजगार लोग बैकलॉग थे। यह अनुमान लगाया गया था कि 1990 के दशक की तुलना में नई सदी के प्रारंभिक वर्षों में श्रम बल तेजी से बढ़ेगा।[23]

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में समावेशी विकास लक्ष्य को पूरा करने के लिए रोजगार के अवसरों में वृद्धि को एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में देखा गया है।[24]

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा, 2005): रोजगार को कानूनी अधिकार देते हुए नरेगा लाया गया, 2009 में इसका नाम बदलकर महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (MGNREGA)

कर दिया गया। मनरेगा जैसे कार्यक्रम आर्थिक मंदी के दौरान एक सुरक्षा जाल प्रदान करने में प्रभावी सिद्ध हुए हैं, जैसे कि 2008 का वैश्विक वित्तीय संकट और हाल ही में COVID-19 महामारी। इस कार्यक्रम की भौतिक प्रगति नीचे तालिका द्वारा दिखायी गयी है।

सूचक	2019-20	2020-21	2021-22	2022-23	2023-24*
सृजित व्यक्ति दिवस करोड़ में	265.4	389.1	363.3	293.8	309.2
प्रति परिवार औसत व्यक्ति दिन	48.4	51.52	50.1	47.8	52.1
महिला भागीदारी दर (प्रतिशत में)	54.8	53.19	54.7	57.5	58.9
*एमआईएस के अनुसार(31.03.2024 तक)					

शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009):- मानव पूंजी और दीर्घकालिक रोजगार क्षमता में सुधार लाने के उद्देश्य से यह अधिनियम लागू किया गया, यह मुख्य रूप से एक शिक्षा नीति है, परंतु इसका रोजगार पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है।

कौशल विकास पर राष्ट्रीय नीति (2009):- इसमें 2022 तक 500 मिलियन लोगों को कुशल बनाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

दीनदयाल अंत्योदय योजना- राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (2011)- का क्षेत्र 28 राज्यों एवं 6 केंद्र शासित प्रदेशों के 742 जिलों के 7135 ब्लॉकों तक फैला हुआ है। इस कार्यक्रम की प्रगति का सारांश नीचे तालिका में दिया गया है:

सूचक	संचयी प्रगति जून 2024 तक
कवर किए गए ब्लॉकों की संख्या	7135
प्रमोट किए गए स्वयं सहायता समूह की संख्या(लाख में)	90.86
संगठित किए गए परिवार की संख्या (करोड़ में)	10.05
स्वयं सहायता समूहों को प्रदान की गई पूंजी सहायता (करोड़ रुपये में)	43,610
स्वयं सहायता समूहों द्वारा प्राप्त बैंक ऋण की राशि (` लाख करोड़ में)	8.89
एसवीईपी के अंतर्गत स्थापित किए गए व्यक्तिगत उद्यमों की संख्या (लाख में)	2.98
एजीईवाई के अंतर्गत तैनात वाहनों की संख्या	2333
महिला किसानों की संख्या (करोड़ में)	3.71
स्थापित कस्टम हायरिंग केंद्रों की संख्या	32709
घरेलू बचत रसोई उद्यान की संख्या (करोड़ में)	2.28

स्रोतःग्रामीण विकास मंत्रालय के अनुसार

दीनदयाल अंत्योदय योजना- राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (2013) - वर्ष 2018-19 से 30.01.2024 तक इस योजना के द्वारा कौशल प्रशिक्षित उम्मीदवारों की अनुमानित संख्या 5.48 लाख है ।

प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (PMGEP), **2008** : इसके अंतर्गत PMRY और REGP (ग्रामीण रोजगार सृजन कार्यक्रम) का विलय किया गया, 2018-19 से 30.01 2024 तक अनुमानित रोजगार सृजित व्यक्तियों की संख्या 37.46 लाख है।

7. तीव्र समावेशी विकास एवं कौशल विकास धक्का दृष्टिकोण (2010-2020) :

इस अवधि मे रोजगार नीति के कौशल अंतर को संबोधित करने पर विशेष जोर था, इसके लिए स्किल इंडिया मिशन, प्रधान मंत्री कौशल विकास योजना इत्यादि लागू की गयीं। परिणामस्वरूप कौशल प्रशिक्षण के आधारभूत ढांचे में वृद्धि, कौशल विकास के बारे में

जागरूकता बढ़ी, कौशल पारिस्थितिकी तंत्र में अधिक उद्योग भागीदारी एवं क्षेत्रों में कौशल योग्यता का मानकीकरण हुआ। भारत में बेरोजगारी वृद्धि अनुपात 1961 में 3.2 प्रतिशत था, 1971 में 4.6 प्रतिशत, 1981 में 5.2 प्रतिशत, 1991 मे 6.4 प्रतिशत, 2001 में 7.8 प्रतिशत तथा 2011 की जनगणना के अनुसार यह अनुपात बढ़कर 9.4 प्रतिशत हो गया है।[25]

इस अवधि की विशेषता :

1. राष्ट्रीय कौशल विकास नीति (2009, संशोधित 2015)- उद्योग की आवश्यकताओं को पूरा करने वाला एक कुशल कार्यबल बनाने के उद्देश्य से 2022 तक 500 मिलियन लोगों को कुशल बनाने का लक्ष्य।
2. राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (एनएसडीसी, 2009 की स्थापना)-
3. प्रधान मंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY, 2015)
4. स्किल इंडिया मिशन (2015)
5. मेक इन इंडिया (2014)
6. राष्ट्रीय शिक्षुता संवर्धन योजना (2016)
7. स्टैंड अप इंडिया - 5 अप्रैल 2016 से प्रारंभ इस योजना के द्वारा अनुसूचित जाति एवं जनजाति व महिलाओं के बीच उधमशीलता को बढ़ाने हेतु 20.05.2024 तक 2.29 लाख से अधिक खातों में 51,724 करोड़ रुपए के ऋण स्वीकृत किए गए हैं।
8. स्टार्टअप इंडिया-सरकार के निरंतर प्रयासों के परिणाम स्वरूप उद्योग एवं आंतरिक व्यापार संवर्धन विभाग द्वारा मान्यता प्राप्त स्टार्टअप की संख्या 2016 में 300 से बढ़कर 31 दिसंबर 2023 तक 1,17,254 हो गई है। इन मान्यता प्राप्त स्टार्टअप में महत्वपूर्ण आर्थिक प्रभाव डालते हुए 12.42 लाख से अधिक प्रत्यक्ष रोजगार पैदा किए हैं।
9. राष्ट्रीय कैरियर सेवा (2015) 31 मार्च 2024 तक इस पोर्टल का 4.1 करोड़ नौकरी चाहने वालों एवं 25.6 लाख नियोक्ताओं ने उपयोग किया है।[26]
10. दीन दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्या योजना (डीडीयू-गकी, 2014)।
11. अटल पेंशन योजना, 2015 के अब 6.5 करोड़ से अधिक लाभार्थी है।
12. आम आदमी बीमा योजना।
13. 2015 में योजना आयोग के स्थान पर नीति आयोग की स्थापना की गयी। यह योजना आयोग के केंद्रीकृत दृष्टिकोण के विपरीत सहकारी संघवाद और विकेंद्रीकृत योजना को बढ़ावा देता है।

7. कोविड -19 एवं उसके बाद की सुधार अवधि

COVID-19 महामारी ने वर्तमान रोजगार चुनौतियों को बढ़ा दिया है और नए रोजगार उत्पन्न किए हैं। आतिथ्य, पर्यटन और छोटे व्यवसायों जैसे क्षेत्र विशेष रूप से प्रभावित हुए हैं।

लॉकडाउन और आर्थिक व्यवधान- 2020 मे सख्त लॉकडाउन के कारण बड़े पैमाने पर उद्योग एवं व्यापार बंद हो गये जिससे प्रवासी श्रमिकों और अनौपचारिक क्षेत्र पर दबाव बढ़ा। रिवर्स माइग्रेशन ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बुरी तरह प्रभावित किया।

अनौपचारिक क्षेत्र पर ध्यान

जून 2020 से शुरू प्रधानमंत्री स्ट्रीट वेंडर आत्मनिर्भर निधि (PMस्वनिधि)-इस योजना जैसी पहल ने महामारी से प्रभावित स्ट्रीट वेंडरों को कार्यशील पूंजी ऋण प्रदान किया। इस योजना के 65 लाख से अधिक लाभार्थी हैं।

आत्मनिर्भर भारत रोजगार योजना (ABRY)- 31 मार्च 2024 तक इस योजना से 1.5 लाख प्रतिष्ठानों में 60.5 लाख व्यक्ति लाभान्वित हुए।

EPF योगदान में कमी-व्यवसायों पर वित्तीय बोझ कम करने हेतु नियोक्ता एवं कर्मचारी दोनों के वैधानिक भविष्य निधि योगदान को एक विशिष्ट अवधि के लिए कम कर दिया गया था।

दूरस्थ कार्य और डिजिटल परिवर्तन -कोविद-19 के संकट के बाद जो दूरस्थ कार्य और डिजिटल परिवर्तन की ओर रुझान में तेजी आई।

रोजगार परिदृश्य में एक उल्लेखनीय परिवर्तन ने वैश्विक स्तर पर जिस अर्थव्यवस्था का उदय किया है। राष्ट्रीय श्रम बल सर्वेक्षण के आंकड़ों के आधार पर नीति आयोग के सांकेतिक अनुमान के अनुसार, वर्ष 2020-21 में 77 लाख श्रमिक गिग इकोनामी में कार्यरत थे जो भारत में कुल कार्यबल का 1.5 प्रतिशत एवं गैर कृषि कार्यबल का 2.6 प्रतिशत थे।[27]

CMIE के आँकड़ों के अनुसार, वर्ष 2021 में भारत में बेरोजगारी दर 7-11 प्रतिशत के बीच थी। राष्ट्रीय रोजगार नीति की उत्पत्ति या प्रस्ताव वर्ष 2008 में आया था जब संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (**UPA**) की व्यवस्था

थी।[28] यह आश्चर्य की बात है कि भारत केवल वर्ष 2021 में एक राष्ट्रीय रोजगार नीति तैयार करने के लिए आगे आया है, जबकि इसकी तीव्र आवश्यकता बहुत समय पहले से है।

इसके अलावा, तत्कालीन मंत्री ने जिनेवा में अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के 99 वें सत्र में अपने संबोधन में एनईपी के निर्माण की प्रक्रिया के बारे में भी जानकारी दी। हालांकि, ब्रिक्स की पहली बैठक में वर्ष 2016 तक इस पर कोई विकास नहीं हुआ था। रोजगार कार्य समूह जहां एनडीए सरकार ने इस पर काम करना शुरू किया, लेकिन कोई महत्वपूर्ण प्रगति नहीं हुई। तब 2021 में सरकार ने राष्ट्रीय रोजगार नीति के हिस्से के रूप में एक समिति गठित करने का प्रयास शुरू किया था। राष्ट्रीय रोजगार नीति का मसौदा वित्त वर्ष 22-23 तक जारी किए जाने की उम्मीद थी। यह नीति मुख्य रूप से श्रम ब्यूरो द्वारा कई रोजगार सर्वेक्षणों और 5 अन्य श्रम बाजार सर्वेक्षणों के परिणामों पर आधारित होगी। पूर्व में निर्धारित लक्ष्य में से कुछ हैं, अखिल भारतीय त्रैमासिक स्थापना आधारित रोजगार सर्वेक्षण (एक्यूईईएस), प्रवासी कामगारों का अखिल भारतीय सर्वेक्षण, घरेलू कामगारों का अखिल भारतीय सर्वेक्षण, पेशेवरों द्वारा सृजित रोजगार का अखिल भारतीय सर्वेक्षण और परिवहन क्षेत्र में सृजित रोजगार का अखिल भारतीय सर्वेक्षण। AQEES अप्रैल-जून 2021 तिमाही के दौरान आयोजित किया गया था। इन सर्वेक्षणों से जानकारी प्राप्त करके, सरकार का उद्देश्य साक्ष्य-आधारित राष्ट्रीय रोजगार नीति तैयार करना है।[29]

अंत में, जबकि भारत की रोजगार नीति ने विकास और अनुकूलनशीलता दिखाई है, यह अक्सर सक्रिय होने के स्थान पर प्रतिक्रियाशील रही है। बेरोजगारी और कौशल असामंजस्य की लगातार चुनौतियां एक अधिक समग्र, दीर्घकालिक रणनीति की आवश्यकता का संकेत देती हैं जो संरचनात्मक मुद्दों को संबोधित करती है, कार्यान्वयन प्रभावकारिता में सुधार करती है, और भविष्य के आर्थिक प्रतिमानों के लिए कार्यबल तैयार करती है।

निष्कर्षः स्वतंत्रता के बाद से भारत की रोजगार नीति में महत्वपूर्ण विकास हुआ है, जो देश के बदलते आर्थिक परिदृश्य और विकास प्राथमिकताओं को दर्शाता है। राज्य के नेतृत्व वाले औद्योगीकरण पर प्रारंभिक ध्यान देने से लेकर कौशल विकास, उद्यमशीलता और तकनीकी व्यवधानों के अनुकूल होने पर वर्तमान जोर देने तक, रोजगार सृजन और श्रम बाजार विकास के लिए भारत का दृष्टिकोण बहुआयामी और गतिशील रहा है, लेकिन असंगति और कार्यान्वयन चुनौतियों की विशेषता रही है। समग्र दृष्टिकोण ने श्रम बाजार में संरचनात्मक मुद्दों को हल करने के लिए संघर्ष किया है। अनौपचारिक क्षेत्र का लगातार प्रभुत्व, धीमी विनिर्माण वृद्धि और कौशल असंतुलन प्रमुख चुनौतियां बनी हुई हैं।[30] भविष्य की नीतियों को गुणवत्तापूर्ण औपचारिक नौकरियां बनाने, कौशल प्रासंगिकता बढ़ाने, लिंग और सामाजिक असमानताओं को दूर करने और नौकरी बाजार में तकनीकी व्यवधानों की तैयारी पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है।

विशेष रूप से एन.आर.ई.पी. से मनरेगा तक ग्रामीण मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों ने लाखों ग्रामीण परिवारों के लिए महत्वपूर्ण सुरक्षा जाल प्रदान किए हैं। कौशल विकास की पहल ने कार्यबल के एक महत्वपूर्ण हिस्से की रोजगार क्षमता में सुधार किया है और आई आर डी पी से आजीविका जैसे स्वरोजगार कार्यक्रमों द्वारा उद्यमिता को बढ़ावा देने से एक जीवंत स्टार्टअप पारिस्थितिकी तंत्र को बढ़ावा मिला है। क्षेत्र-विशिष्ट नीतियों ने आईटी और विनिर्माण जैसे क्षेत्रों में विकास को प्रोत्साहित किया है।

बढ़ते कार्यबल से मेल खाने के लिए पर्याप्त गुणवत्ता वाली नौकरियों का निर्माण एक महत्वपूर्ण बाधा बनी हुई है। भविष्य के फोकस के लिए प्रमुख क्षेत्रों में सम्मिलित हैं:- उभरते क्षेत्रों और गिग अर्थव्यवस्था का लाभ उठाना, निरंतर कौशल विकास और आजीवन सीखने पर जोर देना, पर्यावरणीय रूप से स्थायी रोजगार को बढ़ावा देना, रोजगार में क्षेत्रीय असमानताओं और लैंगिक अंतराल को संबोधित करना, सभी प्रकार के श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा प्रणालियों को सुदृढ़ करना इत्यादि।

अंत में, जबकि भारत ने स्वतंत्रता के बाद से रोजगार नीति में महत्वपूर्ण प्रगति की है, वैश्विक अर्थव्यवस्था की गतिशील प्रकृति और देश की जनसांख्यिकीय प्रोफाइल अवसर और चुनौतियां दोनों पेश करती है। पिछले अनुभवों से सीखकर, वर्तमान वास्तविकताओं के अनुकूल होकर, और भविष्य के रुझानों का अनुमान लगाकर, भारत एक अधिक समावेशी, उत्पादक और लचीला श्रम बाजार और राष्ट्रीय रोजगार नीति निर्माण की दिशा में काम कर सकता है जो सतत और न्यायसंगत आर्थिक

विकास की अपनी आकांक्षाओं का समर्थन करता है। भारत की भविष्य की रोजगार नीतियों की सफलता सरकार, उद्योग, शिक्षा और नागरिक समाज के बीच प्रभावी सहयोग पर निर्भर करेगी। इसके लिए तत्काल रोजगार की आवश्यकताओं को संबोधित करने और श्रम बाजार में दीर्घकालिक संरचनात्मक परिवर्तनों की तैयारी के बीच संतुलन की आवश्यकता होगी।

सन्दर्भ

1. Papola, T. S., & Sahu, P. P., 'Growth and Structure of Employment in India: Long-Term and Post-Reform Performance and the Emerging Challenge', Institute for Studies in Industrial Development, 2012.
2. Bhattacharya, B. B., *'India's Economic Policies: Retrospect and Prospect'*, Anmol Publications, 1996.
3. Drèze, J., & Sen, A., *'An Uncertain Glory: India and its Contradictions'*, Princeton University Press, 2013.
4. Mehrotra, S., Gandhi, A., Sahoo, B. K., & Saha, P. 'Creating Employment in the Twelfth Five-Year Plan', Economic and Political Weekly, 47(19), 2012, pp.63-73.
5. Kannan, K. P., & Raveendran, G. 'Growth Sans Employment: A Quarter Century of Jobless Growth in India's Organised Manufacturing', Economic and Political Weekly, 44(10), 2009, pp 80-91.
6. Chatterjee, S., & Mohan, R. 'India's Garment Exports', Economic and Political Weekly, 28(35), 1993 M-95-M-119.
7. Goldar, B., 'Employment Growth in Organised Manufacturing in India', Economic and Political Weekly, 35(14), 2000, pp. 1191-1195.
8. Unni, J., & Rani, U., *'Employment and Income in the Informal Economy: A Micro-Perspective'*. In R. Jhabvala, R. M. Sudarshan, & J. Unni (Eds.), Informal Economy Centrestage: New Structures of Employment, Sage Publications, 2003, pp. 39-61
9. Ahluwalia, M. S. 'Economic Reforms in India Since 1991: Has Gradualism Worked?' Journal of Economic Perspectives, 16(3), 2002, pp. 67-88.
10. Verma, S.C. *'Direct Attack on Rural Poverty' In: Fifty Years Rural Development in India* (ed.), National Institute of Rural Development, Hyderabad, 1998.
11. Rao, V. K. R. V. *'India's First Five-Year Plan—A Descriptive Analysis'*, Foreign Affairs, 1952, 31(1), pp. 86-98.
12. Kapila, U. (Ed.). *'Indian Economy Since Independence'*, Academic Foundation, 2008.
13. GOI *'Fourth Five Year Plan Document (1969-74)'*, Planning Commission, Government of India, 1970.
14. GOI 'Report of the Committee on Unemployment', Government of India, 1973.
15. Papola, T. S., 'Employment challenge and strategies in India'. New Delhi: ILO Subregional Office for South Asia, ILO Asia-Pacific Working Paper Series & Papola, T.S. (2013). Employment growth during the post-reform period. The Indian Journal of Labour Economics, 56(1), 2008, pp. 1-14.
16. GOI (1976) "Fifth Five Year Plan Document (1974-79)", GOI (1981) "Sixth Five Year Plan Document (1980-85)", GOI (1985) "Seventh Five Year Plan Document (1985-90)",GOI(1992) "Eighth Five Year Plan Document", GOI (1999) "Ninth Five Year Plan Document (1997-2002)", Planning Commission, Government of India.
17. Lakdawala, D.T *'Growth, Unemployment and Poverty'* Planning Commission, Mid- Term Appraisal of the Eighth Five Year Plan, Planning Commission, Government of India, 1996.
18. Dandekar, V. M., & Rath, N., 'Poverty in India: Dimensions and Trends'. Economic and Political Weekly, 6(1), 1971, pp. 25-48.
19. Datt, Ruddar 'New economic policy and its impact on industrial relations and employment in India'. Indian Journal of Labour Economics, Vol.36, No.1, 1993, pp.66-67
20. Datt, Ruddar 'Right to Work: The Economic Implication', Economic Times, April 7, 1990.
21. Joshi, V., & Little, I. M. D., *'India's Economic Reforms, 1991-2001'*, Oxford University Press, 1996.
22. GOI 'Report of Task Force on Employment Opportunities', Planning Commission, Government of India, 2001.
23. .GOI 'Report of Special Group on Targeting Ten Million Employment Opportunities per Year2002, Planning Commission, Government of India, 2002.
24. GOI 'Towards Faster and More Inclusive Growth: An Approach to the 11th Five Year Plan', Planning Commission, Government of India, 2006.
25. Dwarakanath, H.D., 'Strategies for Employment Generation in Rural India: A Critical Evaluation', Kurukshetra, February 2013, pp. 2
26. India Budget – https://www.indiabudget.gov.in downloaded on dated 11 August 2024, time-14.38
27. नीति आयोग, जून 2022, भारत की तेजी से बढ़ती गिग और प्लेटफार्म अर्थव्यवस्था IMPRI Impact and Policy Research institutes https://impriindia..com>call-राष्ट्रीय रोजगार नीतिः कोविद-19 के बीच आत्मनिर्भर भारत बनने की दिशा में एक कदम बढ़ाना
28. iPleaders Blog, https://blog. Ipleaders.in>all about राष्ट्रीय रोजगार नीति के बारे में सब कुछ
29. Ghose, A. K. 'Current Issues of Employment Policy in India', Economic and Political Weekly, 34(36), 1999, pp. 2592-2608.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

विद्यालय के बुनियादी ढांचे का छात्रों के अकादमिक प्रदर्शन पर प्रभाव

❑ सुश्री नेहा कुमारी
❑ डॉ. सारिका पाण्डेय

सूचक शब्द : शिक्षा, आधारभूत ढांचा, असमानता, सुविधाएं, शैक्षणिक उपलब्धि।

प्रस्तुतत अध्ययन का उद्देश्य बिहार के दरभंगा जिले के विद्यालयों के आधारभूत ढांचे और कक्षा 5 से 10 के छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धियों के बीच संबंध को समझना है। शिक्षा के इस महत्वपूर्ण चरण में विद्यालयों की संरचनात्मक सुविधाओं, जैसे कक्षाओं, पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं, और स्वच्छता सुविधाओं का मूल्यांकन किया गया। यह अध्ययन विश्लेषणात्मक शोध अभिकल्प पर आधारित है, जिसमें शहरी क्षेत्रों के 1620 छात्रों में से 10 प्रतिशत (162) उत्तरदाताओं का चयन किया गया। डेटा संग्रह के लिए प्राथमिक और द्वितीयक दोनों स्रोतों का उपयोग किया गया। शोध के निष्कर्षों में पाया गया कि विद्यालयों के असंतोषजनक आधारभूत ढांचे का छात्रों की उपस्थिति, शैक्षणिक प्रगति और स्कूल जाने के प्रति उनकी रुचि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। हवादार कक्षाओं, स्वच्छता सुविधाओं और प्रयोगशालाओं की कमी छात्रों के शैक्षणिक अनुभव को बाधित करती है। सहसंबंध विश्लेषण से यह सिद्ध हुआ कि खराब आधारभूत ढांचे के कारण छात्र नियमित उपस्थिति नहीं कर पाते, जिससे उनकी शैक्षणिक प्रगति प्रभावित होती है। अध्ययन के परिणामों से यह स्पष्ट है कि बेहतर आधारभूत ढांचे की अनुपस्थिति से छात्रों की शैक्षणिक और बौद्धिक क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसलिए, शैक्षणिक सुधारों में विद्यालयों के आधारभूत ढांचे को प्राथमिकता देना आवश्यक है।

शिक्षा व्यक्ति के बौद्धिक, नैतिक और भौतिक विकास से संबंधित है। पारिवारिक, समाजीकरण के बाद बच्चों का विद्यालय से संपर्क सर्वप्रथम है। विद्यालय के आधारभूत ढांचे की भूमिका, जिसमें वह शैक्षणिक, सामाजिक और भौतिक वातावरण सम्मिलित है, जहाँ सीखने की प्रक्रिया होती है, अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत में, विशेष रूप से दरभंगा, बिहार जैसे क्षेत्रों में, विद्यालयों के आधारभूत ढांचे में अन्य राज्यों के सापेक्ष बहुत बड़ा अंतर है। यह असमानता कक्षा 5 से 10 के छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि पर गहरा प्रभाव डालती है, जो उनकी शैक्षणिक यात्रा का एक महत्वपूर्ण चरण है। शैक्षणिक संस्थानों का आधारभूत ढांचा संरचनात्मक घटकों जैसे कि कक्षाओं, पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं, और मनोरंजन सुविधाओं के साथ-साथ सुरक्षा, सुगम्यता, और संसाधन उपलब्धता से संबंधित पहलुओं को भी सम्मिलित करता है।

दरभंगा, एक शहर जो अपने समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के लिए जाना जाता है, लेकिन महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों का सामना करता है। विद्यालय के आधारभूत ढांचे न केवल छात्रों के तत्काल सीखने के अनुभवों को प्रभावित करते हैं बल्कि उनके दीर्घकालिक शैक्षणिक उपलब्धि और करियर के अवसरों पर भी प्रभाव डालते हैं। शैक्षणिक उपलब्धि पर विद्यालय के आधारभूत ढांचे के प्रभाव को समझना, नीति निर्माण और सुधारों के लिए आवश्यक है जो सीखने के परिणामों में सुधार लाने का लक्ष्य रखते हैं। यह अन्वेषण विद्यालयों के विभिन्न पहलुओं जैसे सुविधाओं की गुणवत्ता, कक्षा की स्थिति, संसाधन उपलब्धता, और मनोसामाजिक वातावरण की जांच करता है। यह विश्लेषण 5वीं से 10वीं कक्षा के छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन के साथ ही बिहार के शैक्षणिक परिदृश्य को प्रभावित करने वाले व्यापक सामाजिक-आर्थिक संदर्भों की खोज करता है।

साहित्य समीक्षा

ब्रूकिंग्स इंस्टीट्यूशन[1] शोध पत्र 1990 से 2012 तक की गई आर्थिक और शिक्षा साहित्य की समीक्षा करता है ताकि यह मूल्यांकन किया जा सके कि विशेष प्रकार की स्कूल इंफ्रास्ट्रक्चर का छात्रों के सीखने और नामांकन पर कितना प्रभाव पड़ता है। अध्ययन में पाया गया कि स्कूल में पुस्तकालयों और नई स्कूलों की स्थापना से सीखने और नामांकन में अनवरत सुधार

❑ शोध अध्येत्री समाजशास्त्र विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)
❖ सहायक प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

होता है। इसके अतिरिक्त, शोध ने यह भी संकेत किया है कि प्रयोगशालाएं, पीने के पानी की सुविधाएं और शौचालय, छात्रों की उपस्थिति और नामांकन को बढ़ाती है।

बक्ली, श्नाइडर, और शांग[2] का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि कक्षा की ध्वनिक गुणवत्ता और तापमान नियंत्रण जैसी सुविधाएं प्रभावी शिक्षण वातावरण के लिए महत्वपूर्ण हैं। सही ध्वनि प्रबंधन और आरामदायक तापमान न केवल छात्रों का ध्यान केंद्रित करने की क्षमता को बेहतर बनाते हैं बल्कि उनके अकादमिक प्रदर्शन को भी बढ़ाते हैं। इनका निष्कर्ष है कि बेहतर आधारभूत ढांचा छात्रों के सीखने के अनुभव को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

एटलैंड एट अल.[3] के अनुसार, कक्षाओं में प्राकृतिक रोशनी और वेंटिलेशन छात्रों की पढ़ाई और उनकी सक्रिय भागीदारी को बढ़ाते हैं। यह अध्ययन बताता है कि बेहतर प्राकृतिक रोशनी और वेंटिलेशन न केवल छात्रों की उपस्थिति में सुधार करते हैं, बल्कि उनका शैक्षणिक प्रदर्शन भी सुधारते हैं। साथ ही, यह उनके स्वास्थ्य और मानसिक स्थिति को भी बेहतर बनाता है, जो सीखने की प्रक्रिया में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

हुसनप्रीत कौर[4] के शोधानुसार, स्कूल की आधारभूत सुविधाएं, जैसे कक्षाएं, पुस्तकालय, प्रयोगशालाएं और स्वच्छता, छात्रों के शैक्षणिक परिणामों को सीधे प्रभावित करती हैं। उनके अध्ययन में सरकारी स्कूलों पर विशेष ध्यान दिया गया है, जहां बेहतर आधारभूत ढांचा छात्रों के प्रदर्शन को सुधारने में एक प्रमुख भूमिका निभाता है। यह नीति निर्माताओं को यह सुझाव देता है कि शैक्षिक समानता प्राप्त करने और सरकारी स्कूलों की शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने के लिए बुनियादी ढांचे में निवेश करना आवश्यक है।

जेस्पर[5] के अनुसार स्कूलों में पानी और स्वच्छता सुविधाओं में सुधार से बच्चों के स्वास्थ्य और शिक्षा पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। पर्याप्त स्वच्छता सुविधाओं की कमी से खासकर लड़कियों की अनुपस्थिति बढ़ती है, जो उनके शैक्षिक प्रदर्शन को प्रभावित करती है। इस प्रकार, स्कूलों में जल और स्वच्छता सुविधाओं का प्रभाव समझने के लिए और अधिक शोध की आवश्यकता है, ताकि बच्चों के समग्र शैक्षिक प्रदर्शन में सुधार किया जा सके।

नेशनल सेंटर फॉर एजुकेशन स्टैटिस्टिक्स[6] की रिपोर्ट के अनुसार, निजी स्कूलों में छात्रों की शैक्षिक उपलब्धियाँ अधिक होती हैं क्योंकि इन स्कूलों में बेहतर बुनियादी ढांचा, आधुनिक तकनीक और सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। यह छात्रों के समग्र विकास में मदद करता है। दूसरी ओर, सरकारी स्कूलों में सुविधाओं और संसाधनों की कमी के कारण छात्रों का अकादमिक प्रदर्शन अपेक्षाकृत कम होता है।

यू.एस. डिपार्टमेंट ऑफ एजुकेशन की रिपोर्ट[7] के अनुसार, कई सार्वजनिक स्कूलों में पुराने और अपर्याप्त सुविधाओं के कारण छात्रों के प्रदर्शन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। कमजोर आधारभूत ढांचे के चलते छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धियों, प्रेरणा और संलग्नता में कमी आती है। जब छात्रों को बेहतर शैक्षिक वातावरण नहीं मिलता, तो उनकी सीखने की क्षमता प्रभावित होती है। इसलिए, बेहतर आधारभूत ढांचे का अभाव न केवल शैक्षणिक सफलता बल्कि शिक्षा के प्रति रुचि को भी कम करता है, जो सुधार की आवश्यकता दर्शाता है।

ज्योति बरुआ[8] का अध्ययन, असम के सिबसागर जिले के नजीरा उपखंड के सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में शैक्षणिक सुविधाओं की स्थिति पर केंद्रित है, जो शिक्षण प्रक्रिया पर प्रभाव डालती हैं। शिक्षा विकास की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण पहलू है, और प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता के लिए स्कूल आधारभूत ढांचा अत्यंत आवश्यक है। नजीरा उपखंड के सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में सुविधाओं की कमी शिक्षण और सीखने की प्रक्रिया को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रही है।

भूनिया और दुआरी[9] के शोधानुसार, पश्चिम मेदिनीपुर जिले में शैक्षिक बुनियादी ढांचे के विकास और उनकी पहचान में जियोइन्फॉर्मेटिक्स तकनीक ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस अध्ययन में विभिन्न थीमेटिक परतों, जैसे कि पहुंच, कक्षाओं की स्थिति और प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर पर उपलब्ध कक्षाओं की संख्या का गहन विश्लेषण किया गया।

उपर्युक्त अध्ययनों के पुनरावलोकन से स्पष्ट है कि विद्यालय के बुनियादी ढांचे और शैक्षणिक उपलब्धि के बीच घनिष्ट संबंध है। उपुर्यक्त समस्त अध्ययन उच्च शिक्षा पर किए गए हैं लेकिन मध्य और माध्यमिक स्कूल आधारित नहीं हुए हैं और न ही यह स्पष्ट किया गया है कि इसका प्रभाव अकादमिक प्रदर्शन पर कैसा पड़ता

हैं।

शोध उद्देश्य

1 विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों का सामान्य परिचय प्राप्त करना।
2 अध्ययनरत छात्रों के विद्यालय जाने के प्रति उत्साह का शैक्षणिक प्रगति पर प्रभाव का अध्ययन करना।
3 विद्यालयों की बुनियादी ढांचागत सुविधाओं का मूल्यांकन करना।

प्राक्कल्पनाएं

1 विद्यालय के बुनियादी ढांचे का अध्ययनरत छात्रों का विद्यालय जाने के प्रति उत्साह से सकारात्मक संबंध है।
2 विद्यालय के बुनियादी ढांचे एवं अध्ययनरत छात्रों के विकास से सकारात्मक संबंध होता है।

शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन मे बिहार के दरभंगा जिले के शहरी क्षेत्रों को अध्ययन क्षेत्र के रूप में चयन किया गया। यह अध्ययन विश्लेषणात्मक शोध अभिकल्प पर आधारित हैं। मध्य व माध्यमिक विद्यालय के उच्च व निम्न स्कोरिंग 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं का चयन स्तरीकृत दैव निदर्शन विधि के द्वारा किया गया। इस प्रकार आठ विद्यालय के 1620 विद्यार्थी में से कुल 162 उत्तरदाताओं का चयन किया गया हैं। तथ्य संकलन करने के लिए प्राथमिक स्रोतों के संदर्भ में साक्षात्कार अनुसूची यंत्र के माध्यम से आंकड़े संकलित किए गए जिसमें अनुभवाश्रित प्रक्रिया का पालन किया गया। आवश्यकतानुसार द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से भी आंकड़े संकलित किए गए।

उत्तरदाताओं की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्टभूमि

लिंग एक सामाजिक रूप से निर्मित अवधारणा है, जो विभिन्न समाजों और संस्कृतियों में भिन्न होती है। यह समाज में व्यक्तियों की भूमिकाओं और उनसे की जाने वाली अपेक्षाओं को प्रभावित करती है, जो प्रायः असमानताओं का कारण बनती हैं। प्राथमिक शिक्षा में लिंग समानता प्राप्त करने में प्रगति हुई है, लेकिन असमानताएँ बनी हुई हैं। प्रस्तुत अध्ययन के अनुसार, कुल उत्तरदाताओं का 52.5 प्रतिशत लड़के और 47.5 प्रतिशत लड़कियाँ हैं। इससे स्पष्ट होता है कि पुरुषों का प्रतिशत अधिक है। अध्ययन के अनुसार, 58 प्रतिशत उत्तरदाता 14 से 16 वर्ष की आयु के हैं, जबकि 11 से 13 वर्ष के 36 प्रतिशत और 8 से 10 वर्ष के केवल 6 प्रतिशत हैं। प्राथमिक शिक्षा में आमतौर पर छात्रों की आयु 5 से 10 साल होती है, जहाँ वे बुनियादी शिक्षा प्राप्त करते हैं। माध्यमिक स्तर पर, 11 से 16 वर्ष की आयु में छात्र विभिन्न विषयों का गहन अध्ययन करते हैं। आयु और शिक्षा का यह संबंध उन्हें भविष्य के लिए तैयार करता है।

आंकड़ों का विश्लेषण

तालिका संख्या 1

उत्तरदाताओं का स्कूल की कोटि

स्कूल की कोटि	संख्या	प्रतिशत
मध्य स्कूल	93	57.4
माध्यमिक स्कूल	69	42.6
कुल योग	162	100

उपर्युक्त ग्राफ में यह स्पष्ट है कि इस शोध कार्य के 57.4 प्रतिशत उत्तरदाता मध्य विद्यालय (5-8 वर्ग) में पढ़ते है और 42.6 प्रतिशत उत्तरदाता माध्यमिक विद्यालय (9-10 वर्ग) में पढ़ते हैं।

तालिका संख्या 2

स्कूल के आधारभूत ढांचे की स्थिति

आधारभूत ढांचे की स्थिति	संख्या	प्रतिशत
हवादार और रोशनदान कमरा की कमी	72	44.4
पंखा और बल्ब की अनुचित व्यवस्था	35	21.6
ठीक-ठाक मेज की कमी	30	18.5
प्रवेश और बाहर जाने का रास्ता सिर्फ एक ही	22	13.6
सब ठीक है।	3	1.9
कुल योग	162	100

शैक्षणिक संस्थानों का आधारभूत ढांचा छात्रों के प्रदर्शन और अनुभव को प्रभावित करता है। अच्छे क्लासरूम, पुस्तकालय, प्रयोगशालाएँ, और खेल सुविधाएँ अनुकूल सीखने का वातावरण बनाते हैं। बेहतर प्रकाश व्यवस्था, वेंटिलेशन, और बैठने की सुविधा छात्रों की एकाग्रता को बढ़ाती हैं। खराब आधारभूत ढांचा, जैसे भीड़भाड़, स्वच्छता की कमी, या अपर्याप्त तकनीकी सुविधाएं सीखने में रुकावट डालती हैं। आंकड़ों के अनुसार, 44.4 प्रतिशत स्कूलों में हवादार कमरे नहीं हैं, 21.6 प्रतिशत में पंखे या बल्ब की कमी है, 18.5 प्रतिशत में सही मेजें नहीं हैं, और 13.6 प्रतिशत में केवल एक निकास है, जबकि सिर्फ 1.9 प्रतिशत स्कूल पूरी तरह ठीक हैं। बक्ली, श्नाइडर, और शांग[10] का अध्ययन भी यह स्पष्ट करता है कि कक्षा की ध्वनिक गुणवत्ता और तापमान नियंत्रण जैसी सुविधाएं प्रभावी शिक्षण वातावरण के लिए

महत्वपूर्ण हैं।

तलिका संख्या 3

उत्तरदाताओं द्वारा प्राप्त अंक

प्राप्त अंक	प्रतिशत
40 से कम	35.2
40 से 50	28.4
50 से 70	13.6
80 से 90	11.7
90 से अधिक	11.1
कुल योग	100

स्कूल छात्रों की शैक्षणिक सफलता में अहम भूमिका निभाते हैं, लेकिन सीमित संसाधनों वाले स्कूलों में आधारभूत सुविधाओं की कमी छात्रों के प्रदर्शन को प्रभावित करती है। अध्ययन से पता चलता है कि 40 प्रतिशत से कम अंक प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या 35.2 प्रतिशत है, जबकि 40-50 अंक वाले छात्रों की संख्या 28.4 प्रतिशत है। 50-70 अंक वाले छात्रों की संख्या 13.6 प्रतिशत, 80-90 वालों की 11.7 प्रतिशत और 90 से अधिक अंक वाले छात्रों की संख्या सबसे कम है। प्रौद्योगिकी, शिक्षण सामग्री और अन्य संसाधनों की कमी छात्रों के अंकों पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। हुसनप्रीत कौर[11] के शोधानुसार, स्कूल की बुनियादी सुविधाएं, जैसे कक्षाएं, पुस्तकालय, प्रयोगशालाएं और स्वच्छता, छात्रों के शैक्षणिक परिणामों पर सीधा प्रभाव डालती हैं।

तालिका संख्या 4

खराब आधारभूत ढांचे का बच्चों के उपस्थिति पर प्रभाव

उपस्थिति की स्थिति	संख्या	प्रतिशत
नियमित	90	55.6
अनियमित	72	44.4
कुल योग	162	100

उपर्युक्त आंकड़ों से पता चलता है कि 55.6 प्रतिशत बच्चे नियमित आते हैं, जबकि 44.4 प्रतिशत नियमित रूप से नहीं आते। स्कूलों की उपस्थिति में आधारभूत ढांचे की अहम भूमिका होती है। लड़कियों की उपस्थिति पर स्वच्छता सुविधाओं का विशेष प्रभाव पड़ता है। स्वच्छ पानी, तकनीक, इंटरनेट, खेल, कला और अन्य गतिविधियों का छात्रों की उपस्थिति पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। स्कूल में उपस्थिति से छात्र सामाजिक मानदंड सीखते हैं और पारस्परिक कौशल विकसित करते हैं। अनुपस्थिति से वे शैक्षणिक और सामाजिक विकास से वंचित हो सकते हैं।

तालिका संख्या 5

बच्चों पर अनुचित वातावरण का प्रभाव

अनुचित वातावरण का प्रभाव	संख्या	प्रतिशत
सहज	67	41.4
असहज	95	58.6
कुल योग	162	100

उपर्युक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि 58.6 प्रतिशत उतरदाता स्कूल जाने में असहज अनुभव कर रहे हैं और केवल 41.4 उत्तरदाता स्कूल जाने में सहज अनुभव करते हैं। शोध से यह स्पष्ट होता है कि स्कूल का आधारभूत ढांचा जैसे साफ पानी का व्यवस्था,साफ बाथरूम की व्यवस्था, पुस्तकालय, तकनीकी, प्रयोगशाला आदि की उचित व्यवस्था नहीं है जो बच्चों को स्कूल आने के लिए प्रेरित नहीं करता है। हुसनप्रीत कौर[12] के अध्ययन से यह पता चलता है कि स्कूलों की बुनियादी सुविधाएं, छात्रों के शैक्षणिक अनुभव और प्रदर्शन को सीधे प्रभावित करती हैं। विशेषकर सरकारी स्कूलों में, बेहतर बुनियादी ढांचा छात्रों की उपस्थिति और प्रदर्शन को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

तालिका संख्या 6

स्कूल में अनियमित होने का कारण

अनियमितता के कारण	संख्या	प्रतिशत
शिक्षक सहयोगी नहीं	14	8.6
कठिन शिक्षण पद्धति	0	0
वातावरण सहायक नहीं	148	91.4
कुल योग	100	162

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि स्कूल का वातावरण बच्चों के लिए असहायक है, जिससे उनकी उपस्थिति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। जब 91.4 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि स्कूल का वातावरण सहायक नहीं है और 8.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं को शिक्षक सहयोगी नहीं लगते, यह स्थिति चिंताजनक है। इस असहाय वातावरण के कारण बच्चों की पढ़ाई में रुचि कम हो रही है, जिससे उनके शैक्षणिक, सामाजिक, और मानसिक विकास में बाधा उत्पन्न हो रही है। यू.एस. डिपार्टमेंट ऑफ एजुकेशन[13] की रिपोर्ट से स्पष्ट है कि स्कूलों का असहायक वातावरण और कमजोर बुनियादी ढांचा बच्चों की उपस्थिति, प्रेरणा, और शैक्षणिक प्रदर्शन पर नकारात्मक प्रभाव डाल रहे हैं।

तालिका संख्या 7

बच्चों के स्कूल जाने का उत्साह स्तर

उत्साह स्तर	संख्या	प्रतिशत
बहुत उत्साहित	3	1.9
उत्साहित	22	13.6
उदासीन	65	40.1
उत्साहित नहीं	72	44.4
कुल योग	162	100

एक आकर्षक स्कूल वातावरण बच्चों की शिक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सकारात्मक शिक्षक-छात्र संबंध, सुरक्षा की भावना और स्कूल में अपनेपन की भावना बच्चों को स्कूल आने के लिए प्रेरित करती है। हालांकि, 44.4 प्रतिशत बच्चे स्कूल जाने को लेकर उत्साहित नहीं हैं, जबकि केवल 1.9 प्रतिशत बच्चे ही अत्यधिक उत्साह दिखाते हैं। यह शिक्षा प्रणाली में सुधार की आवश्यकता को दर्शाता है। अगर बच्चे स्कूल में रुचि नहीं दिखाते, तो इसका उनकी शिक्षा और देश के भविष्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। इसलिए, शिक्षा प्रणाली में सुधार और शिक्षकों की भूमिका को सुदृढ़ करना आवश्यक है।

तालिका संख्या 8

स्कूल में प्रयोगशाला की उपलब्धता

उपलब्धता	संख्या	प्रतिशत
हां	105	64.8
नहीं	57	35.2
कुल योग	162	100

उपर्युक्त आंकड़ों के अनुसार, 64.8 प्रतिशत स्कूलों में विज्ञान और कंप्यूटर की कक्षाएं उपलब्ध हैं, जबकि 35.2 प्रतिशत में नहीं। प्रयोगशालाओं के अभाव से छात्रों की रुचि और करियर आकर्षण घटता है। प्रयोगशालाएँ छात्रों को व्यावहारिक अनुभव प्रदान करती हैं, जिससे वे सैद्धांतिक अवधारणाओं को बेहतर तरीके से समझ पाते हैं। उनके अभाव में, छात्रों के लिए इन विषयों में रुचि कम हो सकती है, जिससे करियर के प्रति आकर्षण घट सकता है।

तालिका संख्या 9

स्कूल में प्रयोगशाला पहुंच की स्थिति

सप्ताह में प्रयोगशाला की प्रयोग	संख्या	प्रतिशत
एक दिन	64	39.5
एक दिन से अधिक	03	1.9
कोई दिन नहीं	95	58.6
कुल योग	162	100

प्रयोगशालाएँ विज्ञान को आकर्षक बनाने वाला एक गतिशील शिक्षण वातावरण प्रदान करती हैं। उनके अभाव में, छात्रों के लिए विज्ञान के प्रति लगाव विकसित करना कठिन हो जाता है। आंकड़ों के अनुसार, 58.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं के स्कूलों में कभी भी प्रयोगशाला का उपयोग नहीं होता, जबकि 39.5 प्रतिशत स्कूलों में इसका उपयोग केवल एक दिन होता है। सबसे कम 1.9 प्रतिशत स्कूलों में प्रयोगशालाओं का उपयोग एक दिन से अधिक होता है।

तालिका संख्या 10

स्कूल में स्वच्छता संबंधी उपलब्धता की स्थिति

स्वच्छता की स्थिति	संख्या	प्रतिशत
अच्छी	17	10.4
ठीक-ठाक	25	15.4
खराब	120	74.1
कुल योग	162	100

उपर्युक्त आंकड़ों के अनुसार, 74.1 प्रतिशत स्कूलों में पानी और शौचालय की स्थिति खराब, 15.4 प्रतिशत में ठीक-ठाक, और 10.4 प्रतिशत में अच्छी है। स्वच्छ और कार्यशील शौचालयों तक पहुंच छात्रों, विशेषकर लड़कियों, की उपस्थिति के लिए आवश्यक है। मासिक धर्म के दौरान सुविधाओं की कमी अनुपस्थिति बढ़ाती है। स्वच्छ पानी की कमी स्वास्थ्य समस्याएं और उपस्थिति घटाती है। जेस्पर[14] के अनुसार, इन सुविधाओं में सुधार से स्वास्थ्य और शिक्षा पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसलिए, इनके प्रभाव पर ध्यान देना आवश्यक है ताकि शैक्षिक प्रदर्शन में सुधार हो सके।

तालिका संख्या 11

तकनीकी सुविधा की उपलब्धता व पहुंच

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
हां	22	13.6
नहीं	140	86.4
कुल योग	162	100

शिक्षा में तकनीकी उपलब्धता का तात्पर्य शिक्षण और सीखने को बेहतर बनाने के लिए प्रौद्योगिकी के उपयोग से है। स्मार्टबोर्ड, शैक्षिक ऐप्स और गेमिफाइड प्लेटफॉर्म सीखने को आकर्षक और प्रभावी बनाते हैं। अध्ययन के अंतर्गत 86.9 प्रतिशत स्कूलों में तकनीकी सुविधा उपलब्ध है, जबकि 13.1 प्रतिशत में नहीं। नेशनल सेंटर फॉर एजुकेशन स्टैटिस्टिक्स[15] की रिपोर्ट बताती है कि निजी स्कूलों में आधुनिक तकनीक और बेहतर बुनियादी

ढांचे से छात्रों का प्रदर्शन उत्कृष्ट होता है। सरकारी स्कूलों में संसाधनों की कमी छात्रों की प्रगति बाधित करती है। तकनीकी पहुंच शिक्षा की गुणवत्ता और छात्रों के भविष्य के लिए तैयार करती है। इससे उनका ध्यान केंद्रित होता है और शिक्षा में रुचि बढ़ती है।

सहसबंध 1

	स्कूल के बुनियादी ढांचे की स्थिति	खराब बुनियादी ढांचे का बच्चों के उपस्थिति पर नकारात्मक प्रभाव
स्कूल के बुनियादी ढांचे की स्थिति	1	-840**
पीयरसन सहसबंध		
सीग. (2-टेल्ड)		-000
एन	162	162
खराब बुनियादी ढांचे का बच्चों के उपस्थिति पर नकारात्मक प्रभाव पीयरसन सहसबंध	-840**	1
सीग. (2-टेल्ड)	-000	
एन	162	162

स्कूल के बुनियादी ढांचे की खराब स्थिति और बच्चों की उपस्थिति पर इसके नकारात्मक प्रभाव के बीच 0.840 का पियर्सन सहसंबंध है, जो स्पष्ट रूप से नकारात्मक प्रभावों में वृद्धि को दर्शाता है। इस प्रकार परिकल्पना 1 प्रमाणित सिद्ध होता है।

सहसबंध 2

	बच्चों पर अनुचित वातावरण का प्रभाव	स्कूल में अनियमित होने का कारण
बच्चों पर अनुचित वातावरण का प्रभाव	1	-366**
पीयरसन सहसबंध		
सीग. (2-टेल्ड)		-000
एन	162	162
स्कूल में अनियमित होने का कारण पीयरसन सहसबंध	-366**	1
सीग. (2-टेल्ड)	-000	
एन	162	162

स्कूल के अनुचित वातावरण और बच्चों की अनियमित उपस्थिति के बीच 0.366 का पियर्सन सहसंबंध नकारात्मक प्रभाव की वृद्धि दर्शाता है आंकड़ों के अनुसार, प्रयोगशाला की उपलब्धता, स्वच्छता, प्रौद्योगिकी, और स्कूल का भविष्य दृष्टिकोण छात्रों की सहभागिता, प्रेरणा और उत्साह को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जो व्यावहारिक शिक्षा का महत्व दर्शाता हैं इस प्रकार परिकल्पना 2 प्रमाणित सिद्ध होती है।

निष्कर्ष : उपर्युक्त पूर्ण विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि स्कूलों का आधारभूत ढांचा छात्रों की शैक्षिक सफलता, उपस्थिति, और प्रेरणा पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है। आंकड़ों के अनुसार, 57.4 प्रतिशत उत्तरदाता मध्य विद्यालय और 42.6 प्रतिशत माध्यमिक विद्यालय में पढ़ते हैं। बेहतर बुनियादी ढांचा, जैसे स्वच्छ पानी, प्रयोगशालाएं, पुस्तकालय, तकनीकी उपकरण, और स्वच्छता सुविधाएं, छात्रों की एकाग्रता, सीखने की क्षमता, और अकादमिक प्रदर्शन को बढ़ावा देते हैं। इसके विपरीत, अपर्याप्त सुविधाएं, जैसे भीड़भाड़, स्वच्छता की कमी, और

तकनीकी संसाधनों की अनुपस्थिति, छात्रों की प्रेरणा और शैक्षणिक अनुभव को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती हैं।

आंकड़ों के अनुसार, 74.1 प्रतिशत स्कूलों में पानी और शौचालय की स्थिति खराब है, जबकि 86.9 प्रतिशत स्कूलों में तकनीकी सुविधाएं उपलब्ध हैं। प्रणति मोहनराज[16] के शोध के अनुसार, स्वच्छ पानी और स्वच्छता सुविधाओं में सुधार विशेष रूप से लड़कियों की उपस्थिति और प्रदर्शन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अध्ययन से पता चलता है कि स्कूलों में स्वच्छता सुविधाओं के अभाव से लड़कियों की अनुपस्थिति बढ़ती है, जबकि बेहतर सुविधाएं छात्रों को स्कूल जाने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। प्रयोगशालाओं और तकनीकी संसाधनों की उपलब्धता छात्रों को व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करने में सहायक होती है।

शोध यह भी दर्शाता है कि स्कूलों का असहायक वातावरण और कमजोर बुनियादी ढांचा छात्रों की उपस्थिति और प्रदर्शन पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। 91.4 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि स्कूल का वातावरण सहयोगी नहीं है। इंदिरा एम. और निकिता पाहवा[17] के शोध के अनुसार असहायक वातावरण और कमजोर बुनियादी ढांचा को सुधारने के लिए स्कूलों में प्रेरक और सहयोगी वातावरण बनाना और बुनियादी सुविधाओं में सुधार करना आवश्यक है। बेहतर बुनियादी ढांचे में निवेश न केवल शैक्षिक समानता सुनिश्चित करेगा, बल्कि छात्रों की रुचि और प्रदर्शन को भी बढ़ावा देगा। प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर, यह आवश्यक है कि स्कूलों में बुनियादी ढांचे और वातावरण में सुधार लाया जाए, ताकि छात्रों की शिक्षा के प्रति रुचि और उनकी शैक्षणिक प्रगति में वृद्धि हो सके।

विद्यालय के बुनियादी ढांचे का महत्व न केवल छात्रों के अकादमिक प्रदर्शन पर, बल्कि व्यापक बौद्धिक, नैतिक और भौतिक विकास पर भी पड़ता है। शैक्षणिक परिणामों को बेहतर बनाने के लिए नीति निर्माण और सुधारों में स्कूल के बुनियादी ढांचे की महत्वपूर्ण भूमिका है।

सन्दर्भ

1. Cuesta, A., Glewwe, P., & Krause, B. 'School infrastructure and educational outcomes: a literature review, with special reference to Latin America', Economia, 2016, 17(1), pp. 95-130.
2. Buckley, J., Schneider, M., & Shang, Y., 'Los Angeles Unified School District school facilities and academic Performance', National Clearinghouse for Educational Facilities, 2004, pp. 5-9.
3. Eitland, E., Klingensmith, L., MacNaughton, P., Laurent, J.C., Spengler, J., Bernstein, A., & Allen, J.G., 'Schools for health: Foundations for student success: How school buildings influence student health, thinking, and performance', Harvard T.H. Chan School of Public Health, 2017, pp.10-29.
4. Kaur Husanpreet, 'Impact of School Infrastructural Facilities on Academic Achievement of Students in Government Schools', IJIRCT, Volume 8, Issue 6, 2017, pp. 29-31. https://www.ijirct.org/viewPaper.php?paperId = 2212011
5. Jasper, C., Le, T. T., & Bartram, J., 'Water and sanitation in schools: a systematic review of the health and educational outcomes', International Journal of Environmental Research and Public Health, 2012, 9(8), pp. 2772-2787.
6. National Center for Education Statistics. (2014). Condition of America's public school facilities: 2012-13 (NCES 2014-022). U.S. Department of Education, 6-25.
7. World Health Organization and UNICEF. Progress on Household Drinking Water, Sanitation, and Hygiene 2000-2022: Special focus on gender, 2023, pp. 22-98 .
8. Boruah, P. J., 'A Study On Availability Of Educational Facilities For The Teachers And Students In Primary Schools With Special Reference To Nazira Sub-Division Of Sibsagar District of Assam', International journal of engineering development and research, 5(4), 2017, pp.960-963.
9. Bhunia, G. S., Shit, P. K., & Duary, S., *'Assessment of School Infrastructure at Primary and Upper Primary Level'*, A Geospatial Analysis, 2012, pp. 412-424.
10. J., Schneider, op. cit., p.08
11. Husanpreet Kaur, op. cit., p.30
12. Ibid., p.30
13. World Health Organization and UNICEF, op. cit., p.98
14. Jasper, op. cit.,p.2787
15. National Center for Education Statistics, OP.Cit,P.25
16. Mohanraj, P. 'Understanding girls' absence from school in Madhya Pradesh, India', An Investigation (Doctoral Dissertation, University of York, 2010, pp. 273-288.
17. Indira, M., & Pahwa, N. 'Analyzing the Linkages between Public Expenditure on Elementary Education, Educational Infrastructure and Outcomes in India'. International Journal of Research and Analytical Reviews, vol.7, No.2, 2020, pp. 408-415

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

दक्षिण-पूर्वी पंजाब में कृषि के वाणिज्यीकरण पर विभिन्न विचार

❑ डॉ. मन्जू बाला

सूचक शब्द : वाणिज्यीकरण, वाणिज्यिक फसलें, खाद्य फसलें, नकदी फसलें।

कृषि का वाणिज्यीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें किसान विभिन्न फसलों का उत्पादन भोजन के लिए अपनी स्वयं की आवश्यकता को पूरा करने के स्थान पर या स्थानीय बाजार में बेचने की अपेक्षा दूर के बाजारों में बिक्री के लिए शुरू करता है, जिसका मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना होता है। प्रारम्भिक स्तर पर इस प्रक्रिया का प्रारंभ यूरोप के कुछ भागों में उच्च वाणिज्य सम्बन्धी गतिविधि के साथ सामन्ती सम्बन्धों की गहनता से हुआ। भारत में, मुगल काल में उत्पादन सम्बन्धों में बिना कोई मौलिक परिवर्तन के कृषि के वाणिज्यीकरण में वृद्धि हुई और औपनिवेशिक काल में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विश्व बाजार के साथ एकीकरण के कारण भारत की कृषि का व्यापक वाणिज्यीकरण हुआ। इस समय संपूर्ण भारत के साथ-साथ पंजाब व पंजाब के प्रत्येक क्षेत्र के कृषि उत्पादन में वाणिज्यीकरण का प्रभाव दिखाई दे रहा था। प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य कृषि के वाणिज्यीकरण पर विभिन्न विचारों अथवा दृष्टिकोणों को जानना और इन विचारों के विश्लेषण के आधार पर पंजाब के दक्षिण पूर्वी क्षेत्र में कृषि के वाणिज्यीकरण की स्थिति का अध्ययन करना है।

ब्रिटिश शासन से पूर्व ही भारत में कपास, तम्बाकू और गन्ने जैसी वाणिज्यिक फसलें उगाई जाने लगी थीं। इस समय यहां की वाणिज्यिक फसलों के उत्पादन में वृद्धि के प्रारम्भिक कारणों में से एक कारण था खाद्य फसलों की तुलना में नकदी फसलों का मूल्य बहुत अधिक होना और दूसरा कारण था भू-राजस्व का अधिकांश भुगतान नकदी में करना। इन कारणों से किसान आरम्भ में अपने कृषि सम्बन्धी उत्पादन को बाजार के लिए उत्पन्न करने को विवश अवश्य हुआ लेकिन माल के प्रवाह के बिना और विनिमय में सेवाओं के विपरीत दिशा में जाने के कारण वाणिज्यीकरण मुख्य रूप से आगे नहीं बढ़ पाया।[1] इस प्रकार ब्रिटिश शासन से पूर्व भारत में कृषि का वाणिज्यीकरण केवल अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही रहा। सम्पूर्ण भारत के साथ-साथ कृषि के वाणिज्यीकरण की यही स्थिति पंजाब और पंजाब के अन्य हिस्सों में भी चल रही थी। पंजाब का दक्षिण-पूर्वी भाग, जिसे आधुनिक हरियाणा का नाम दिया गया है, इन परिस्थितियों से अछूता नहीं था। इस क्षेत्र में भी मुगल शासकों के प्रयासों के बावजूद कृषि का वाणिज्यीकरण अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही था। भारत के अन्य भागों की तरह यहाँ भी ब्रिटिश शासनकाल के मध्य ही कृषि का वाणिज्यिक विकास हो पाया। इस विषय पर विभिन्न विद्वानों के विभिन्न दृष्टिकोण मिलते हैं। कुछेक का यह मानना है कि यहाँ वाणिज्यीकरण हुआ ही नहीं और कुछ का मानना है कि वाणिज्यीकरण हुआ। इस प्रकार ब्रिटिश शासनकाल की तरह आज भी यह एक विवादास्पद विषय बना हुआ है।

इस विषय पर साम्राज्यवादी इतिहास लेखन और औपनिवेशिक नौकरशाही दोनों का ही यह मानना था कि कृषि के वाणिज्यीकरण से कृषि सम्बन्धी उत्पादन का व्यापारिक विस्तार और मूल्यों में वृद्धि हुई जो किसानों की बढ़ती समृद्धि का प्रतीक थे।[2] औपनिवेशिक नौकरशाही के अनुसार किसान बाजार के लिए कृषि उत्पादन की ओर बाजार के दबाव के कारण खिंचते हैं न कि भू-राजस्व के दबाव के कारण। वाणिज्यिक फसलें अधिक लाभकारी थीं और इस आर्थिक प्रोत्साहन ने किसानों को बिक्री और निर्यात के लिए उत्पादन करने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार वाणिज्यिक फसलों के उत्पादन से उनके लिए अपनी प्रति व्यक्ति आय बढ़ाना सम्भव हो गया।[3] कुछ इसी तरह का तर्क तीर्थांकर राय ने भी दिया है। उनके अनुसार भी भू-राजस्व वाणिज्यीकरण का कारण नहीं था। 1860 के बाद किसान प्राथमिक रूप से नकदी फसलों को उगाना शुरू कर देता है क्योंकि वे ज्यादा लाभदायक थीं। इस सम्बन्ध में उनका तर्क है कि 1860 ई. के बाद वाणिज्यीकरण के दूसरे और सबसे बड़े चरण में फसलों के चुनाव पर भू-राजस्व का प्रभाव कमजोर होता गया और

❑ सहायक प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, चौ. ईश्वर सिंह कन्या महाविद्यालय, डांड-डडवाना, कैथल (हरियाणा)

लाभ प्राप्ति का उद्देश्य सुदृढ़।[4]

दूसरी ओर, राष्ट्रवादी इतिहासकार इस विषय पर एक भिन्न विचारधारा का समर्थन करते हैं। राष्ट्रवादी इतिहासकारों का मानना है कि कृषि का वाणिज्यीकरण कृषकों की अपनी इच्छा से बाहर नहीं था। उन्हें विवशतः इसमें अपना सहयोग देना पड़ा। क्योंकि भू-राजस्व की मांग इतनी अधिक थी कि किसान अपने स्वयं के उपभोग के लिए अपर्याप्त भण्डारण के उपरान्त भी अपनी कृषि का एक बडा हिस्सा बाजार में बेचने के लिए विवश हो जाता था। राष्ट्रवादी इतिहासकार आर.सी. दत्त का कथन है कि नकद भू-राजस्व की मांग और साथ ही ब्रिटिश उद्योगों के लिए कच्चे माल की मांग के कारण कृषि के वाणिज्यीकरण का उदय हुआ। दूसरे शब्दों में उनका कथन है कि वाणिज्यीकरण कृषकों की मजबूरी थी।[5]

के.एन. राज भी आर.सी. दत्त के इस कथन से सहमत हैं। उनका तर्क है कि नकद भू-राजस्व चुकाने की आवश्यकता ने कृषकों को प्राथमिक स्तर पर बाजार के लिए कृषि उत्पादन करने के लिए विवश किया। माल के प्रवाह के बिना और विनिमय में सेवाओं के विपरीत दिशा में जाने के उपरान्त भी, जो मुख्य रूप से वाणिज्यीकरण के अग्रसर होने में रूकावट बने हुए थे, एक बड़ी मात्रा में अधिशेष कृषि से निकाला गया।[6]

कृषि के वाणिज्यीकरण पर एक अन्य दृष्टिकोण में औपनिवेशिक भू-राजस्व व्यवस्था के परिणामस्वरूप उत्पन्न परिस्थितियों को वाणिज्यीकरण के लिए उत्तरदायी माना गया है। औपनिवेशिक शासकों ने देश के विभिन्न भागों में स्थाई बंदोबस्त, रैयतवाड़ी व्यवस्था और महलवाड़ी व्यवस्था जैसी विभिन्न प्रकार की भू-राजस्व प्रणालियों को लागू किया। इन व्यवस्थाओं में भू-राजस्व मांग को इतना ऊँचा रखा गया था कि किसानों को भू-राजस्व चुकाने के लिए साहूकारों से पैसा उधार लेना पड़ा। उस पैसे पर लगातार बढ़ते ऋण में किसान पूरी तरह फंसता चला गया। इस ऋण के बोझ को कम करने और भू-राजस्व को नकद में चुकाने की मांग को पूरा करने के लिए पूरे भारत में किसानों को विवशतः खाद्य फसलों की जगह नकदी फसलों की खेती करनी पड़ी।[7] अमित बहादुरी ने भी कुछ इसी तरह के दृष्टिकोण का समर्थन किया है। उन्होंने कृषि के वाणिज्यीकरण को दो चरणों में सीमांकित किया है। उन्होंने पहले चरण में भूमि को उप-स्वामित्व अधिकारों (जिन्हें 1819 में कानूनी रूप से वैध माना गया) का वाणिज्यीकरण बताया है, और दूसरे चरण में कृषि सम्बन्धी उत्पादन का वाणिज्यीकरण बताया, जो 19वीं शताब्दी के मध्य से शुरू होता है। लेकिन अमित बहादुरी ने इन दोनों चरणों को अलग न करके एक-दूसरे से सम्बन्धित बताया है। उनका तर्क है कि स्वामित्व और उसके बाद उप-स्वामित्व अधिकारों के वाणिज्यीकरण ने भू-राजस्व के भार को बढ़ाने और ऋण में बदलने में योगदान दिया। इस परिवर्तन ने कृषि उत्पादन के वाणिज्यीकरण को आगे बढ़ाया है और साथ ही किरायेदारी कानून ने अधिभोग अधिकारों के वाणिज्यीकरण को सक्षम बनाया।[8]

सुमित सरकार इस सम्बन्ध में अपना भिन्न मत प्रकट करते हुए लिखते हैं कि रूढ़िवादी आर्थिक प्रवृतियाँ ही कृषि सम्बन्धी अधिशेष के विकास व ग्रामीण समृद्धि के साथ वाणिज्यीकरण को सहयोग देती हैं। इसके अतिरिक्त किसानों के बीच में मिलने वाली विभिन्नताओं के माध्यम से पूंजीवादी कृषि के लिए एक अन्य धारणा की आशा भी की जा सकती हैं कि वाणिज्यीकरण जहाँ गरीब किसान वर्ग के दुःख का कारण बनता है, वहीं उत्पादकता को भी बढ़ाता है। कुछ इसी तरह का विश्लेषण उपनिवेशवाद ने अपने दोहरे तर्क के साथ दिया कि वाणिज्यीकरण का उदय प्रायः एक कृत्रिम और विवश प्रक्रिया होती है जो बिना वास्तविक या पूर्ण विकास के विभिन्नता लाती है।[9] मॉरिस डी मॉरिस ने कृषि में आए इस परिवर्तन का कारण आंतरिक परिवहन और सार्वजनिक व्यवस्था व विदेशी विकास में हुए सुधारों को बताया है। इन सुधारों के साथ ही घरेलू बाजारों ने प्रति एकड़ औसत उत्पादन बढ़ाने के लिए उत्पादन की क्षेत्रीय विशेषज्ञता को प्रोत्साहित किया। इस प्रोत्साहन से देश के कई क्षेत्रों में कम के स्थान पर अधिक मूल्य वाली फसलों के लिए बदलाव किया गया।[10] इससे कृषि के वाणिज्यीकरण का विकास हुआ। विपिन चन्द्र ने इस संबंध में अपनी अलग टिप्पणी दी है। उनका मानना है कि वाणिज्यीकरण के लिए उच्च प्रौद्योगिकी की जरूरत नहीं है। इसके लिए केवल अच्छी भूमि में पारंपरिक फसलों से वाणिज्यिक फसलों के स्थानांतरण की आवश्यकता है। अंग्रेजों ने यहाँ की कृषि में यह परिवर्तन इंग्लैंड की तरह यहाँ नई तकनीक का विकास करके नहीं किया और वास्तविक रूप में यहां वाणिज्यीकरण पूंजीवादी कृषि को बढ़ावा देने के लिए भी नहीं किया गया। यहाँ कृषि के वाणिज्यीकरण का तात्पर्य केवल बाजार के लिए नकदी फसलों का उत्पादन करना था। हालांकि इस तरह के

वाणिज्यीकरण से किसानों को कोई लाभ नहीं हुआ। वास्तव में किसान ऋणग्रस्त होते चले गये और नकदी फसलों के सभी लाभ केवल औपनिवेशिक सरकार, जमींदारों और साहूकारों को ही प्राप्त हुए।[11] विरोधी साम्राज्यवादियों के मत के अनुसार किसानों की जनसंख्या के बढ़ने से फसलों का उत्पादन बढ़ना चाहिए था और बाजार में खाद्य फसलें कम बेची जानी चाहिए थीं। लेकिन नकद में भू-राजस्व की अदायगी का बोझ और साहूकारों के दबाव में नकदी फसलों के उत्पादन के लिए संसाधनों को परिवर्तित कर दिया।[12] इसके अतिरिक्त ये कृषि के वाणिज्यीकरण के नकारात्मक प्रभावों पर बल देते हैं और उनका मानना है कि भारत का विश्व बाजार से एकीकरण इस बात में निहित है कि यहाँ का कृषि उत्पादन साम्राज्यवादी प्राथमिकताओं व आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित होता है।

इस प्रकार कृषि बाजार और कृषि के वाणिज्यीकरण के विस्तार व प्रभाव के बारे में अलग-अलग और परस्पर विरोधी विचारों और व्याख्याओं के होते हुए भी थोड़ी सी असहमति बनी हुई है, क्योंकि ब्रिटिश शासनकाल के अंतर्गत भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्व पूंजीवादी व्यवस्था के साथ एकीकरण तो हुआ, लेकिन एक अधीनस्थ स्थिति में। भारत में अंग्रेजों द्वारा किए गए विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों का प्राथमिक उद्देश्य ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था को अधीन रखना और ब्रिटिश औपनिवेशिक हितों की पूर्ति करना था। 18वीं शताब्दी के मध्य में औद्योगिक क्रांति की प्रारंभ से ही ब्रिटिश अर्थव्यवस्था में तेजी से परिवर्तन हो रहा था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल तक भारत का महत्व केवल व्यापारिक लाभ के एक स्रोत के रूप में था, लेकिन इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति के साथ बुर्जआ वर्ग के प्रभुत्व के समय भारत से कच्चे माल के निर्यातक और महानगरीय उद्योगों के उत्पादों के खरीदार के रूप में एक अधीनस्थ राज्य की भूमिका निभाने की उम्मीद की जा रही थी। इन बदलती हुई परिस्थितियों में ब्रिटेन की दो मुख्य आवश्यकताएँ थीं। पहली, अपने कारखानों के उत्पादों के लिए बाजार का विस्तार, दूसरी, कृषि सम्बन्धी कच्चे माल की आपूर्ति। फलस्वरूप इंग्लैंड की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में औद्योगिक क्षेत्र की बढ़ती शक्ति के साथ भारतीय सम्पत्ति के महत्व को एक अलग दृष्टिकोण से देखा गया। एक समीक्षक ने इस विषय पर अपनी टिप्पणी देते हुए कहा, "अंग्रेज जिस तरह से इंग्लैंड को भारत से जोड़ने के प्रति विपरीत राय रखते हैं, उसके उपरान्त भी यह आशा है कि भारत कच्चे माल और अंग्रेजी कारखानों के तैयार उत्पादों के लिए कभी न विफल होने वाले बाजार के एक बहुत अच्छे स्रोत के रूप में उभर सकता है। इस पर गंभीरता से विचार कर उन्होंने भारत के प्रति एक आदर्श आर्थिक नीति अपनाई।"[13] यही औपनिवेशिक नीति उन्होंने पूरे भारत के साथ-साथ पंजाब प्रान्त के दक्षिण-पूर्वी क्षेत्र पर भी लागू की। एक कृषि प्रधान क्षेत्र होने के कारण यह क्षेत्र ब्रिटिश उद्योगों के लिए कृषि सम्बन्धी कच्चे माल की आपूर्ति को पूरा करने में सहयोग दे सकता था। इसलिए औपनिवेशिक सरकार द्वारा इस क्षेत्र में भी भारत के अन्य हिस्सों की तरह ही कृषि सम्बन्धी सामग्री के निर्यात और बड़े स्तर पर उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए कृषि विकास के महत्वपूर्ण कदम उठाये गये। यह सच है कि औपनिवेशिक शासकों ने सभी आर्थिक नीतियां अपने निजी हितों के लिए बनाई थीं, लेकिन भारतीयों को भी इनसे लाभ हुआ। रेल व सड़क यातायात के विकास से, गांव विश्व बाजार के निकट आए।[14]

औपनिवेशिक शासन द्वारा कृषि को विकसित करने के लिए यातायात के साधनों जैसे रेलवे व सड़कों के विकास के साथ-साथ नलकूपों, नहरों से पानी को बाहर निकालने के लिए लिफ्ट व्यवस्था और नहरों का निर्माण कर सिंचाई व्यवस्था में सुधार किया गया। इन सब सुविधाओं ने यहाँ की कृषि का विकास किया।[15] इससे नकदी फसलों की मांग बढ़ी। बड़े किसानों ने पारम्परिक फसलों के स्थान पर नकदी फसलों का उत्पादन आरम्भ कर दिया, जिससे कृषि का वाणिज्यीकरण हुआ। यह प्रक्रिया पूरे भारत के साथ-साथ पंजाब के दक्षिण-पूर्वी क्षेत्र में भी आरम्भ हुई। इसके साथ स्वेज नहर के खुलने व अमरीकी गृहयुद्ध जैसी विश्वस्तरीय घटनाओं का प्रभाव भी यहां की कृषि अर्थव्यवस्था पर पड़ा। इन परिवर्तनों के प्रभावस्वरूप भारत के अन्य हिस्सों की तरह दक्षिण-पूर्वी पंजाब में भी कृषि उत्पादन में वृद्धि हो रही थी।

पंजाब के इस दक्षिण-पूर्वी भाग में जो थोड़ा बहुत कृषि का वाणिज्यिक विकास हुआ, वह न तो यहां जोत योग्य क्षेत्र के बढ़ने से हुआ और न ही यहां की प्रति एकड़ उत्पादकता के बढ़ने से। बल्कि यह परिवर्तन इसलिए था कि यहां की पारम्परिक फसलों का स्थान वाणिज्यिक फसलें ले रही थीं।[16] पंजाब के जोत योग्य क्षेत्र में वृद्धि होने से वहां का कृषि उत्पादन अवश्य बढ़ा, जिससे पंजाब में

वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ने में सहयोग मिला। जैसे पंजाब का कुल जोत योग्य क्षेत्र 1849 में 23 प्रतिशत से बढ़कर 1947 में 53 प्रतिशत तक पहुँच गया था।[17] लेकिन यह कृषिगत विकास पूरे पंजाब में एक समान नहीं था। इसके दक्षिण-पूर्वी भाग में ऐसा नहीं था। यहां के जोत योग्य क्षेत्र में निरन्तर परिवर्तन तो होता रहा, लेकिन इस परिवर्तन से कृषि उत्पादन में बहुत अधिक विकास नहीं हुआ। जैसे 1867-68 में यहां का जोत योग्य क्षेत्र 48 लाख एकड़ था वहीं 1886-87 में यह बढ़कर 54 लाख एकड़ हो गया और सदी के अंत तक 65 लाख एकड़ तक बढ़ गया। मगर 1940 के दशक में यह सिकुड़ कर 59 लाख एकड़ रह गया।[18] इसी प्रकार यहां के कुल कृषि क्षेत्र में भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। 1890 में पंजाब के दक्षिण-पूर्वी जिलों का कुल कृषि क्षेत्र 64,66,007 एकड़ था जो 1940 के दशक तक घट कर 59,07,000 रह गया था। यह लगभग 9 प्रतिशत का ह्रास था।[19] लेकिन यह ह्रास सम्पूर्ण हरियाणा में एक समान नहीं थी। जिलेवार अध्ययन से पता चलता है कि प्रत्येक जिले में कृषि क्षेत्र के विस्तार में निश्चित रूप से एक समानता नहीं थी। हर जिले की अपनी अलग स्थिति थी, जिस कारण उनके विकास और पतन की दर समय के साथ परिवर्तित होती रहती थी।

इस प्रकार देश में जिस तरह से कृषि उपजों का एक सक्रिय व्यापार विकसित हो रहा था, उसके फलस्वरूप अब किसी गांव या पूरे क्षेत्र के लिए भी खाद्यान्न व जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुओं की आत्मनिर्भरता आवश्यक नहीं रही। यहाँ तक कि जिन क्षेत्रों में वाणिज्यिक फसलों का उत्पादन किया गया उन्होंने अपनी फसलों की बिक्री के परिणामस्वरूप अचानक अपने आप को क्रय-शक्ति के अधिग्रहण की स्थिति में पाया और अब वो इस क्रय-शक्ति से अपनी आवश्यकता के खाद्यान्न व अन्य उत्पादनों को देश के अन्य भागों से भी मंगवा सकते थे। अब किसानों को अकाल या सूखे की स्थिति के लिए या जब तक अगली फसल नहीं आती तब तक पूरे साल के लिए खाद्यान्नों के भण्डारण की आवश्यकता नहीं रही। देश में कृषि उत्पादनों के लिए एक बाजार विकसित होने से अब किसान जैसे ही फसल उनके पास आती, उसे बेच सकता था व जब उसे अपने उपयोग के लिए इसकी आवश्यकता होती, तब इसे पुनः खरीद सकता था।

विश्व बाजार ने कीमतों के बदलाव और व्यापार के उतार-चढ़ाव ने भारतीय किसानों के भाग्य को इस स्तर पर प्रभावित करना आरम्भ कर दिया था कि इससे पहले उनके साथ ऐसा कभी नहीं हुआ। किसान अब अपने घर, पड़ोसियों या गांव की आवश्यकताओं के स्थान पर बाजार की मांग व कीमतों को ज्यादा महत्व देकर अपनी फसलों का चुनाव करने लगा। इस प्रकार कृषि के वाणिज्यीकरण द्वारा खाद्य फसलों से नकदी फसलों का बदलाव आया। यह परिवर्तन देश के हर क्षेत्र के साथ-साथ दक्षिण-पूर्वी पंजाब में भी आया। 1940 के दशक में इस क्षेत्र में कृषि प्रणाली में आए परिवर्तन से इस बदलाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

तालिका

दक्षिण-पूर्वी पंजाब में फसल प्रणाली का सकल कृषि क्षेत्र

वर्ष 1890		वर्ष 1940		फसलें
फसलें	प्रतिशत	फसलें	प्रतिशत	विभिन्नता
ज्वार	15	ज्वार	9	-6
चना	14	चना	13	-1
बाजरा	12	बाजरा	37	+25
गेहूँ	12	गेहूँ	17	+5
जौ	4	जौ	4	0
मूंग	4	मूंग	1	-3
चावल	3	चावल	3	=
मक्का	2	मक्का	2	=
कपास	1	कपास	1	=
कुल	67	कुल	87	20

स्रोतः 1890 और 1940 की पंजाब लैंड रेवेन्यू रिपोर्ट्स की गणना के आधार पर।

इस प्रकार ब्रिटिश औपनिवेशिक शासकों ने प्रारम्भ से ही स्वार्थवश तथा ब्रिटिश हितों की दृष्टि से ऐसी नीति का अनुसरण किया, जिसने सम्पूर्ण भारत की कृषि व्यवस्था को प्रभावित किया। पंजाब का दक्षिण-पूर्वी क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा। ब्रिटिश शासकों द्वारा यहाँ कृषि के विकास के लिए न केवल रेलवे व सड़क यातायात व सिंचाई व्यवस्था को विकसित किया अपितु कृषक की दशा को सुधारने के लिए भी कुछ नियम बनाये गये, जिसके फलस्वरूप कुछ सिंचाई योजनाएं तैयार हुई। नहरों के विकास में खाद्य पदार्थों के उत्पादन में बढ़ोतरी हुई। कपास, तेल के बीजों तथा जूट का उत्पादन भी बढ़ा। खाद्य पदार्थों की कीमतें भी बढ़ीं जिससे किसानों को कुछ प्रोत्साहन मिला। लेकिन ब्रिटिश नीति के परिणाम अधिक लाभकारी नहीं हुए क्योंकि ब्रिटिश नीति के फलस्वरूप यहाँ न तो कृषि क्षेत्र का बहुत अधिक विस्तार हुआ और न ही उत्पादन का विकास हुआ। सरकार द्वारा इस क्षेत्र की कृषि समस्याओं की ओर ध्यान बहुत कम दिए जाने के कारण भी यहां के कृषि क्षेत्र में वाणिज्यीकरण की गति धीमी रही।

निष्कर्ष : समस्त भारत की तरह दक्षिण-पूर्वी पंजाब में कृषि का वाणिज्यीकरण ब्रिटिश औपनिवेशिक हितों की पूर्ति के लिए हुआ था, जिनका उद्देश्य ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति में कच्चे माल की आपूर्ति और पक्के माल के लिए अधीनस्थ बाजार का विस्तार ही था। अपने आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ब्रिटिश शासन ने पूरे भारत समेत दक्षिणी -पूर्वी पंजाब में भी यहां की भौगोलिक और सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार कृषि के वाणिज्यीकरण के लिए प्रयास किये। जैसे कि भूराजस्व व्यवस्था का नगदीकरण, स्थानीय बाजार का भारतीय और विश्व बाजार से एकीकरण, स्थाई कृषि व्यवस्था, विस्तृत कानून प्रणाली व परिवहन प्रणाली आदि ने कृषि वाणिज्यीकरण को गति प्रदान की। विश्व बाजार में उत्पादन की कीमतों के उतार-चढ़ाव और व्यापार के जानकार जैसे व्यापारी वर्ग, साहूकार वर्ग और बड़े जमींदार ही इस प्रकिया का पूर्ण लाभ उठाकर संपन्न हो गए और शेष कृषक और मजदूर वर्ग अज्ञानता के कारण कर्ज में चलते चले गए। इस प्रक्रिया को विभिन्न इतिहासकारों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से देखा और परखा है। जहां एक ओर साम्राज्यवादी इतिहास लेखन और औपनिवेशिक नौकरशाही का मत था कि कृषि के वाणिज्यीकरण से कृषि संबंधी उत्पादन का व्यापारिक विस्तार और मूल्य में वृद्धि हुई, जो किसानों की बढ़ती समृद्धि का प्रतीक थे और दूसरी और राष्ट्रीय विचारधारा के इतिहासकारों ने इस प्रक्रिया को देश के आर्थिक शोषण के प्रत्येकरूप में दर्शाया है।

सन्दर्भ

1. राज, के.एन., नीलाद्री भट्टाचार्य, सुमित गुहा और शक्तिपाठी, (सं.), 'एसेज ऑन दा कॉमर्शियलाइजेशन ऑफ इण्डियन एग्रीकल्चर', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1985, पृ. 8
2. लूडन, डेविड, (सं.), 'एग्रीकल्चरल प्रोडक्शन एंड साऊथ एशियन हिस्ट्री', ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली, 2005, सेकंड एडिशन, पृ. 182
3. खान, अकबर अली द्वारा उद्धृत, 'सम अस्पेक्टस ऑफ पिजेंट बिहेवियर इन बंगाल : नियोक्लासिक्ल एनालाईसिस, 1890-1914', एशियाटिक सोसायटी ऑफ बांग्लादेशी, 1982, पृ. 7
4. राय, तीर्थांकर, 'दा इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, 1857-1947', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृ. 124
5. दत्त, आर.सी., 'दा इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया', वोल्यूम-2, लो प्राइस पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, 1990, पृ. 260-61
6. राज, के.एन., पूर्वोक्त, पृ. 8
7. पटेल, सुरेश, जे., 'एग्रीकल्चरल लेबरर्स इन मॉडर्न इंडिया एंड पाकिस्तान', करंट बुक हाऊस, बॉम्बे, 1952, पृ. 48-63 इन गोपाल प्रसाद, 'कामर्सियालाइजेशन इन कालोनियल पंजाब, दा पंजाब पास्ट एंड प्रेजेंट', जर्नल ऑफ पंजाब युनिवर्सिटी, पटियाला, अक्तूबर, 2008, पृ. 120-121
8. बहादुरी, अमित, 'दा इवोल्युशन ऑफ लैंड रिलेशंस इन ईस्टर्न इंडिया अंडर ब्रिटिश रूल', दा इंडियन इकोनोमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू, 13, 1 जनवरी-मार्च 1976, पृ. 45-58 इन मृदुला मुखर्जी, 'कालोनियलाइजिंग एग्रीकल्चर दा मिथ ऑफ पंजाब एक्ससेप्शनलिज्म', रोज पब्लिकेशन इंडिया प्रा.लि., न्यू दिल्ली, 2005, पृ. 171
9. सरकार, सुमित, 'माडर्न इंडिया, 1885-1947', मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, मद्रास, 1985, रिप्रिंट, पृ. 30
10. मॉरिस डी मॉरिस, तोरू मान्सुई, विपन चन्द्र एंड टी. राय चौधरी, 'इंडियन इकॉनोमी इन दा नाइनटिंथ सेंचुरी : ए सिमपोजियम' इंडियन इकोनॉमी एंड सोशल हिस्ट्री एसोसिएशन, दिल्ली, स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स, दिल्ली, 1969, पृ. 8
11. वही, पृ. 50-51
12. इस्लाम, एम. मुफाखरूल, 'इरिगेशन, एग्रीकल्चर एंड दा राज :

पंजाब, 1887-1947', मनोहर पब्लिशर एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 1997, पृ. 12
13. आम्बिराजन, एस., 'क्लासिक्ल पोलिटिकल इकोनॉमी एंड ब्रिटिश पालिसी इन इंडिया', कैम्ब्रिज, 1978, पृ. 53, इन इस्लाम, एम. मुखाफरूल, उपरोक्त, पृ. 15
14. कुमार, धर्म, (सं.), 'दा कैम्ब्रिज इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया', वोल्यूम-2, ओरियन्ट लांगमैन, नई दिल्ली, 2005, रिप्रिन्ट, पृ. 747
15. अली, इमरान, 'दा पंजाब अंडर इम्पीरियलिज्म, 1885-1947', ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1989, पृ. 218-22
16. सिंह, वी.वी. (सं.) 'इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया', (1857-1956), अलाइड पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, न्यू दिल्ली, 1965, पृ. 124
17. सिंह सुखवन्त, 'एग्रीकल्चरल डेवेल्पमेंट इन दा पंजाब, (1849-1947)', जर्नल ऑफ रिजनल हिस्ट्री, अमृतसर, 1980, पृ. 100
18. सिंह, महेन्द्र, 'शिफ्टिंग ट्रेंडस इन एग्रीकल्चर कल्टीवेटिड एरिया एंड क्रोपिंग पैटर्न इन दा साऊथ- ईस्ट पंजाब, (1858-1947)', पंजाब हिस्ट्री कांफ्रेंस प्रोसिडिंग्स, पटियाला, 2004, पृ. 359
19. वही, पृ. 359

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा
वर्ष 26 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2024
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074
UGC-CARE List-Social Sciences

उत्तर प्रदेश में दलित : दशा और दिशा

❑ कृष्ण कुमार
❖ प्रोफेसर गीता यादवेन्दु

सूचक शब्द : दलित, लोकतंत्र, प्रतिनिधित्व, रोजगार, संवैधानिक उपचार तथा जनसंख्या।

उत्तर प्रदेश जिसके कई शहर पौराणिक काल से आज तक विद्यमान हैं। जिसमें गंगा-जमुनी तहजीब के साथ-साथ नजाकत और नफासत विद्यमान है। सांस्कृतिक दृष्टि से उत्तर प्रदेश अपनी अलग पहचान रखता है। राजनीतिक दृष्टिकोण से भी उत्तर प्रदेश ने कई जाने-माने चेहरे और प्रखर वक्ता, व्यक्तित्व और राजनेता भी भारतीय राजनीति को दिए हैं। जनसंख्या की दृष्टि से भी उत्तर प्रदेश भारत के प्रमुख राज्यों में गिना जाता है, जिसमें दलित आबादी का 21.54 प्रतिशत भाग विद्यमान है। उत्तर प्रदेश को सांस्कृतिक एवं राजनीतिक दृष्टि से देखा जाए तो समस्त गैर दलित राजनैतिक दलों एवं सांस्कृतिक संगठनों (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ) का दलितों की ओर अधिक झुकाव है। क्या? समस्त दल अभी भी इन दलितों की समस्या और प्रतिनिधित्व को पूर्णरूप से अंगीकार कर पा रहे हैं तथा भारतीय गणराज्य की सरकार द्वारा दलितों के अधिकारों एवं उत्थान के लिए कौन से कार्य किए गये हैं। क्या? किए गए कार्य अपना मूर्त रूप ले पा रहे हैं या नहीं, यह विचारणीय है। वही 21वीं सदी के प्रारंभ में उत्तर प्रदेश के दलितों में उवाच की क्या स्थिति है तथा वर्तमान में किन-किन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। यह आलेख विभिन्न साहित्य, सरकारी गजट एवं रिपोर्ट, कार्यक्षेत्र आधारित अवलोकनों के माध्यम से उत्तर प्रदेश में दलितों की स्थिति का अवलोकन करता है।

1 नवंबर 1956 से पूर्व उत्तर प्रदेश 1836 में उत्तर-पश्चिम प्रांत, 1870 में उत्तर-पश्चिम आगरा एवं अवधा, 1902 से संयुक्त प्रांत आगरा एवं अवध, 1937 से केवल संयुक्त प्रांत तथा राज्य पुनर्गठन 24 जनवरी 1950 से 'उत्तर प्रदेश' के नाम से जाना गया। जिसका वर्तमान क्षेत्रफल 2,40,928 वर्ग किलोमीटर है, जो भारत के 7.33 प्रतिशत क्षेत्रफल के साथ चौथा स्थान रखता है, जिसकी सीमाएं 8 राज्यों से स्पर्श करती हैं। अपवाह तंत्र की 12 महीना बहने वाली गंगा, जमुना, गंडक, घाघरा, गोमती, बेतवा आदि नदियां हैं। स्वतंत्रता संग्राम का अलख जगाने वाला वाला उत्तर प्रदेश नाना साहब,तात्या टोपे, राम प्रसाद बिस्मिल, चंद्रशेखर आजाद, दुर्गा देवी पासी, आदि क्रांतिकारियों की कर्मभूमि रहा है। भारत को सबसे अधिक प्रधानमंत्री देने वाला राज्य भी रहा है। इसके पौराणिक शहरों में इलाहाबाद, काशी, कौशांबी, हस्तिनापुर, मथुरा आदि शहरों के साथ-साथ बहुत से पर्यटन स्थल हैं[1], जो भारतीय अर्थव्यवस्था में अपनी महती भूमिका निभाते हैं।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था जो अपनी जटिल संरचना के लिए जानी जाती है। इसके अंतर्गत विविधताओं का समावेश विद्यमान है। इन विविधताओं में जटिल संरचनाओं का विकास क्रम हमको उत्तर वैदिक काल से देखने को मिलता है, जो वर्तमान में और अधिक जटिल रूप लेता जा रहा है। ऋग्वैदिक काल में मुख्यतः चार वर्णों की उत्पत्ति एवं रचना की जानकारी मिलती है। जिसमें विराट पुरुष के चार अंगों से चार वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र की उत्पत्ति के बारे में कहा गया है।[2] जिसमें शूद्रों को उपर्युक्त तीनों वर्णों का सेवक माना गया है। भारतीय संस्कृति की जाति व्यवस्था उत्तर प्रदेश में भी विद्यमान थीं अंततोगत्वा ऐतिहासिक कालखंड के उत्तर प्रदेश में शूद्रों की वही स्थिति थीं जो पूरे भारत में थीं **कालखंड** बदलने के साथ-साथ दलितों की दयनीयता में निरंतर वृद्धि होती गई और इन्हें दमित करने का साधन समझा जाने लगा। वर्ण व्यवस्था का उल्लंघन करने पर उनके लिए दंड का प्रावधान था, जो वर्तमान में भी जारी है।[3] वर्ण व्यवस्था के क्रमिक विकास में ब्रिटिश काल से वर्तमान समय तक इनके नामकरण में कई परिवर्तन हुए हैं, जिसके अंतर्गत इन्हें शूद्र, अतिशूद्र, चांडाल, अंत्यज, अछूत तथा हरिजन कहा गया। वहीं कुछ समाज सुधारकों जिनमें डॉ. अंबेडकर का नाम समीचीन है।

❑ शोध अध्येता इतिहास विभाग, आगरा कालेज आगरा, डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय आगरा (उ.प्र.)
❖ प्राचार्या, बी.डी.एम.एम.गर्ल्स पी.जी. कॉलेज शिकोहाबाद, डॉ भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय आगरा (उ.प्र.)

उन्होंने सर्वप्रथम 'दलित'[4] कहा तथा श्रीमती एनी बेसेंट ने ऐसे शोषित एवं पीड़ितों के लिए 'डिप्रेस्ड' शब्द का प्रयोग किया।

दलित का अर्थ : दलित शब्द की शाब्दिक व्याख्या से किसी भी विशेष जाति या वर्ग का बोध नहीं होता है। दलित शब्द के संस्कृत शब्दकोश में बोध-दल, दलन और दलित तीन शब्द मुख्य रूप से मिलते हैं।[5] दलित शब्द से ही दलित वर्ग का निर्माण हुआ, जिसका अर्थ-समाज का वह निचला वर्ग, जो उच्च वर्ग के उत्पीड़न के कारण आर्थिक दृष्टि से बहुत हीन अवस्था में है, जिसका सामाजिक स्तर दासता से जकड़ा हुआ है।

दलित से बहुजन तक का यात्रा : धर्म के आवरण ने अछूतों के सभी नागरिक अधिकार जो आम नागरिकों के होते हैं, इनसे छीन लिए गए थे इसलिए इनकी दशा पशुओं से भी हीन हो गई थीं इन्हीं पशु समान पददलितों को ही दलित नाम दिया गया, जिसे भारतीय संविधाान में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति कहा गया, जिसके क्रमिक विकास की व्याख्या जनगणना 1931 में देखते हैं। 1931 की जनगणना के अनुसार दलित जातियों में कारीगर जातियों- धोबी, मोची, भंगी, बसौर, सेवक जातियां जैसे- चमार, डगारी (मरे पशु उठाने वाले), डोम, सउरी (प्रसूति कार्य करने वाले), ढोल, डफली बजाने वाले इसके अतिरिक्त वे सभी व्यक्ति जो अपने परंपरागत कार्य को करते हैं[6] सम्मिलित किए गए। 1932 में भारतीय मताधिकार समिति के सामने बंगाल की तत्कालीन प्रांतीय सरकार द्वारा अनुसूचित जातियां[7] शब्द का प्रयोग किया गया। 1934 में पूना पैक्ट में भी दलितों/अछूतों के लिए अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति शब्द का प्रयोग किया गया। तदंतर भारत सरकार अधिनियम 1935 में पहली बार जिसमें श्रेणियों की एक तालिका में 429 जातियों[8] को सूचीबद्ध किया गया। वर्तमान में 1108 जातियां इस तालिका में सूचीबद्ध हैं।[9]

स्वतंत्रोपरांत भारतीय संविधाान के अनुच्छेद 341 में अनुसूचित जाति को पूर्ण रूप से व्याख्यायित किया गया है, जिसके अनुसार एक विशेष जाति जिसका सामाजिक और आर्थिक पिछड़ापन अस्पृश्यता की प्रथा से संबंधित पारंपरिक रीति-रिवाज पर आधारित थे, जो राष्ट्रपति द्वारा अनुसूचित जाति[10] के रूप में घोषित है।

1990 में भारत के राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग के अध्यक्ष श्री बूटा सिंह ने 'हरिजन' शब्द को असंवैधानिक मानते हुए, उसके प्रयोग को गैर कानूनी करार दिया। जो भारत सरकार के गृह मंत्रालय के शासनादेश O.M नं. 12025/14/90 SDC (RL सेल) दिनांक 16 अगस्त 1990 से प्रभावी हुआ।[11] इस प्रकार हरिजन से दलित, दलित से अनुसूचित जाति और जनजाति तक का सफर तय करते हुए सामान्य जन की पहचान में यह बहुजन हो गया है, जिसके नाम से बहुजन समाज पार्टी नामक दल का गठन मान्यवर कांशीराम द्वारा किया गया। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से बहुजन शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम तथागत गौतम बुद्ध द्वारा किया गया था। उन्होंने समाज के दुखी, पीड़ित और भयभीत लोगों को बहुजन का नाम दिया था।

उत्तर प्रदेश में जनसंख्या की दृष्टि से दलित : भारतीय परिप्रेक्ष्य में जनगणना का प्रारंभ ब्रिटिश काल से प्रारंभ होती है तथा जातीय जनगणना 1931 में ब्रिटिश काल में हुई थीं उसके बाद जाति आधारित जाति जनगणना नहीं की गई है। जनगणना 2011 के अनुसार भारत की संपूर्ण जनसंख्या में अनुसूचित जाति का 16.6 प्रतिशत है तथा 55 प्रतिशत भाग उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, बिहार, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु जैसे राज्यों में रहती है। 2001 से 2011 के बीच 10 प्रतिशत दशकीय वृद्धि दर से 2011 की जनगणना के अनुसार 20.8 प्रतिशत है।[12] वहीं उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जाति की जनसंख्या 431.57 लाख के साथ राज्य की जनसंख्या का 20.54 प्रतिशत भाग है।[13]

भारतीय समाज की जटिल संरचना ने दलितों को ही सबसे अधिक प्रभावित किया है जिसके अंतर्गत इन्हें मौखिक और शारीरिक शोषण के माध्यम से हिंसक अत्याचारों का सामना करना पड़ता है। वहीं सार्वजनिक रूप से प्रतिबंध, मनोदैहिक दुरुपयोग, कानून के समक्ष समानता के बुनियादी मानव अधिकारों का हनन हो रहा है।

उच्च जाति के हिंदुओं को आमतौर पर लगता है कि दलित जातियों को प्राकृतिक संसाधनों के दोहन का अधिकार नहीं है। उनका कार्य केवल सेवा करना है। सेवा कार्य के बदले न्यूनतम मजदूरी की मांग करने पर अत्याचार होते हैं, भूमि पर बलपूर्वक अतिक्रमण किया जाता है तथा दिए गए ऋण का भुगतान करने में असमर्थता के कारण बंधुआ मजदूरी का विकल्प खुलता

है। आवाज उठाने पर उनको दमन का सामना करना पड़ता है। ऐसी घटनाएं उत्तर प्रदेश में ही नहीं संपूर्ण भारत में आए दिन होती रहती हैं जो बहुत से समाचार पत्रों में प्रकाशित होती रहती हैं। वहीं अधिकतर समाचार पत्रों द्वारा खबरों को दबा दिया जाता है। सामाजिक उन्नयन की अवस्थाएं जैसे नए कपड़े पहनना, बारात के दौरान घुड़चढ़ी, अच्छे रहन-सहन से भी इन उच्च जाति के लोगों की भृकुटी चढ़ी रहती है और आपराधिक प्रवृत्ति को अंजाम देते हैं। पुलिस की भूमिका भी इन मामलों में संदिग्ध रहती है जो प्रभावशाली और संपन्न उच्च जाति के व्यक्तियों के प्रभाव के कारण है। जिसके कारण कुछ मामले दबा दिए जाते हैं और कुछ मामलों की सही तरीके से पैरवी भी नहीं होती है।[14]

21वीं सदी के प्रारंभ में पुलिस प्रशासन की संदिग्धता 2002 में उत्तर प्रदेश के वाराणसी जिले के आसपास के क्षेत्रों में दलितों पर झूठे अभियोजन लगाना, मनमानी गिरफ्तारी, थाने में असमय बंद रखना, यातनाएं देना, गवाहों को तोड़ना, साक्ष्यों में फेरबदल करना, जांच में ढिलाई बरतना, अभिलेखीय फेरबदल के साथ साथ कानूनी कार्रवाई की शिथिलता इत्यादि मामलों में बाढ़ की स्थिति बन गई थीं जिसकी जांच हेतु केरल और मुंबई के हाईकोर्ट के अवकाश प्राप्त न्यायाधीशों के साथ के. सुकुमारन के नेतृत्व में ट्रिब्यूनल द्वारा जांच पड़ताल की गई जिसमें पुलिस यूनिफोर्म में माफिया के साथ-साथ उच्च जातियों द्वारा समर्थित पायी गयी।[15]

5 मई 2017 को सहारनपुर जिले के शब्बीरपुर गांव में 25 दलितों के घर जलाए जाने की घटना को अंजाम दिया जाना जबकि दलितों द्वारा प्रशासन को पूर्व में ही सूचित कर दिया गया था कि महाराणा प्रताप जयंती की आड़ में दलितों के साथ कोई अप्रिय घटना हो सकती है।[16] सितंबर 2020 में हाथरस के क्षेत्र में दलित युवती के साथ चार युवकों द्वारा बलात्कार किया गया।[17] पुलिस की लचर कार्यप्रणाली के कारण एक युवक को सजा सुनाई गई तथा तीन युवकों को बरी कर दिया गया। रात को ही पीड़िता का शव जला दिया जाना पुलिस प्रशासन की संदिग्ध कार्यप्रणाली को दर्शाता है। जिस कारण आज भी पीड़ित परिवार उनकी प्रताड़ना से पीड़ित है।[18]

वर्ष 2022 में उत्तर प्रदेश की अनुसूचित जाति पर 15368 अपराध हुए जो उत्तर प्रदेश की कुल आबादी में 431.6 लाख पर यह अपराध 37.2 प्रतिशत की दर से हुए, साथ ही 84.9 प्रतिशत अपराधों के सापेक्ष ही मुकदमे पंजीकृत हुए, जिसमें 12589 मामले के, 3012 सामान्य वारदातों के, 940 वारदातें और एसाल्ट ऑन वूमेन विद इंटेंट टू आउटरेज हर मोडेसिटी के, 220 मामले सेक्सुअल हैरेसमेंट के, 11 वारदातें स्टॉकिंग के, 617 एवं 161 मामले किडनैपिंग एंड एडॉप्शन के, 142 मामले पोस्को एक्ट के अंतर्गत, 2 मामले चोरी के, एक मामला डकैती का, तथा 5052 अन्य वारदातों की शिकायत दर्ज की गई हैं। जिसमें 1517 में घटनाएं अभी तक लंबित चल रही हैं। 1660 ऐसी मामले हैं, जो साक्ष्यों की अभाव में लंबित या निष्क्रिय हैं। 15305 घटनाओं का खुलासा उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा कर दिया गया है।[19]

स्वतंत्रता के पश्चात दलित जातियों में शिक्षा के विकास से जागरूकता आई है और प्रतिकार की अवस्था भी जाग्रत हुई है। जमींदारी खत्म होने, मतदान का अधिकार मिलने, अस्पृश्यता निवारण अधिनियम लागू होने, नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था मिलने, अपनी परिश्रम की पूंजी से उनकी सामाजिक दशा और दिशा में परिवर्तन हुआ है। वहीं उच्च जातियों को यह दंश की तरह चुभता रहता है। जिससे वह इनको परिश्रम की राशि पूरी न देना, मनमर्जी वोट डालने से रोकना, आवंटित भूमि पर अनाधिकृत अधिकार बनाए रखना, शादी ब्याह में घोड़े पर दूल्हे के चढ़ने पर आपत्ति करना, स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार जैसी घटनाओं को अंजाम देते हैं। साथ ही दलित छात्रों को अध्ययन से रोकना, उन्हें अपराध में फंसा कर उनका जीवन नष्ट करने जैसी शिकायतें आज भी प्रचलन में हैं[20] जिसका जीवंत उदाहरण आगरा का पनवारी कांड, सहारनपुर का दलित कांड, हाथरस कांड, मुथुकृष्णनन जीवानंदम एवं वेमुला कांड इत्यादि घटनाएं वर्तमान में भी अनवरत जारी है।

उत्तर प्रदेश में दलितों की राजनीतिक स्थिति : भारत में दलित राजनीति के शिल्पकार डॉ. भीमराव आंबेडकर ग्रामीण एवं नगरीय श्रमिकों को ध्यान में रखकर ही इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी (1935), इंग्लैंड शेड्यूल फेडरेशन (1942) की स्थापना की जिसके द्वारा इन्होंने सामाजिक, आर्थिक संपन्न वर्ग पर ध्यान न देकर सामाजिक विपन्न दलितों[21] पर अपना ध्यान केंद्रित किया। 25 नवंबर 1949 को संविधाान सभा में इन्होंने कहा था "जिन लोगों के पास राजनीतिक जड़ें नहीं होती, वह लोग राजनीतिक

प्रभुत्व प्राप्त नहीं कर सकते"[22]

उक्त सूत्र वाक्य का अनुसरण कांशीराम ने करते हुए कहा "जो दलित नहीं है, वह दलितों की भावनाओं और समस्याओं को ठीक से समझ नहीं सकता"[23] का अनुसरण करते हुए डीएस-4, बामसेफ तथा बहुजन समाज पार्टी[24] का गठन किया। डॉ. आंबेडकर प्रत्येक समस्या का हल संघर्ष में खोजते थे वहीं कांशीराम राजनीतिक हिस्सेदारी तथा आर्थिक संपन्नता में देखते थे।[25] बहुजन समाज पार्टी को राजनीतिक धार देने के साथ-साथ दलित वोट बैंक को समेकित करने की सबसे बड़ी उपलब्धि कांशीराम और मायावती की रही है।[26] कांशीराम और मायावती ने हतोत्साहित वर्ग जिसमें सामाजिक हतोत्साहित अफसर एवं युवा वर्ग जिनको समुचित स्थान और रोजगार प्राप्त नहीं हो रहा था इसलिए बहुजन समाज पार्टी की ओर मुखर हुआ।[27] "इनमें से प्रत्येक अपने अभिभावकों से अच्छे आर्थिक अवसरों एवं उच्च स्थिति की खोज में लालायित था और प्रत्येक दलित ने इसे राजनीति में पाया"।[28] स्वतंत्रता के बाद सभी दलों द्वारा हमेशा दलितों की अनदेखी ही रहीं 1980 के दशक में उत्तर प्रदेश में कायस्थों के बाद सबसे अधिक प्रथम श्रेणी के पदाधिकारी थे। उनको अनुपात की दृष्टि से उच्च पदों एवं अवसरों से दूरी पर ही रखा जा रहा था। इस अनदेखी और राजनीतिक अवसरों का आभास बहुजन समाज पार्टी को हुआ और प्रथम बार 1995 में गठजोड़ की सरकार का निर्माण किया। इनके विधायक दल के नेता प्रमोद तिवारी को प्रथम बार दलित मायावती के मुख्यमंत्री बनने पर उनका वक्तव्य ''उनका दलित राज सवर्णों से प्रतिशोध तक सीमित था, दलितों की भलाई से उनका कोई सरोकार नहीं था''[29] से झलकता है कि कैसे इतने बड़े राज्य की एक मुख्यमंत्री दलित बन गई जबकि उनके कार्यकाल में किए गए जनहित के कार्यों को अनदेखा किया, जबकि मायावती उत्तर प्रदेश की चार बार मुख्यमंत्री बनीं।

2012 के बाद दलितों के सबसे बड़े दल बहुजन समाज पार्टी का मूलभूत बैंक भी अब उसे छिटक सा रहा है। जिसे अन्य दलों द्वारा दलित वर्ग की अन्य जातियों को लुभावने अवसरों एवं बहुजन समाज पार्टी को सिर्फ जाटवों की पार्टी ठहराया जाता है। सत्तारूढ़ दल भारतीय जनता पार्टी जहां सामाजिक समरसता[30] के कार्यक्रमों द्वारा दलितों को अपनी ओर आकर्षित कर रही हैं वहीं भारतीय जनता पार्टी द्वारा केशव प्रसाद मौर्य को चेहरा बनाकर विधानसभा 2017 का चुनाव लड़ा गया किंतु चुनाव परिणाम के बाद उन्हें अनदेखा किया गया।

लोकसभा चुनाव 2024 में समाजवादी पार्टी ने पीडीए (पिछड़ा, दलित तथा अल्पसंख्यक) का फार्मूला देकर लोकसभा चुनाव 2024 में दलितों को अपनी ओर आकर्षित किया और आरक्षित वर्ग की 07 सीटों सहित कुल 37 सीटों पर विजय प्राप्त की है।[31] किंतु वहीं समाजवादी पार्टी द्वारा प्रमोशन में आरक्षण का विरोध किया गया था। इससे पूर्व मायावती द्वारा अनुसूचित जाति एवं जनजाति अधिनियम को कमजोर किया गया था। वहीं दलित उत्पीड़न एवं आरक्षण जैसे मुद्दों पर अधिकतर दल मौन धारण कर लेते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि दलित राजनीति फिर से गर्त की अवस्था में जा रही है। बहुजन समाज पार्टी से अलग एक नया दल आजाद समाज पार्टी जिसके मुखिया चंद्रशेखर आजाद उर्फ रावण द्वारा गठन किया गया है जो अपनी विशेष राजनीतिक शैली से दलितों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है, जिसका प्रभाव लोकसभा चुनाव 2024 में नगीना सुरक्षित सीट से रावण के विजय होने से देखने को मिला है।[32]

उत्तर प्रदेश में दलितों की आर्थिक की स्थिति : किसी भी समाज की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने में 'अर्थ' बहुत महत्वपूर्ण घटक है। जिसको रोजगार, मजदूरी अथवा व्यापार द्वारा अर्जित किया जा सकता है।

उत्तर प्रदेश में दलितों की जनसंख्या 20.54 प्रतिशत है। यह एक ऐसा समुदाय है, जो सामाजिक असमानता का हमेशा से सामना करता रहा है और आर्थिक क्षेत्र में भी अपने आपको हमेशा से वंचित पाता है। दलित आबादी का 46 प्रतिशत कृषक मजदूर के रूप में कार्य करता है,[33] वहीं 36.8 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रही है।[34] एक ओर हम दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र और चौथी उभरती अर्थव्यवस्था का दावा करते हुए हम अपने नागरिकों को समानता की गारंटी देने पर वादा करते हैं, पर स्थिति इसके विपरीत है। भारतीय समाज विरोधाभासों के स्तंभों पर टिका हुआ है, जो समाज के एक खास वर्ग दलित को असमानता और हाशिए पर धकेलता है।

2019 में उत्तर प्रदेश में रोजगार दफ्तरों द्वारा कुल 985.4 हजार प्रार्थी पंजीकृत किए गए जिसमें अनुसूचित

जाति/अनुसूचित जनजाति के 208.8 हजार में से कुल 0.006 भाग को काम दिलाया गया। अनुसूचित जाति/ जनजाति के 0.0019 हजार पद रिक्त रहे और वर्ष के अंत तक 736.1 हजार और पंजीकृत हुए।[35] सरकारी सेवाओं में 1960 के दशक में सरकारी सेवाओं में अनुसूचित जाति के कर्मचारियों की हिस्सेदारी 12.2 प्रतिशत थीं 1970 की दशक में अनुसूचित जाति की हिस्सेदारी बढ़कर 15.67 प्रतिशत, 1980 के दशक में बढ़कर 15.67 प्रतिशत, 1990 के दशक में आंकड़ा 16.97 प्रतिशत पहुंच गया, जो 2003 में घटकर 16.05 प्रतिशत हो गया।[36] वर्ष 2022-23 में विभिन्न विभागों और मंत्रालयों से प्राप्त जानकारी के अनुसार ग्रुप ए में कुल 10290 रोजगार सृजित हुए जो 13.21 प्रतिशत रहे। ग्रुप बी में कुल 24051 रोजगार सृजित हुए जो 15.26 प्रतिशत रहे। वही सीधी भर्तियों का सभी समूह में कर्मचारियों का चयन 15 प्रतिशत रहा तथा खुली भर्तियों में 16.66 प्रतिशत रहा।[37]

सरकार द्वारा दलितों के उन्नयन हेतु प्रयास : भारत की अधिकांश जनसंख्या गांव में निवास करती है और 40 प्रतिशत दलित जनसंख्या कृषि मजदूर के रूप में कार्य करती है। 'जमींदारी उन्मूलन और भूमि व्यवस्था अधिनियम 1950' के द्वारा भूमि से जमींदारों का आधिपत्य समाप्त करके भूमि का स्वामित्व जोत किसानों को दे दिया गया किंतु अनुसूचित जाति के 75 प्रतिशत शिकमीदारों ने ईमानदारी और भय के कारण सार्वजनिक प्रयोज्य भूमि पर अपना अधिकार नहीं जताया इसलिए वे भूमि से वंचित रह गए। उत्तर प्रदेश में 15 अप्रैल 1949 से 3 माह के लिए आवंटित भूमि पर कब्जा दिलाने का अभियान चलाया गया। अधिनियम 1950 की धारा 122 B (4F), 123 (1) और 123(2) के मौके पर ही आवंटित भूमि को अभिलेख में दर्ज करने का प्रावधाान किया गया।[38]

अक्तूबर 1992 तक अनुसूचित जाति के 1548266 व्यक्तियों को 630335 हेक्टेयर भूमि आवंटित की गई, साथ ही 1791537 व्यक्तियों को आवासों का आवंटन हुआ। सीलिंग से प्राप्त 248157 एकड़ भूमि का आवंटन अनुसूचित जाति एवं जनजाति के व्यक्तियों को किया गया। सोचनीय विषय है 20 प्रतिशत व्यक्तियों को भूमि आवंटित होने पर भी कब्जा नहीं मिल सका है। भूमि व्यवस्था अधिनियम 1950 के अंतर्गत अनुसूचित जाति-जनजाति के किसी व्यक्ति के पास यदि 3.125 एकड़ भूमि से कम है तो वह कोई अनुसूचित जाति-जनजाति का व्यक्ति क्रय नहीं कर सकता था।[39] किंतु सपा सरकार के शासनकाल (2012-17) में इसे पलट दिया गया।

दलितों के उन्नयन हेतु सरकारी प्रयास : अनुसूचित जाति एवं जनजाति पर हो रहे अत्याचारों के निवारण हेतु अनुसूचित जाति-जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम 1995, बंधुआ मजदूरी प्रथा का (उन्मूलन) अध्यादेश 1975 द्वारा बंधुआ मजदूरी प्रथा का अंत, मैला ढोने वालों को रोजगार तथा शुष्क शौचालय निर्माण (निषेध) अधिनियम 1993 द्वारा मैला ढोने पर प्रतिबंध किया गया[40] साथ ही अगर किसी उच्च जाति के व्यक्ति द्वारा अनुसूचित जाति एवं जनजाति के किसी व्यक्ति को प्रताड़ित किया जाता है तो उस प्रताड़ित व्यक्ति को हर्जाने के रूप में धन देने का प्रावधाान किया गया। जो बंधुआ मजदूरी करवाने पर 25000रू, घर छोड़ने पर मजदूर करने पर 25000रू तथा विकलांगता पर 100000रू का प्रावधाान है।[41]

भारत सरकार द्वारा बजट 2024 का कुल केंद्रीय बजट 5108780 करोड़ रुपये है, जिसमें अनुसूचित जाति के कल्याण के लिए कुल 165598 करोड़ रुपये का आवंटन किया गया और अनुसूचित जनजाति के लिए यह आवंटन 121023 करोड़ रुपये है। इसमें से लक्षित धनराशि जो सीधे अनुसुचित जाति के कल्याण के लिए होगी वह 44282 करोड़ रुपये है और आदिवासियों के लिए 36212 करोड़ रुपये है। अनुसुचित जाति के विरूद्ध अत्याचार के मामले 13.12 प्रतिशत बढ़कर 57,582 मामले हो गए, जबकि पिछले वर्ष यह संख्या 50,900 थीं इसी तरह, आदिवासियों के विरूद्ध अत्याचारों में वृद्धि हुई है और इनकी संख्या 10,064 दर्ज की गई जबकि 2021 में यह संख्या 8,802 थीं।[42] इन चिंताजनक आंकड़ों के बावजूद, राज्य दलितों और आदिवासियों के लिए न्याय तक पहुंच के मौलिक अधिकार को सुनिश्चित करने में विफल रहा है।

अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के कल्याण हेतु बजट आवंटन में क्रमशः 4 प्रतिशत और 4.5 प्रतिशत की वृद्धि की गई है। अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के कल्याण हेतु बजट, केंद्र सरकार की सभी योजनाओं के लिए निर्धारित कुल बजट

का क्रमशः 8.18 प्रतिशत व 4.85 प्रतिशत है[43], जो कि देश की कुल आबादी में इन समुदायों की आबादी के प्रतिशत से काफी कम है। अंतरिम बजट 2024 में शिक्षा के लिए 1.20 लाख करोड़ रुपये निर्धारित किए गए, जो 2023-24 के लिए संशोधित अनुमान 1,29,718 करोड़ रुपये से 9,091 करोड़ रुपये या 7.26: कम है।[44] यूजीसी का बजट पिछले वित्तीय वर्ष के 17,473 करोड़ रुपये की तुलना में बढ़कर 19,024 करोड़ रुपये हो गया है।[45]

अनुसूचित जाति एवं जनजाति के राज्य एवं संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं की पूर्व तैयारी हेतु केंद्र एवं राज्य सरकार के सहयोग से विश्वविद्यालय, महाविद्यालयों तथा समाज कल्याण मंत्रालय द्वारा कोचिंग सेंटरों का संचालन किया जा रहा है। वहीं उच्च शिक्षा एवं शोध क्षेत्र में प्रोत्साहन हेतु, यूजीसी द्वारा विभिन्न प्रकार की शोधवृत्तियों का आवंटन किया जाता है किंतु अनुसूचित जाति एवं जनजाति से संबंधित कुछ शोधवृत्तियों को सरकार द्वारा बंद भी कर दिया गया है।

आरक्षण से संबंधित समय-समय पर विभिन्न शासनादेश पारित हुए हैं किंतु उत्तर प्रदेश शासनादेश संख्या-1305/15-10-95-15(18)/94 दिनांक 6 अप्रैल 1994 द्वारा शिक्षा विभाग-10 लखनऊ को आदेशित किया गया कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों की शैक्षिक एवं चरित्र सेवाओं में अनुसूचित जाति तथा जनजाति एवं पिछड़े वर्ग के लिए अभ्यर्थियों की व्यवस्था का प्रावधाान किया जाए।[46] यह शासनादेश ऐतिहासिक कदम है।

राजनीतिक रूप से सक्षम बनाने हेतु एवं लोक सभा और राज्यों की विधाानसभा एवं विधाान परिषद में आरक्षित वर्ग के संरक्षण हेतु भारतीय संविधान में निम्न प्रावधान उल्लेखित हैं।

1. अनुच्छेद 343(क) और 343(T) के अनुसार ग्रामीण और शहरी स्थानीय निकायों में एक तिहाई पद आरक्षित करता है।
2. अनुच्छेद 330 संसद के दोनों सदनों में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए सीटें आरक्षित करता है।
3. अनुच्छेद 332 राज्य विधाानसभा में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए सीटें आरक्षित करता है।[47]

राजनैतिक एवं सांस्कृतिक संगठनों की दृष्टि में दलित : राजनीतिक दल

राजनीतिक अधिकारों और प्रतिनिधित्व से वंचना का प्रारंभ हमें गोलमेज सम्मेलनों की विफलताओं में देखने को मिलती है जिसका कारण महात्मा गांधी थे। जिन्होंने दलितों की प्रतिनिधित्व की मांग का समर्थन नहीं किया, साथ ही डॉक्टर अंबेडकर से दलितों का समर्थन वापस लेने के लिए कहा।[48] यह पहली बार नहीं था। यही परिणति हमें पूना पैक्ट 1932 में देखने को मिलती है। मंडल कमीशन जिसकी सिफारिशें 45 साल बाद लागू हुई जो समय की सरकारों का षड्यंत्र था कि इतने वर्षों तक यह अलमारी में ही पड़ी रहीं। 1979 में दोबारा मंडल कमीशन गठित हुआ जिसने अपनी रिपोर्ट 1980 में कांग्रेस सरकार को दी किंतु इससे पूर्व मोरारजी देसाई और लागू करने वाले श्री वी. पी. सिंह जो स्वयं (ठाकुर) उच्च जाति से आते थे। विरोध के साथ-साथ इन्हें प्रधानमंत्री पद से भी वंचित होना पड़ा।[49]

उत्तर प्रदेश में राजनीतिक दृष्टि से 16 मान्यता प्राप्त दल, 3 अमान्यता प्राप्त दल तथा 116 अंतिम/तात्कालिक/सामयिक पंजीकृत दल विद्यमान हैं। 1950 से कांग्रेस के एकछत्र राज्य के बाद 1977 से उत्तर प्रदेश की राजनीति में पिछड़ों और दलितों ने अपने अधिकारों के लिए हुंकार भरी तत्पश्चात विभिन्न राजनीतिक दलों के गठन का प्रारंभ हुआ। जिसमें भारतीय जनता पार्टी 1980, बहुजन समाज पार्टी 1984 जैसी राष्ट्रीय पार्टियों तथा राष्ट्रीय लोक दल 1998, समाजवादी पार्टी 1992, आदर्श कांग्रेस पार्टी 2012, एआइएमआइएम 2016, आम आदमी पार्टी 2017 जैसे पंजीकृत हैं। छोटे-छोटे स्थानीय दलों में महान दल, अपना दल, सुहेलदेव भारतीय समाज पार्टी, निषाद पार्टी, आजाद समाज पार्टी (कांशीराम) विद्यमान हैं।[50]

इन दलों का आलोचनात्मक दृष्टि से वर्गीकरण करें तो, इसमें कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी, आम आदमी पार्टी जैसे दल उच्च जातियों का नेतृत्व करते हैं। समाजवादी पार्टी, अपना दल, महान दल, निषाद पार्टी जैसे दल पिछड़ा वर्ग का नेतृत्व करते हैं। सुहेलदेव भारतीय समाज पार्टी, बहुजन समाज पार्टी, आजाद समाज पार्टी (कांशीराम) जैसे दल दलित शोषितों एवं बहुजन का नेतृत्व करते हैं। किंतु वर्तमान में अब समस्त दल बहुजन एवं सर्वजन की बात करके एक दूसरे दलों के वोटों में

सेंधमारी में प्रयाससरत हैं।

उत्तर प्रदेश विधाानसभा चुनावों की ओर दृष्टि करें तो 1995 से 2007 तक किसी भी दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं हो पा रहा था और मिली जुली सरकारों का गठन हो रहा था। जिसमें कभी भाजपा तो कभी समाजवादी पार्टी, तो कभी कुछ-कुछ समय के लिए बहुजन समाज पार्टी द्वारा शासन किया गया। अपने गठबंधन के शासन काल में किए गए सराहनीय कार्यों से शोषित दलित वर्ग को बहुजन समाज पार्टी ने एकत्रित किया जिसमें उच्च जातियों के वर्ग भी सम्मिलित थे। विधाानसभा चुनाव 2007 में बहुजन समाज पार्टी ने 30.43 प्रतिशत वोट पाकर 206 सीटों पर विजय प्राप्त की किंतु वर्ष 2012 आते-आते दुष्प्रचार और दलित मुख्यमंत्री का शासन इतने बड़े राज्य पर उच्च जातियों को नागवार लगा, जिसका परिणाम 2012 में 22.29 प्रतिशत वोट पाकर 224 सीटों पर समाजवादी पार्टी विजय हुई। वहीं दलितों की कही जाने वाली बहुजन समाज पार्टी को 25.95 प्रतिशत वोट एवं 80 सीटों पर ही संतुष्ट होना पड़ा। विधाानसभा चुनाव 2017 आते-आते समाजवादी पार्टी का हाल भी बहुजन समाज पार्टी जैसा हुआ। जिसमें भारतीय जनता पार्टी 312 सीटों पर विजय हुई तथा बहुजन समाज पार्टी को 22.23 प्रतिशत वोट के साथ कुल 19 सीटें प्राप्त हुई। विधाानसभा चुनाव 2022 में बीजेपी का तिलिस्म बरकरार रहा 41.29 प्रतिशत वोट पाकर 255 सीटों पर विजय मिलीं वहीं बहुजन समाज पार्टी 12.88 प्रतिशत वोट पाकर एक सीट से ही संतोष करना पड़ा।[51]

उत्तर प्रदेश विधाानसभा चुनाव जैसी ही परिस्थितियों हमको लोकसभा चुनाव में भी देखने को मिलती है। जिसमें बहुजन समाज पार्टी को लोकसभा चुनाव 2014 में 19.6 प्रतिशत वोट प्राप्त हुए कोई सीट नहीं मिली, लोकसभा चुनाव 2019 में 19 प्रतिशत वोट प्राप्त हुए 10 सीटों पर विजय मिली, लोकसभा चुनाव 2024 में 9.28 प्रतिशत वोट प्राप्त हुए कोई सीट नहीं मिलीं[52] विधाानसभा चुनाव 2007 से 2022 तथा लोकसभा चुनाव 2014, 2019 तथा 2024 का आंकलन किया जाए तो बहुजन समाज पार्टी का मूल वोट बैंक भी उसे छिटक रहा है।

लोकसभा चुनाव 2024 के परिणामों का अध्ययन करें तो उत्तर प्रदेश की दलित जातियों के वोटों का ध्रुवीकरण कांग्रेस एवं समाजवादी पार्टी के पीडीए[53] (पिछड़ा, दलित और अल्पसंख्यक) तथा संविधाान खतरे में है, जैसे मुद्दों के कारण हुआ है। वहीं भाजपा द्वारा दलितों की कुछ जातियों में भ्रामकता फैलाना कि जैसे जाटव ही आपका आरक्षण खा रहे हैं। साथ ही इन जातियों के महापुरुषों को आदिकाल से जोड़कर उनको श्रेष्ठ बताना, सामाजिक समरसता के कार्यक्रमों का आयोजन करना तथा दलित बहुजन पहचान को हिन्दुत्व और पौराणिक काल के साथ जोड़ने जैसे प्रयास सम्मिलित हैं।[54]

सांस्कृतिक संगठन : राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रकल्प सामाजिक समरसता की नींव चतुर्थ सरसंघचालक बालासाहेब देवरस द्वारा रखी गई तथा 14 अप्रैल 1983 को डॉ. अंबेडकर की जयंती पर इसे अंगीकार किया गया।[55] इसका प्रयोग 2004 के लोकसभा चुनावों हेतु दलितों में अपनी पैठ बढ़ाने के उद्देश्य से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भारतीय जनता पार्टी द्वारा किया गया। जिसके पीछे का कारण भाजपा के 1990 की दशक के शासनकाल के दौरान उपेक्षित जातियों को न्यायिक अधिकार दिलाने की असफलता थीं जो पांचजन्य 2004 के दृष्टि[56] नामक लेख से पुष्ट होती है। सामाजिक समरसता की प्रेरणा डॉक्टर अंबेडकर के समाज में समानता लाने के प्रयासों से प्रेरित है।[57] समरसता के कार्यक्रमों के दौरान सभी कार्यकर्ता खिचड़ी बनाने और सहभोज का कार्य करते हैं, क्योंकि दलित जातियों के दायरे में 1018 जातियां समाहित हैं। जब इसका आभास संघ एवं भाजपा दोनों को हुआ तब हिंदुत्ववाद को सुदृढ़ करने के लिए इन जातियों को अपने साथ कैसे जोड़ा जाए।[58] जिसमें रामायण के बाल्मिकी को राम से जोड़ते हुए भंगी तथा मेहतर समाज से जोड़ा गया और वर्तमान में यह जातियां अपने आप को बाल्मिकी[59] कहलाना पसंद करती हैं। वही निषादों को आकर्षित करने के लिए निषाद राज को भी राम से जोड़ा गया है जिससे राजभर और पासी समाज बहुजन समाज पार्टी से छिटक गया।

दलितों का 20.54 प्रतिशत वोट पाने के लिए 21वीं सदी की राजनीति डॉ. अंबेडकर के इर्दगिर्द घूम रही है। वर्तमान में समस्त पार्टियां एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ डॉ. अंबेडकर को दलित उद्धारक, सामाजिक समरसता का अग्रदूत बताते नहीं थक रही है। वहीं 30 नवंबर 1949 में द ऑर्गेनाइज़र में हिंदू स्त्रियों को अधिकार दिलाने के लिए जब डॉ. अंबेडकर 'हिंदू पर्सनल लॉ' बना

रहे थे। उस समय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने इनके इस कार्य का विरोध किया था।[60] परंतु आज डॉ. अंबेडकर संघ के पोस्टरों में अग्रिम पंक्ति में छाए हुए हैं।

निष्कर्ष : किसी भी जाति, वर्ग या समुदाय का विकास उसके सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विकास पर निर्भर करता है कि उसे वर्ग, जाति या समुदाय की इन क्षेत्रों में कितनी पहुंच के साथ ही इनके अपने स्वयं के स्तर से अपने उन्नयन के कितने अवसर विकसित किए जा रहे हैं तथा सरकारों द्वारा इनको विभिन्न क्षेत्रों में कितने अवसरों की उपलब्धता कराई जा रही है। सामाजिक उन्नयन की बात करें, तो सरकार द्वारा दलितों के उन्नयन के लिए विभिन्न योजनाएं तो विकसित की जाती हैं परन्तु सरकारी तंत्र द्वारा उनको न्यूनतम समय में कैसे अंजाम किया जाए, यह योजनाओं की सफलताओं पर निर्भर करता है। सामाजिक उन्नयन के लिए अधिनियम एवं योजनाएं विकसित तो की जाती हैं किंतु सामाजिक दबाव और राजनीतिक रसूखदारों के कारण 21वीं सदी में भी दलित दमन और प्रताड़ना का शिकार हो रहे हैं।

राजनीतिक क्षेत्र किसी भी समुदाय के स्तर में उन्नयन की वह दिशा है जिसके द्वारा राजनीतिक दल दलित उत्थान की योजनाओं द्वारा दमित शोषण जातियों को उन्नयन की राह पर अग्रसर कर सकते हैं। साथ ही अगर दलित राजनीतिक दलों की सरकार का गठन होता है तो वे समस्त जातियां के साथ-साथ दलित वर्ग को ध्यान में रखकर योजनाओं का निर्माण तथा क्रियान्वयन करेंगी तथा अपने इतिहास से सबक लेते हुए नवनिर्माण की ओर अग्रसर रहेंगी जैसा कि 2007 में बहुजन समाज पार्टी की सरकार के दौरान दृष्टिगत होता है। बहुजन समाज पार्टी द्वारा अपने ऐतिहासिक पुरुषों के साथ-साथ उनके नाम पर विभिन्न योजनाओं को चलाया गया, नवीन जिलों का गठन किया जिससे विकास के मार्ग प्रशस्त हुए किंतु वही इस शासन काल के समय में दलितों पर अत्याचारों का अनुपात अत्यधिक बड़ा इसके क्या कारण थे? यह विचारणीय विषय है। गौर किया जाए तो हजारों साल से शोषित, दमित जातियों को इस सरकार से एक आश मिली होगी कि दलित जाति की मुखिया हमारे कष्टों का निवारण करेंगी किंतु कुछ अराजक तत्वों द्वारा इसका अनुचित प्रयोग भी हुआ। जिसका परिणाम वर्तमान में बहुजन समाज पार्टी उठा रही है, जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप हमको उत्तर प्रदेश में जातीय विखंडन तथा अनेक छोटे-छोटे दलों के गठन देखने को मिल रहे हैं, जिससे दलित राजनीति गर्त की ओर अग्रसर हो रही है।

1 अगस्त 2024 में सुप्रीम कोर्ट की सात सदस्यीय पीठ जिसमें सीजेआई डी. वाई. चंद्रचूड़ सिंह एवं अन्य की बेंच ने 6-1 के अनुपात से जिसमें आरक्षण के अंदर आरक्षण का प्रावधान है, राज्यों के समक्ष फैसला छोड़ दिया है कि वो उसका अनुपालन सुनिश्चित करें। इस निर्णय के साथ ही सर्वोच्च न्यायालय ने अपने ही वर्ष 2004 के अपने पुराने फैसले को पलट दिया। दिसम्बर 2022 तक कुल 5 करोड़ लंबित मामलों में से 4.3 करोड़ से ज्यादा मामले जिला अधीनस्थ न्यायालयों में लंबित हैं। वहीं अगस्त 2022 तक उच्चतम न्यायालय में लंबित मामलों की कुल संख्या 71,411 थीं। समानता और स्वतंत्रता जैसे मूलभूत लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति को समय पर न्याय उपलब्ध हो। भारतीय न्यायपालिका में न्याय का अर्थ निष्पक्षता है अतः इस कारण नैसर्गिक न्याय और लोकतंत्र दोनों प्रभावित हो जाते हैं।

सन्दर्भ

1. दृष्टि, उत्तर प्रदेश (राज्य विशेष) 2023
2. कृष्ण कुमार, 'प्राचीन भारत में शूद्र वर्ण की उत्पत्ति का इतिहास', दृष्टिकोण, 11वर्ष, अंक 4, जुलाई-अगस्त 2019, पृ. 306-309.
3. माता प्रसाद, 'दलित जातियों का दस्तवेज', सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, तृतीय संस्करण पृ. 16
4. घनश्याम शाह, 'भारत में सामाजिक आंदोलन', रावत प्रकाशन, जयपुर, 2009, पृ. 105
5. लाल अंगने, राहुल राज, 'उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन', गौतम बुक सेंटर, नई दिल्ली, 2011, पृ. 13
6. सिंह बच्चन, 'भारत में जाति प्रथा या दलित ब्राह्मणवाद', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2006, पृ. 53
7. V. Swamy, *'Constitutional Safeguards for Scheduled Castes and Scheduled Tribes'*, Rawat Publication, Jaipur, 2003, pp. 25-29
8. लाल अंगने, पूर्वोक्त, पृ.-18

9. अनुसूचित जातियों की सूची संविधान (एस.सी.) आदेश 1950 के अनुसार है। विस्तृत वर्गीकरण के लिए, कार्मिक विभाग, भारत सरकार, 2003, नाभि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 416
10 उदधृत शब्द 'निवासी'- गृह मंत्रालय परिपत्र क्रमांक- 12025/2/76SC/ST(I) दिनांक 22 मार्च 1977
11. भारती रामविलास, 'बीसवीं सदी में दलित', अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2011, पृ.-19
12. जागरण जोश, 1 दिसंबर 2015
13. भारत की जनगणना, 2011
14. थोराट सुखदेव, 'भारत में दलितों- एक साझा नियति की खोज', सेज पब्लिकेशन इंडिया, नई दिल्ली, पृ- 144
15. तेलतुम्बे आनंद, 'सत्ता, समाज और दलित', ग्रंथशिल्पी (इंडिया), नई दिल्ली, 2022, पृ. 113
16. बीबीसी हिंदी, 8 मई 2017
17. न्यूज़ 18 हिंदी, 29 सितंबर 2020
18. बीबीसी हिंदी, 16 सितंबर 2021
19. Crime in India, Statistical Vol. -II 2022,NCRB, Ministry of Home Affairs Government of India, pp. 537-556
20. माता प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. 98
21. Michael S. M., *'Dalit in Modern India: Vision and Value'*, Sage, India, 2010, p. 363
22. कुमार अनुज, 'बहुजन नायक कांशीराम के आविष्मरणीय भाषण', गौतम बुक डिपो, दिल्ली, 2000, पृ. 23
23. वही, पृ. 64
24. दुबे अभय कुमार, (सं.) 'आधुनिकता के आयने में दलित', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृ. 270
25. तेलतुम्बे आनंद, 'उत्तर अंबेडकर दलित आंदोलनः दशा या दिशा', सिद्धार्थ बुक्स, दिल्ली, 2022, पृ. 30
26. The Pioneer, November 23, 1995
27. Ramsheshan R., 'Dalit Politics in U.P.', Seminar, Jan 1995, p. 73
28. Chandra K., *'Why Ethnic Polices Success: Patronage and Ethnic Head Count in India'*, Cambridge University Press, Cambridge, 2004, p. 185
29. नैमिशराय मोहनदास, 'बहुजन समाज', नीलकंठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ. 87
30. देवरस बाला साहब (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के चौथे सर संघचालक) द्वारा सामाजिक समरसता स्थापित करने और दलितों और मुस्लिमो को संघ से जोड़ने के लिए शुरू की गई गतिविधि।
31. भारत का चुनाव आयोग, 2011
32. The Indian Forum, June 25, 2024
33. राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन, भारत सरकार। 2019
34. सांख्यिकी डायरी, उत्तर प्रदेश, 2020
35. प्रशिक्षण एवं रोजगार निदेशालय, उत्तर प्रदेश, 2019
36. वार्षिक रिपोर्ट, कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय, भारत सरकार, 1960-2004-05
37. वार्षिक रिपोर्ट, कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय, भारत सरकार, 2022-23
38. माता प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ. 70
39. वही, पृ. 72
40. Human Right Watch, Broken People: Cast Violence Against India's "Untouchable", Hman Right Watch, Books for Change, 2001, pp. 250-65
41. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग की रिपोर्ट, भारत सरकार, 1984-85
42. https://m.themooknayak.com/article/tribal-news/budget-analysis-2024-25-allocation-for-dalit-tribal-communities-is-not-enough-government-is-ignoring-the-issues-of-dalits/b2333113-bd11-40e9-b8d5-fcdb85ff2e84cited10July2024.10:15PM
43. https://www.forwardpress.in/2024/07/budget-2024-25-sc-st-and-obc-welfare-not-a-priority-hindi/cited
44. अंतरिम बजट, भारत सरकार, 2024।
45. अमर उजाला, 24 जुलाई 2024
46. शासनादेश, उत्तरप्रदेश सरकार, 6 अप्रैल 1994.
47. भारत का संविधान, विधि एवं न्याय मंत्रालय विधायी विभाग, भारत सरकार पृ. 189-204
48. साथी, छेदी लाल, 'अतीत से आज तक के भारतीय इतिहास में दलित व पिछड़ी जातियों की स्थिति', सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृ. 82
49. पूर्वोक्त पृ. 94
50. https://www.jagranjosh.com/general-knowledge/list-of-political-parties-in-uttar-pradesh-up-with-symbols-1643354922-1cited19July2024.9:35AM
51. सांख्यिकीय रिपोर्ट, उत्तर प्रदेश विधान सभा 2022 के आम चुनाव, भारत निर्वाचन आयोग।
52. सांख्यिकीय रिपोर्ट, उत्तर प्रदेश की लोक सभाओं 2024 के आम चुनाव, भारत निर्वाचन आयोग।
53. समाजवादी पार्टी का घोषणापत्र, लोकसभा चुनाव 2024।
54. लक्षमण बंगारू, 'सामाजिक मंथन की आवश्यकता', पंचजन्य, 23 जनवरी, 1994
55. Narayana Badri, *'Republic of Hinodutva how the Sangh is reshaping Indian Democracy'*, Penguin Random House, India, 2021. p. - 67
56. Ibid, p. 67
57. Narayana Badri, *'Fascinating of Hindutva: Saffron Politics and Dalit Mobilization'*, Sage, India, 2009, p. 40
58. Ibid, p. 4
59. द इंडियन एक्सप्रेस, 21 अप्रैल 2016, संपादकीय, विच अंबेडकर आलेख रामचंद्र गुहा, पृ.10
60. Narayan V., *'Politics Process in Uttar Pradesh: Identity Economics Reform and Governance'*, Pearson, New Delhi, 2007, pp- 45